भूमिका।

श्री तारणस्वामी रचित यह तीसरा महान ग्रन्थ है जिसका उल्था उन्हींके चरणकमलके प्रसादसे सरल हिन्दी भाषामें सर्वसाधारणके समझनेके लिये किया गया है। तारणसमाजके भाई भी अर्थको न समझकर इसका आनन्द भले प्रकार नहीं लेसक्ते थे। अब यदि वे ध्यानसे स्वाध्याय करेंगे तो उनको बहुत आनन्द प्राप्त होगा। इसका उल्था करनेमें तीन लिखित प्रतियोंका उपयोग किया गया है— दो सागरकी, एक मल्हारगढ़ नसियाकी। सागरकी दो प्रतियोंमेंसे एक बहुत प्राचीन है, जीर्ण है, जो संवत १६०० सौलहसौके अनुमानकी लिखी होगी, यद्यपि संवत लिखा नहीं है, क्योंकि प्रतिके बहुतसे पत्र निकल गए हैं। यह प्रति शुद्ध है, इससे इस उल्थामें बहुत मदद मिली। दुसरी सागरकी प्रति यथासभव शुद्ध लिखी हुई है जो सौ वर्षके भीतरकी लिखी होगी। मल्हारगढ़की प्रति भी पुरानी नहीं है तथा सागरकी दो प्रतियोंकी अपेक्षा उतनी शुद्ध नहीं है। मैंने अपनी अल्पबुद्धिके अनुसार गाथाओंका भाव समझकर अर्थ और भावार्थ लिखा है। जानबूझकर कहीं न भूल की है न मूल अर्थको औरका और लिखा है। प्रमाद व अज्ञानसे कहीं समझनेमे व लिखनेमें भूल होगई हो तो विद्वज्जन मुझे अल्प श्रुत जानकर क्षमा करेंगे व ग्रन्थको शोध लेंगे।

इसके पहले श्री ता० त० श्रावकाचारजीका व श्री ज्ञानसमुच्चयसारजीका उल्था किया गया था। इन तीनों महान ग्रन्थोंको उल्था करते हुए जितना जितना मैं अधिक अधिक विचार करता था उतना उतना अधिक मुझे इस बातका विश्वास होता जाता था कि श्री तारणस्वामी जैनसिद्धातके मर्मी थे, जैन शास्त्रोंको व्यवहार तथा निश्चयनयसे जाननेवाले थे, अध्यात्मके पूर्ण विशारद थे, सूक्ष्म भावोंके पहचाननेवाले थे, सदाचारी थे व पूर्व जिनवाणीकी परम्पराके सच्चे भक्त थे व श्री जिनवाणीके अनुसार ही लिखना अपना धर्म समझते थे तथा आत्मध्यान व समताभावके अच्छे अभ्यासी थे। उनके आत्मीक गुणोंमें मेरी भक्ति इतनी होगई है कि मै मन वचन कायसे उनको परोक्ष वन्दना करता हूं।

श्री तारणस्वामी या श्री तारणतरणस्वामीका कोई स्वयं लिखित व उनके निकट शिष्य द्वारा लिखित जीवनचरित्र नहीं मिलता है। श्रावकाचारजीकी भूमिकामें जो कुछ जीवनचरित्र लिखा गया है वह जैनहितैषी पत्रकी पुरानी फायलोंको देखकर व सागरवाले भाइयोंके द्वारा मालूम करके लिखा गया है। वह यथार्थ नहीं भी होसक्ता है। जबतक कोई उनके समयका जीवनचरित्र न मिले

तबतक उनके जीवनकी यथार्थ घटनाओंका वर्णन नहीं किया जासक्ता है। तौभी इतना तो यथार्थ है कि उनका जन्म विक्रम सम्वत् १५०५ अगहन सुदी ७ को पुष्पावतीमें हुआ था। पिता गढ़ासाहजी परवार जातिके सेठ थे। तथा यह टोंक राज्यके सेमरखेड़ीमें व ग्वालियर राज्यके मल्हारगढ़में विशेष ध्यान सामायिक करते थे। तथा उनका समाधिमरण भी मल्हारगढ़में विक्रम सम्वत् १५७२ ज्येष्ठ सुदी ६ को हुआ था। तथा यह बड़े भारी उपदेशदाता थे। इनके उपदेशसे हजारों लाखों मानवोंने यथार्थ अध्यात्मज्ञानका लाभ किया था, यह बात तारणसमाजमें प्रसिद्ध है।

पाठकोंको श्री तारणस्वामीके ज्ञानका आनन्द उनके ग्रन्थोंके मननसे ही होगा तथापि हम यहां नमूनेके तौरपर कुछ गाथाए इस ग्रन्थकी नीचे देते है, जिनसे पाठकोंको उनके आत्मज्ञानका व सिद्धान्त ज्ञानका दिग्दर्शन होजायगा।

सुगुरुका स्वरूप।

गुरुं च गुन उवएसं, ज्ञान सहावेन उवएसनं सुद्धं।
गुरुं च गगन सरूवं, जं सूरं तिमिर नासनं सहसा॥ १७॥

भावार्थ—सुगुरु गुणोंका ही उपदेश करते है। वे ज्ञान स्वभावके द्वारा शुद्ध तत्वको बताते है। सुगुरु आकाशके समान निर्लेप व निर्मोह हैं। जैसे सूर्यके प्रकाशसे यकायक अन्धेरा भाग जाता है वैसे उनके उपदेशसे मिथ्याज्ञान भाग जाता है।

जिनलिंग स्वरूप।

नानाप्रकार दिष्टी, ज्ञान सहावेन दस्टि परमेस्टी।
लिंगं च जिनवरिंदं, लिंगं सुद्धं च कम्म विलयन्ति॥ ५४॥

भावार्थ—साधु नानाप्रकार दृष्टि रखते हुए ज्ञान स्वभावमें रमन करनेवाले परमेष्ठी है। उनका भेष श्री तीर्थंकरका भेष है। अन्तरङ्ग भावलिंग शुद्ध होता है। भावोंकी शुद्धतासे ही कर्मोंका क्षय होता है।

देव गुरु धर्म जिन कथन।

देवं च परम देवं, गुरुं च परम गुरुं च संदिट्टं।
धम्मं च परम धम्मं, जिनं च परम जिनं निम्मलं विमलं॥ ७४॥

भावार्थ—परमात्मा देवको देव, परम गुरुको गुरु, परम धर्मको धर्म, वीतराग व कर्ममल रहित जिनको परम जिन कहा गया है।

भूमिका
॥ २

पक्ष राग कथन ।

पाषिक रागं उत्तं, संसारे पषि भाव राग सद्भावं ।
संसार वृद्धि सहियं, दंसन विमलं च राग गलियं च ॥ १०८ ॥

भावार्थ–संसारपक्षके भावोंकी ओर जो रागका होना है वह पाक्षिक राग कहा गया है । इससे संसार बढ़ता है । निर्मल सम्यग्दर्शनके प्रकाश होनेसे पाक्षिक राग गल जाता है ।

कुल राग कथन ।

कुल रागं च उवन्नं अकुल सहकार ज्ञान विरयंति ।
अज्ञान विषय वृद्धं अनुमोय निगोय वासम्मि ॥ ११० ॥

भावार्थ–कुलराग इस प्रकारका उत्पन्न होजाता है कि नीच कुलीको ज्ञान नहीं आसक्ता । आप ऊँच कुली होकर अज्ञानसे इन्द्रियोंके विषयोंको बढ़ाता जाता है व आनन्द मानता है । इससे नीच गोत्र बांधकर निगोदमें चला जाता है ।

शरीर मोह कथन ।

कलरंजन दोस उवन्न कल सहकारं च वृद्धि संजुत्तं ।
परिनइ कलुस सहावं कललंकृत कर्म तिविह उववन्नं ॥ १२३ ॥

भावार्थ–शरीरके मोहमें रंजायमान होनेसे यह दोष उत्पन्न होता है कि शरीरका संयोग बढ़ता जाता है व कलुष भावोंमें परिणमन होता है । शरीरके मोहसे ही द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्म उत्पन्न होते हे ।

सम्यग्दर्शनके लिये जातिकुलकी आवश्यक्ता नहीं ।

जाइ कुलं न हु पिच्छदि सुद्ध सम्मत्त दंसनं पिच्छइ ।
ज्ञान सहाव अनुमोयं अज्ञान सल्य मिच्छ मुंचेइ ॥ १५३ ॥

भावार्थ–सम्यग्दर्शनके लिये किसी विशेष जाति कुलकी आवश्यक्ता नहीं है, शुद्ध सम्यग्दर्शन सबको होसक्ता है । सम्यग्दृष्टीके भीतर आत्माके ज्ञान स्वभावकी अनुमोदना रहती है, मिथ्याज्ञान व शल्य व मिथ्यात्व दूर होजाते है ।

भूमिका

सम्यग्दर्शनके लिये छोटे बडेकी आवश्यक्ता नहीं है ।

लहु दीरघ न हु पिच्छइ ज्ञान सहावेन अनुमोय संयुत्तं ।
हितमित परिनइ सुद्धं केवल परिनाम अनुमोय संजुत्तं ॥ १५५ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके लिये लघु या दीरघ नहीं देखना चाहिये । जो कोई ज्ञान स्वभावमें आनन्दसहित रहेगा व शुद्ध हितमित स्वभावमें परिणमन करेगा वही सम्यक्ती है । आनन्दसहित आत्माके शुद्ध परिणामको ही सम्यक्त कहते हैं ।

जलसे शुद्धि मानना मिथ्यात्व है ।

मनरंजन सुभावं सोभा सहकार जलस्य सुचि चित्तं ।
अज्ञानं मिच्छत्त जलं सहावेन थावरं पत्तं ॥ १६४ ॥

भावार्थ—मनरंजन स्वभावके साथ जलके द्वारा अपनी शोभा मानना व जलसे पवित्रता मानना अज्ञान व मिथ्यात्व है । ऐसे स्वभावसे स्थावरमें जन्म होता है ।

दर्शन मोहका फल ।

ज्ञानं च सुकिय सुभावं, ज्ञानं च षिपिय तिविह कम्मानं ।
ज्ञानं अनंत रूवं, दर्शन मोहंध ज्ञान आवरनं ॥ २०४ ॥

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान आत्माका स्वभाव है, यह ज्ञान अनन्त है । इसीके प्रतापसे भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, तीन प्रकार कर्मोंका क्षय होता है, परन्तु दर्शन मोहके उदयसे ज्ञानपर आवरण रहता है ।

तवं पि अप्प सहावं, ज्ञान सहावेन चरन सहकारं ।
दर्सन मोहंध असत्यं, तव आवरन सरनि संसारे ॥ २३४ ॥

भावार्थ—तप भी आत्माका स्वभाव है । ज्ञान स्वभावमें परिणमना चारित्रका सहकारी है, परन्तु दर्शन मोहका उदय हो तो वह तप असत्य है, उसे यथार्थ तप स्वभावपर आवरण है । वह संसारमें ही भ्रमण करेगा ।

शरीर मोहसे निवृत्ति ।

पर्जय सहाव उत्तं, सरीर संस्कार भाव उववन्नं ।
कृतकारित अनुमतयं, पज्जय विवरीउ कम्म विरयन्तो ॥ २५७ ॥

भावार्थ—शरीर राग उसे कहते है जो शरीरके सत्कारमें कृतकारित अनुमोदनासे वर्तन करके कर्मोंको बांधे। जो शरीरसे विरक्त है वही कर्मोंकी निर्जरा करता है।

इन्द्रिय मोहसे निवृत्ति।

जं इन्दी च सहावं, तं जानेहि सयल मोहन्धं।
जिन उवएस लहन्तो, अतिदी सहकारेन कम्म विरयन्तो ॥ २५८ ॥

भावार्थ—जो इन्द्रियोंके रागमें लीन है वह पूर्णमें मोहमें अन्धा है ऐसा जाने, परन्तु जो जिनेन्द्रका उपदेश पाकर अतींद्रिय स्वभावको जानकर उसमें लय होता है उसीके कर्म क्षय होते हे।

क्रियासे निवृत्ति।

कम्मं सहाव उत्तं, कृत विरयं च कारितं विरयं।
अनुमइ विरयति सुद्धं, ज्ञान वलेन कम्म विरयन्ति ॥ २९३ ॥

भावार्थ—क्रियाका स्वभाव कहा गया। जो कृत कारित अनुमोदनासे क्रियाका मोह छोड़ेगा और शुद्ध आत्मज्ञानमें लय होगा उसीके ज्ञानबलसे कर्मका क्षय होगा।

चिदानन्दमें रमणता कर्मनाशक है।

चिदानन्द आनन्दं, परम सुभावेन कम्म संषिपनं।
सीह सुभाव सुदिट्ठं, गयन्द जुहेन दिट्ठि विरयन्ति ॥ ३०९ ॥

भावार्थ—चिदानंद परम स्वभावमें मगन होनेसे कर्म इसतरह भागते हे जैसे सिंहको देखकर हाथीके झुण्ड भाग जाते हैं।

नौ केवल लब्धि कथन।

ज्ञानं दंसन सम्मं, दानं लाभं च भोय उपभोयं।
वीर्य सम्मत्त सुचरनं, लब्धि संजुत्त सिद्धि संपत्तं ॥ ३२४ ॥

भावार्थ—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, तथा क्षायिक चारित्र, इन नौ लब्धियोंके साथ जीव सिद्ध होता है।

दर्शनावरण कर्मका कारण ।

दंसन अरूप रूवं, रूवातीतं च निम्मलं विमलं ।
यदि कल इस्ट सुभावं, दंसन आवरन नन्त संसारे ॥ ३७० ॥

भावार्थ—यद्यपि दर्शनोपयोग निराकार स्वभाव है तथापि अमूर्तीक कर्म रहित वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभवमें सहकारी है। यदि वह दर्शनोपयोग शरीरके रागमें लीन हो तो दर्शनावरणका बन्ध होकर अनन्त संसार भ्रमण हो ।

अन्तराय कर्म बन्धका कारण ।

नो कम्मं पिच्छंतो, भाव कम्मं च पिच्छ विरयन्तो ।
दव्व कम्मं नहु पिच्छदि, ज्ञानंतर अनन्त संसारे ॥ ३८९ ॥

भावार्थ—जिसकी दृष्टि केवल शरीरके ऊपर है, रागादि भावकर्मोंकी ओर व ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मके बंधकी ओर नहीं है वह ज्ञानमें विघ्न डालनेसे अंतराय कर्मका बंध करता है जो अनंत संसारमें भ्रमणका कारण है ।

सिद्ध स्वभाव कथन ।

संज्ञा सहाव सहिओ, संज्ञा परिनाम नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन कम्म विलयन्ति ॥ ४४२ ॥

भावार्थ—संसारी जीव आहार, भय, मैथुन, परिग्रह चार संज्ञाओंको रखते हैं, सिद्धोंके वे अनंतकर्म गल गए हैं जो संज्ञा पैदा करें । उनके कोई आवरण नहीं है । शुद्ध स्वभावकी प्रगटतासे कर्म क्षय होगए है ।

चार निश्चय प्राण ।

दह संजुत्तं सहियं, अतिंदी सहकार सहाव संजुत्तं ।
ज्ञान सहाव स उत्तं, सुख सत्ता बोध चेतना रूवं ॥ ४६१ ॥

भावार्थ—यद्यपि अरहंतके दश प्राण शरीरकी रचनाकी अपेक्षासे हैं तौभी वे अतीन्द्रिय स्वभावके धारी हैं, वे ज्ञानस्वभावी हैं । उनमें सुख, सत्ता, बोध, चैतन्य चार निश्चय प्राण है ।

सिद्धोंके सम्यक्तके आठ अंग।

निसंक संक विलयं, अंगं अस्टं च निम्मलं विमलं।
इस्टं संजोय सुद्धं, कम्मं षिपिऊन मुक्ति गमनं च ॥ ४८७ ॥

भावार्थ-सिद्ध भगवान पूर्ण निःशंक है। उनमें आठों ही अंग परमशुद्ध है। उनके हितकारी शुद्ध स्वभावका लाभ है। वे कर्म क्षय करके मोक्ष पधारे है।

परम तत्व कथन।

तत्वं च परम तत्वं, तत्वं च परम तत्व परमेस्टी।
जिन वयनं जयवन्तो, जयवन्तो लोयलोय विमलं च ॥ ५४८ ॥

भावार्थ-तत्वोंमें मुख्य तत्व आत्मा है या अर्हंत सिद्ध परमेष्ठी है। जिनवाणी जयवंत हो व निर्मल ज्ञान जयवंत हो जो लोकालोकको जानता है।

अज्ञान व ज्ञानका फल।

अज्ञान परिनाम सहियं, परिनवइ कम्मान अन्नत भावे हि।
ज्ञान दिस्टि उववन्नं, जं सूरं तिमिरनासनं सहसा ॥ ५८२ ॥

भावार्थ-अज्ञानमें परिणमन करनेसे अनंत प्रकारके भावोंसे कर्म बंधते है। सम्यग्ज्ञानके उत्पन्न होनेसे कर्म इसतरह भोगना है जैसे सूर्यके उदयसे अंधकार एकदम नाश होता है।

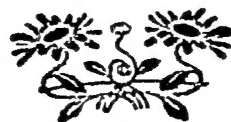
यह शुद्धात्माकी भावना रूप ग्रंथ है। इसमें वार वार शुद्धात्माकी ओर लक्ष्य दिलाया गया है। इसलिये पुनरुक्तिका दोष नहीं लेना चाहिये। आत्माकी भावनाके लिये एकांतमें बैठकर इस ग्रंथका मनन बहुत ही उपकारी होगा। तथा विचारवान श्रोताओंको भी प्रवीण वक्ता द्वारा सुनने योग्य है।

अमरावती
भादों वदी १० वीर सं० २४६०
ता० ३ सितम्बर १९३४.

जैनधर्मका क्षुद्र सेवक-

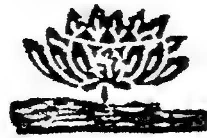
ब्र० सीतलप्रसाद।

विषय-सूची।



शुद्धाशुद्धि पत्र।

पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
१७	१४	कर्म वर्गणा	कर्म कर्म वर्गणा	१८४	८	कर्मोको	कर्मोका
५०	१	शुद्र	शुद्ध	१८७	१७	शुभ भावोंसे	अशुभ भावोंसे
५१	१५	यदि	यही	२०४	२०	भोय उवभोयं	भोय उवभोयं
५३	१३	दुःख	सुख	२०६	११	क्षय	वन्ध
६०	३	शुद्धता	गृद्धता	२०८	१५	हुलाने	न्हलाने
७८	२१	भाव भी	भाव कभी	२१०	३	आत्माका विवेक	अनात्माका विवेक
८८	८	कुगुरु	कुदेव कुगुरु	,,	११	पद लोयन	पद लोपन
११२	१६	कुलिग	फुलिंग	२२४	१३	अनादि	आनन्द
११८	८	सोमा–	सोभा	२२८	५	शब्द	शुद्ध
१३२	०	न	व	२४०	१०	पर्यायमें	पर्याये
१४०	२०	ज्ञानाचरकग	ज्ञानाचरण	२६२	१५	भक्ति ज्ञान	मति ज्ञान
१४२	१२	रहित	मल रहित	२७०	०	आत्म ज्ञानि	अल्प ज्ञानि
१५६	१०	आत्मासे	आत्माके	२९७	२	संयत्तं	संपत्तं
१६३	५	इन	मिथ्यादृष्टी इन	,,	२०	गधण	गमण
,,	११	याख्यदू	माख्यदू				



॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

श्री तारणतरणस्वामी विरचित्—

उपदेश शुद्ध सार ।

मङ्गलाचरण—दोहा ।

श्री अरहंत जिनेन्द्रको, नमन करूं नय माथ ।
परम सिद्ध शुद्धात्मको, प्रणमूं गहि द्वय हाथ ॥ १ ॥
आचारज श्री परम गुरु, उपाध्याय श्रुतनाथ ।
साधु निरंजन निजरमी, नमहुं परम रुचि साथ ॥ २ ॥
वर्तमान इस भरतके, चौवीसों जिनराय ।
ऋषभदेवमे वीर लों, प्रणमूं ध्यान लगाय ॥ ३ ॥
गौतम गणधर सुमरके, और सुधर्माचार्य ।
जंबू अन्तिम केवली, ध्याऊं अन्य गुणार्य ॥ ४ ॥
कुन्दकुन्द आचार्यको, सुमरूं हिय रुचि लाय ।
जिनके वाक्य प्रकाशसे, मोह तिमिर मिट जाय ॥ ५ ॥

अथ श्री तारणतरणस्वामी विरचित उपदेश शुद्ध सार ग्रन्थका हिन्दी उल्था जनसाधारणके हितार्थ अल्पबुद्धिके अनुसार लिखा जाता है—

मंगलाचरण ।

अप्पानं सुद्धप्पानं, परमप्प विमल निम्मल सरूवं ।
सिद्ध सरूवं पिच्छदि, नमाम्यहं देव देवस्य ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(अहं) मैं तारणस्वामी (सुद्धप्पानं अप्पानं) शुद्ध आत्मामई (देव देवस्य) परम देव श्री अरहंत भगवानको (नमामि) नमस्कार करता हूं जो (विमल निम्मल सरूवं सिद्ध सरूवं पिच्छदि) भाव मल रागादि द्रव्य मल, ज्ञानावरणादि आठ कर्म व नोकर्म शरीरादि इनसे रहित परमात्मा स्वरूप सिद्ध भगवानके साक्षात् स्वभावको देखते हैं।

भावार्थ—ग्रन्थकी आदिमें ग्रन्थकर्ताने परमोपदेशके मूल उपदेशकर्ता श्री अरहंत भगवानको नमस्कार किया है। उनका आत्मा चार घातीय कर्मोंसे रहित शुद्ध है। उसमें नौ केवल लब्धियां उत्पन्न होगई हैं—अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त दान, अनन्त लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग, अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक या वीतराग चारित्र। अरहंत भगवान ही प्रत्यक्ष ज्ञानसे अमूर्तीक पदार्थोंको देख सक्ते हैं। वीतराग छद्मस्थ क्षीण मोह गुणस्थान पर्यंत कोई भी प्रत्यक्ष रूपसे जीवादि अमूर्तीक पदार्थोंको नहीं देख सक्ते हैं, मतिश्रुत ज्ञानी मन द्वारा परोक्ष ही जीवादिको जान सक्ते हैं। इसीलिये तारणस्वामीने कहा है कि आत्माका जैसा निर्मल सिद्ध भगवानके समान स्वरूप है उसको प्रत्यक्ष रूपसे अरहंत ही अनुभव करनेवाले हैं, वे ही प्रत्यक्ष शुद्धात्मीक रसका स्वाद लेते हैं। तथा अनन्तानन्त सिद्धोंका स्वरूप भी जैसा है वैसा उनके आदर्श सदृश ज्ञानमें झलकता है। अरहंत भगवानको नमस्कार करनेसे श्री ऋषभादि महावीरपर्यंत चौवीस तीर्थंकरोंको भी नमस्कार होगया है। तथा जिनके परम्परा उपदेशसे ज्ञानामृतका स्वाद आया है उनका परम उपकार समझकर उनको पुनः पुनः मन, वचन, कायसे नमन करना सज्जनोंका कर्तव्य है, इसी हेतु स्वामीने नमन किया है।

ग्रन्थकी प्रमाणता।

आद्यं अनादि सुद्धं, उवइट्ठं जिनवरेहि सेमानं।
संसार सरनि विरयं, कम्मक्खय मुक्तिकारणं सुद्धं ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(आद्यं) किसी विशेष तीर्थंकरकी अपेक्षा आदि रूप, परन्तु (अनादि) प्रवाहकी अपेक्षा अनादि रूप (सुद्ध) ऐसा शुद्ध निर्दोष कथन (सेमान) सर्व (जिनवरेहि) तीर्थंकर जिनेन्द्रोंने (उवइट्ठं) उपदेश किया है। जो (ससार सरनि विरयं) संसारके भ्रमणसे छुड़ानेवाला है, (कम्मक्खय) कर्मोंका नाश करनेवाला है, (मुक्तिकारण) मोक्षका मार्ग है (सुद्ध) और वह शुद्ध आत्मानुभव रूप है।

भावार्थ—यहांपर बताया है कि इस ग्रंथमें जिस विषयको कहा जायगा वह परम्परासे चला आया है इसलिये अनादि है। जैन सिद्धांतकी यह मान्यता है कि यह जगत सत्‌रूप है, सदासे चला आया है और सदा चला जायगा। यह जगत जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल इन छः द्रव्योंका समुदाय है। हरएक द्रव्य सत् है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप है। स्वभाव व गुणोंकी अपेक्षा ध्रुव अर्थात् नित्य है। पर्याय सदा पलटते रहते हैं। क्षण क्षणमें पुरातन पर्यायका व्यय या नाश होता है तब ही नूतन पर्यायका जन्म या उत्पाद होता है—जैसे एक सुवर्णकी डलीसे कडा बनाया तब डलीकी अवस्थाका नाश हुआ, कडेकी अवस्थाका जन्म हुआ। तथापि सुवर्ण ध्रुव रहा। कोई निर्मित पदार्थ किसी पूर्व उपस्थित पदार्थकी दशा पलटे विना नहीं बन सक्ता। कपासका तागा रुईकी दशाको पलटकर, कपडा तागोंकी दशा पलटकर, एक कोट कपडेके थानकी दशाको पलटकर ही बनता है। किसीका नाश किसीके उत्पाद विना नहीं होता। लकडीका नाश कोयला और राखको बना देना है—जगत स्वभावसे नित्य है। पर्याय पलटनेकी अपेक्षा अनित्य है, शुद्ध द्रव्योंके भीतर स्वभाव पर्यायें सदृशरूप क्षीरसमुद्रकी कल्लोलके समान हुआ करती हैं। अशुद्ध जीव और पुद्गलमें विभाव पर्यायें होती हैं जो प्रगट हैं। जीवका ज्ञानोपयोग मंद ज्ञानसे तीव्र होजाता है या सराग भाव वीतराग होजाता है।

ऐसे अनादि जगतमें संसारी आत्माके शुद्ध होनेका जो उपाय है वह भी अनादि है, अनादिसे ही आत्मा परमात्मा होता रहा है। अनादिसे ही तीर्थंकर होते रहे हैं। तीर्थंकर जिस शुद्ध आत्मानुभवरूप

मार्गसे पुरुषार्थ करके अपने आत्माको शुद्ध करते हैं उसी मार्गका उपदेश वे अपनी दिव्यध्वनिसे प्रकाश करते हैं। यदि किसी विशेष तीर्थंकर जैसे महावीरस्वामी या पार्श्वनाथ भगवान या नेमिनाथ महाराज या श्री ऋषभदेवकी अपेक्षा विचार किया जावे तो यह कथन या यह मार्ग आदिरूप कहलायगा। इस रत्नत्रय स्वरूप मोक्षमार्गके कथनमें कोई वाधा नहीं है। इसीसे यह निर्बाध या शुद्ध है। क्योंकि संसारके कारण कर्मोंका बंध रागद्वेष मोहसे होता है और यह मार्ग स्वयं वीतरागरूप है। इससे यह निश्चयसे संसारके मार्गको बन्द करनेवाला है। अर्थात् कर्मोंका क्षय करनेवाला है तथा नियमसे सर्व कर्म क्षयरूप मुक्तिका कारण है। इस मार्गमें अशुभ भावोंका व शुभ भावोंका मिश्रण नहीं है। यह मार्ग निश्चय रत्नत्रय स्वरूप निर्विकल्प, स्वानुभवगम्य, शुद्धोपयोगमई वचनातीत है। ग्रन्थकर्ताका अभिप्राय है कि मैं ऐसे ही शुद्ध परम कल्याणमय मोक्षमार्गको परम्पराके अनुकूल कहूंगा।

उवएस सुद्ध सारं, सारं संसार सरनि मुक्तस्य।
सारं तिलोय पइओ, उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ—(उवएस सुद्धसार) इस उपदेश शुद्ध सार ग्रन्थको अथवा इस ग्रन्थमें जो जिन धर्मका शुद्ध कल्याणमय मार्ग बताया है उसको (परम जिनवरेंदेहि उवइट्ठं) परम जिनवरेंद्रोंने उपदेश किया है (ससार सरनि मुक्तस्य सारं) यह संसारके भ्रमणसे छुडानेका यथार्थ मार्ग है तथा (तिलोय पइओ सार) तीन लोकमें जितने पद या मार्ग हैं उन सबसे श्रेष्ठ है।

भावार्थ—यहां फिर भी दृढ किया है कि इस ग्रंथका जैसा नाम है वैसा ही इसमें कथन है। चार अनन्तानुबन्धी कषाय और मिथ्यात्व कर्म, सम्यक्मिथ्यात्व कर्म व सम्यक्त कर्म, इन सात प्रकृतियोंको जो जीतता है वह अविरत सम्यग्दृष्टी जिन है। उनमें जो साधु छटम गुणस्थानसे लेकर क्षीण मोह बारहवे गुणस्थानतक हैं वे जिनवर हैं। उनके स्वामी इन्द्र ऐसे अरहंत भगवान जिनवरेन्द्र हैं उनमें भी परम अतिशयरूप तीर्थंकर प्रकृतिको षोडशकारण भावना भाकर बांधनेवाले और इन्द्रोंके द्वारा समवशरणकी विभूतिकी विशेष महिमाको प्राप्त करनेवाले तीर्थंकर परम जिनवरेन्द्र हैं। उन ही सकल परमात्माओंने जो मोक्षका मार्ग बताया है वह अवश्य इस भयानक जन्म जरा मरणरूप, संकल्प विकल्पमय, तृष्णामई,

संसार-समुद्रसे पार करनेको जहाज समान है। तथा तीन लोकमें जितने भी अन्य कोई पद या मार्ग हैं, जिनको अपनी २ बुद्धिके अनुकूल अल्प ज्ञानियोंने मान रखा है व जो एकांतमय है, अनेकांतपर अवलंबित नहीं है उन सबसे श्रेष्ठ यह तीर्थंकर प्रणीत अनेकांत मोक्षमार्ग है इसीका इसमें उपदेश है।

ज्ञानकी दुर्लभता।

जिनवयनं उवएसं, केई पुरिसस्य मनि रयन वित्थरनं।
मनुवा पंखि अनेयं, चंचु वा कर्न लेवि सं उडियं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ—(जिनवयन उवएसं) जिनेन्द्रकी ध्वनि द्वारा धर्मोपदेश होता है (केई पुरिसस्य) कोई एक पुरुषके भीतर (रयन मनि विथरन) रत्नत्रयका प्रकाश होता है। (मनुवा पखि अनेयं) मानवरूपी अनेक पक्षी होते हैं (चंचु वा कर्न लेवि) कोई मानव पक्षी अपनी चोंच रूपी कर्णसे धर्मोपदेश रूपी रत्नको ग्रहण कर (सं उडियं) भले प्रकार उड जाता है अर्थात् उस रत्नको अच्छी तरह धारकर जीवन बिताता है।

भावार्थ—समवसरणमें यद्यपि बारह सभाओंके भीतर अनेक सैनी पंचेन्द्रिय पशु मानव देव श्रोता बैठे होते हैं तथापि कोई एक ही भगवानकी वाणीका सार ग्रहणकर अपने भावोंमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्रका विस्तार कर पाते हैं। यहां पक्षियोंका दृष्टांत दिया है। कहींपर मोती या रत्न पड़े हों, कोई एक ही पक्षी अपनी चोंचमें रत्नको दबाकर उड़ जाता है, उसी तरह कोई एक ही रुचिवान मानव अपने कानोंसे वाणीको भलेप्रकार सुनकर चित्तमें धारण करता है और उसका सार समझकर रत्नत्रय धर्मके द्वारा अपने जीवनको पवित्र करता है। यहां मनुष्यको पक्षीका दृष्टान्त इस कारण दिया है कि जैसे पक्षीका वास किसी वृक्षपर रात्रिको होता है फिर वह उड़कर कहीं और चला जाता है उसी तरह मानवका जीवन क्षणिक है—थिर नहीं है, आयु कर्मके आधीन है। तिसपर भी कर्म भूमिके मानव व पशुओंकी आयुकी उदीर्णा होजाती है। अर्थात् अकाल मरण किसी तीव्र रोग भय विष शस्त्रघात आदि कारणोंसे होजाता है। इसलिये मानवको सदा ही धर्मके संग्रहके लिये तैयार रहना चाहिये।

सार समुच्चयमें श्री कुलभद्राचार्य कहते हैं:—

जीवितं विद्युता तुल्यं संयोगाः स्वप्न सन्निभा. । सन्ध्यारागसम· स्नेह शरीरं तृणविन्दुवत् ॥ १५० ॥
शक्रचापसमा भोगा सम्पदो जलदोपमा । यौवनं जलरेखेव सर्वमेतद शाश्वतम् ॥ १५१ ॥

भावार्थ—यह मानव जीवन विजलीके चमत्कारके समान चंचल है, शरीर पुत्र धनादि परिग्रहका सम्बन्ध स्वप्नके समान है, संसारका स्नेह संध्या समयकी लालीके समान क्षणिक है, शीघ्र ही वियोगरूपी रात्रि आजायगी। शरीरका छुटना इतना ही अकस्मात् होता है जैसे तृणके ऊपर पड़ी हुई जलकी बूँद जरासे पवनके झोकेसे गिर जाती है। इंद्रियोंके भोगकी सामग्री इन्द्र धनुषके समान विला जानेवाली है और धन आदि परिग्रह मेघोंके समान शीघ्र उड जानेवाले हैं। युवानी जलमें की गई रेखाके समान विला जानेवाली है, यह सर्व ही अनित्त्य है। रत्नत्रय धर्मका लाभ अतिशय कठिन है और मानव शरीर इतना क्षणिक है अतएव चतुर मनुष्यको उचित है कि वह धर्मके ग्रहणमें किंचित् भी प्रमाद न करे। रुचि लगाकर धर्मको सुने और धारण करे।

संगतिका फल।

तस्य सहावं उत्तं, नीचं संगेन कुमय उववन्नं ।
नीचं चरइ सुचरियं, मनि रयनं विमुक्कियं तं पि ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य सहावं उत्त) उस मानवका स्वभाव कहा जाता है कि (नीचं सगेन) नीचकी संगतिसे उसमें (कुमय उववन्न) कुमति पैदा होजाती है (नीच चाइ) जब कुमतिके होनेपर मानव नीच आचरण आचरने लग जाता है तब (सुचरिय) भले प्रकार आचारमें लाया हुआ (तं रयनं मनि पि) वह रत्नत्रय धर्म भी (विमुक्किय) छूट जाता है।

भावार्थ—यहां बताया है कि एक तो रत्नत्रय धर्मका लाभ ही दुर्लभ है। यदि कदाचित् लाभ भी होजावे तो उसको जीवन पर्यंत निभा लेजाना बहुत ही कठिन है। अल्पज्ञ मानवोंके परिणाम बाहरी निमित्तोंके आधीन हैं। अच्छी संगतिसे अच्छे व बुरी संगतिसे बुरे भाव होजाते हैं। एक दफे रत्नत्रय धर्मका लाभ होजावे तो उसकी रक्षा व वृद्धिके लिये उन्हीं मानवोंकी तथा उन्हीं द्रव्य, क्षेत्र, कालोंकी

संगति करनी चाहिये जिनसे उस धर्ममें दिनपर दिन वृद्धि हो, उसमें निर्मलता हो। ऐसे मानवोंकी व ऐसे द्रव्य क्षेत्रादिकी संगति बचानी चाहिये जिनसे भाव दिनपर दिन नीचे गिरते चले जावें और यकायक बडी कठिनतासे प्राप्त हुआ रत्नत्रय धर्म जाता रहे। यदि पक्षी चोंचमें रत्नको लेजाता हुआ ध्यान ठीक न रक्खे और दानेके लोभसे नीचे देखने लग जावे तो अकस्मात् उसकी चोंचसे रत्न छूटकर गिर पड़ेगा। अतएव जब हीरा पन्ना माणिकको बड़ी भारी सम्हालसे रखते हैं तब इस अमूल्य रत्नत्रय धर्मको तो बड़ी ही सम्हालसे रखना चाहिये। अतएव साधु संगति सदा ही करनी योग्य है।

सारसमुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

कुससर्ग सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायक । सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात् ॥ २६९ ॥
सत्संगो हि बुधै कार्य सर्वकालसुखप्रद । तेनैव गुरुतां याति गुणहीनोऽपि मानव ॥ २७० ॥

भावार्थ—दोषोंको बढ़ानेवाली कुसंगति है उससे सदा ही बचे रहना चाहिये क्योंकि कुसंगति करनेसे गुणवान भी शीघ्र ही हीन व नीच होजाता है। बुद्धिवानोंको निश्चयसे सर्व काल सुख देनेवाले सत्संगको करना चाहिये। इसी सत्संगके प्रतापसे गुणहीन मानव भी महानपनेको प्राप्त होजाता है।

वास्तवमें कुआचारधारी नीचोंकी व मिथ्यात्व भाव धारकोंकी व मदिरा मांसादि व्यसन सेवियोंकी व विषय-लम्पटियोंकी व नास्तिकोंकी व संसारासक्तोंकी संगतिसे अच्छे२ बुद्धिमान मानवोंके भीतर कुबुद्धि पैदा होजाती है। जहां बुद्धि मलीन हुई तहां श्रद्धान शिथिल होने लगता है। बस, चारित्र भी धीरे धीरे बिगडने लग जाता है। अतएव सुसंगतिका ध्यान रखना जरूरी है।

मनुवा मनुव सहावं, असुह संगेन रयनि मनि मुक्कं।
जे जान मनुव षिपनं, रयनं मन रूव नेय संकलियं ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—(मनुवा मनुव सहावं) मानवोंका स्वभाव मनुष्योंके समान होता है। (असुहं संगेन रयनि मनि मुक्कं) अशुभकी संगतिसे रत्नत्रय धर्मको छोड बैठते हैं (जे जान मनुव षिपनं रयनं) कोई कोई मानव जानकर भी प्रमादसे रत्नत्रयको छोड़ बैठते हैं (मन रूव नेय संकलियं) मनका स्वभाव अनेक प्रकारका होता है।

भावार्थ—मनुष्य साधारण अल्पज्ञानी छद्मस्थ होते हैं, उनके मन अनेक प्रकारके होते हैं; किसीके

निर्बल, किसीके सबल, किसीके प्रमादी, किसीके अप्रमादी। निर्बल मनवाले खोटी संगतिमें पड़कर रत्नत्रय धर्मको छोड़ बैठते हैं। कोई कोई प्रमादमें पड़कर रत्नत्रय धर्मको छोड़ देते हैं। इसलिये उचित है कि सुसंगतिमें रहे जिससे कठिनतासे प्राप्त हुआ रत्नत्रय धर्म बराबर बना रहे।

शुभ अशुभ शुद्ध भाव।

ये ये सहाव उत्तं, ते ते अनुभवइ असुह सुह ज्ञानं।
जे के वि ज्ञान सुद्धं, विज्ञानं जानंति अप्प परमप्पं ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(ये ये सहाव उत्तं) मानवोंके जो जो स्वभाव कहे गए हैं (ते ते असुह सुह ज्ञानं अनुभवइ) वे वे अशुभ ज्ञानको या शुभ ज्ञानको अनुभव करते हैं (जे के वि ज्ञान सुद्धं) जो कोई भी मानव शुद्ध ज्ञानके धारी हैं (विज्ञान अप्प परमप्पं जानंति) उनका विज्ञान या भेदविज्ञान अपने आत्माको निश्चयसे परमात्मारूप जानता है या अनुभव करता है।

भावार्थ—जगतमें मानवोंके साधारण रूपसे दो प्रकारके स्वभाव देखनेमें आते हैं, या तो उनके तीव्र कषायके उदयसे अशुभ ज्ञानोपयोग होता है या उनके मंद कषायके उदयसे शुभ ज्ञानोपयोग होता है। यहां सम्यग्दृष्टीकी अपेक्षा नहीं है—मात्र तीव्र कषाय व मंद कषायकी अपेक्षा विचार है। जगतमें मिथ्यादृष्टीके भी कृष्णादि छहों लेश्याएं पाई जाती हैं। क्रोधादि कषायोंके द्वारा रंगी हुई मन वचन काय योगोंकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते हैं। अशुभतम भावको कृष्ण, अशुभतरको नील तथा अशुभ भावको कपोत लेश्या कहते हैं। शुभ भावको पीत, शुभतरको पद्म तथा शुभतम भावको शुक्ललेश्या कहते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, तृष्णा, विषयलम्पटता, जूआ, मदिरापान, मांसाहार, वेश्यागमन, शिकार, पर अपकार आदिके भाव व तीव्र क्रोध, तीव्र मान, तीव्र माया, तीव्र लोभ, आदिके भाव अशुभ ज्ञानोपयोगके दृष्टांत हैं। दया, क्षमा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, दान, परोपकार, भक्ति, स्वाध्याय, सामायिक, जप, तप, तीर्थयात्रा, व्रत, उपवास, विनय, संयम, वैराग्य आदिके भाव शुभ ज्ञानोपयोगके दृष्टांत हैं—इन भावोंको अनुभव करके मिथ्यादृष्टी भी नौ ग्रैवेयिक तक चले जाते हैं व

अशुभ भावसे सातवें नर्क चले जाते हैं। परन्तु इनसे मोक्षमार्ग नहीं मिलता है। जिन किन्हीं सम्यग्दृष्टी भव्य जीवोंके भीतर शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनोंसे मोह नहीं रहा है, जिनके भीतर शुद्ध आत्मज्ञानका प्रकाश होगया है वे भेदविज्ञानके द्वारा अपने आत्माको कर्मोंसे लिप्त होनेपर भी शुद्ध निश्चयनयके द्वारा परमात्मा रूप परम शुद्ध द्रव्य अनुभव करते हैं। वे ही मानव जगतमें श्रेष्ठ हैं, वे ही रत्नत्रयके धारी हैं। शुद्ध भावसे ही परम पदकी प्राप्ति होती है। श्री गुणभद्राचार्य श्री आत्मानुशासनमें कहते हैं—

शुभाशुभे पुण्यपापे सुखदुःखे च षट्त्रयं। हितमाद्यमनुष्ठेयं शेषत्रयमथाहितम् ॥ २३९ ॥

तत्राप्याद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्। शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदम् ॥२४०॥

भावार्थ—शुभोपयोग, अशुभोपयोग, पुण्यबन्ध, पापबन्ध, सुख, दुःख ये छः हैं। उनमें पहलेके तीन शुभोपयोग, पुण्य व सुख दूसरे तीनकी अपेक्षा हित रूप हैं व करने योग्य हैं। शेष तीन तो अहित रूप ही हैं। तौभी मोक्षमार्गमें शुभोपयोग भी त्यागने योग्य है। तब पुण्य व सांसारिक सुख स्वयं न रहेंगे। जो कोई शुभ भावोंको भी छोड़ता है और शुद्ध भावका अनुभवी होता है वही अन्तमें मोक्षको पाता है। प्रयोजन यह है कि जो परमानन्दका लाभ करना चाहें उनको शुद्धोपयोगका ही रुचिवान होना चाहिये। जब शुद्ध भाव न हो तब शुभोपयोगको अशुभसे बचनेके लिये ही आलम्बन जान ग्रहण करना चाहिये।

रत्नत्रय।

रयनं रयन सरूवं, चिंतामनि सुद्ध दंसनं विमलं।
विज्ञान ज्ञान सुद्धं, चरनं संयुत सहाव तव यरनं ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ—(रयनं रयन सरूव) रतन तुल्य रत्नत्रयका स्वरूप यह है कि यह (चिंतामनि) चिन्तामनिके समान भव्य जीवको वांछित परमानंदको देनेवाला है (सुद्ध विमल दंसन) प्रथम तो शुद्ध पचीस मल रहित सम्यग्दर्शन है (सुद्धं ज्ञान विज्ञान) दूसरा शुद्ध आत्माका यथार्थ ज्ञान भेदविज्ञान या सम्यग्ज्ञान है (संयुत सहाव तव यरन चरनं) तीसरा सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान सहित अपने आत्माके स्वभावमें तपश्चरण करना या तन्मय होना सम्यक्चारित्र है।

भावार्थ—यहां मोक्षमार्गका कथन है। तीन लोकमें माणिक पन्ना आदि रत्नोंको बढ़िया मानते हैं इसीसे रत्नत्रयकी उपमा इन हीरोंसे दी है। वे रत्न तो मात्र शोभाको ही बढ़ाते हैं। परन्तु ये रत्नत्रय तो साक्षात् चिन्तामणि तुल्य हैं। सबसे श्रेष्ठ वांछनीय पदार्थ स्वात्मलाभ या मोक्ष है सो इससे प्राप्त होता है। जबतक मोक्ष न हो जगतमें प्रसिद्ध उत्तम२ पद तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव, महामण्डलेश्वर, मण्डलेश्वर, इन्द्र आदि; सो सब इस रत्नत्रयके सेवनसे ही प्राप्त होते हैं। रत्नत्रयके दो भेद हैं—एक निश्चय रत्नत्रय, दूसरा व्यवहार रत्नत्रय। व्यवहार निश्चयके साधनके लिये निमित्त है।

मैं शुद्ध आत्मा हूं यह श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है। यही ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञान है। इसी अपने स्वभावमें मग्न होना निश्चय सम्यक्चारित्र है। एक आत्मानुभव ही निश्चय रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग है।

सच्चे देव, शास्त्र, धर्म तथा गुरुका और जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वोंका सच्चा श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है। इन्हींका ठीक२ ज्ञान प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोगके शास्त्रोंके द्वारा व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। मुनि या श्रावकका महाव्रत रूप या अणुव्रत रूप चारित्र पालना व्यवहार सम्यक्चारित्र है।

सम्यग्दर्शनकी शुद्धताके लिये नीचे लिखे प्रकार पचीस मल या दोष बचाने चाहिये। सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंको न पालना आठ दोष हैं।

(१) निःशंकितांग—तत्वोंमें शंका न रखना तथा इस लोक, परलोक, वेदना, अरक्षा, अगुप्त, मरण व अकस्मात् इन सात भयोंसे भयभीत होकर श्रद्धान शिथिल न करना।

(२) निःकांक्षितांग—संसारके इंद्रिय सुख अतृप्तिकारी, तृष्णावर्द्धक, कर्मबन्धकारक व आकुलताकारी हैं, ऐसा श्रद्धान रखना।

(३) निर्विचिकित्सितांग—किसीको रोगी, किसीको शोकी, मलीन, दुःखी, दलिद्री, नीच देखकर व मलीन पुद्गलोंको देखकर घृणा न करके दया भाव रखना व वस्तु स्वरूप विचारना।

(४) अमूढदृष्टि अङ्ग—मूढतासे देखादेखी किसी भी मिथ्यात्ववर्द्धक कार्यको नहीं स्वीकार करना।

(५) उपगूहनांग या उपबृंहणांग—अपने भीतर गुणोंकी वृद्धि करना, दूसरोंके दोष देखकर उनके निवारणका उपाय करना—जगतमें प्रगटकर निन्दा नहीं करना।

(६) स्थितिकरणांग—अपने आपको तथा दूसरोंको धर्मके आचरणमें दृढ करते रहना।

(७) वात्सल्यांग—धर्मात्माओंसे गौ वत्सके समान स्नेह रखना।

(८) प्रभावनांग—रत्नत्रय धर्मका प्रभाव जगतमें फैलाना—सत्यकी ध्वजा उड़ाना।

आठ प्रकार मदकरना आठ दोष हैं। जैसे पिताके पक्षसे कुलका मद, माताके पक्षसे नाना मामाका जाति मद, धन मद, अधिकार मद, रूप मद, बल मद, विद्या मद, तप मद।

देव मूढता, गुरु मूढता, लोक मूढता तीन मूढताएं तथा छः अनायतन—कुदेवोंकी संगति, कुदेव-भक्तोंकी संगति, कुगुरुकी संगति, कुगुरुभक्तोंकी संगति, कुशास्त्रकी संगति, कुशास्त्रभक्तोंकी संगति।

इन २५ मलोंका विशेष स्वरूप श्री तारणतरण स्वामी रचित श्रावकाचारकी स्वाध्यायसे व रत्नकरंडश्रावकाचारसे विशेष जानना योग्य है।

मनका स्वभाव।

मनुवा मन उववन्नं, मन सहकारेन दुग्गएपत्तं।
मन विलयं स सहावं, ग्रहनंउववन्न चेयना युतं॥ १॥

अन्वयार्थ—(मनुवा मन उववन्न) मनुष्य वही है जिसके मन पाया जावे (मन सहकारेन दुग्गएपत्तं) मनकी सहायतासे ही यह मानव महान पाप बांधकर दुर्गतिको प्राप्त कर लेता है। (मन विलयं) जिसका मन विला जाता है वह (स सहावं ग्रहन) अपने स्वभावको ग्रहण कर लेता है (चेयना युत उववन्न) उसके ज्ञान चेतनापना पैदा होजाता है।

भावार्थ—जो संकल्प विकल्प करे, तर्क वितर्क करे, कारण कार्यका विचार करे, शिक्षा उपदेश समझ सके उसको ही मन कहते हैं। हरएक मनुष्यके पास यह मन होता है। जिन मानवोंको सम्यग्दर्शन प्राप्ति नहीं है वे बहिरात्मा जीव शरीर, भोग व संसारके ही मोही होते हैं। उनके मनमें स्वार्थभाव इतना अधिक होजाता है जिससे वे दूसरोंका अहित करके अपना भला चाहते हैं। मनमें दूसरोंका अहित

ही सोचा करते हैं। दूसरोंकी बढ़ती देखकर ईर्षाभाव करते हैं। ऐसे मानव केवल मनके अशुभ विचारोंसे ही पाप बांध करके दुर्गति चले जाते हैं। आत्मानुशासनमें कहा है:—

परिणाममेव कारणमाहु खलु पुण्यपापयो प्राज्ञा । तस्मात् पापापचय पुण्योपचयश्च सुविधेय ॥ २३ ॥

भावार्थ—ज्ञानियोंने परिणामको ही वास्तवमें पुण्य तथा पापके बन्धका कारण कहा है। इसलिये पापका बचाव करनेके लिये व पुण्यका संचय करनेके लिये परिणामोंकी सम्हाल करनी योग्य है। जब मनके सब विचार दूर होजाते हैं तब ही अपने आत्माका स्वभाव प्रकाश होजाता है और तब ही ज्ञान ज्ञानका स्वाद शुद्ध रूपसे लेने लगता है अर्थात् ज्ञान चेतनाका झलकाव होजाता है। जहांतक मनके द्वारा तत्वका विचार भी किया जाता है वहांतक भावना होती है। भावना करते करते ही जब भावना बन्द होजाती है तब आत्मप्रकाश होजाता है, जिसका कथन हो नहीं सक्ता।

श्री पूज्यपाद महाराज समाधिशतकमें कहते हैं—

सर्वेन्द्रियाणि सयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना । यत्क्षण पश्यतो भाति तत्तत्व परमात्मन ॥ ३० ॥

भावार्थ—जब सर्व इंद्रियोंको व मनको संयममें लाकर अंतर्मुख होकर ठहरा जाता है तब जो कुछ भीतर झलकता है वही परमात्माका स्वरूप है।

सुदेवका स्वरूप।

देवं ऊर्द्ध सहावं, ऊर्द्ध स सहाव विगत अधुवं च।
विगत कुज्ञान सहावं, ज्ञान सहावेन उवएसनं देवं ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—(देव ऊर्द्ध सहावं) देव उसे कहते हैं जिसका स्वभाव श्रेष्ठ हो (स सहाव ऊर्द्ध) वही स्वभाव श्रेष्ठ है (विगत अधुवं च) जो अनित्यतासे रहित हो, (विगत कुज्ञान सहावं) जिसमें मिथ्याज्ञानका स्वभाव न हो (ज्ञान सहावेन उवएसन देव) व जो अपने ज्ञान स्वभावसे ही उपदेश करते हों वही देव हैं।

भावार्थ—यहां अरहंतदेवका मुख्यतासे कथन है। संसारमें जितने उच्च पदाधिकारी इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, साधु, ऋषि, गणधर आदि हैं वे सब जिनको नमस्कार करते हैं उनका स्वभाव ध्रुव है। उनमें

जो सर्वज्ञपना और वीतरागताका प्रकाश होगया है वह कभी मिटनेका नहीं। उनमें मोहका जरा भी सम्बन्ध नहीं है। अतएव न मिथ्याश्रद्धान है, न मिथ्याज्ञान है, न राग और द्वेष है। इसीसे उनका धर्मोपदेश ज्ञान स्वभावसे ही यथार्थ होता है। उनका स्वरूप श्री रत्नकरंडमें श्री समंतभद्राचार्य कहते हैं—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना। भवितव्य नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥

भावार्थ—आप्तदेव वही हैं जिनमें तीन गुण मुख्य हों-(१) सर्व दोष रहित हों, (२) सर्वज्ञ हों, (३) आगमके उपदेष्टा हों। जिनमें रागद्वेष भय क्रोधादि विकार हो व जो अल्पज्ञानी हो वह यथार्थ वक्ता नहीं होसक्ता है। अतएव अरहंत भगवानको ही सच्चा आप्तदेव मानके श्रद्धान करना उचित है। हरएक श्रद्धालु मुमुक्षुका यह प्रथम कर्तव्य है।

उवएस नंत नंतं, नंत चतुस्ट सुदिस्टि विमलं च।
मलं सुभाव न दिट्ठं, विमलं दिट्ठी च देइ अप्पयं च ॥११॥

अन्वयार्थ—(नंत चतुस्ट) वे अरहन्तदेव अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य ऐसे चार अनंत चतुष्टयके धारी हैं (विमल च सुदिस्टि) उनके पास निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शन है (मलं सुभाव न दिट्ठं) कोई रागादिसे मलीन स्वभाव उनमें नहीं देखा जाता है (उवएस नंत नंतं) वे अनंतानंत पदार्थोंका परम गम्भीर उपदेश देते हैं (विमल अप्पय च दिट्ठी देइ) वे निर्मल क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति कराते हैं।

भावार्थ—श्री अरहंत भगवानकी महिमा अपार है-वे परम सुखी हैं। उनमें क्षायिक सम्यग्दर्शनके प्रभावसे व निरावरण ज्ञान, दर्शन व वीर्यके प्रभावसे शुद्धात्माका यथार्थ प्रत्यक्ष दर्शन है। उनको जितना ज्ञान है उसका अनन्तवां भाग उनकी वाणीमें प्रगट होता है। तथा जितना ज्ञान वाणीसे प्रगट होता है वह भी इतना गम्भीर व विशाल है कि उसका अनन्तवां भाग गणधरादि देव धारणामें रख सक्ते हैं। यह केवली भगवानकी निकटताका ही प्रभाव है जिससे भव्यजीवोंको क्षायिक सम्यक्तकी प्राप्ति होती है।

परमदेव सुभावं, अनुमोयं देइ ज्ञान सहकारं।
ज्ञानेन ज्ञान वृद्धं, जं रेतिं वर्धति मच्छ अंडानं ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(परम देव सुभावं) परम देव श्री अरहंत भगवानका स्वभाव यह है कि वे (अनुमोयं सहकारं ज्ञान देइ) परमानन्दकारी मुक्ति सहकारी ज्ञानको देते हैं। तब (ज्ञानेन ज्ञान वृद्धं) ज्ञानके द्वारा ज्ञान स्वयं बढ़ता है (जं रेति मच्छ अंडानं वर्धंति) जैसे रेतीमें मछलीके अण्डे स्वयं बढ़ते हैं।

भावार्थ—श्री अरहन्त भगवानके धर्मोपदेश द्वारा भव्यजीवोंको आत्मा और अनात्माका भेद विज्ञान पैदा होता है जिसके प्रतापसे आत्माका अनुभव ऐसा यथार्थ झलक जाता है कि जो अंकुरका काम करता है। उस आत्मज्ञानके प्रभावसे ही ज्ञान बढ़ता जाता है जैसे–दोइजका चन्द्रमा नित्य बढ़ते२ पूर्णमासीका चन्द्रमा होजाता है। वैसे यही ज्ञान केवल ज्ञानमय होजाना है। यहां दृष्टांत मछलीके अंडेका दिया है। मछली रेतीमें अंडेको गाड़ देती है वह अंडा स्वयं बढ़ना जाता है। यही दृष्टांत स्वामीने अपने श्रावकाचारमें श्लोक ४०१ में दिया है।

वास्तवमें आत्मज्ञान सहित आत्मध्यानसे ही मुक्ति होजाती है ऐसा ही श्री कुंदकुंदाचार्यने श्री समयसारमें कहा है—

अप्पाण झायतो दंसणणाणमइओ अणण्णमणो। लहदि अचिरेण अप्पाणमेव सो कम्म णिम्मुक्कं ॥ १७९ ॥

भावार्थ—जो कोई एकाग्रमन होकर दर्शनज्ञानमई आत्माको ध्याता है वह शीघ्र ही कर्मोंसे रहित आत्माको ही प्राप्त कर लेता है अर्थात् वह सर्वज्ञ वीतराग होजाता है।

षिपनिक भाव स उत्तं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन।
अज्ञान मिच्छ षिपनं, मलमुक्कं नंत दंसनं विमलं ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ—(स षिपनिक भाव उत्त) उन्हीं श्री अरहंत भगवानके क्षायिक नौ भाव कहे गए हैं क्योंकि उन्होंने (तिविह जोएन) मन वचन काय तीनों योगोंको वश करके (कम्मान षिपिओ) कर्मोंका नाश कर डाला है (अज्ञान मिच्छ षिपनं) उन्होंने अज्ञान और मिथ्यात्वका भी नाश किया है (मलमुक्कं विमलं अनंत दंसनं) उनके मल रहित निर्मल अनंतदर्शनका प्रकाश होगया है।

भावार्थ—जैसा पहले कहा जा चुका है, चार घातीय कर्मोंके क्षयसे केवलज्ञान आदि नौ क्षायिक लब्धियां केवलीके प्रगट होजाती हैं। पूर्ण क्षायिक भाव तेरहवें गुणस्थानमें ही होते हैं। यद्यपि क्षायिक

सम्यग्दर्शन चौथे अविरति गुणस्थानमें भी होसक्ता है। तथा क्षायिक चारित्र तो नियमसे बारहवें गुणस्थानमें पैदा होजाता है। शेष सात लब्धियां तेरहवें सयोग केवली गुणस्थानमें ही पैदा होती हैं।

परम देव परमेष्टी, इस्टी संजोय वि ओय अनिस्टं।
इस्टी अनन्त दिस्टी, विगत अनिस्ट सरनि नहु दिट्ठं ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ—(परमदेव परमेष्टी) परम देव श्री अरहन्त परमेष्टी हैं (इस्टी संजोय) जिनके संयोगसे सर्व जीवोंका इष्ट अर्थात् कल्याण होता है (अनिस्टं वि ओय) और अनिष्टका नाश होता है (इस्टी) वे स्वयं मंगल स्वरूप हैं (अनन्त दिस्टी) और अनन्तदर्शन या क्षायिक सम्यग्दर्शनके धारी हैं (अनिस्ट विगत सरनि नहु दिट्ठं) उनको छोड़कर अन्य कहीं भी अनिष्ट रहित मोक्षमार्ग नहीं देखा जाता है।

भावार्थ—परम पदमें तिष्ठनेवालेको परमेष्ठी कहते हैं। अरहन्त परमात्माका एक उच्च परमपद है। ऐसे अरहंत भगवानके निकट सदा ही कल्याण रहता है—कभी कोई आपत्ति विपत्ति नहीं होती है न किसीको कोई प्रकारके अनिष्टकी प्राप्ति होती है। जाति विरोधी पशु भी अपना वैरभाव छोड़ देते हैं। प्रभूको भी कोई रोग व कोई उपसर्ग नहीं होता है। सदा ही सुख शांति जैसे श्री अरहंत भगवानकी आत्मामें रहती है वैसे ही बाहर भी सर्व तरफ फैली होती है।

आप्त स्वरूप ग्रन्थमें आप्तका स्वरूप कहा है—

क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम्। जरा रुजा च मृत्युश्च स्वेद खेदो मदो रति ॥ १५ ॥
विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश ध्रुवाः। त्रिजगत्सर्वभूताना दोषा साधारणा इमे ॥ १६ ॥
एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्त सोऽयमाप्तो निरञ्जनः। विद्यन्ते येषु ते नित्यं तेऽत्र संसारिण स्मृताः ॥ १७ ॥
येनाप्तं परमैश्वर्यं परानन्दसुखास्पदम्। बोधरूपं कृतार्थोऽसावीश्वरः पटुभि स्मृत ॥ २३ ॥
यस्य वाक्यामृतं पीत्वा भव्या मुक्तिमुपागताः। दत्तं येनाभयं दानं सत्वाना स पितामहः ॥ ३६ ॥
अक्षयो ह्यव्यय शान्त शान्तिकल्याणकारक। स्वयंभूर्विश्वदृश्वा च कुशल. पुरुषोत्तम ॥ ५४ ॥
क्षीणचिरन्तनकर्मसमूहो निष्ठितयोगसमस्तकलाप.। कोमलदिव्यशरीरसुभास सिद्धिगुणाकरसौख्यनिधिश्च ॥ ६२ ॥

भावार्थ—तीन जगतके प्राणियोंमें ये अठारह दोष साधारणपने पाए जाते हैं—१–क्षुधा, २–प्यास,

३-भय, ४-द्वेष, ५-राग, ६-मोह, ७-चिन्ता, ८-जरा, ९-रोग, १०-मरण, ११-पसीना, १२-खेद, १३-मद, १४-रति, १५-आश्चर्य, १६-जन्म, १७-निद्रा, १८-विषाद। जो इन दोषोंसे रहित हैं वही निर्दोष आप्त हैं। जिनमें ये दोष पाए जाते हैं वे संसारी प्राणी जानने चाहिये। जिसने परमानन्दमई ज्ञानरूप ऐश्वर्यको प्राप्त किया है और जो कृतार्थ है उसीको विद्वानोंने ईश्वर माना है। जिसके वचनामृतका पान करके भव्य जीव मुक्ति पाते हैं व जिसने सर्व प्राणियोंको अभयदान दिया है वही पितामह आप्त है, वही अक्षय है, अव्यय है, शांत है, तथा शांति व हितका कारण है। जो स्वयंभू है, विश्वदर्शी है, मङ्गलरूप है, वही पुरुषोत्तम आप्त है। जिसने कर्म-समूहको क्षय कर दिया है, जिसने योगाभ्यासकी पूर्णता पाली है, जिसका शरीर परम कोमल और दिव्य परमौदारिक है व जो सिद्धमई गुणोंका समुद्र और सुखका निधि है। श्री अरहन्त भगवानने जैसा मोक्षमार्ग सर्व अनिष्टहर्ता बताया है वैसा अन्यत्र नहीं प्राप्त होता है अथवा उसके सिवाय अन्य कोई हो नहीं सक्ता।

सुगुरुका स्वरूप।

गुरं सहाव स उत्तं, गुरं तिलोय भाव उवएसं।
गुपितं गुनं सरूवं, गुपितं तु चयंति उवएसनं गुरुवं ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ—(गुरं सहाव स उत्तं) अब श्री गुरुका स्वभाव ऐसा कहा गया है (गुरं तिलोय भाव उवएसं) गुरु वे ही हैं जो तीन लोकके पदार्थोंका स्वरूप उपदेश करते हैं (गुपित गुनं सरूवं) जो तीन गुप्तिको धारते हुए आत्म-स्वरूपका अनुभव करते हैं व (गुपितं तु चयंति उवएसनं गुरुवं) जो गुप्त परम अध्यात्मिक उपदेश है उसका प्रकाश करते हैं वे ही गुरु हैं।

भावार्थ—देवका स्वरूप कहकर स्वामीने गुरुका स्वरूप कथन करना प्रारम्भ किया है। गुरुमें श्रुत-ज्ञान ऐसा होना चाहिये जिससे वे तीन लोकमें भरे हुए जीवादि छः द्रव्योंके गुण व पर्यायोंको भलेप्रकार स्वयं जानते हों व दूसरोंको उपदेश करते हों। तथा जो मन, वचन, कायका निरोध कर परम गुप्त अध्यात्म स्वरूपके अनुभवी हों तथा रुचिवान शिष्योंको उसी गुप्त अध्यात्म-ध्यानको समझाकर उनको मोक्षमार्गमें लगाते हों। श्री सारसमुच्चयमें गुरुका स्वरूप इसप्रकार है—

सगादिरहिता धीरा र.गादिमलवर्जिताः । शान्ता दान्तास्तपोभूषा मुक्तिकाक्षणतत्परा ॥ १९६ ॥

मनोवाक्काययोगेपु प्रणिधानपरायण। । वृत्ताढ्या ध्यानसम्पन्नास्ते पात्र करुणापरा ॥ १९७ ॥

आग्रहो हि शमे येषा विग्रह कर्मशत्रुभि । विषयेपु निरासंगास्ते पात्रं यतिमत्तभा ॥ २०० ॥

भावार्थ—जो परिग्रह आरम्भसे रहित हैं, धीर हैं, रागादि मलसे विरक्त हैं, शांत हैं, जितेन्द्रिय हैं, तप आभूषणके धारी हैं, मुक्तिकी भावनामें तत्पर हैं, जो मन, वचन, काय, योगोंमें एकताको धारनेवाले हैं, व्रती हैं, ध्यानी हैं, दयावान हैं, जिनका शांत भाव रखनेका प्रण है, जो कर्म शत्रुओंसे युद्ध करते हैं व जो कषायोंके सङ्गसे रहित हैं वे ही उत्तम यति गुरु हैं।

गुरं विसेषं दिट्ठं, सूषम सभाव कम्म संषिपनं ।
उवएसं षिपिऊनं, मिछ्या कुज्ञान सल्य मुक्कं च ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(गुरं विसेप दिट्ठ) गुरु विशेष दृष्टिको रखनेवाले हैं (सूषम सभाव कम्म संषिपन) सूक्ष्म स्वभावधारी कर्मोंके बन्धनोंको क्षय करनेवाले हैं (उवएस षिपिऊन) तथा उन्हीं कर्मोंके क्षय करनेका उपदेश देते हैं (मिछ्या कुज्ञान सल्य मुक्कं च) जो मिथ्यात्व, कुज्ञान व माया, मिथ्या, निदान तीन शल्योंसे रहित हैं।

भावार्थ— गुरु स्वपरोपकारी होते हैं। जैसे वे अपने आत्माके वैरी कर्म-शत्रुओंका क्षय आत्म-ध्यानकी अग्नि जलाकर करते हैं वैसे वे शिष्योंको उन्हीं कर्मोंके दग्ध करनेका उपदेश देते हैं। कर्म वर्गणारूपी पुद्गल स्कंधोंसे बने हैं, जो पांचों इन्द्रियोंके गोचर नहीं हैं, तथापि अनुमानसे उनका अस्तित्व सिद्ध है। क्योंकि अज्ञान व क्रोधादि कषायका प्रादुर्भाव है—ये दोष हैं आत्माके गुण नहीं। तब इनका कारण कोई सूक्ष्म आवरण होना चाहिये। इसीसे घातीय कर्मोंकी सिद्धि है, तथा जगतमें सुख दुःख भिन्न २ प्रकारके पाए जाते हैं, इसका कारण भी पाप पुण्य कर्म होना चाहिये। इससे अघातीय कर्मोंकी सिद्धि है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यने पंचास्तिकायमें कहा है:—

जम्हा कम्मस्स फलं विसयं फासेहिं भुंजते णियद। जीवेण सुह दुक्ख तम्हा कम्माणि मुत्ताणि ॥ १३३ ॥

भावार्थ—क्योंकि कर्मोंका फल सुख तथा दुःख तथा उनके विषयोंको यह जीव स्पर्शनादि इंद्रियोंसे भोगता है। इसलिये कर्म मूर्तीक पुद्गल हैं। श्रीगुरु सम्यग्दृष्टी, सम्यग्ज्ञानी व निर्दोष व्रती होते हैं इसलिये उनमें मिथ्यात्व अज्ञान व तीन शल्य नहीं पाए जाते हैं।

गुरं च गुन उवएसं, ज्ञान सहावेन उवएसन सुद्धं ।
गुरं च गगन सरूवं, जं सूरं तिमिरिनासन सहसा ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ— (गुरं च गुन उवएसं) श्रीगुरु गुणोंका ही उपदेश करते हैं (ज्ञान सहावेन सुद्ध उवएसन) अपने आत्मज्ञानमई स्वभावसे वे शुद्ध तत्वका ही उपदेश करते हैं (गुरं च गगन सरूव) श्रीगुरु आकाशके समान निर्लेप व निर्मोही व निर्बाध हैं (जं सूरं तिमिरिनासन सहसा) जैसे सूर्यके प्रकाश होते ही यकायक अंधकारका नाश होजाता है वैसे श्रीगुरुके वचनोंकी किरणावलीके प्रकाश होते ही भव्य जीवोंके अज्ञान अँधकारका नाश हो जाता है।

भावार्थ—श्रीगुरु शुद्ध आत्मतत्त्वका लक्ष्य रख करके ही उपदेश करते हैं। उनका दृढ़ भाव यह रहता है कि किसी भी तरह संसारी प्राणी आत्मानुभव रूपी निश्चय मोक्षमार्गका लाभ प्राप्त करले। तथापि वे शिष्योंसे व गृहस्थोंसे किंचित् मोह, स्नेह नहीं रखते हैं। जैसा आकाश निर्मल व निर्लेप होता है व किसीको बाधाकारी नहीं होता है वैसे श्रीगुरु निर्मल, निर्मोह रहते हैं व अपने व्यवहारसे गृहस्थोंको किंचित् भी बाधा नहीं पहुँचाते हैं। उनके वचनोंका ऐसा अतिशय होता है कि सुनते ही मोहका अन्धेरा विलय होजाता है और मोक्षका प्रेम उत्पन्न होजाता है।

परम गुरं उवएसं, ज्ञान सहावेन अनुमोय संजुत्तं ।
ज्ञानांकुरं च दिट्ठं, अनुमोय ज्ञान सरूव विज्ञानं ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ—(परम गुरं उवएसं) परम गुरु ऐसा उपदेश करते हैं जो (ज्ञान सहावेन अनुमोय संजुत्तं) ज्ञान स्वभाव सहित तथा आनन्दमई होता है (ज्ञानांकुरं च दिट्ठं) उसमें केवलज्ञानका कारण ऐसा ज्ञानमई अंकुर दीख पड़ता है (अनुमोय ज्ञान सरूव विज्ञानं) वही आनन्दमई व ज्ञान स्वभावमई भेदविज्ञान है।

भावार्थ—श्रीगुरुका उपदेश किसीको कुछ भी कष्टप्रद नहीं होता है। आत्मा व अनात्माका भेद-विज्ञान बताकर जहां स्वात्मानुभवका प्रकाश किया जाता है वहां आनन्द अनुभवके सिवाय कभी कोई आर्तभाव व रौद्रभाव अनुभवमें नहीं आसक्ता है। यह आत्मानुभव ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्-

चारित्रसे पूर्ण है। यही ज्ञानांकुर है। यही भाव श्रुतज्ञान है। यही केवलज्ञानका बीज है। सम्यग्दृष्टी वही है जिसके भीतर यह ज्ञानांकुर उत्पन्न होजाता है। इसीलिये वह अवश्य मोक्षका पात्र होजाता है।

अंकुर सुद्ध सरूवं, असुद्ध अंकुर उन्मूलनं तंपि।
सुद्धं ज्ञान सहावं, अंकुर ज्ञानस्य वृद्धि सहकारं ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ—(अंकुर सुद्ध सरूवं) शुद्ध आत्म-स्वरूपका अनुभव ही अंकुर है (तंपि असुद्ध अंकुर उन्मूलन) उसीसे ही अशुद्ध या मिथ्यात्वरूपी अंकुर उखड़ जाता है (सुद्धं ज्ञान सहाव अंकुर) शुद्ध ज्ञान स्वभावमें रमना यही ज्ञानांकुर (ज्ञानस्य वृद्धि सहकारं) ज्ञानकी उन्नतिमें सहकारी है।

भावार्थ—जब ही आत्मानुभवरूपी सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान अंकुर फूटता है, तब ही मिथ्या-दर्शन और मिथ्याज्ञानका अंकुर उखड़ जाता है। मिथ्यात्वका अभाव ही सम्यक्त है। जितना २ ज्ञान स्वभावमें रमन किया जायगा उतना २ ज्ञानावरण व मोहका परदा हटता जायगा और ज्ञान व वैराग्य भाव बढता चला जायगा ! जैसे सुवर्णको जितना २ मांजा जायगा उतना २ उसका चमकाव अधिक २ झलकता जायगा।

जं उवबनं च माली, दिट्ठी दिट्ठइ सुद्ध अनुमोयं।
सीचंति जल सहावं, ज्ञान जलं सीचियं गुरुवं ॥ २० ॥

अन्वयार्थ—(जं उवबनं च माली) जैसे किसी उपवनका माली (दिट्ठी दिट्ठइ सुद्ध अनुमोयं) अपनी शुद्ध प्रसन्न दृष्टिसे उपवनके वृक्षोंको देखता है (जल सहावं सीचंति) जहां आवश्यक्ता होती है वहां स्वाभाविक निर्मल जलका सिचन करता है (गुरुव ज्ञान जलं सीचियं) वैसे गुरु महाराज शिष्योंको प्रेमभावसे ज्ञानरूपी जलका सिचन करते हैं। अर्थात् परम हितकारी धर्मका उपदेश देते हैं।

भावार्थ—श्रीगुरु मालीके समान अपने चार संघरूपी उपवनकी पालना करते हैं। यदि माली प्रमादी हो और बागके वृक्षोंकी रक्षा न करे, उनको आवश्यक जल न सींचे तो बागके वृक्ष सूख जावे, मुरझा जावें व कुछ कालमें बाग नष्ट भ्रष्ट होजावे। वैसे ही श्रीगुरु मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका चारों ही प्रकारके संघकी धर्मवृद्धिकी सम्हाल रखते हुए जब जिसको धर्मोपदेशकी आवश्यक्ता होती है तब उसको

शुद्ध शांत आनन्दमय व सुहावना आत्म तत्त्वका उपदेश करते हैं। जैन संघका आदर्श चारित्र व जैन संघ तथा जैन धर्मकी उन्नति ऐसे ही परमोपकारी सच्चे गुरुके द्वारा ही होती है। जब ऐसे परम गुरु नहीं होते हैं, जैन संघ रक्षा विना अव्यवस्थित होजाता है व जैनधर्मका प्रभाव कम होता जाता है। माली विना बागकी रक्षा कैसे हो?

माली तं सीचंते, आदं आदं च मिलिय जल सुद्धं।
परम गुरं अनुमोयं, ज्ञाने ज्ञानं च मिलिय जल सुद्धं ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ—(माली तं सीचंते) माली उसी वृक्षको सीचता है (आदं आद च मिलिय जल सुद्धं) जो खास२ हैं उनमें शुद्ध जल देता है। इसी तरह (परम गुरं) परम गुरु (अनुमोय ज्ञान च जल सुद्ध ज्ञाने मिलिय) आनन्द-प्रद ज्ञानमई शुद्ध जलको शिष्योंके ज्ञानमें मिलाते हैं अर्थात् उनके ज्ञानमें विठा देते हैं।

भावार्थ—माली देखता है कि बागमें किन वृक्षोंको जलकी आवश्यक्ता है व किनको नहीं है। जिनको जलकी जरूरत होती है उन वृक्षोंकी जड़ोंमें ऐसी चतुराईसे पानी पहुँचाता है कि जिससे वे वृक्ष हरे भरे होजावे। उसी तरह श्रीगुरु जिनको धर्मोपदेशकी जरूरत समझते हैं उनको इस रीतिसे धर्मामृत पिलाते हैं कि उसको प्रसन्नता भी हो और वह उपदेश उसके दिलमें ऐसा बैठ जावे जिससे उसका आचरण यथार्थ होजावे और वह मोक्षमार्गमें उन्नति करता हुआ चला जावे।

ज्ञानांकुरं च दिट्ठं अज्ञानांकुर उन्मूलनं तं पि।
मिच्छांकुर उन्मूलं, उन्मूलं अगुर उवएसं ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञनाकुर व दिट्ठ) जब भव्य जीवोंके भीतर आत्मज्ञानका अंकुर दिख पड़ता है (त पि अज्ञानाकुर उन्मूलनं) तब ही अज्ञानका अंकुर उखड़ जाता है (मिच्छाकुर उन्मूल) मिथ्यात्व भावका अंकुर भी दूर हो जाता है (अगुर उवएसं उन्मूल) कुगुरुके उपदेशसे जो मान्यता विपरीत होरही थी वह भी हट जाती है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनका प्रकाश जब होता है तब ही मिथ्यादर्शन और मिथ्या ज्ञान तथा कुगुरुके उपदेशका प्रभाव सब दूर होजाते हैं। सम्यग्ज्ञानी सुगुरुका उपदेश अनादि संसार भ्रमण रोगके मिटानेकी सच्ची औषधि है।

ज्ञानं च पर्म ज्ञानं, मिलियं च सुद्ध सहाव सुइ रूई ।
कम्म मल सुयं च षिपनं, ज्ञान सहावेन वर्द्धनं ज्ञानं ॥ २३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च पर्म ज्ञान मिलिय च) जब भव्य जीवका ज्ञान परमात्माके ज्ञानसे मिल जाता है तब (सुद्ध सहाव सुइ रूई) शुद्ध आत्म स्वभाव रूपी भाव श्रुतज्ञानकी रुचि होजाती है (कम्म मल सुयं च षिपनं) तब ही कर्ममल स्वयं झड़ने लग जाता है (ज्ञान सहावेन ज्ञान वर्धन) तथा ज्ञान स्वभावके प्रकाशसे ज्ञान बढ़ने लगता है ।

भावार्थ—जब भव्यजीवको इस बातका ज्ञान श्रीगुरुके उपदेशसे होता है कि यह आत्मा जो शरीरमें व्यापक है और जिसका संयोग कर्मोंके साथ क्षीर नीरके समान होरहा है वह निश्चयसे निराला द्रव्य है। उसका स्वभाव श्री सिद्ध परमात्माके समान है। जब इस सदृशताका पक्का बोध होजाता है तब ही यह दृढ रुचि होजाती है कि मेरा स्वभाव ऐसा ही है। जैसा श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः । अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः ॥ २१ ॥

भावार्थ—यह आत्मा स्वसंवेदनसे ही अनुभवमें आता है। जब वृत्तिको निरोध कर आपसे आपको ही ग्रहण किया जाता है तब ही भीतर झलकता है। यह शरीर प्रमाण आकार धारी है, यह अविनाशी द्रव्य है, परम आनन्दमई है तथा लोकालोकका देखनेवाला है। इस तरह रुचि पैदा होजानेपर ऐसा कुछ निर्मल परिणाम होता है कि अन्तर्मुहूर्त तक समय समय असंख्यात गुणी कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है। तथा ज्ञान स्वभावके प्रकाशसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका क्षयोपशम जितना होता जाता है उतना ज्ञान बढ़ता जाता है। मिथ्यात्वकी मलीनता हटनेसे अपूर्व लाभ होता है।

परम गुरु उववन्नं, परम सुभाव परम दरसीए ।
अप्पानं सुद्धप्पानं, परमप्पा दर्सए विमलं ॥ २४ ॥

अन्वयार्थ—(परम गुरु उववन्नं) जब भाग्योदयसे परम गुरुका लाभ होता है (परम सुभाव परम दरसीए) तब वे दयाके सागर परमात्माका स्वभाव उत्तम प्रकारसे दर्शाते हैं (अप्पानं सुद्धप्पानं) वे बताते हैं कि यह आत्मा निश्चयसे शुद्धात्मा है (विमलं परमप्पा दर्सए) वे गुरु कर्ममल रहित परमात्माका स्वरूप झलका देते हैं।

भावार्थ—आत्मज्ञानी आत्मानुभवी श्रीगुरुका लाभ परम दुर्लभ है। जिनको ऐसे महान तारनतरण गुरुका लाभ हो जाता है उनको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है। वे आत्मा और परमात्माका यथार्थ स्वरूप समझ जाते हैं। उनके ज्ञानमें मात्र सत्ताकी अपेक्षा तो सिद्धात्मासे और अपने आत्मासे भेद दिखता है परन्तु स्वभावकी अपेक्षासे कोई भेद नहीं दिखता है। जैसे मिट्टीसे मिले हुए जलमें कतक फल डाल देनेसे मिट्टी नीचे बैठ जाती है जल बिलकुल निर्मल दीखता है वैसे शुद्ध निश्चयनय रूपी कतक फलके द्वारा ज्ञानीको अपना आत्मा कर्म रहित शुद्ध परमात्मावत् दिखता है। तत्वज्ञानके लिये आत्मज्ञानी गुरुकी आवश्यक्ता है। इष्टोपदेशमें कहा है:—

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तर। जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यम् निरंतरं ॥ ३३ ॥

भावार्थ—गुरुके उपदेशसे जब भलेप्रकार आत्मा और अनात्माका भेद मालूम होजाता है फिर यह साधक अभ्यास करता है। वारवार मनन करता है कि मैं भिन्न हूँ, कर्मादि भिन्न हैं। चिरकालके अभ्याससे जब स्वानुभव होता है तब उसके भीतर निरंतर मोक्षके अतीन्द्रिय आनन्दका ज्ञान बना रहता है।

धमका स्वरूप।

धम्मं धरयति सुद्धं, धम्मं तियलोय सुद्ध सुपएसं।
चेयन अनन्त रूवं, कम्ममल षिपति तिविह जोएन ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ—(धम्म धरयति सुद्धं) धर्मका स्वरूप यह है जो अशुद्ध आत्माको शुद्ध भावमें धारण करे (धम्म तियलोय सुद्ध सुपएस) धर्म वस्तु स्वभावको कहते हैं जो तीन लोकके द्रव्योंके शुद्ध प्रदेशोंको भिन्न २ बतावे (चेयन अनन्त रूवं) धर्म अनन्त गुण स्वभावी आत्माका स्वरूप है (कम्ममल षिपति तिविह जोएन) जो इस धर्मको पालता है वह मन, वचन, कायको निरोध कर कर्मोंके मलको नाश करता है। D b C o

भावार्थ—अब यहां देव, गुरुके स्वरूपके पीछे धर्मका स्वरूप कहना प्रारम्भ किया है। धर्मका शब्दार्थ यही है जो धारण करे सो धर्म है। अशुद्ध आत्माको जो मोक्षमें या मोक्षसाधक शुद्ध भावमें धारण करे सो धर्म है। धर्म स्वभावको भी कहते हैं। तीन लोक जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल इन छः

द्रव्योंसे भरा है। इनके शुद्ध आकारको समझना धर्म है कि जीव व धर्म, अधर्म समान शुद्ध असंख्यात प्रदेशोंके धारी हैं, आकाश अनन्त प्रदेशी है, पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है। स्कंधापेक्षा पुद्गल संख्यात, असंख्यात व अनन्त प्रदेशी है, कालाणु एक प्रदेशी है। अथवा खास आत्माके स्वभावको धर्म कहते हैं। आत्माका स्वभाव अनन्त गुण पर्यायवान शुद्ध ज्ञान चेतनामय अविनाशी परमानन्दमई है। इस शुद्ध आत्म-स्वरूपमई धर्मका अनुभव करनेसे कर्मोंका क्षय होता है।

श्री प्रवचनसारमें कुन्दकुन्द महाराजने कर्मविनाशक धर्मका स्वरूप कहा है—

चारित्त खलु धम्मो, धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो। मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥ १—७ ॥

भावार्थ—वास्तवमें चारित्र ही धर्म है। जो समभाव है उसको धर्म कहा गया है। मोह व रागद्वेष रहित जो आत्माका स्वाभाविक परिणाम है वही समभाव है, वही चारित्र है, वही धर्म है।

धम्मं च सुद्ध षिपनं, धम्मं सहकारि चेयना सुद्धं।
धम्मं लोय संजुतं, लोयालोयं च धरइ सुद्धं च ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ—(धम्म च सुद्ध पि.न) शुद्ध धर्म ही कर्मोंको क्षय करनेवाला है (धम्मं सहकारि चेयना सुद्ध) इसी शुद्ध धर्मकी सहायतासे चेतना शुद्ध होती है (धम्मं लोय सजुतं) यह लोकके साथ उपकार करनेवाला धर्म है (लोयालोय च धरइ सुद्ध च) तथा यह इस लोक तथा अलोकको शुद्ध रूपसे धारण करता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग आत्माका परिणाम है, वही धर्म है। इस धर्ममें वीतरागताका प्रकाश है। यह वीतरागता ही कर्मोंकी निर्जरा करती है तथा इसी शुद्धात्मानुभव धर्मके सेवनसे चेतना शुद्ध होती जाती है यहांतक कि केवलज्ञानीके शुद्धज्ञान चेनना झलक उठती है। यह धर्म जब व्यवहारमें प्रवर्तता है तब सर्व लौकिक प्राणियोंके साथ मैत्रीभाव रखता हुआ सर्वका हित करना चाहता है। तथा इसी समतारूप धर्मके भावसे लोकालोकके छहों द्रव्य शुद्ध स्वभावमें प्रगट होते हैं। जगतके पदार्थोंको मूल द्रव्य स्वभावसे देखना ही समभाव उत्पन्न करता है। यही वास्तवमें चारित्र है व यही धर्म है।

धम्मं सहाव उत्तं, चेयन संयुत्त षिपन स सरूवं।
आनन्दं सहजानन्दं, धम्मं सहकार मुक्तिगमनं च ॥ २७ ॥

अन्वयार्थ—(धम्मं सहाव उत्तं) धर्मका ऐसा स्वभाव कहा गया है। (चेयन संयुत्त षिपन स सरुवं) चेतना भाव सहित यह आत्माका स्वभाव है और कर्म क्षपणशील है (सहजानन्दं आनन्दं) स्वाभाविक आनन्दमई सुखको देनेवाला है (धम्मं सहकार मुक्तिगमनं च) इसी धर्मकी सहायतासे यह भव्यजीव मोक्षमें जाता है।

भावार्थ—जहां शुद्ध ज्ञान चेतनाका प्रकाश है और कर्मफल चेतना तथा कर्म चेतनाका प्रकाश नहीं है वही स्वाभाविक शुद्धोपयोग धर्म परमानन्दको देनेवाला है। जब आत्मानन्दका स्वाद आता है तब ही वास्तविक ध्यानकी अग्नि प्रगट होती है। उसी ध्यानकी अग्निसे कर्मोंकी प्रचुर निर्जरा होती है। तथा यही स्वात्मानुभव धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान कहलाता है जो सर्व कर्ममल काटकर आत्माको शुद्ध, मुक्त व स्वाधीन कर देता है। वास्तवमें धर्ममें कभी कष्ट नहीं है, न कोई शोक है, न चिन्ता है, न खेद है, न आकुलता है। जहां कोई संक्लेश परिणाम हो और वाहर ध्यान भी करे तौ वह धर्मसाधन नहीं कहलाएगा। धर्म वही है जहां समताभाव सहित आत्मानंदका लाभ हो। ऐसा ही इष्टोपदेशमें कहा गया है—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहि स्थिते । जायते परमानन्द कश्चियोगेन योगिन ॥ ४७ ॥

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेंधनमनारतं । न चासौ खिद्यते योगीर्वहिर्दु खेष्वचेतन ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो योगी व्यवहारके विचारसे बाहर होकर आत्माके ध्यानमें ठहरता है उसको योगवलसे कोई अपूर्व परमानन्दका लाभ होता है। यही आनन्द निरन्तर कर्मोंके इंधनको जलाता है। ऐसा योगी वाहरसे दुःखोंके पड़नेपर भी उनकी तरफ लक्ष्य नहीं देता है इसीलिये कोई खेद नहीं पाता है।

पांच ज्ञान मनन।

अक्खर सुर विंजनयं, ज्ञान सहावेन पंच ज्ञानम्मि।
जदि अक्खर उववन्नं, पिंडय विज्ञान सुद्ध संजोयं ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावेन पंच ज्ञानम्मि) ज्ञान स्वभाव यद्यपि एकरूप है तथापि व्यवहारसे ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षासे ज्ञानके पांच भेद होजाते हैं (सुर विजनयं अक्खर) स्वर तथा व्यंजन अक्षरोंके द्वारा ज्ञानका प्रकाश जगतमें किया जाता है। परन्तु वह प्रकाश तब ही सफल होसक्ता है (जदि विज्ञान पिंडय सुद्ध संजोयं अक्खर उववन्न) जब ज्ञानका पिड आत्मा शुद्ध भाव सहित अविनाशी अपने भीतर झलकता है।

भावार्थ—अब यहां मतिश्रुत आदि पांच ज्ञानके भेदोंकी अपेक्षा विचार है। इस गाथाका जो भाव समझमें आया सो लिखा गया है विशेष ज्ञाता विचार लेवें। जिनवाणीमें अक्षरोंके द्वारा ज्ञानका व ज्ञान द्वारा जानने योग्य पदार्थोंका कथन है, उस जिनवाणीके पढनेकी तब ही सफलता होगी जब उसके द्वारा अविनाशी शुद्ध विज्ञान धन आत्माका अनुभव झलक जावे अन्यथा शास्त्रपाठ कार्यकारी नहीं कहला सक्ता। समयसारजीमें कहा है—

मोक्खं असद्दहंतो अभवियसत्तो दु जो अधीएज्ज। पाठो ण करेदि गुणं असद्दहंतस्स णाणं तु ॥ २२२ ॥

भावार्थ—मोक्षके स्वरूपका श्रद्धान न करते हुए अभव्य जीव कितना भी पढे उसका पढ़ना गुणकारी नहीं होता है। क्योंकि उसे आत्म-ज्ञानपर रुचि नहीं आती है।

अक्खर मति उववन्नं, षट् त्रित्रि उववन्न ज्ञान सदुभावं।
सुतं च अक्खर मइओ, एकादस जानि सुद्ध सहकारं ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ—(षट् त्रित्रि उववन्न) तीनसै छत्तीस प्रकार मतिज्ञानसे उत्पन्न (ज्ञान सद्भावं अक्खर मति उववन्नं) जो ज्ञान स्वभाव अविनाशी आत्मिक बुद्धि उसीको अक्षरमतिकी उत्पत्ति कहेंगे (एकादस अक्खर मइओ सुतं व सुद्ध सहकारं जानि) आचारांगादि ग्यारह अंग अक्षरमई श्रुतज्ञान है। यह भी शुद्ध आत्मीक ज्ञानको सहकारी है।

भावार्थ—मतिज्ञानके ३३६ भेद इस प्रकार हैं—अर्थावग्रहके २८८ भेद—अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा। चार प्रकार मतिज्ञान, बहु, अल्प, बहुविधि, एक विधि, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनिःसृत, निःसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव। इन बारह प्रकारके पदार्थोंका होता है। ऐसे ४८ भेद प्रत्येक पांच इंद्रिय तथा मनसे संभव हैं। इस तरह ४८×६=२८८ भेद हुए।

व्यंजनावग्रहके ४८ भेद—उक्त बारह प्रकारके पदार्थोंका मात्र अवग्रह होता है। चक्षु व मनको छोड़कर चार इंद्रियोंसे यह होता है। इसलिये १२×४=४८ भेद हुए, कुल २८८×४८=३३६ भेद हुए। इस मतिज्ञानकी तीव्रता तब ही सफल है जब अविनाशी आत्माके ज्ञानकी अर्थात् अक्षर मतिकी प्राप्ति होजावे।

जिनवाणीमें श्रुतज्ञानके यद्यपि बारह अंग प्रसिद्ध हैं तथापि ग्यारह अङ्गोंके नाम लेनेकी अधिक प्रथा है। इनके जाननेका फल भी तब ही होगा जब शुद्ध आत्माका अनुभव होजावे।

अवहि उववन भावं, दिसि संजोय अक्खरं जोयं।
मनपर्यय संयुत्तं, रिजु विपुलं च अक्खरं दिसिमो ॥ ३० ॥

अन्वयार्थ—(अवहि उववन भावं) जब अवधिज्ञानका भाव पैदा होता है तब (दिसि सजोय अक्खर जोय) भक्त जीव दिशाकी मर्यादाके संयोगसे अविनाशी आत्मतत्वको देखता है (रिजु विपुल च मन पर्यय सयुत्त) जब किसी साधुको रिजुमति और विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान होजाता है तब उसके संयोगसे (अक्खर दिसिमो) वह अविनाशी तत्वको देखता है।

भावार्थ—यहां पर यही प्रयोजन है कि सम्यग्दृष्टीकी दृष्टि शुद्ध आत्मतत्व पर रहती है, चाहे उसे अवधिज्ञान हो चाहे उसे मनःपर्यय ज्ञान हो। इनके संयोगसे भी ज्ञानी भेद विज्ञानके प्रतापसे अक्षर तत्व पर ही दृष्टि रखता है।

केवल भाव संजुतं, विमल सहावेन अक्खरं सुद्धं।
ज्ञानेन ज्ञान विमलं, दिस्टि विज्ञानं च विमल ज्ञानं च ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ—(केवल भाव सजुतं) जब कि भव्यजीवको केवलज्ञानका लाभ होजाता है तब (विमल सहावेन सुद्ध अक्खर) निर्मल स्वभावसे शुद्ध अविनाशी आत्म-तत्व प्रगट होता है (ज्ञानेन विमल ज्ञान) आत्मज्ञानसे ही निर्मल केवलज्ञान होता है (विज्ञानं दिस्टि च विमल ज्ञान च) भेदविज्ञानकी दृष्टि भी निर्मल ज्ञान है।

भावार्थ—भेदविज्ञानके द्वारा निर्मल आत्माका ज्ञान प्राप्त करके जब साधक शुद्ध आत्माका अनुभव करता है तब इसीके दृढ़ अभ्याससे केवलज्ञानका लाभ होजाता है। इस ज्ञानके द्वारा अविनाशी आत्म-तत्व बिलकुल प्रत्यक्ष स्पष्ट यथार्थ झलकता है। अक्षर, तत्व, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानके होते हुए पूर्ण शुद्ध नहीं झलकता है सो ही केवलज्ञानके होते ही पूर्ण शुद्ध प्रकाशमान होजाता है। इस तरह पांच ज्ञानोंके द्वारा अक्षर तत्वका विचार किया गया।

पंडिय विवेक सुद्धं, विज्ञानं ज्ञान शुद्ध संयोजं ।
संसार सरनि तिक्तं, कम्मक्खय विमल मुक्तिगमनं च ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ—(पण्डिय विवेक सुद्ध) पण्डित वही है जिसको शुद्ध विवेक हो (विज्ञानं ज्ञान सुद्ध संयोजं) जो भेदविज्ञानके द्वारा शुद्ध आत्मज्ञानको रखता हो । ऐसा विवेकी पण्डित (संसार सरनि तिक्तं) संसार मार्गसे छूट जाता है (कम्मक्खय विमल मुक्तिगमनं च) और वह कर्मोंका क्षय कर निर्मल मुक्तिमें पहुँच जाता है ।

भावार्थ—'पण्डा सदसत विवेक बुद्धिः विद्यते यस्य सः पण्डित ' जिसके सत्य, असत्य, आत्म, अनात्मके परखनेकी बुद्धि हो वही पण्डित है । ऐसा पण्डित आत्माको परम शुद्ध अनुभव करके मोक्ष-मार्गपर चलता हुआ व संसारमार्गसे हटा हुआ शनैः२ कर्मोंका क्षय करके मुक्त होजाता है ।

वावन अक्खर सुद्धं, ज्ञानं विज्ञान ज्ञान उववन्नं ।
सुद्धं जिनेहि भनियं, ज्ञान सहावेन भव्य उवएसं ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थ—(वावन अक्षर सुद्धं) शुद्ध वावन अक्षर होते हैं उनसे शास्त्रकी रचना होती है (ज्ञानं विज्ञान ज्ञान उववन्नं) शास्त्रसे अर्थ बोध होता है, अर्थ बोधसे भेदविज्ञान होता है, भेदविज्ञानसे आत्मज्ञान पैदा होता है (सुद्धं जिनेहि भनिय) वह सम्यग्ज्ञान शुद्ध आत्माकी परिणति है । ऐसा जिनेन्द्रोंने कहा है—(ज्ञान सहावेन भव्य उवएसं) श्रीगुरु अपने ज्ञान स्वभावसे भव्यजीवोंको यही उपदेश करते हैं ।

भावार्थ—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये सोलह स्वर होते हैं । क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म, य र ल व श, ष स ह, ये तेतीस व्यंजन होते हैं । क्ष त्र ज्ञ तीन संयोगी अक्षर होते हैं, ऐसे कुल वावन अक्षर होते हैं । इन्हींके संयोगसे शास्त्रकी रचना होती है। शास्त्रसे ही भेदविज्ञान पैदा होता है । भेदविज्ञानसे आत्माका साक्षात्कार होता है। इसी तरहका उपदेश श्रीगुरु भव्यजीवोंको देकर उनका परमोपकार करते हैं ।

जिन स्वरूप ।

जिनओए संसारं, सारं तिलोयमन्त सुपएसं ।
चेयन रूव संजुतं, चेयन आनन्द कम्म विलयंती ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ—(जिनओए ससारं) जिन वे ही हैं जिन्होंने इस संसारको जीत लिया है (तिलोयमन्त सुपएसं सार) तथा जो तीन लोक सम्बन्धी सर्व प्रदेशवान पदार्थोंमें सार हैं श्रेष्ठ हैं (चेयन रूव सजुतं) जो चैतन्य स्वभावके धारी हैं (चेयन आनन्द कम्म विलयंती) जिन्होंने आत्माके आनन्दको भोगते हुए कर्मोंका नाश किया है।

भावार्थ—यहां जिनका स्वरूप कहना प्रारम्भ किया है। संसारके कारण रागद्वेष मोह हैं उनको जिसने जीत लिया है वही जिन है। तीन लोकके सर्व चेतन अचेतन पदार्थोंमें वे सार हैं। क्योंकि वे शुद्ध वीतराग हैं। वे निरन्तर ज्ञान चेतना भावके धारी हैं। कर्मोंका नाश उन्होंने क्रोधादिके वश होके नहीं किया है। किंतु आत्माके स्वभावमें लीन होकर परम सुख व शांतिको भोगते हुए उन्होंने कर्मोंका क्षय किया है। आप्तस्वरूपमें जिनका लक्षण कहा है:—

रागद्वेषादयो येन जिता कर्ममहाभटा । कालचक्रविनिर्मुक्त स जिन परिकीर्तित ॥ २१ ॥

भावार्थ—जिसने रागद्वेषादिको तथा कर्मरूपी महायोद्धाओंको जीत लिया है व जिसको कालका चक्र नहीं नाश कर सक्ता है वही जिन कहा गया है।

जिनयति मिथ्याभावं, रागं दोषं च विषय विलयंती ।
कुज्ञान ज्ञान आवरनं, जिनियं कम्मान तिविह जोएन ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ—(जिनयति मिथ्याभावं) जिसने मिथ्याभावको जीत लिया है (राग दोषं च विषय विलयती) जहां रागद्वेष व इन्द्रियोंके विषय लोप होगए हैं (कुज्ञान ज्ञान आवरन न जहां कुज्ञान है न कुछभी ज्ञानावरण कर्म है (तिविह जोएन कम्मान जिनिय) जिसने मन, वचन, कायके योगोंके द्वारा कर्मोंको जीत लिया है—वही जिन है।

भावार्थ—संसारी जीव जिन विकारोंसे संसारमें कष्ट उठाते हैं उन सबको जिसने जीत लिया वही जिन है। सबसे बड़ा भारी वैरी इस जीवका मिथ्यात्व है जिसके कारण यह अपने शुद्ध स्वरूपको भूले हुए हैं। व जिस पर्यायमें जन्म प्राप्त करता है उसको ही अपना मान लेता है व इन्द्रियोंके सुखोंका ही

तृष्णातुर रहता है। इसीलिये चाहे जिस देवकी मान्यता मानता है, चाहे जिस गुरुके पग पड़ता है, चाहे जिस धर्मक्रियाको अंध हो सेवन करने लगजाता है। इसी मिथ्यात्वके कारण यह अंध जीव इष्ट पदार्थोंमें राग व अनिष्ट पदार्थोंमें द्वेष करता है तथा विषयोंका लम्पटी बना रहता है व इसीके कारण सर्व ज्ञान कुज्ञान कहलाता है। ज्ञानावरण कर्मके कारण प्राणी अज्ञानी बने रहते हैं। समुदायमें आठों ही कर्म जीवके वैरी हैं। धन्य हैं श्री जिन जिन्होंने इन सब संसारके कारणोंको विजय कर लिया है। वास्तवमें विषय कषाय जीते विना मोक्ष नहीं होसक्ता। सारसमुच्चयमें कहा है:—

कषायविषयार्तानां देहिनां नास्ति निर्वृतिः। तेषां च विरमे सौख्यं जायते परमाद्भुतम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—जो कषायोंसे व विषयोंसे दुःखी रहते हैं उनको मोक्ष नहीं होसक्ता। इनके छूटनेसे ही परम आश्चर्यकारी सुख उत्पन्न होता है।

जिनिय अभाव सुभावं, भयरहियं निसंक संक विलयंती।
सहज सरूवं पिच्छदि, जिनियं अनृत पर्याय उववन्नं ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ—(अभाव सुभावं जिनिय) जिसने नास्तिकपनेके स्वभावको जीत लिया है (भयरहियं निसंक संक विलयंती) जिनको कोई प्रकारका भय नहीं है, न कोई शङ्का है सर्व शङ्काएँ विलय होगई हैं। (सहजस रूव पिच्छदि) जो अपने स्वाभाविक स्वरूपका अनुभव करते हैं (अनृत पर्याय उववन्नं जिनियं) जिन्होंने नाशवंत चार गतिकी पर्यायोंकी उत्पत्ति करानेवाले कर्मोंको जीत लिया है वे ही जिन हैं।

भावार्थ—जगतमें कोई ऐसे भी मतके धारी हैं कि सब कुछ अभाव रूप है। किसी वस्तुकी सत्ता ही नहीं है। इस अभाव मतको जिन्होंने जीत लिया है तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र और अनन्त ज्ञानके प्रगट होनेसे उनमें न तो कोई शङ्का है न कोई भय है। आयुकर्मका नवीन बँध नहीं है उन बन्धकारक भावोंको ही जीत लिया है। इसलिये नाशवंत देव नरक तिर्यंच व मनुष्य भवमें अब जिनका जन्म नहीं होगा। तथा जो सहज स्वभावमें मग्न हैं। इत्यादि गुणोंके धारी जिन होते हैं।

जिनियं कषाय भावं, परदव्व परो न सुद्ध अवयासं।
सुद्धं सुद्ध सरूवं, जिन उत्तं जिनवरें देहि ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थ—(कषाय भावं जिनियं) जिन्होंने क्रोधादि कषाय भावोंको जीत लिया है (परदव्व परो न) जो स्वात्म-द्रव्यको छोड़कर परद्रव्यमें तत्पर नहीं हैं (सुद्ध अवयामं) जिनके आत्म-प्रदेश शुद्ध हैं (सुद्धं सुद्ध सरूवं) जो रागादि रहित वीतराग हैं। तथा शुद्ध स्वरूपमें तन्मय हैं (जिनवरं देहि जिन उत्तं) उन्हींको जिनेन्द्रोंने जिन कहा है।

भावार्थ—कषायोंके झोकोंसे आत्माकी निर्मल जल तली क्षोभित होजाती है तब ही यह रागद्वेषके वशीभूत हो शरीरादि परद्रव्योंके भीतर तन्मय होजाता है। उन कषायोंके जीत लेनेपर नियमसे आत्मा आत्म-स्वरूपमें तत्पर रहता है। घातीय कर्मोंके आवरण चले जानेसे आत्माके प्रदेश शुद्ध होजाते हैं। ऐसे प्रभु जो निज स्वरूपमें मग्न हैं, वे ही जिन हैं ऐसा तीर्थंकरोंने कहा है।

संसार सरनि विलयं, असरन अनृत अनिस्ट विलयंति।
पर पर्याय न दिट्टं, परम सहावेन अवयास विमलं च ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि विलयं) जहां संसारका मार्ग विला गया है (असरन अनृत अनिस्ट विलयंति) तथा कोई अवस्था ऐसी नहीं है जिसकी शरणकी जरूरत हो। न वहां कोई मिथ्या भाव है न कोई अनिष्ट है (पर पर्याय न दिट्ठ) वहां स्वाभाविक आत्मिक पर्यायके सिवाय कोई पर पर्याय नहीं दिखलाई पड़ती है (परम सहावेन अवयास विमलं च) उस जिनेन्द्रमें परम स्वभावका प्रकाश है इससे आत्माके प्रदेश निर्मल होरहे हैं।

भावार्थ—श्री जिनभगवानमें मोहकर्मके क्षय होनेसे संसार मार्ग नहीं रहा। उनके आत्माके लिये किसीकी रक्षाकी जरूरत नहीं है। वहां पूर्ण सत्य व परम कल्याण है तथा कर्मजनित कोई अशुद्ध अवस्था आत्मामें नहीं है। श्रेष्ठ स्वभावका विकाश है। आत्माका आकार परम स्वच्छ है। अरहन्त भगवानके अघाती कर्म जली हुई रस्सीके समान रह गये हैं जो शीघ्र झड़ जांयगे। आप्त स्वरूपमें जिन परमात्माका स्वरूप कहा है:—

मोहकर्मरिपौ नष्टे सर्वे दोपाश्च विद्रुता। छिन्नमूलतरोर्यद्वद् ध्वस्तं सैन्यमराजवत् ॥ ७ ॥

भावार्थ—मोहकर्मरूपी शत्रुके नाश होते ही सर्व दोष भाग जाते हैं। जैसे जिस वृक्षका मूल उखड़ जाता है वह शीघ्र सूख जाता है व जब राजाका नाश होजाता है तब सेना स्वयं भाग जाती है।

भेदविज्ञान महात्म्य ।

ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, ज्ञान विज्ञान सहाव सुइ रूवी ।
कम्ममल सुयं च षिपनं, अप्पा परमप्प सुद्ध अनुमोयं ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान विज्ञान सहाव सुइ रूवी ज्ञ नेन ज्ञान सुद्ध) भेदविज्ञान द्वारा प्राप्त आत्मज्ञानमई भाव श्रुत रूप ज्ञानके अनुभवसे ज्ञान शुद्ध होता है—केवलज्ञान जगता है (कम्ममल सुयं च षिपनं) उसी आत्माके अनुभवसे कर्ममल स्वयं झड़ने लग जाता है (अप्पा परमप्प सुद्ध अनुमोयं) और यह आत्मा परमात्मा शुद्ध आनन्दमई होजाता है ।

भावार्थ—केवलज्ञानके प्रकाशका उपाय व कर्मोंकी अविपाक निर्जराका उपाय भाव श्रुतज्ञानका अनुभव है । अर्थात् भेदविज्ञानसे निजात्माको भिन्न जान उसीके स्वादमें मग्न होता है । इसीसे परम सुखमई परमात्मा पद होता है । श्री नागसेन मुनिने तत्वानुशासनमें कहा है—

यो मध्यस्थ पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा । दृगवगमचरण रूपस्म निश्चयान्मुक्तिहेतुरिति जिनोक्ति ॥ ३२ ॥

भावार्थ—जो कोई आत्मा वीतरागी होकर अपने आत्माको अपने आत्माके द्वारा अपने आत्मामें देखता है, जानता है, अनुभवता है, वही निश्चयसे सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रिरूप मोक्षका उपाय साधता है ऐसा जिनेन्द्रका उपदेश है ।

ज्ञानांकुरं सहावं, ज्ञानं विज्ञान अक्खरं जोयं ।
विंजन सहाव दिट्ठं, पदविंदं च ज्ञान विमल उववन्नं ॥ ४० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानाकुर महावं) आत्मज्ञानरूपी अंकुरका ऐसा स्वभाव है कि (ज्ञानं विज्ञान अक्खर जोयं) उसके प्रतापसे अविनाशी ज्ञानका भेदविज्ञानके कारण अनुभव होता है (विजन महाव दिट्ठं) स्पष्ट निर्मल आत्माका स्वभाव दिख जाता है (पदविंदं च विमल ज्ञान उववन्नं) तथा परमात्माका निर्मल केवलज्ञान पैदा होजाता है ।

भावार्थ—व्यंजनके अर्थ निर्मल हैं, तथा पदविंदंसे प्रयोजन ओं मंत्रके विदुसे है जो परमात्माका वाचक है । तात्पर्य यही है कि स्वात्मानुभवके प्रतापसे ही परमात्मा पद होता है ।

पदस्थ ध्यान।

मति सुभाव स उत्तं, अक्खर सुर विंजनस्य पद अर्थं ।

षट् त्री अक्षर रमनं, तस्य परिनाम ज्ञान सुद्धं च ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थ—(मति सुभाव स उत्त) मति स्वभाव उसे कहा गया है जहां (अक्खर सुर विजनस्य पद अर्थ) सुर व्यंजन अक्षरोंसे बने हुए पदके द्वारा अर्थका विचार किया जावे (षट् त्री अक्षर रमनं) छः अक्षरोंके अथवा तीन अक्षरोंके मन्त्रोंमें रमन करना चाहिये (तस्य परिनाम ज्ञान सुद्धं च) इसका फल यह होगा कि ज्ञान शुद्ध होजायगा।

भावार्थ—यहां पदस्थ ध्यानका संकेत है। भिन्न २ पदोंके बने हुए मन्त्रोंके द्वारा जहां परमात्माका व निजात्माका चितवन किया जावे वह पदस्थ ध्यान है। यहां छः अक्षर व तीन अक्षरसे बने मन्त्रोंका उल्लेख है। छः अक्षरोंसे बने हुए नीचे लिखे मन्त्र पद होसक्ते हैं। (१) अरहंत सिद्ध, (२) ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः (३) ॐ नमः सिद्धेभ्यः (४) श्री अर्हद्भ्यः नमः (५) शुद्धस्वरुपोहं। तीन मन्त्रके अक्षर होसक्ते हैं। (१) अर्हंत (२) ॐ नमः (३) ॐ अर्हं (४) ॐ सिद्धं। इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा परमात्माका व पंच परमेष्ठीका स्वरूप विचारना चाहिये—मनन करते हुए शुद्ध आत्मज्ञानका प्रकाश होगा।

इस्टं संजोय दिट्ठं, इस्टं सुभाव भाव परिनामं ।

इर्यापंथ निवेदं, इर्य सुभाव सुद्धज्ञान उववन्नं ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थ— इस्टं संजोय दिट्ठ) जहां अनुकूल इष्ट संयोग देखे जाते हैं (इष्टं सुभाव भाव परिनामं) वहीं परम हितकारी स्वभाव, भाव या परिणाम प्रगट होता है (ईर्यापंथ निवेदं) तब सरल मोक्षमार्गका अनुभव होता है (ईर्य सुभाव सुद्धज्ञान उववन्नं) तब ही सरल स्वभाव रूप शुद्ध ज्ञान या केवलज्ञान पैदा होता है।

भावार्थ—आत्मध्यान करने योग्य अनुकूल संयोग मिलाने चाहिये। जैसे एकांत स्थान, प्रात:, मध्याह्न या सायङ्काल, पद्मासन या कायोत्सर्ग आदि आसनोंसे रहना। मनका क्षोभ रहितपना, वचनमें मौन,

कायकी शुद्धि व कायका हलकापना, संसारसे वैराग्य, आत्माका दृढ़ श्रद्धान इत्यादि इष्ट संयोगोंके होते हुए शुद्धोपयोगमई सहज भाव पैदा होता है। यही सरल मोक्षमार्ग है। इसी पथपर शल्य रहित चलते हुए साधुको कभी केवलज्ञानकी प्राप्ति होजाती है। तत्वानुशासनमें कहा है:—

देश कालश्च सोऽन्वेष्य सा चावस्थानुगम्यता। यदा यत्र यथा ध्यानमपविघ्नं प्रसिध्यति ॥ ३९ ॥

भावार्थ—वही स्थान वही काल ढूँढ़ना चाहिये व वही अवस्था धारना चाहिये जहां जब जिस तरह ध्यान विघ्न रहित सिद्ध होसके।

कमल स्वभाव मनन।

कमल सुभावं दिट्ठं, केवल सभाव परम जोएन।
षिपनक भाव संयुतं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभावं दिट्ठ) कमलके समान जहां प्रफुल्लित स्वभाव प्रगट होता है (परम जोएन केवल सभाव) अर्थात् परम योगाभ्यासके बलसे रागादि-रहित केवल आत्म-स्वभावका जहां अनुभव होता है (षिपनक भाव सयुत) वहीं साथमें क्षायिक सम्यक्तका भाव होता है (तिविह जोएन कम्मान षिपिओ) तब मन, वचन, कायकी गुप्तिसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—क्षायिक निर्मल सम्यक्त भावधारी साधु जब परम रुचिके साथ आत्मध्यानमें मगन होता है तब उसका भाव कमलके समान प्रफुल्लित होता है। इसी आनन्दमई भावको ध्यानकी अग्नि कहते हैं, यही कर्मोंको दग्ध करने लगती है—जैसा २ योगाभ्यास बढ़ता जाता है कर्मोंका क्षय होता जाता है।

गगन स्वभाव मनन।

गगन सुभाव उववन्नं, गगन अस्मि दिस्टि सुद्धं च।
आनन्दं परमानन्दं, परमप्पा परम जोएन ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थ—(गगन सुभाव उववन्न) आकाशके समान शून्य स्वभाव जब उत्पन्न होता है तब (गगन अस्मि

दिस्टि सुद्ध च) मैं आकाशके समान शून्य हूं ऐसी शुद्ध दृष्टि होती है (आनन्द परमानन्द) तब परमानन्दमई सुखका अनुभव होता है (परम जोएन परमप्पा) परम योगाभ्यासके बलसे परमात्माका ही प्रकाश होजाता है।

भावार्थ—जब सर्व संकल्प विकल्प, विचार, चितवन, भावनाएं अस्त होजाती हैं और आप आपमें निर्विकल्प रूपसे लयता प्राप्त होजाती है तब वहां जो निर्लेप व शून्य भाव होता है उसे ही गगन स्वभाव कहते हैं। वहां आत्मा परमात्मा रूप ही झलकता है और परमानन्दका लाभ होता है।

तत्वानुशासनमें कहा है—

तदात्वानुभवंश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति। तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम् ॥ १७० ॥
यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकंपते। तथा स्वरूपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्र्यमुज्झति ॥ १७१ ॥
तदा च परमैकाग्र्याद्बहिरर्थेषु सत्स्वपि। अन्यन्न किंचनाभाति स्वमेवात्मनि पश्यतः ॥ १७२ ॥
अतएवान्यशून्योपि नात्मा शून्यः स्वरूपतः। शून्याशून्यस्वभावोऽयमात्मनैवोपलभ्यते ॥ १७३ ॥

भावार्थ—उसी आत्माका ही अनुभव करते हुए परम एकाग्रता आजाती है तब वचन अगोचर स्वाधीन आनन्दका स्वाद आता है। जैसे पवन रहित स्थानमें रखा हुआ दीपक कांपता नहीं है वैसे योगी अपने स्वरूपमें जमा हुआ एकाग्रताको नहीं त्यागता है। तब परम एकाग्रता होनेसे बाहरी पदार्थोंके रहते हुए भी योगीको अपने आत्माके भीतर अनुभव करते हुए और किसी पदार्थका झलकाव नहीं होता है। अतएव इसीको शून्य या गगनस्वभावी ध्यान कहते हैं जहां अन्य भावकी शून्यता है तौ भी आत्मा स्वरूपसे शून्य नहीं है। इसतरह शून्य व अशून्य स्वभावी भाव आत्माके ही द्वारा प्राप्त होता है।

घन घाय कम्म विलयं, घन समूह अनन्त संसारे।
जिनं सुभाव उववन्नं, ज्ञान सहावेन जिनवरिं देहि ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थ—(अनंत संसारे) इस अनादि अनन्त संसारमें (घन समूह घन घाय कम्म विलयं) अत्यन्त दीर्घकालके संचित अनेक समूहरूप ज्ञानावरणादि घातीय कर्म आत्मध्यानके बलसे नष्ट होजाते हैं (जिन सुभाव उववन्नं) तब ज्ञान स्वभावमें रमण करते हुए जिनका स्वभाव प्रगट होजाता है (ज्ञान सहावेन जिनवरिं देहि) ऐसा श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंने कहा है।

भावार्थ—आत्मध्यानमें ऐसी शक्ति है कि भव भवके संचित कर्म क्षणमात्रमें नष्ट होजाते हैं और केवलज्ञान प्रगट होजाता है। भरत चक्रवर्तीने दीक्षा लेनेके बाद मात्र एक अन्तर्मुहूर्त ही ध्यान किया। उसीसे वे केवली होगए। ध्यानमें अपूर्व शक्ति है।

ज्ञाता उववन्न रूवं, जोयंतो ज्ञान दंसन सहावं।
रयनं रयन सहावं, अप्पा परमप्पा विमल ज्ञानं च ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञाता रूव उववन्न) ज्ञाता आत्माका जब स्वभाव प्रगट होता है तब वह (ज्ञाय दंसन सहावं जोयंतो) ज्ञानदर्शन स्वभावमई आत्माको देखता है तथा (रयनं रयन सहावं, सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्रमई रत्नत्रयको तथा रत्नत्रयके स्वभावको अनुभव करता है (अप्पा परमप्प विमल ज्ञान च) तथा आत्माको परमात्मारूप निर्मल ज्ञानमई जानता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके प्रगट होते ही आत्मा व अनात्माको भिन्न २ जानने देखनेकी शक्ति प्रगट होजाती है। उसके भीतर ऐसी पहचान होजाती है कि वह आत्माको आत्मा द्रव्यरूप यथार्थ जानता है। फिर जब वह स्वानुभवमें जमता है तब उसको शुद्ध आत्मतत्वका अनुभव होता है, वहीं रत्नत्रयका भी प्रकाश होजाता है।

लंकृत परमानन्द, लीनं सुद्धं च केवलं ज्ञानं।
मतिज्ञान सुद्ध सुद्धं, नन्त चतुष्टय सुद्ध स सरूवं ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थ—(लंकृत परमानन्द) जहां परमानंद शोभित होरहा है (लीनं सुद्धं च केवलं ज्ञानं) ऐसी स्वरूपमें तल्लीनता है कि शुद्ध तथा असहाय ज्ञानका अनुभव आरहा है (मति ज्ञान सुद्ध सुद्धं) वहीं परम शुद्ध मतिज्ञान है (नत चतुष्टेय सुद्ध स सरूव वहीं अनंत चतुष्टय स्वरूप शुद्ध अपना स्वभाव झलक रहा है।

भावार्थ—मनद्वारा आत्माके यकायक ग्रहणको मतिज्ञान कह सक्ते हैं। जहां आत्माके शुद्ध स्वभावमें श्रद्धा पूर्वक तल्लीनता है वहां परमात्मामई आत्मा ही निर्विकल्प रूपसे अनुभवमें आता है। यही स्वात्मानुभव परम अतीन्द्रिय आनन्दका दाता है।

आत्मध्यानी श्रुतकेवली ।

सिद्ध सरूवं पिच्छदि, चेतन परिनाम ज्ञान संयुत्तं ।
चिदानन्द आनन्दं, श्रुत ज्ञानं च चेयना रूवं ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थ—(चेयना रूवं च श्रुत ज्ञानं) चेतना रूप भाव श्रुत ज्ञान (चेतन परिनाम ज्ञान संयुत्तं) चेतना भाव तथा सम्यग्ज्ञान सहित (चिदानद आनंद) और अतीन्द्रिय आत्मानंदसे पूर्ण (सिद्ध सरूवं पिच्छदि) सिद्ध भगवानके स्वरूपको देखता है ।

भावार्थ—द्रव्य श्रुत द्वादशांग वाणी है, इसके द्वारा जो निज आत्माका बोध होता है वह भावश्रुत ज्ञान है । इस भाव श्रुत ज्ञानमें अपना ही आत्मा सिद्ध भगवानके समान दिखता है, जहां पूर्ण ज्ञान-दर्शन स्वभाव है व पूर्ण आनन्द स्वभाव है व पूर्ण ज्ञान चेतना भाव है ।

समयसारजीमें द्रव्य श्रुत द्वादशांग वाणीके द्वारा जो आत्माका अनुभव करता है उसे ही श्रुत केवली कहा है—

जो हि सुदेणभिगच्छदि अप्पाणमिण तु केवल सुद्ध । तं सुदकेवलिमिसिणो भणति लोगप्पदीवयरा ॥ ९ ॥

भावार्थ—जो कोई निश्चयसे भावश्रुतके द्वारा इस आत्माको असहाय और शुद्ध अनुभव करता है उसको लोक स्वरूपके प्रकाशक परम ऋषि श्रुत केवली कहते हैं ।

अरहंत केवली ।

छत्रत्रय संयुक्तं, छीन संसार सरनि सुभावं ।
ज्ञाता उववन परमं, जैवंतो नंत दंसनं परमं ॥ ४९ ॥

अन्वयार्थ—(छत्रत्रय संयुक्त) श्री अरहंत केवली तीन छत्रसे सुशोभित हैं । (छीन ससार सरनि सुभाव) जिन्होंने संसार मार्गके स्वभावको क्षय कर डाला है (परम ज्ञाता उववन) परम ज्ञाता दृष्टा होगए हैं (नन्त परमं दंसनं जैवंतो) उनका अनन्त परम दर्शन गुण जयवंत रहो ।

भावार्थ—श्री अरहंत परमेष्ठीकी महिमा बताई है कि समवशरनमें तीन छत्र सिंहासन आदि आठ प्रातिहार्योंसे शोभायमान हैं। संसारके भ्रमणका मूल कारण मोहनीय कर्म है, उसको प्रभुने क्षय कर डाला है। अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान आदि गुणोंसे लंकृत हैं।

ज्ञानं च सुद्ध ज्ञानं, ज्ञानं च परिनाम परमप्पा।
नन्तानन्त चतुस्टं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयन्ति॥ ५० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च सुद्ध ज्ञान) श्री केवली भगवानके उपचारसे ध्यान है। उनका उपयोग शुद्ध आत्मामें आत्मस्थ है, यही शुद्ध ध्यान है (ज्ञानं ज्ञान च परिनाम परमप्पा) उनका ध्यान तथा ज्ञान परमात्माके भाव रूप ही परिणया है (नन्तानन्त चतुस्ट) उनके अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख तथा अनन्तवीर्य चार अनन्त चतुष्टय प्रकाशमान हैं (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति) ज्ञान स्वभावमें परिणमन करनेसे वास्तवमें कर्मोंका क्षय होजाता है।

भावार्थ—रागद्वेष छोड़कर शुद्धोपयोगमें रमन करनेसे यह आत्मा अरहंत परमात्मा होजाता है। बारहवें गुणस्थान तक दूसरा एकत्व वितर्क अवीचार दूसरा शुक्लध्यान था। तीसरा शुक्लध्यान तेरहवेंके अन्तमें होता है जब काय योग सूक्ष्म रह जाता है। मध्य अवस्थामें कोई ध्यान नहीं है। तब उपयोग शुद्ध आत्माकी ही तरफ सन्मुख है। इसीलिये वहांपर ज्ञान चेतनाका प्रकाश है तथा ध्यान भी उपचारसे कहा जासक्ता है।

परम भाव परमेष्ठी, परम जिनं अनन्त विमल अनुमोयं।
वरं श्रेष्टं इस्टी, इस्टी दिस्टी च सुद्ध विमल परमेष्ठी॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(परम भाव परमेष्ठी) उत्कृष्ट आत्मीक भावोंमें रमन करनेवाले अर्हंत परमेष्ठी हैं (परम जिनं) परम जिन हैं (अनन्त विमल अनुमोयं) अनन्त गुणोंके धारी हैं, रागादि मल रहित हैं परमानन्दमई हैं (वरं श्रेष्ट इस्टी) वे ही वर हैं, श्रेष्ठ हैं, परम हितैषी हैं (इस्टी दिस्टी) जिनकी दृष्टि परम इष्ट है, अभयदानरूप है, सर्व जीवहितकारिणी है। (च सुद्ध विमल परमेष्ठी) तथा वे ही शुद्ध निर्मल परमपदमें तिष्ठनेवाले परमेष्ठी हैं।

भावार्थ—यहां भी श्री अरहंत परमेष्ठीका ही स्वरूप कथन किया है। वे सर्व देवोंके देव श्रेष्ठ परमात्मा

हैं, कर्ममल रहित हैं, निजानन्दमें मग्न हैं। जिनको भवनवासीके ४०, व्यन्तरोंके ३२, स्वर्गवासियोंके २४, चन्द्रमा, सूर्य, चक्रवर्ती और अष्टापद ऐसे सौ इन्द्र नमन करते हैं। वे जीवमात्रके हितैषी हैं। उनका उपदेश प्राणी मात्रकी रक्षाका है। आप्तस्वरूपमें कहा है:—

योगीश्वरो महायोगी लोकनाथो भवान्तक । विश्वचक्षुर्विभु· शम्भुर्जगच्छिखरिशेखर. ॥ ४८ ॥

भावार्थ—श्री अरहंत भगवान योगीश्वर हैं, महायोगी हैं, जगतके नाथ हैं, संसारके अन्त करनेवाले हैं, जगतके देखनेको चक्षु हैं, ज्ञानापेक्षा सर्वव्यापक हैं इससे विभु हैं, शांत स्वरूप हैं व जगतके शिखरके मुकुट हैं अर्थात् सर्व शिरोमणि हैं।

ममात्मा सुकिय सुभावं, ममात्मा सुद्धात्म विमल मिलियं च ।
सहकार ज्ञान समयं, सर्वज्ञं सुद्ध विमल अनुमोयं ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ—(ममात्मा सुकिय सुभावं) मेरे आत्माका अपना स्वभाव भी वैसा ही है (ममात्मा सुद्धात्म विमल मिलियं च) जैसा शुद्ध आत्माका निर्मल स्वभाव है वैसा ही मेरे आत्माका स्वभाव है (ज्ञान समयं सहकार) यही ज्ञान रूप चारित्र सहकारी है जिससे (सर्वज्ञ सुद्ध विमल अनुमोयं) सर्वज्ञ स्वरूप शुद्ध वीतराग आनन्दमई प्रकाश होता है।

भावार्थ—अपने आत्माको परमात्माके समान निश्चय करके जो इस आत्मीक ज्ञानमें स्थिर होता है वही कर्मोंको नाशकर परमात्मा होजाता है।

आत्मशुद्धिके लिये किसतरह भावना करनी चाहिये सो तत्वानुशासनमें कहा है:—

सदद्रव्यमस्मि चिदहं ज्ञाता दृष्टा सदाप्युदासीन । स्वोपात्तदेहमात्रस्तत· पृथगगगनवदमूर्त्त ॥ १५३ ॥

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत् । नोऽहमेष्टा न च द्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता ॥ १५७ ॥

एवं सम्यग्विनिश्चित्य स्वात्मान भिन्नमन्यत· । विधाय तन्मयं भावं न किंचिदपि चिन्तये ॥ १५९ ॥

भावार्थ—मैं सत् द्रव्य हूं, चैतन्य हूं, ज्ञातादृष्टा हूं, सदा ही उदासीन हूं, अपने प्राप्त देह मात्र आकार धारी हूँ, तथापि उससे भिन्न आकाशके समान अमूर्तीक हूँ। यह जगत न तो मेरेको स्वयं इष्ट

है न अनिष्ट है, किन्तु उपेक्षाके योग्य है। न मैं इस जगतसे राग करता हूँ, न द्वेष करता हूँ, किन्तु मैं स्वयं वीतराग हूँ। इस तरह भलेप्रकार अपने आत्माको अन्यसे भिन्न निश्चय करके जो अपनेमें तन्मय होजाता है वह और कुछ चिन्ता नहीं करता है। वहां स्वानुभव पैदा होजाता है। यही सर्वज्ञत्वका उपाय है।

क्षायिक सम्यक्त स्वभाव।

षिपनिक विमल सुभावं, पिपिओ कम्मान सरनि विलयं च।
षिपिओ अज्ञान प्रमोदं, ज्ञान सहावेन अनुमोय विमलं च ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ—(षिपनिक विमल सुभावं) क्षायिक सम्यग्दर्शनरूप निर्मल स्वभावका यह महात्म्य है जिससे (कम्मान पिपिओ) कर्मोंका क्षय होजाता है (सरनि विलय च) तथा नवीन कर्मोंका आस्रव बन्द होजाता है (अज्ञान प्रमोदं षिपिओ) शुद्ध ज्ञानके सिवाय मिथ्याज्ञान व अज्ञानमें प्रसन्नताका भाव दूर होजाता है (ज्ञान सहावेन अनुमोय विमल च) ज्ञान स्वभावमें रमन करनेसे निर्मल आनन्दमय भाव झलक जाता है।

भावार्थ—चार अनन्तानुबन्धी कषाय तथा दर्शन मोहकी तीन प्रकृति, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त प्रकृति, इन सात कर्म प्रकृतियोंके क्षयसे क्षायिक सम्यग्दर्शन जो आत्माका स्वभाव है सो प्रगट होजाता है—क्षायिक सम्यक्ती जीव यातो उसी भवसे मोक्ष होजाता है या मध्यमें देवगतिमें जन्म ले या नरक आयु व गति बांधी हो तो नर्कमें जन्म ले फिर मानव हो मुक्त होजाता है। यदि मानव या पशुगति बांधी हो तो भोगभूमिमें जन्म लेकर फिर देव होकर फिर मनुष्य होकर अवश्य मुक्त होजाता है। क्षायिक सम्यक्तीके आस्रवका निरोध और अविपाक निर्जरा प्रचुरतर होती है। उसका प्रमोद भाव आत्मीक आनन्दमें होता है या सम्यक्ती ज्ञानी गुणी महात्माओंके दर्शनसे होता है। सांसारिक रागद्वेषमय आश्चर्यकारक बातोंको देखकर वह प्रमोद भाव नहीं लाता है, अन्तरंगमें उदासीन भाव रखता है। उसको ज्ञान स्वभावके अभ्याससे अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद आया करता है।

शुद्ध द्रव्य व भावलिंग।

नानाप्रकार दिस्टी, ज्ञान सहावेन इस्टि परमेस्टी।
लिंगं च जिनवरिंदं, लिंगं सुद्धं च कम्म विलयं च ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ— (नानाप्रकार दिस्टी) नानाप्रकारकी जो दृष्टियें ज्ञानीको होती हैं वे सब (ज्ञान सहावेन इस्टि परमेस्टी) ज्ञान स्वभावकी सहायतासे हितकारी व परम पदमें लेजानेवाली होती हैं (जिनवरिंदं लिंगं च) जो मुनि–भेष श्री जिनेन्द्र तीर्थंकर भगवानका होता है उसी लिंगको ज्ञानी धारण करता है (सुद्धं लिंगं च कम्म विलयं) द्रव्य निर्ग्रन्थ लिंगके साथ साथ शुद्ध भावलिंग होता है। इसी भावलिंगसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व भाव ज्ञानमई ही होते हैं। क्योंकि उसकी आत्मभूमिका ज्ञानमई बन गई है। वे सर्व ही भाव आत्महितकारी होते हैं व परम पदके सहायक होते हैं।

श्री समयसार कलशमें कहा है:—

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ता सर्वे भावा भवंति हि। सर्वेऽप्यज्ञाननिर्वृत्ताभवन्त्यज्ञानिनस्तु ते ॥ २२ ॥

भावार्थ—ज्ञानीके सर्व ही भाव सम्यग्ज्ञानसे रचे हुए होते हैं, जब कि अज्ञानीके सर्व ही भाव अज्ञान द्वारा निर्मित होते हैं। साधु ही मोक्षमार्गका यथार्थ व पूर्ण साधन कर सक्ते हैं। जो यथार्थ द्रव्यलिंग तथा भावलिंगके धारी हों उनहीको साधु कहते हैं।

श्री ज्ञानार्णवमें निर्ग्रन्थ मुनिका स्वरूप कहा है:—

दश ग्रन्था मता बाह्या अंतरगाश्चतुर्दश, तान्मुक्त्वा भवनिःसंगो भावशुद्धया भृशं मुने ॥ ३ ॥
वास्तुक्षेत्र धनं धान्यं द्विपदाश्च चतुष्पदा। शयनासनयानं च कुप्यं भाण्डममी दश ॥ ४ ॥
मिथ्यात्त्ववेदरागा दोषा हास्यादयोऽपि षट् चैव। चत्वारश्च कषायाश्चतुर्दशाभ्यन्तरा ग्रन्था ॥
अन्तर्बाह्यभुवो शुद्धयोर्योगाद्योगी विशुद्धयति। नह्येकं पत्रमालम्ब्य व्योम्नि पत्री विसर्पति ॥ १०–१६ ॥

भावार्थ— बाहरके परिग्रह दश हैं, अन्तरङ्गके चौदह हैं। हे मुने! इन दोनों प्रकारके परिग्रहोंको छोड़कर अत्यन्त निःसंग होजाओ। घर १, क्षेत्र २, धन ३, धान्य ४, द्विपद मनुष्य दास दासी ५, चतुष्पद पशु हाथी घोडा आदि ६, शयनासन ७, यान-सवारी ८, कुप्य-कपड़े ९, भांड–वर्तन १०। ये बाहरके

दश परिग्रह हैं। मिथ्यात्व १, तीनों वेदोंका राग ४, हास्य ५, रति ६, अरति ७, शोक ८, भय ९, जुगुप्सा १०, क्रोध ११, मान १२, माया १३, लोभ १४। ये अन्तरङ्गके परिग्रह चौदह हैं। इनका ममत्व वुद्धिपूर्वक छोड़े। योगी बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारकी शुद्धियोंका योग होनेसे ही विशुद्ध होता है किंतु एक प्रकारकी विशुद्धिसे नहीं होता। जैसे पक्षी एक ही पँखके सहारे आकाशमें नहीं उड़ सक्ता, दोनों पँखोंके होनेसे ही उड़ सक्ता है। इसी प्रकार दोनों ही प्रकारकी शुद्धिसे ही मुनि निर्मल होता है।

अणुमात्रादपि ग्रन्थान्मोहग्रंथिर्दृढी भवेत्। विसर्पति ततस्तृष्णा यस्या विश्वं न शातये ॥ २०–१६ ॥

भावार्थ—अणुमात्र परिग्रहके रखनेसे मोह कर्मकी गांठ दृढ़ होती है और इससे तृष्णाकी ऐसी वृद्धि होती है कि उसकी शांतिके लिये समस्त लोकके राज्यसे भी पूरा नहीं पड़ सक्ता। द्रव्यलिंग निमित्त कारण है, भावलिंग साक्षात् मुनिपद है। भावोंकी शुद्धिसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

साधुके पांच महाव्रत।

लीनं अनन्तनन्तं, लीनं समभाव ज्ञान सहकारं।
ये पंच गुन विसुद्धं, एयं तिक्कंति सरनि संसारे ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ—(अनननत लीनं) साधु महाराज आत्माके अनन्त गुण स्वभावमें लीन रहते हैं (ज्ञान सहकारं समभाव लीनं) तथा आत्मज्ञानकी सहायतासे समभावमें तन्मय रखते हैं (ये पंच गुन विसुद्ध) वे जिन पांच महाव्रत रूप पांच गुणोंको निर्मलतासे पालते हैं (एयं संसारे सरनि तिक्कंति) उन्हीं पांच गुणोंके प्रभावसे संसारके मार्गसे छूट जाता है।

भावार्थ—साधु आत्माकी अनन्तानन्त शक्तियोंको पहचाननेवाले होते हैं। आत्मा अपने अनंत गुण-पर्यायोंका समुदाय है उसी आत्माके स्वभावमें तन्मय होजाते हैं तथा निश्चयनयके द्वारा वे जब जगतकी आत्माओंको देखते हैं तब रागद्वेष छूटकर उनमें समताभाव जग जाता है। वे साधु निर्दोष पांच महाव्रतोंको पालते हैं जिससे उनके परिणाम बहुत शुद्ध रहते हैं। इन्हीं निर्मल भावोंसे उनका संसार–मार्ग [illegible] है और मोक्षमार्ग बढ़ता जाता है। ज्ञानार्णवमें पांच महाव्रतोंका स्वरूप नीचे प्रका[र] है—

अहिंसा महाव्रत—

वाक्‌चित्ततनुभिर्यत्र न स्वप्नेऽपि प्रवर्तते। चरस्थिराङ्गिनां घातस्तदाद्यं व्रतमीरितम् ॥ ८–८ ॥

परमाणोः परं नाल्पं न महद् गगनात्परं। यथा किंचित्तथा धर्मो नाहिंसा लक्षणात्परं ॥ ४१ ॥

तपःश्रुतयमज्ञानध्यानदानादिकर्मणा। सत्यशीलव्रतादीनामहिंसा जननी मता ॥ ४२ ॥

अभयं यच्छ भूतेषु कुरु मैत्रीमनिन्दिताम्। पश्यात्मसदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम् ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जहां मन, वचन, कायसे त्रस और स्थावर जीवोंका घात स्वप्नमें भी न हो उसे पहला अहिंसा महाव्रत कहते हैं। साधु जलके कण व वृक्षकी पत्तीकी भी हिंसा नहीं करते हैं। दुःख पहुंचाए जाने पर भी कभी द्वेषभाव नहीं लाते हैं। उत्तम क्षमा ही धारण करते हैं। इस लोकमें परमाणुसे कोई छोटा नहीं व आकाशसे कोई बड़ा नहीं, इसीतरह अहिंसा धर्मसे बड़ा कोई धर्म नहीं है। तप, शास्त्रज्ञान, इंद्रिय दमन, ज्ञान, ध्यान, दान आदि कर्म तथा शील सत्य व्रतादि जितने उत्तम कार्य हैं उनकी माता अहिंसा है। अहिंसाके विना अन्य गुण होही नहीं सक्ते। हे भव्य! तू जीवोंको अभयदान दे व उनके साथ प्रशंसनीय मित्रता कर सर्व त्रस स्थावर प्राणियोंको अपने समान देख।

सत्य महाव्रत—

सूनृतं करुणाक्रान्तमविरुद्धमनाकुलम्। अग्राम्यं गौरवाश्लिष्टं वचः शास्त्रे प्रशस्यते ॥ ५–९ ॥

व्रतश्रुतयमस्थानं विद्याविनयभूषणम्। चरणज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञं व्रतं मतम् ॥ २७ ॥

चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्त्रये। स्वर्गिभिर्ध्रियते मूर्ध्ना कीर्तिः सत्योत्थिता नृणा ॥ २९ ॥

भावार्थ—जो वचन सत्य हो, करुणासे व्याप्त हो, विरुद्ध न हो, आकुलताकारी न हो, गंवारोंकासा वचन न हो, गौरव सहित हो वही सत्य वचन शास्त्रमें प्रशंसनीय है। यह सत्य व्रत, अन्य व्रत, शास्त्र व इंद्रिय दमनका स्थान है, विद्या और विनयका भूषण है। सम्यग्ज्ञान व सम्यक्‌चारित्रके उत्पन्न करनेका बीज सत्य व्रतको कहा गया है। तीन लोकमें चन्द्रमाके समान आनन्दको बढ़ानेवाले सत्य वचनसे उत्पन्न हुई, मानवोंकी कीर्तिको देवता भी मस्तकपर चढ़ाते हैं। साधुको शास्त्रोक्त वचन प्रिय वाणीसे ही बोलना चाहिये।

अचौर्य महाव्रत—

य समीप्सति जन्माब्धे पारमाक्रमितुं सुधी । स त्रिशुद्धयातिनिःशको नादत्ते कुरुते मति ॥ २-१० ॥

सरित्पुरगिरिग्रामवनवेश्मजलादिषु । स्थापितं पतित नष्टं परस्व त्यज सर्वथा ॥ १६ ॥

भावार्थ—जो संसार-समुद्रसे पार होनेकी इच्छा करता है वह सुबुद्धि निःशङ्क होकर मन, वचन, कायसे विना दी हुई वस्तुको ग्रहण करनेकी इच्छा न करें। हे आत्मन् ! नदी, नगर, पर्वत, ग्राम, वन, घर तथा जलादिमें रक्खे हुए, गिरे हुए, तथा नष्ट हुए धनको मन, वचन, कायसे ग्रहण करना सर्वथा छोड़। साधुजन विना दिये हुए तृण मात्रको भी ग्रहण नहीं करते।

ब्रह्मचर्य महाव्रत—

विरज्य कामभोगेषु ये ब्रह्म समुपासते। एते दश महादोषास्त्याज्या भावशुद्धये ॥ ११-११ ॥

आद्यं शरीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम्। तौर्यत्रिकं तृतीयं स्यात्संसर्गस्तुर्यमिष्यते ॥ ७ ॥

योषिद्विषयसंकल्पः पंचमं परिकीर्तितम्। तदंगवीक्षणं षष्ठं संस्कारः सप्तमं मतम् ॥ ८ ॥

पूर्वानुभोगसंभोगस्मरणं स्यात्तदष्टमम्। नवमं भाविनी चिन्ता दशमं वस्तिमोक्षणम् ॥ ९ ॥

स्मरदहनसुतीव्रानन्तसन्तापविद्धं। भुवनमिति समस्तं वीक्ष्य योगिप्रवीराः ॥

विगतविषयसंगाः प्रत्यहं संश्रयन्ते। प्रशमजलधितीरं संयमारामरम्यम् ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जो पुरुष काम और भोगोंसे विरक्त होकर ब्रह्मचर्यका सेवन करते हैं उनको भावशुद्धिके लिये दश प्रकारके मैथुन त्याग देने चाहिये। १ शरीरका श्रृंगार करना, २ पुष्ट रसका खाना, ३ गीत नृत्य वादित्रका देखना सुनना, ४ स्त्रीकी संगति करना, स्त्रीमें किसी प्रकारका संकल्प करना, ६ स्त्रीके अंग देखना, ७ उसके देखनेका संस्कार हृदयमें रखना, ८ पूर्वके भोगोंका स्मरण करना, ९ आगामी भोगोंकी चिंता करनी, १० शुक्रका क्षरण। विषय संग रहित श्रेष्ठ योगीजन इस संसारको कामाग्निके प्रचण्ड और अनन्त सन्तापोंसे पीडित देखकर प्रतिदिन संयम रूप बगीचेके शोभायमान ऐसे शांतिसागरके तटका आश्रय करते हैं।

परिग्रहत्याग महाव्रत—

[illegible] विजने जनसंकीर्णे सुस्थिते दुःस्थितेऽपि वा। सर्वत्राप्रतिबद्धः स्यात्संयमी संगवर्जितः ॥ २५ ॥

भावार्थ—जो परिग्रह रहित संयमी है वह चाहे तो निर्जन वनमें रहो चाहे वस्तीमें रहो, चाहे सुखसे रहो, चाहे दुःखसे रहो उसका कहीं भी ममत्व नहीं है, वह सब जगह निर्मोही रहता है।

इसतरह जो साधु जन पांच महाव्रतोंको शुद्ध भावसे पालते हैं उनहींके उत्तम धर्मध्यानकी सिद्धि होती है, वे ही शुद्ध भावोंसे कर्मोंकी निर्जरा करते हैं।

ज्ञान स्वभाव महात्म्य।

टंकोत्कीर्ण अप्पा, टूटं कम्मान तिविह जोएन।
ठानं कुनसि सहावं, ज्ञान सहावेन मुक्ति ठिदि सुद्धं ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ—(टकोत्कीर्ण अप्पा) जिस साधुके ध्यानमें टंकोत्कीर्ण आत्मा है (तिविह जोएन कम्मान टूट) उसके मन, बचन, काय योगोंके द्वारा कर्मोंका टूटना होता है। (सहावं ठान कुनसि) वह अपने स्वभावको ही अपने रहनेका स्थान बनाता है (ज्ञान सहावेन सुद्ध मुक्ति ठिदि) इस ज्ञान स्वभावमें रमन करनेसे शुद्ध मोक्षभावमें स्थिरता रखता है।

भावार्थ—जैसे लोहेकी टांकीसे पाषाणमें आकार बनाये जावें तौ वे मिटते नहीं हैं। इसी तरह टँकोत्कीर्ण रूप आत्माका स्वभाव है जो कभी मिटता नहीं है। ऐसे शुद्ध द्रव्य स्वभावमें तन्मय होनेसे भावोंमें वीतरागता झलकती है जिसके प्रतापसे कर्मोंके बन्धन स्वयं टूटते हैं। यद्यपि बाहरी स्थान व आसन साधुका स्थान है तथापि निश्चयसे वे अपने स्वभावमें ही ठहरते हैं। इसी प्रकार वे मोक्षके लक्ष्यमें जमे रहते हैं। साधुओंका स्थान निर्मल आत्मा ही होता है, ऐसा श्री अमितगति महाराज सामायिक पाठमें कहते हैं—

न सस्तरोऽश्मा न तृण न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्म्मित।
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विष, सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मत ॥ २२ ॥

भावार्थ—न चटाईका संथारा, न पाषाणकी शिला, न तृण, न पृथ्वी; ये सब कोई नियमसे आसन

नहीं है। जो इंद्रियोंके विपय तथा कषायोंसे व द्वेषसे हटकर निर्मल भावमें रहना है ऐसे आत्माका शुद्ध भाव ही ज्ञानियों द्वारा आसन माना गया है।

ज्ञानं च परम ज्ञानं, ज्ञान सहावेन समय सुद्धं च ।
डण्ड कपाट तिअर्थ, लोयालोयेन ज्ञान समयं च ॥ ५७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान च परम ज्ञान) वही ज्ञान श्रेष्ठ व उत्तम ज्ञान है (ज्ञान सहावेन समय सुद्धं च) जिस ज्ञान स्वभावमें ठहरनेसे समय अर्थात् आत्मा शुद्ध होजावे (डण्ड कपाट तिअर्थ) तीन पदार्थ रत्नत्रय ही उसके डण्ड–कपाट हों। अर्थात् रत्नत्रय हीमें लीनता हो (लोयालोयेन ज्ञान समयं च) लोक व अलोकके पदार्थोंका ज्ञान जिसमें हो वही समय अर्थात् आत्मा है।

भावार्थ—आत्मा स्वभावसे लोकालोकका ज्ञाता है, अपने गुणोंमें परिणमनशील है इसलिये समय है। ऐसे आत्माका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। इसीका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व इसीमें तल्लीनता सम्यक्चारित्र है। इस रत्नत्रयकी एकतामें तिष्ठना ही साधुका किवाड़ोंके भीतर रहना है, तीन गुप्तिमें ठहरना है, जिससे कर्मास्रवका प्रवेश न हो। यही शुद्धात्म ज्ञान ही प्रशंसनीय ज्ञान है। इसीके प्रभावसे आत्मा शुद्ध होता है।

टंकार ज्ञान सुद्धं, टलिओ कम्मान तिविह विलयं च ।
स्फटिक सुभाव सुद्धं, स्फटिक सुभावेन मुक्ति गमनं च ॥ ५८ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं ज्ञान टंकार) साधुओंका सुद्ध आत्मध्यान टंकार है–ललकार है (कम्मान टलिओ) जिससे कर्मोंका आस्रव टल जाता है। (तिविह विलय च) तथा तीन प्रकार कर्म भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्मका धीरे २ क्षय होजाता है (स्फटिक सुभाव सुद्धं) साधु जन आत्माको शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल ध्याते हैं। (स्फटिक सुभावेन मुक्ति गमनं च) इसी स्फटिक समान आत्माके स्वाभाविक ध्यानसे ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

भावार्थ—जैसे युद्धमें योद्धा धनुषकी टंकार करता है या दीर्घस्वरसे ललकार करता है तो चढ़ाई करनेवाला योद्धा दब जाता है–हट जाता है–पीछे चला जाता है वैसे जब साधु शुद्धोपयोग पूर्वक आत्मध्यान लगाते हैं तब उस ध्यानके प्रभावसे आनेवाले कर्म रुक जाते हैं तथा जितना २ रागद्वेप हटता है,

चारित्र गुण प्रगट होता है जिससे कर्मोंकी निर्जरा होती है। जब मुक्ति होजाती है तब नोकर्म शरीरका भी सम्बन्ध नहीं रहता है। ध्यान करते हुए स्फटिकमणिके समान निर्मल आत्माको शरीराकार ध्याना चाहिये। आत्मा अमूर्तीक पदार्थ है अतएव अभ्यास करते हुए किसी आकारके भीतर उपयोग लगाना चाहिये जिससे चित्त स्थिर होवै। फिर थिरता बढते २ साक्षात् आत्माका ध्यान या अनुभव होजाता है।

मन पर्यय सुभावं, मन विलयं सुद्ध ज्ञान सद्भावं।
रिजु विपुलं च सहावं, चिंतामनि सुद्ध रयन ममलं च॥ ५९ ॥

अन्वयार्थ—(मन पर्यय सुभाव) आत्माका स्वभाव मनपर्यय है, पर्ययके अर्थ लय होनेके हैं, दूर हो जानेके हैं जहां मन लय या विलय या दूर होजाता है वहीं आत्माका प्रकाश होता है (मन विलयं सुद्ध ज्ञान सद्भावं) जब मनका नाश होता है तब ही शुद्ध ध्यानका सद्भाव होता है (रिजु विपुलं च सहाव) आत्माका स्वभाव सरल आर्जव धर्मरूप है, तथा महानसे महान है (चितामनि सुद्ध रयन ममलं च) आत्मा चिंतामनिके समान शुद्ध निर्मल रत्नत्रय स्वरूप है।

भावार्थ—यहां मनःपर्यय ज्ञानकी अपेक्षासे शुद्ध आत्माके स्वभावका विचार है। जहांतक मनकी चंचलता है वहांतक आत्म-ध्यान नहीं होसक्ता है। इसलिये मनका पर्यय या लय ही आत्माका स्वभाव है। आत्मा परम आर्जव स्वरूप है, मायासे रहित है इससे ऋजु है, लोकालोकका ज्ञाता है। इतना ही नहीं यदि अनन्त ऐसे लोक हों तौभी ज्ञानमें समा जावें। इससे आत्मज्ञानकी अपेक्षा सबसे विपुल व महान है। जैसे चिंतामणि-रत्नसे यह प्रसिद्ध है कि सब कुछ प्राप्त होता है वैसे रत्नत्रय स्वरूप शुद्ध आत्माके ध्यानसे मोक्ष तक प्राप्त होता है। फिर अन्य सम्पदाकी क्या कथा।

धम्मं अनन्त सुद्धं, धम्मं धरयंति लोय अवलोयं।
रिजु विपुलं च उवन्नं, कम्ममल विलयंति तिविह योगेन॥ ६० ॥

अन्वयार्थ—(धम्म अनन्त सुद्ध) धर्म अनन्त प्रभावशाली है व शुद्ध है (धम्मं धरयंति लोय अवलोयं) इस शुद्ध धर्मको जो धारण करते हैं वे लोकके स्वरूपको यथार्थ देख लेते हैं। (रिजु विपुलं च उवन्नं) उन साधु-ओंको रिजु या विपुलमति मनःपर्याय ज्ञान पैदा होजाता है अथवा उनको सरल व विशाल आत्माका

अनुभव होता है। (तिविह योगेन कम्म मल विलयंति) इसी आत्मीक धर्मके प्रतापसे मन, वचन, कायकी गुप्तिसे कर्मोंके मल नाश होजाते हैं।

भावार्थ—धर्म आत्माका स्वभाव है। यही मोक्ष भावमें पहुंचा देता है। ऐसे धर्मधारीको छ द्रव्यमय लोक यथार्थ दिखता है। शल्यरहित सरल स्वरूप व विशालरूप आत्माके ध्यानसे कर्मोंकी निर्जरा होती जाती है।

सात व्यसन निषेध।

रीनं संसार सुभावं, रीनं अन्याय संसार विलयंती।
आकास अनन्तानंतं, अवयासं उववन्न मुक्ति गमनं च ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थ—(ससार सुभावं रीन) संसार वर्द्धक स्वभावधारी मिथ्यात्वभाव जहां हटा दिया गया है। (रीन अन्याय) अन्याय प्रवृत्तिको भी जहां रोक दिया गया है (संसार विलयती) वहां संसार अवश्य बिला जाता है। (आकास अनन्तानन्तं अवयास) जहां ऐसा अनन्त ज्ञान प्रगट होगया है जिसमें अनन्तानन्त आकाश सम्पूर्ण पदार्थोंके साथ प्रतिभासित होता है (मुक्ति गमन च) तबसे केवलज्ञानके प्रकाशके पीछे यह जीव मोक्षमें गमन करता है।

भावार्थ—संसार भ्रमणके कारण मिथ्यात्व और अन्याय हैं। सारसमुच्चयमें कहा है:—

कषायविषयैश्चित्त मिथ्यात्वेन च सयुतम्। ससारबीजता याति विमुक्त मोक्षबीजताम् ॥ ३२ ॥
अनादिकालजीवेन प्राप्त दुःख पुन पुनः। मिथ्यामोहपरीतेन कषायवशवर्तिना ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जिसका चित्त मिथ्यात्व सहित है व कषायों व विषयोंकी तीव्रतासे वासित है, वह संसारका बीज बोता है। इनसे रहित है वह मोक्षका बीज बोता है। मिथ्यात्त्वके व कषायोंके वश होकर जीवने अनादिकालमें संसारमें पुनः पुनः दुःख उठाये हैं। इसलिये जो संसारको दूर करना चाहे उसे मिथ्यात्व व अन्यायका त्याग करना चाहिये।

कुदेव कुगुरु कुधर्मका सेवन ग्रहीत मिथ्यात्व है तथा संसारके सुखमें मोहित होकर तन्मय रहना अग्रहीत मिथ्यात्व है। इन दोनोंका त्याग करना चाहिये।

जिन कामोंमें तीव्र कषाय हो व जो लोकमें भी निन्द्य हों वे सब अन्याय हैं। ऐसे अन्याय सात व्यसन प्रसिद्ध हैं।

दोहा—जूआ खेलन मास मद, वेश्या विशन शिकार। चोरी पर रमनी रमन, सातों व्यसन निवार ॥

१–जूआ नहीं खेलना चाहिये। यह अनर्थका मूल है, सम्पत्तिको गमानेवाला है, आकुलताको बढ़ानेवाला है, चोरी आदि व्यसनोंमें फँसानेवाला है। २–मांस नहीं खाना चाहिये। यह पशुघातका कारण है, परिणामोंको कठोर करनेवाला है, रोगोत्पादक है। ३–मदिरा नहीं पीना चाहिये। यह घोर हिंसाका कारण है, तीव्र नशा लानेवाली है, धर्म कर्मसे छुड़ानेवाली है। ४–शिकार नहीं खेलना चाहिये। अपने मनका शौक पूरा होता है और वृथा पशुओंकी जान ली जाती है, सताया जाता है। ५–चोरी नहीं करनी चाहिये। धन प्राणीका ग्यारहवां प्राण हैं। किसीका धन हरना, उसके प्राण लेना है। ६–वेश्या संग नहीं करना चाहिये। वेश्या कुटिल धन हरनेवाली, शरीर निर्बल करनेवाली, रोगोंके पैदा करनेवाली, मांस मद्यमें प्रेरित करनेवाली है। ७–परस्त्री सेवन न करना चाहिये। यह व्यसन कामभाव वर्द्धक है, धर्म भावसे छुड़ानेवाला है, परको पीड़ाकारी है, शरीरको निर्बल बनानेवाला है, दुर्गतिमें लेजानेवाले मिथ्यात्व और ये सात अन्याय हैं। अतएव इनको जो छोड़ता है वह धीरे२ संसार भोगसे हटकर मोक्षमार्ग पर बढ़ता जाता है और कभी न कभी केवलज्ञानी होकर मुक्त होजाता है।

इन्द्रिय राग निषेध।

तत्काल कम्म विलयं, तत्कालं राय विषय मय गलियं।
थानं नंतानंतं, थानं सुद्धं च गारवं विलयं ॥ ६२ ॥

अन्वयार्थ—(तत्कालं राय विषय मय गलियं) जिस समय पांच इन्द्रियोंके विषयोंका राग व उन सम्बन्धी अहंकार गल जाता है। (तत्काल कम्म विलयं) तब ही कर्मोंका क्षय होने लगता है। (नंतानंत थानं) और अनंतानंत पदार्थोंके जाननेका स्थान केवलज्ञान प्रगट होजाता है। (सुद्ध थानं च गारवं विलयं) जब आत्माके प्रदेश शुद्ध होजाते हैं तब सर्व अहंकार नष्ट होजाता है।

भावार्थ—इंद्रियोंका राग हटते ही व मद हटते ही अतीन्द्रिय आनन्दका प्रेम पैदा होजाता है। संसारसे वैराग्य छा जाता है। कर्म क्षय करनेका भाव पैदा होजाता है। परमें आत्मबुद्धिका नाश होजाता है, जिसका फल केवल ज्ञानका लाभ व आत्माका शुद्ध होना है। सारसमुच्चयमें कहा है—

किम्पाकस्य फलं भक्ष्य कदाचिदपि धीमता। विषयास्तु न भोक्तव्या यद्यपि स्यु. सुपेशला. ॥ ८९ ॥

इन्द्रियप्रसरं रुद्ध्वा स्वात्मानं वशमानयेत्। येन निर्वाणसौख्यस्य भाजन त्व प्रपत्स्यसे ॥ १३४ ॥

भावार्थ—कदाचित् बुद्धिमानको किम्पाकफल जो विषकारी है खा लेना अच्छा है परन्तु बहुत सुन्दर विषय हों तौ भी नहीं भोगने चाहिये। इसलिये इंद्रियोंकी इच्छाके प्रसारको रोककर अपने आत्माको अपने वश करना चाहिये। इसी उपायसे हे भव्य! तू निर्वाण सुखका भाजन होसकेगा।

अनन्त चतुष्टय।

दंसन अनंत दर्सं, दंसन दंसेइ लोय आलोयं।
धुवं ऋतं च सहावं, धुवं निश्चय परम केवलं ज्ञानं ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थ—(अनंत दसन दर्सं) केवली भगवान अनन्तदर्शन गुणको प्रकाश करते हैं (दसन लोय आलोयं दंसेइ) यह अनन्तदर्शन गुण लोक अलोकको देख लेता है (धुवं ऋतं च सहावं) यह आत्माका नित्य व सत्य स्वभाव है (धुवं निश्चय परम केवल ज्ञान) इसी तरह नित्य निश्चय स्वरूप परम केवलज्ञान है।

भावार्थ—घातीय कर्मोंके क्षय होनेपर केवली भगवानके अनन्त दर्शन व अनन्तज्ञान गुण प्रगट होजाते हैं। ये स्वाभाविक हैं, सत्य हैं व अमिट हैं, सदा रहनेवाले हैं।

नंतानंत सुदीट्ठी, नंत चतुस्टै सुदिस्टि विमलं च।
भद्र मनोज्ञं सुद्धं, भद्र जातीय मुक्ति गमनं च ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थ—(नंतानंत सुदिट्ठी) जब अनन्तानन्त पदार्थोंको देखने जाननेकी सुदृष्टि पैदा होजाती है तब (नत चतुस्टै सुदिस्टि विमलं च) अनन्त दर्शन अनन्त ज्ञान अनन्त सुख अनन्त वीर्य ये चार अनन्त चतुष्टय प्रगट हैं ऐसा निर्मल सुदृष्टिका प्रकाश कहा जाता है (भद्र मनोज्ञ सुद्धं) तब आत्मा आर्य, मनको वश कर-

नेवाला व शुद्ध कहलाता है (भद्र जातीय मुक्ति गमन च) भद्र या यथार्थ स्वाभाविक स्वरूपके प्रगट होनेसे यह भव्य अवश्य मोक्ष गमन करता है।

भावार्थ—केवलज्ञानी अरहंत ही वास्तवमें भद्र आत्मा हैं, तीन जगतके प्राणियोंको मोहनेवाले हैं व शुद्ध हैं। उनका स्वभाव सर्व कषायोंसे रहित होगया है। इसलिये कोई प्रकारकी कुटिलता वहां नहीं है परन्तु सरलता है। ऐसा शुद्ध वीतराग आत्मा जीवन पर्यंत अतीन्द्रिय आनन्दका भोग करता है। अन्तमें चार अघातीय कर्मोंसे रहित हो सिद्ध मुक्त होजाता है।

प्रणव मंत्र ध्यान।

ॐ वं ऊर्ध सहावं, ऊर्ध सुद्धं च परमेस्टि संसुद्धं।
ॐ वंकार सुदिट्ठं, विज्ञानं दर्सए पदविंदं॥ ६५॥

अन्वयार्थ—(ॐ व ऊर्ध सहाव) ॐ मंत्रमें गर्भित परमात्माका श्रेष्ठ स्वभाव है (ऊर्ध सुद्ध च परमेस्टि ससुद्ध) वे परम शुद्ध हैं व परम पदमें रहनेवाले परमेष्ठी महान वीतराग हैं (ॐ वंकार सुदिट्ठ) ॐ शब्दके मनन करनेसे उनका भलेप्रकार अनुभव होता है (विज्ञान पदविद दर्सए) भेदविज्ञान ही परमात्माके पदको दिखलाता है।

भावार्थ—यद्यपि ॐ मंत्रमें अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु पांचों परमेष्ठी गर्भित हैं तथापि मुख्यता अरहंत व सिद्ध परमात्माकी है। जगतमें ये ही श्रेष्ठ स्वभाव धारी परमेष्ठी परम वीतराग हैं। जो भव्यजीव सम्यग्दृष्टी भेदविज्ञानी ॐ मंत्रके सहारे ध्यान करता है, ॐ मंत्रको नाशिकाकी नोकपर, भौंहोंके मध्यमें, हृदय-कमलमें व नाभि-कमलमें व मुखकमलमें व मस्तकपर बिराजमान करके उसके द्वारा परमात्माका चिन्तवन करता है उसको परमात्मा पदका अनुभव होता है।

ज्ञानार्णवमें ॐ नामके प्रणव मंत्रके ध्यानके सम्बन्धमें कहा है—

स्मर दुःखानलज्वाला, प्रशान्तेर्नवनीरदम्। प्रणवं वाङ्मयज्ञानप्रदीपं पुण्यशासनम्॥ ३१–३८॥
यस्माच्छब्दात्मक ज्योति प्रसूतमतिनिर्मलम्। वाच्यवाचकसम्बंधस्तेनैव परमेष्ठिन॥ ३२॥

हृत्कंजकर्णिकासीनं स्वरव्यंजनवेष्टितम् । स्फीतमत्यन्तदुर्द्धर्षं देवदैत्येन्द्रपूजितम् ॥ ३३ ॥

प्रक्षरन्मूर्ध्निसंक्रातचंद्रलेखामृतप्लुतम् । महाप्रभावसम्पन्नं कर्मकक्षहुताशनम् ॥ ३४ ॥

महातत्वं महाबीजं महामन्त्रं महत्पदम् । शरच्चन्द्रनिभं ध्यानी कुंभकेन विचिन्तयेत् ॥ ३५-३८ ॥

भावार्थ—हे मुने! तू प्रणव नाम ॐ अक्षरका स्मरणकर क्योंकि यह प्रणव दु:खरूपी अग्निकी ज्वालाको शांत करनेके लिये मेघके समान है। तथा समस्त श्रुतके प्रकाश करनेके लिये दीपक है और पवित्र शासनमय है। इस प्रणवसे अति निर्मल शब्दरूप ज्योति अर्थात् ज्ञान उत्पन्न हुआ है। और परमेष्ठी इसका वाच्य है और यह मंत्र परमेष्ठीका वाचक है। ध्यान करनेवाला संयमी हृदयकमलकी कर्णिकामें स्थित और स्वर व्यंजन अक्षरोंसे वेढ़ा हुआ उज्वल, अत्यन्त विजयशील, देव तथा दैत्योंके इन्द्रोंसे पूजित अथवा मस्तकमें स्थित झरता हुआ, चन्द्रमाकी रेखाके अमृतसे आर्द्रित, महाप्रभाव सम्पन्न, कर्मरूपी वनको दग्ध करनेके लिये अग्निके समान ऐसे इस महातत्व, महाबीज, महातंत्र, महापद स्वरूप तथा शरदके चन्द्रमाके समान गौर-वर्णके धारक ओं को कुंभक प्राणायामसे चिन्तवन करे। पवनको नाभिके वहां रोकनेको कुंभक कहते हैं।

ममात्मा सुकिय सुभावं, विमल दिस्टी च अनुमोय सहकारं ।
आद्यं अनादि सुद्धं, अनुमोयं षिपिय कम्म तिविहं च ॥ ६६ ॥

अन्वयार्थ—(ममात्मा सुकिय सुभावं) मेरे आत्माका अपना स्वभाव (विमल दिस्टी च अनुमोय सहकारं) विमल दृष्टिरूप आनन्दमय है व मोक्ष सहकारी है (आद्यं अनादि सुद्ध) यदि स्वभाव सादि व अनादि-कर्मोंसे शुद्ध करनेवाला है (अनुमोय) आनन्दप्रद है तथा (तिविहं कम्म च षिपिय) तीन प्रकारके कर्मोंको क्षय करनेवाला है।

भावार्थ—ज्ञानीको विचारना चाहिये कि मेरे आत्माका स्वभाव निश्चयसे निर्मल ज्ञान दर्शनमय है व आनन्दरूप है। इसी स्वभावमें रमनेसे आनन्द होता है व रागद्वेष, भावकर्म, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म व शरीरादि नोकर्मोंका क्षय होता है। आठ कर्मोंका सम्बन्ध मेरे साथ प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है। परन्तु बन्धने छूटनेकी अपेक्षा सादि है। कर्मोंका नाश अपने स्वभावमें रमण करनेसे ही होगा।

तत्वानुशासनमें कहा है—

पश्यन्नात्मानमैकाग्र्यात् क्षपयत्यार्जिता-मलान् । निरस्ताहं ममीभाव संवृणोत्यप्यनागतान् ॥ १७८ ॥

भावार्थ—जो पर पदार्थमें अहङ्कार व ममकार छोड़कर एकतानताके साथ अपने आत्माको अनुभव करता है वह नए कर्मोंका संवर व पुराने कर्ममलोंका क्षय करता है।

अयं च अप्प सरूवं, अयं च विषम क्रम्म विलयं च।
अयं च सुद्ध सरूवं, अयं च सुद्ध विमल मिलियं च ॥ ६७ ॥

अन्वयार्थ— अय च अप्प सरूवं) यही जो अपने आत्माका निश्चय असल स्वरूप है (अयं च विषम कम्म विलय च) इसी स्वरूपमें रमण करनेसे भयानक कर्मोंका क्षय होता है (अयं च सुद्ध सरूवं) यही तो परमात्माका शुद्ध स्वरूप है (अय च सुद्ध विमल मिलियं च) यही स्वभाव शुद्ध कर्ममल रहित परमात्मासे मिलता हुआ है।

भावार्थ—यहां यह बताया है कि आत्मा अपने शुद्ध आत्म-स्वरूपके ध्यानसे ही कर्मोंका क्षय करता है। आत्माका शुद्ध स्वरूप सिद्ध परमात्माके समान है। सत्ता हरएक आत्माकी भिन्न भिन्न है। वास्तवमें अपना आत्मा ही तीर्थ है। सार समुचयमें कहा है—

आत्मा वै सुमहत् तीर्थं यदासौ प्रशमे स्थित । यदासौ प्रशमो नास्ति ततस्तीर्थनिरर्थकम् ॥ ३११ ॥

भावार्थ—यह आत्मा ही जब शांतभावमें तिष्ठता है तब अपने तारनेको महान तीर्थ है। परन्तु जब शांतभावमें नहीं होता है तब तो अन्य तीर्थोंकी यात्रा भी निरर्थक है।

उत्पाद्यनन्त नन्तं, उववन्नं ज्ञान सुद्ध सहकारं।
ऊर्ध ऊर्ध स सुद्धं, ऊर्ध स सहाव कम्म गलियं च ॥ ६८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सुद्ध सहकार) शुद्ध आत्मज्ञानकी सहायतासे (उत्पाद्यनन्त नंत उववन्न) ऐसा केवलज्ञान पैदा होता है जहां अनन्तानन्त पदार्थ झलकते हैं (ऊर्ध ऊर्ध स सुद्ध) वह आत्म-स्वभाव परम श्रेष्ठ है व शुद्ध है (ऊर्ध स सहाव कम्म गलिय च) इसी श्रेष्ठ आत्मीक स्वभावके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—शुद्ध आत्माके अनुभवकी महिमा अपूर्व है, इसीसे ही कर्मोंका क्षय होता है व केवलज्ञानका लाभ होता है।

ॐ वं नमामि सुद्धं, उवलष्यं अलष्यनं च स सरूवं ।
अवकास दान वृद्धि, अवकास विमल केवलं ज्ञानं ॥ ६९ ॥

अन्वयार्थ—(ॐ वं नमामि सुद्ध) मैं शुद्ध ॐ शब्दसे वाक्य अरहंत सिद्ध परमात्माको नमस्कार करता हूं (उवलष्यं अलष्यनं च स सरूव) जिनका अपना स्वरूप अनुभवगोचर है, लिखने योग्य नहीं है। तथापि संकेत मात्र जानने योग्य है (अवकास दान वृद्धि) उस स्वरूपमें जितना २ प्रवेश किया जाता है आत्मोन्नति होती जाती है (अवकास विमल केवलं ज्ञान) पूर्ण प्रकारसे प्रवेश होनेपर निर्मल केवलज्ञान प्रकाश होजाता है।

भावार्थ—परमात्माका स्वरूप कथंचित् वक्तव्य व कथंचित् अवक्तव्य है। इस उपयोगको परमात्माके स्वरूपमें लगानेके लिये आचार्य परमात्माके गुणोंका वर्णन करते हैं। परन्तु उतनेसे ही परमात्माका लाभ नहीं होता है।जो मन, वचन, कायको रोककर एकाग्रता प्राप्त करता है उसीके ही अनुभवमें परमात्माका स्वरूप आता है। योगसारमें कहा है—

वज्जिय सयल वियप्पहं परमसमाहि लहंति । ज वेददि साणंद फुडु सो सिवसुक्ख भणंति ॥ ९६ ॥

भावार्थ—जो सर्व विचारोंको छोड़कर परम समाधिको पाते हैं वे ही आनन्दमय आत्माका अनुभव करते हैं। इसी समय जो दुःख होता है वही मोक्षका सुख कहाता है।

अनुमोय नन्त नन्तं, अनन्तं चतुस्टं च विमल स सरूवं ।
आलम्बं अवलंवं, अनन्तानन्त सुदिस्टि विमलं च ॥ ७० ॥

अन्वयार्थ—(अनुमोय नन्त नन्त) अनन्त-गुणोंके धारी आत्मामें आनन्द भाव रखनेसे (अनन्त चतुस्ट च विमल स सरूव) अनन्त चतुस्टयमई निर्मल अपना स्वरूप झलक जाता है (आलम्ब अवलम्ब) परमात्माका स्वरूप आलम्बन है। इस आलम्बनका सहारा लेकर ही (अनन्तानंत सुदिस्टि विमलं च) निर्मल अनन्त केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रगट होजाता है।

भावार्थ—अपने आत्माको परमात्माके समान परम रुचि व परम आनन्दके साथ ध्यानेसे ही अर्हंतपद होता है जहां वीतरागता सहित अनन्त ज्ञान, सुख आदि प्रगट होजाते हैं। परमात्माकी भक्ति व उनके स्वरूपका मनन एक सहारा मात्र है। इस सहारेसे जब स्वयं आत्मा आत्मामें लय होता है तब ही

कर्मोंकी निर्जराकारक मोक्षमार्गका लाभ होता है। वास्तवमें मोक्षमार्ग भी अपने आत्मामें है। और मोक्ष भी अपने आत्मामें है। जो इस तत्वको पहचानता है वही मोक्ष प्राप्त कर सक्ता है।

वारापार अंनन्तं, अनंन्त संसार सरनि विलयं च।
पारं विमल सहावं, चिंतामनि सुद्ध अनुमोय सर्वज्ञं ॥ ७१ ॥

अन्वयार्थ—(वारापार अनन्तं) यह संसार-समुद्र अनन्त है (विमल सहावं पारं) इसको पार करानेवाला आत्माका निर्मल स्वभाव है (चिंतामनि सुद्ध अनुमोय सर्वज्ञ) सो स्वभाव शुद्ध है, आनन्दमय है तथा सर्वज्ञ स्वरूप है और चिंतामणिके समान वांछित मोक्षकी सिद्धि करनेवाला है। इसीके अनुभवसे (अनन्त संसार सरनि विलयं च) अनन्त संसारमें भ्रमण करनेका मार्ग दूर होजाता है।

भावार्थ—वास्तवमें मिथ्यात्व ही संसारका मूल है। जहांतक संसार अनन्त काल तक चला जाता है, मिथ्यात्व भावके कारण यह प्राणी चारों गतियोंमें पुण्य तथा पापके आधीन भ्रमण किया करता है, कहीं भी सुख शांतिको नहीं पाता है। ज्ञानार्णवमें संसारका स्वरूप कहा है:—

श्वभ्रे शूलकुठारयंत्रदहनक्षारक्षुरव्याहतै- स्तिर्यक्षु श्रमदु खपावकशिखासंभारभस्मीकृतै ।
मानुष्येऽप्यतुलप्रयासवशगैर्देवेषु रागोद्धतै , संसारेऽत्र दुरन्तदुर्गतिमये बम्भ्रम्यते प्राणिभि ॥ १७ ॥

भावार्थ—इस दुर्निवार दुर्गतिमय संसारमें जीव निरन्तर भ्रमण करते हैं। नरकोंमें तो ये शूली, कुल्हाड़ी, घाणी, अग्नि, क्षार, जल, छुरा, कटारी, आदिसे पीड़ाको प्राप्त हुए नानाप्रकारके दुःखोंको भोगते हैं और तिर्यंच गतिमें अग्निकी शिखाके भारसे भस्मरूप खेद और दुःख उठाते हैं। तथा मनुष्य गतिमें अतुल खेदके वशीभूत होकर नानाप्रकारके दुःख भोगते हैं। इसी प्रकार देवगतिमें रागभावसे उद्धत होकर दुःख सहते हैं। अर्थात् चारों ही गतियोंमें दुःख पाते हैं, सुख कहीं भी नहीं है। ऐसे भयानक संसारसे पार करनेवाला निज आत्माका सम्यक् श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन है जो निश्चय रत्नत्रयरूप निज समाधिमें तन्मय होता है वह अवश्य संसारको पार होजाता है।

माया वर्णका ध्यान ।

ह्रींकारं उववन्नं, उववन्नं नन्त दंसनं ज्ञानं ।
वीर्यं चरन सु सौख्यं, सर्वज्ञं विमल ज्ञान समयं च ॥ ७२ ॥

अन्वयार्थ—(ह्रींकारं उववन्नं) जब साधु ह्रीं मंत्रके द्वारा ध्यान करता हैं तब इस ध्यानके प्रतापसे भी अन्तमें (उववन्नं नन्त दंसन ज्ञानं) अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञान पैदा होजाता है (वीर्यं चरन सु सौख्यं) तथा अनन्तवीर्य, यथाख्यात चारित्र और अनन्त सुख पैदा होजाता है (सर्वज्ञं विमल ज्ञान समयं च) वही सर्वज्ञ निर्मलज्ञान चेतनामें लवलीन आत्मा होजाता है ।

भावार्थ—यहां ह्रीं मंत्रके ध्यानकी महिमा बताई है। ह्रींमें ह और र दो अक्षर हैं । ह से चार व र से दो, इस तरह यह मंत्र २४ तीर्थंकरोंका वाचक है। उन सबका स्वरूप एकरूप है। इसलिये यह मंत्र भी परमात्माके स्वभावपर ही लक्ष्य दिलानेवाला है। इसके ध्यानसे भी स्वानुभव होता है और यह कभी न कभी अरहंत परमात्मा होजाता है ।

ह्रींको श्री ज्ञानार्णवमें माया वर्ण कहा है व इसके चितवनका विधान इस तरह बताया है—

विस्फुरन्तमतिस्फीतं प्रभामण्डलमध्यगम् । संचरन्तं मुखाम्भोजे तिष्ठंतं कर्णिकोपरि ॥ ६८–३८ ॥
भ्रमंतं प्रतिपत्रेषु चरन्तं वियति क्षणे । छेदयन्तं मनोध्वांतं स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥ ६९ ॥
व्रजंतं तालुरन्ध्रेण स्फुरन्तं भ्रूलतान्तरे । ज्योतिर्मयमिवाचिन्त्यप्रभावं भावयेन्मुनिः ॥ ७० ॥
वाक्पथातीतमाहात्म्यं देवदैत्योरगार्चितम् । विद्यार्णवमहापोतं विश्वतत्त्वप्रदीपकम् ॥ ७१ ॥
अमुमेव महामंत्रं भावयन्नस्तसंशय । अविद्याव्यालसंभूतं विषवेगं निरस्यति ॥ ७२ ॥

भावार्थ—माया बीज ह्रीं अक्षरको स्फुरायमान होता हुआ अत्यन्त उज्वल प्रभा–मण्डलके मध्य प्राप्त हुआ कभी मुखस्थ कमलमें संचरता हुआ तथा कभी२ उसकी कर्णिकाके ऊपर तिष्ठता हुआ तथा कभी२ उस कमलके आठों पत्रोंपर फिरता हुआ तथा कभी२ क्षणमें आकाशमें चलता हुआ मनके अज्ञानको दूर करता हुआ अमृतमई जलसे चूता हुआ तथा तालुआके छिद्रसे गमन करता हुआ, तथा भौंहोंकी लताओंमें स्फुरायमान होता हुआ, ज्योतिर्मयके समान, अचिन्त्य है प्रभाव जिसका ऐसे माया वर्णका चिन्तवन करें।

इस मंत्रका माहात्म्य वचनातीत है। इसको देव-दैत्य नागेन्द्र पूजते हैं तथा यह मंत्र विद्यारूपी समुद्र तिरनेको महान जहाज है और जगतके पदार्थोंको दिखानेके लिये दीपक है। इसी महामंत्रको संशय रहित होकर ध्यान करनेवाला मुनि अविद्यारूपी सर्पसे उत्पन्न हुए विषके वेगको दूर कर देता है।

ज्ञानं पंच उववन्नं, परम जिनं परम विमल सुभावं।
परमं परमानन्दं, अनुमोयं अमल सिद्धि संयत्तं ॥ ७३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान पंच उववन्नं) इस जीवको पांच ज्ञान उत्पन्न होते हैं। अथवा साधकको पांचवां ज्ञान उत्पन्न हुआ (परम जिन परम विमल सुभाव) वे केवलज्ञानी परम जिन हैं व परम निर्मल स्वभावके धारी हैं (परम परमानन्दं) उत्कृष्ट अनन्त सुखमें लीन हैं (अनुमोयं अमल सिद्धि संयत्त) उन्होंने आनन्दप्रद शुद्ध सिद्धिको पा लिया है।

भावार्थ—ज्ञान पांच होते हैं। सम्यग्दृष्टीको जब सम्यक्तकी प्राप्ति होती है तब कुमति कुश्रुत ज्ञान सुमति सुश्रुत ज्ञान होजाते हैं। फिर उसी महात्माको अवधिज्ञान तथा साधुपदमें मनःपर्ययज्ञान होता है। तेरहवें गुणस्थानमें आनेपर केवलज्ञान होता है तब वे अर्हत् परमात्मा स्वाभाविक परमानन्दमें मग्न व आत्म-सिद्धिको प्राप्त होजाते हैं।

देवं च परम देवं, गुरुं च परम गुरुं च संदिट्ठं।
धम्मं च परम धम्मं, जिनं च परम जिनं निम्मलं विमलं॥ ७४ ॥

अन्वयार्थ—(देवं च परम देवं) देवोंमें उत्तम देव श्री अरहंत भगवान हैं (गुरुं च परम गुरुं च संदिट्ठ) गुरुओंमें परम गुरु निर्ग्रंथ साधु माने गये हैं (धम्मं च परम धम्मं) धर्मोंमें परम धर्म यह सर्वज्ञ वीतराग-भाषित जिनधर्म है (जिन च परम जिनं निम्मल विमलं) जीतनेवालोंमें उत्तम जिन परम शुद्ध वीतराग अर्हंत व सिद्ध परमात्मा हैं।

भावार्थ—ऊपर जो कथन किया गया है उसीका यहां संक्षेपसे उपसंहार है। मोक्षार्थी भव्यजीवको ऐसे ही उत्तम देव, गुरु व धर्मको व जिनेन्द्रको पूज्यनीय मानना चाहिये।

तस्सय विज्ञान ज्ञानं, ज्ञान सहावेन रूव भेय संरुचियं ।
रुचितं पियं च विमलं, सम्मत्तं तस्स सुद्ध विमलं च ॥ ७५ ॥

अन्वयार्थ—(तस्सय विज्ञान ज्ञानं) ऊपर लिखित देव गुरु धर्म व जिनका भेदज्ञानपूर्वक ज्ञान (सम्मत्त) सम्यग्दर्शन है (ज्ञान सहावेन रूव भेय संरुचिय) जहां ज्ञान स्वभावके द्वारा पदार्थके स्वभाव व उसके भेदोंमें रुचि प्राप्त की जाती है (पियं च विमलं रुचितं) परम प्रिय विमल आत्माकी रुचि की जाती है (तस्स सुद्ध विमलं च) ऐसे रुचिवानके ही शुद्ध व निर्मल सम्यक्त होता है ।

भावार्थ—देव, गुरु, धर्म व जिनका स्वभाव भेदज्ञान पूर्वक विचारते हुए आत्माका स्वभाव व पुद्गलका स्वभाव अलग २ पहचाना जाता है । जैसे अरहंतका आत्मा अलग है, परमौदारिक शरीर व बाहरी विभूति व चार अघातीय कर्म अलग है, तैजस शरीर अलग है, गुरुके स्वरूपमें भी आत्मा भिन्न है, गुरुका देह व उनके पाप-पुण्य कर्म व उसके फलस्वरूप अंतरंग व बहिरङ्ग अवस्था भिन्न हैं। धर्ममें शुद्धोपयोग रूप ही यथार्थ धर्म है । शुभोपयोग आलम्बनरूप है इससे उपचारसे धर्म है, वास्तवमें धर्म नहीं है-जिनमें वीतराग जितेन्द्रिय आत्मा ही जिन है, अन्य परिकर पुद्गलमय है । इसतरह जहां सम्यग्ज्ञानके बलसे वस्तुका स्वभाव व उसके भेद जाने जाते हैं, तथा उपादेयभूत एक निर्मल आत्मामें ही रुचि की जाती है, वहीं निर्मल सम्यग्दर्शन कहा जाता है ।

निश्चय सम्यक्त माहात्म्य ।

सम्मत्त सुद्धं सुद्धं, सुद्धं दरसेइ विमल रूवेन ।
कम्मं तिविह विमुक्कं, रागं दोपं च गारवं षिपनं ॥ ७६ ॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त सुद्धं सुद्ध) परम शुद्ध सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं जहां (विमल रूवेन सुद्ध तिविह कम्मं विमुक्कं दरसेइ) निर्मल स्वभावसे आत्माको शुद्ध, भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे भिन्न श्रद्धानमें लाया जावे (रागं दोपं च गारवं षिपनं) तथा संसारसे राग व द्वेष व मदोंको जहां त्याग किया जावे ।

भावार्थ—निश्चय सम्यग्दर्शन शुद्ध आत्माका श्रद्धान है। अपने ही आत्माको रागादि भावकर्म, ज्ञाना-

वरणादि द्रव्यकर्म व शरीरादि नोकर्मसे भिन्न द्रव्यरूपसे शुद्ध केवल श्रद्धान किया जावे। सम्यग्दृष्टीका प्रेम शुद्धात्म भावसे, मोक्षसे तथा अतीन्द्रिय सुखसे होजाता है, उसका रागभाव संसारसे छूट जाता है। रागके साथ द्वेष भी नहीं रहता है, वह जगतको वस्तु स्वरूप रूप विचारता है। चौथे गुणस्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टी भी अनंतानुबन्धी कषायोंके उदय न होनेसे श्रद्धानमें बिलकुल वैरागी है, भीतरसे अत्यन्त उदास है। तथापि अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायोंके उदयसे जगतमें आवश्यक कार्य करता है उनमें रागद्वेष भी होता है परन्तु इस सबको वह कर्मका रोग जानता है। भावना यही होती है कि कब यह कषायका उदय मिटे और मैं इस प्रपंचमें न फँसूं। क्योंकि सम्यक्तीके ज्ञान वैराग्यकी अपूर्व शक्ति पैदा होजाती है। जैसा समयसारकलशमें कहा है:—

सम्यग्दृष्टेर्भवति नियतं ज्ञानवैराग्यशक्तिः । स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ॥
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्त्वतः स्वं परं च । स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात् सर्वतो रागयोगात् ॥४-८॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके नियमसे ज्ञान और वैराग्यकी शक्ति पैदा होजाती है। वह पररूपसे छूटकर व अपने स्वभावमें लय होकर अपने वस्तु स्वभावका अभ्यास करना चाहता है। क्योंकि उसने तत्त्व-दृष्टिसे अपनेको व परको भिन्न२ जान लिया है इसलिये वह सर्व ही रागके कारणोंसे विरक्त रहता है और अपने स्वरूपमें ठहरता है। सम्यग्दृष्टी जगतकी मायाको क्षणभंगुर जानता है इसलिये वह आठ प्रकारका गारव या मद नहीं करता है—कुलमद, जातिमद, धनमद, अधिकारमद, विद्यामद, तपमद, बलमद, रूपमद। वह बड़ा ही नम्र विनयवान होता है।

षिपिओ मिथ्याभावं, पुन्नं पावं च विषय संषिपनं ।
कुज्ञान तिविह षिपनं, षिपियं संसार सरनि मोहंधं ॥ ७७ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्याभावं पिपिओ) सम्यग्दृष्टी जीव मिथ्यात्व भावको दूर कर देता है (पुन्न पावं च विषय संषिपनं) पुण्य तथा पापका राग व इंद्रिय विषयोंका राग उसके नहीं रहता है (कुज्ञान तिविह षिपन) कुमति कुश्रुत व कुअवधिज्ञान वहां नहीं है, न वहां संशय, विमोह, विभ्रम दोष हैं। (संसार सरनि मोहंधं पिपिय) संसारमें भ्रमण करानेका मोहांध भाव भी वहां नहीं है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवके मिथ्यात्व भाव नहीं रहा। न उसके कुदेवादिकी श्रद्धारूप गृहीत मिथ्यात्व है और न पर पर्यायमें रतिरूप अगृहीत मिथ्यात्व है। उसके भीतर शुद्ध भावोंकी रुचि होगई है इसलिये वह पुण्य-बन्धको सोनेकी बेड़ी व पाप-बन्धको लोहेकी बेड़ी जानता है, पुण्य-पाप दोनोंसे उदासीन है। पांचों इंद्रियोंके विषयभोगकी भी श्रद्धा मिटगई है। उसे भोग रोगके समान दिखते हैं। तथा उसका सर्व ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। न तो उसको संशय है न विपरीत ज्ञान है न विभ्रमरूप ज्ञानके भीतर निरादर है, न वहां कुमति कुश्रुत व कुअवधि है। मिथ्यात्व अवस्थामें स्त्री पुत्रादि धन परिग्रहमें उन्मत्त था इससे संसारके मार्गमें बहानेवाले तीव्र कर्मोंको बांधता था। अब भीतरसे सबसे वैरागी है इसलिये संसार कारणीभूत कर्मोंका बन्ध इसके नहीं होता है। सारसमुच्चयमें कहा है:—

सम्यक्त परमं रत्नं शकादिमलवर्जितम्। संसारदु खदारिद्रयं नाशयेत्सुविनिश्चितम् ॥ ४० ॥
सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य ध्रुवं निर्वाणसंगम.। मिथ्यादृशोऽस्य जीवस्य संसारे भ्रमणं सदा ॥ ४१ ॥
पण्डितोऽसौ विनीतोऽसौ धर्मज्ञः प्रियदर्शन । य सदाचारसम्पन्न सम्यक्त्वदृढमानस ॥ ४२ ॥

भावार्थ—शङ्कादि दोष रहित सम्यग्दर्शन परम रत्न है। यह निश्चयसे संसारके दु खरूपी दारिद्रको नाश कर देता है। सम्यग्दर्शन सहित जीवको निश्चयसे निर्वाण होगा। मिथ्यादृष्टीका सदा संसारमें भ्रमण रहेगा। जो सम्यग्दर्शनमें दृढ़ मन रखनेवाला है वही पण्डित है, वही विनयवान है, वही धर्मज्ञाता है, उसीका दर्शन प्रिय है व वही सदाचारी है।

षिपिओ कम्म उववन्नं, षिपिओ मन चवल उवन संपिपनं।
मनसंज्ञा षिपि मिलियं, षिपिओ नन्त सरनि सम्बन्धं ॥ ७८ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिओ कम्म उववन्न) सम्यग्दृष्टीके कर्मोंका आस्रव रुक जाता है (षिपिओ मन चवल) मनकी चञ्चलता मिट जाती है (उवन सषिपनं) मनकी चञ्चलताकी उत्पत्तिका कारण नहीं रहता है (मनसंज्ञा षिपि मिलियं) मनमें पैदा होनेवाली आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञाएँ दूर होकर मन समतारूप होजाता है (षिपिओ नंत सरनि सम्बन्धं) अनन्त संसारके भ्रमणका कारणीभूत बन्ध नहीं होता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीकी भाव भूमिका शुद्ध होगई है, उसके संसारके कारणीभूत मिथ्यात्व अन-

न्तानुबन्धी कषाय एकेन्द्रिय विकलेंद्रिय जाति नरक व पशु गति आदि दुर्गति लेनेवाली कर्मप्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता है। मनमें चञ्चलता मिथ्यात्व भाव व विषय वांछाकी तीव्रतासे होती है सो सम्यक्तीके नहीं है। आहारकी शुद्धता, शरीरादि छुटनेका व रोगी आदि होनेका भय, मैथुन भावकी तीव्र वांछा व धन धान्यादि परिग्रहका तीव्र राग ये चार संज्ञाएँ सम्यक्तीके नहीं होती हैं। यद्यपि जितना२ गुणस्थानानुसार जैसा कषायका उदय होता है तदनुकूल संज्ञाएँ होती हैं व मनकी चञ्चलता होती है व कर्मोंका बन्ध होता है तथापि जितना२ गुणस्थानोंपर आरोहण होता जाता है उतना२ ये सब विकार घटता जाता है। सम्यक्ती आत्मोन्नतिके पथपर आरूढ़ है इसलिये विकारोंको हटाता जाता है। मिथ्यात्वी आत्मोन्नतिके बाहर है, उसके ये सब विकार बढ़ते जाते हैं।

षिपिओ कषाय भावं, कषाय उववन्न दुबुहि संयुतं।
जे दुर्बुद्धि विसेषं, कषाय षिपिय अनन्त परिनामं ॥ ७९ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिओ कषाय उववन्न दुबुहि सयुतं कषायभाव) सम्यक्तीके कषायोंको उत्पन्न करनेवाली दुर्बुद्धि तथा कषाय भाव दूर होगए हैं (जे दुर्बुद्धि विसेप) जो मिथ्या बुद्धिका विशेष झलकाव है वह तथा (कषाय अनन्त परिनामं षिपिय) अनन्तानुबन्धी कषायोंका भाव मिट गया है।

भावार्थ—अविरत गुणस्थानवर्ती सम्यक्तीके भी अनन्तानुबन्धी कषायका उदय नहीं है न मिथ्यात्व भाव है इसलिये कषायोंको पैदा करनेवाली मिथ्याबुद्धि ही नहीं रही है, न मिथ्याबुद्धि जनित कषायभाव होता है। उसके परिणाम किसी भी आत्माके साथ बुरा करनेके नहीं होते हैं। उसके भावोंमें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य ये चार भाव सदा बने रहते हैं अर्थात् वह शांत परिणामी होता है—संसारसे उदासीन व धर्मसे प्रेमी होता है। प्राणी मात्रपर दयालु होता है, नास्तिक भाव उसमें नहीं होता है। वह जीवादि द्रव्योंके अस्तित्वपर विश्वास रखता है। यकायक तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभसे बचा रहता है।

असत्य अनृत वयनं, आलापं लोकरंजनं भावं।
विज्ञानं नहु पिच्छदि, संसार भ्रमण बीज संयुक्तं ॥ ८० ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं संसार भ्रमण बीज सयुक्तं) सम्यग्दृष्टीका भेदविज्ञान संसारभ्रमणका जो बीज मिथ्यात्वभाव है उसके साथ (असत्य अनृत वयन) असत्य व अयथार्थ अहितकारी वचनोंको तथा (लोकरंजनं आलापं भावं) लोगोंको रंजायमान करनेवाले वार्तालापके भावको (नहु पिच्छदि) नहीं देखता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवका परिणाम संसारासक्त नहीं है इससे वह अपना स्वार्थ-साधनके लिये अन्यायरूप मिथ्या प्रवृत्ति नहीं करता है। झूठ बोलकर किसीको ठगता नहीं है न लोगोंके मन प्रसन्न करनेको चार प्रकार विकथामें अपना समय नष्ट करता है। १–स्त्रियोंके रूप-सौन्दर्य हावभाव विलासकी कथा। २–भोजन सरस सुन्दर प्राप्त करनेकी व जिनको प्राप्त हों उनकी अनुमोदनाकी व नानाप्रकार गृद्धताके कारण भोजन सम्बन्धी चर्चाकी कथा। ३–राष्ट्रमें कहां चोरी हुई है, कौन धनिक है, कौन ऐश्वर्यवान है, कौनको लाभ हुआ, कौनको हानि हुई, ऐसी रागद्वेष वर्द्धक देश कथा। ४–राजाओंके रूप-सौन्दर्य विभूति महल सेना आदिकी राग वढानेवाली कथा। इन चार विकथाओंमें अपने परिणामोंको नहीं उलझाता है–वह संसारसे उदासीन रहता है। परोपकार जिससे हो ऐसी कथा व वार्तालाप करनेमें हानि नहीं समझता है।

विमल सहाव उववन्नं, समल परिनाम पर्याय नहु दिट्ठं।
परजाय विविह भेयं, ज्ञान सहावेन पर्याय विलयन्ती ॥ ८१ ॥

अन्वयार्थ—(विमल सहाव उववन्न) सम्यग्दृष्टीके निर्मल आत्म-स्वभावकी पहचान होगई है (समल परिनाम पर्याय नहु दिट्ठं) इसलिये उसके भावोंमें मलीन अवस्था नहीं दिखलाई पड़ती है (परजाय विविह भेयं) भावोंकी परिणतियें कषायोंके निमित्तसे अनेक प्रकारकी होती हैं (ज्ञान सहावेन पर्याय विलयन्ती) सम्यक्ती ज्ञान स्वभावके बलसे उन सब परिणामोंको दूर रखता है।

भावार्थ—सम्यक्तीका भाव आत्मस्वरूपमें रंजायमान रूप है। इसलिये उसे आत्मानन्दको वढ़ानेवाली चर्चा व तत्सम्बन्धी परिणाम अच्छे लगते हैं। मिथ्यादृष्टीके भीतर संसारका राग होनेसे वह निरंतर अपने विषयोंकी वृद्धि चाहता है। उसके लिये मायाचार व अनेक प्रपंच व अहितकारी व असत्य उपाय रचनेमें वह लगा रहता है, दूसरोंका मान खंडन करना चाहता है, तीव्र धनादिका लोभी होता है। जो स्वार्थ-

साधनमें हानि करे व अपमान करे उसपर तीव्र क्रोध करके उसका बुरा चाहता है। वह विषयासक्त होकर अभक्ष्य व अन्याय सेवन करने लगता है, उसको पापका भय नहीं होता है, दूसरेसे ईर्षाभाव करके नीचे गिराना चाहता है। इत्यादि असत्य व पापवर्द्धक परिणाम सम्यग्दृष्टीके नहीं होते हैं। वह ज्ञान-स्वभावके प्रतापसे जगतके साथ मैत्रीभाव रखता है। सबका भला चाहता है। गुणवानोंसे प्रमोदभाव रखता है, दुःखियोंपर अनुकम्पा रखता है तथा अविनयी व सम्मति न मिलनेवालोंपर माध्यस्थ व उपेक्षाभाव रखता है। वह मिथ्या सम्पत्तिका लोभी नहीं होता है। पुण्योदयसे प्राप्त धनादिको धर्मादि शुभ कार्योंमें लगाकर सफल करता है।

अज्ञान दिट्ठि नहु पिच्छदि, अज्ञान भाव सयल विलयंती।
ज्ञान सहाव उववन्नं, अन्याय समल पर्याय नहु पिच्छं ॥ ८२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान दिट्ठि नहु पिच्छदि) सम्यग्दृष्टीमें अज्ञानमई दृष्टि नहीं देखी जाती है। (अज्ञान भाव सयल विलयति) जितने मिथ्याज्ञान सम्बन्धी भाव हैं सब विला गए हैं (ज्ञान सहाव उववन्नं) उसके सम्यग्ज्ञानका स्वभाव पैदा होगया है (अन्याय समल पर्याय नहु पिच्छं) उसके अन्याय व मलीनता सहित भावोंकी अवस्था नहीं पाई जाती है।

भावार्थ—सम्यक्ती वस्तु स्वरूपका देखनेवाला होगया है इसलिये उसके भावोंमें सदा ही सम्यग्ज्ञान बना रहता है, मिथ्याज्ञानकी भूमिका ही वहीं नहीं रही है। इसलिये कोई भी भाव मिथ्याज्ञान सम्बन्धी नहीं होते हैं। अन्यायसे उसको ग्लानि है इसलिये परको पीड़ाकारी भाव ही नहीं करता है—न झूठ बोलकर ठगता है न किसीका धन चुराता है न अन्यायसे परिग्रह एकत्र करता है। सात व्यसनोंसे उसको ग्लानि रहती है। वह इन व्यसनोंसे यथाशक्ति बचता रहता है, वह दूसरेके दुःखोंको ऐसा ही जानता है जैसा अपने ऊपर दिये हुए दुःखोंको जानता है। वह स्त्री, पुत्र, पुत्री, भाई, बहिन आदिकी आत्माका भला चाहता है, उनके साथ अयोग्य व अन्यायपूर्ण वर्ताव करके उनको सताता नहीं, कलपाता नहीं। वह मित्रोंके साथ कभी विश्वासघात नहीं करता है। असत्य भाषणसे उसे घृणा रहती है। वह अपनी हानि सहकर भी दूसरोंका उपकार करता है। उसके परिणाम कोमल पृथ्वीके समान व लताके समान सदा

कोमल रहते हैं। वह गृहमें जलमें कमलवत् अलिप्त रहता है। वह शरीरकी शोभाका रागी न होकर आत्मीक गुणोंकी शुद्धिका प्रेमी होता है।

अज्ञान संग विलयं, ज्ञान सहावेन विज्ञान संजुत्तं।
ज्ञानं ज्ञान उववन्नं, अज्ञान समयं च पर्याय नहु पिच्छं ॥ ८३ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान संग विलयं) सम्यग्दृष्टीके मिथ्याज्ञानकी संगति नहीं रही है (ज्ञान सहावेन विज्ञान सयुत्त) वह ज्ञान स्वभावके द्वारा भेदविज्ञानको रखनेवाला हैं (ज्ञानं ज्ञान उववन्नं) उसका ज्ञान ज्ञानके द्वारा बढ़ता जाता है (अज्ञान समयं च पर्याय नहु पिच्छं) मिथ्याज्ञान सहित आगमकी कोई परिणति उसमें नहीं देखी जाती है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके सम्यग्ज्ञानका प्रकाश है, इसीकी रक्षाके लिये वह जिन आगमका अभ्यास करता है व आगमके ज्ञाता विद्वानों और साधुओंकी संगति करता है। न नो एकांत आगम पढ़ता है न एकांत मत धारकोंकी संगति करता है। उसको आत्मा और अनात्माका यथार्थ बोध है। वह कभी भी रागादिको आत्माका स्वभाव नहीं मानता है, उन्हें मोहजनित औपाधिक भाव जानता है। वह आत्म-मनन व आगमके अभ्याससे अपने ज्ञानको बढ़ाता रहता है। मिथ्याज्ञान व एकांत नयाश्रित ज्ञानका भाव उस सम्यक्तीमें नहीं पाया जाता है। वह वस्तुको भाव-अभाव नित्य अनित्य एक अनेक रूप भिन्न२ अपेक्षासे जानता है। वस्तु अपने द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा भावरूप है, परके द्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षा अभावरूप है। द्रव्य स्वभावसे नित्य है, पर्यायकी पलटनकी अपेक्षा अनित्य है। अनन्त गुणपर्यायोंका अखण्ड समुदाय है इससे एकरूप है, भिन्न २ गुण व पर्यायोंकी अपेक्षा अनेक रूप है। सम्यग्दृष्टी साधु-संगति सदा रखता है। ज्ञानार्णवमें कहा है—

मिथ्यात्वादि नगोत्तुङ्गशृङ्गभङ्गाय कल्पितः। विवेकः साधुसङ्गोत्थो वज्रादप्यजयो नृणाम् ॥ २४ ॥
विश्वविद्यासु चातुर्यं विनयेष्वतिकौशलम्। भावशुद्धिः स्वसिद्धांते सत्संगादेव देहिनाम् ॥ २९ ॥

भावार्थ—सतपुरुषोंकी संगतिसे जो विवेक पैदा होता है वह मिथ्यात्व आदि ऊंचे पर्वतोंके शिख-रोंको खण्ड२ करनेके लिये वज्रसे भी अधिक अजेय है। जीवोंको समस्त विद्याओंमें चतुरता, विनयमें अति प्रवीणता तथा अपने सिद्धांतमें भावोंकी शुद्धि सतपुरुषोंकी संगतिसे ही प्राप्त होते हैं।

यस्सय सुद्ध सहावं, असुद्ध सहावेन दिस्टी नहु चवनं।
सुद्धं च विमल ज्ञानं, असुद्ध समयं च पर्याय नहु पिच्छं ॥ ८४ ॥

अन्वयार्थ—(यस्सय सुद्ध सहावं) जिस सम्यग्दृष्टीके शुद्ध स्वभावका ही प्रकाश है उसके (असुद्ध सहावेन दिस्टि नहु चवनं) अशुद्ध स्वभावसे दृष्टि नहीं पड़ती है (सुद्धं च विमल ज्ञानं) उसका ज्ञान शुद्ध व निर्मल रहता है (असुद्ध समयं च पर्याय नहु पिच्छं) अशुद्ध आगमकी कोई अवस्था उसमें नहीं देखी जाती है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी छहों द्रव्योंके मूल स्वभावको जानता है, विशेष करके आत्माके शुद्ध स्वभावको पहचानता है। वह मलीन व मिथ्या स्वभावसे या मूढ़तासे किसी पदार्थको नहीं देखता है। वह हरएक वस्तुका ठीक २ स्वभाव जानता है। उसका ज्ञान निर्मल व शङ्का रहित रहता है। अशुद्ध आगमका कोई परिणाम उसमें नहीं पाया जाता है। वह व्यवहारनय व निश्चयनय दोनोंके विषयोंको जानता है। कोई भी अवस्था उसको विस्मयकारक नहीं भासती है। उसके भीतर सम्यग्ज्ञानका दीपक जला करता है जिससे वस्तु-स्वरूपको विचार कर वह महासन्तोषी रहता है। किसी प्रकारकी देव, गुरु, व लोकमूढतामें वह अपनेको नहीं उलझाता है।

यस्सय विमल सहावं, अनुमोय अज्ञान पर्याय नहु पिच्छं।
जे पज्जायं दिट्ठं, समलं सहकार निगोय वासम्मि ॥ ८५ ॥

अन्वयाथ—(यस्सय विमल सहावं) सम्ग्दृष्टीके ऐसा कोई निर्मल स्वभाव प्रगट होता है कि (जे समलं सहकार निगोय वासम्मि पज्जायं दिट्ठं अनुमोय अज्ञान नहु पिच्छं) जो जो मलीन पर्याय ऐसी हैं जिनसे निगोदमें जासके उन पर्यायोंकी तरफ अनुमोदना रूप अज्ञानभाव कोई नहीं दिखलाई पडता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके भावोंमें ऐसी कोई मलीन परिणति नहीं होती है जिससे वह साधारण वनसपति रूप निगोद पर्यायमें जासके। वह मिथ्याज्ञानके भावोंकी अनुमोदना भी नहीं करता है। सम्यग्दृष्टी जीव सम्यक्तकी दशामें ऐसा कर्म बांधता है जिससे मरकर उत्तम देव हो या देव मरकर उत्तम मानव हो। सम्यग्दृष्टी जीव व्रत रहित होनेपर भी सुगतिको ही जाता है। रत्नकरण्ड श्रावका०में कहा है—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि। दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजंति नाप्यव्रतिकाः ॥ ३५ ॥

भावार्थ—व्रत रहित सम्यक्ती भी शुद्ध सम्यक्तके प्रभावसे नरक व तिर्यंच आयु नहीं बांधते हैं, न नपुंसक व स्त्रीवेद बांधते हैं, न बुरे कुलमें पैदा होते हैं, न अंगहीन कुरूप होते हैं, न अल्पायु होते हैं, न दलिद्री होते हैं।

सम्यग्ज्ञान माहात्म्य।

ज्ञान सहावं सुद्धं, सुद्धं ससहाव विमल दिट्ठीओ।
ज्ञान सहाव सुसमयं, पर्जाय सरूव नरय वासम्मि ॥ ८६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं सुद्ध) ज्ञानमई स्वभाव शुद्ध है (सुद्धं ससहाव विमल दिट्ठीओ) वही शुद्ध आत्माका स्वभाव निर्मल सम्यग्दृष्टीको देखना चाहिये (ज्ञान सहाव सुसमय) ज्ञान स्वभावमें रमन करना स्वसमय है या स्वचारित्र है (पर्जाय सरूव नरय वासम्मि) कर्मके उदयसे भी उत्पन्न पर्यायोंमें रमन करना नरकवासका कारण है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव आत्माका स्वभाव कर्म ःसे भिन्न शुद्ध सिद्ध भगवानके समान जानता है इसलिये वह इसी निर्मल स्वभावमें रमन करता हुआ ः मानन्दका स्वाद लेता है, संसारसे अत्यन्त उदासीन रहता है। यही कारण है कि यदि वह तद्भव मोक्ष नहीं हुआ तो स्वर्गमें अतिशय प्राप्त देव होता है। इसके विरुद्ध मिथ्यादृष्टी जीव नर नारक पशु देव जो पर्याय प्राप्त होती है उसमें अति मूर्छावान होकर रम जाता है, रातदिन विषयोंकी प्राप्तिमें ही यत्नशील रहता है, बहुत आरम्भ करता है, बहुत परिग्रह भाव रखता है, इसीलिये वह नरक आयु बांधकर नरकमें कष्ट पाता है।

ज्ञानेन ज्ञान विमलं, विमल सहावेन ज्ञान उप्पत्ती।
तह पर्जायं विलयं, पर्जय सहकार निगोय वासम्मि ॥ ८७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानेन विमलं ज्ञान) सम्यग्ज्ञानके कारण ही ज्ञानकी निर्मलता होती जाती है (विमल सहावेन ज्ञान उप्पत्ती) जब आत्माके स्वभावसे रागादि मल दूर होजाते हैं तब केवलज्ञानकी उत्पत्ति होती है

(तह पर्जाय विलय) तब सांसारिक पर्जाएँ विलय होजाती हैं (पर्जाय गहणा निगोद वासमिन) जो कोई शरीरका दास है, रातदिन उसीमें मग्न रहता है वह निगोदमें जाकर जन्म लेता है।

भावार्थ—भेदविज्ञानके प्रतापसे जितना २ आत्म-चितवन व आत्मध्यान किया जायगा उतना २ मोह गलेगा, कषाय भाव कम होगा। जब इस आत्मज्ञानकी भावनासे साधु मोहका सर्वथा क्षय करके क्षीणमोह गुणस्थानपर पहुँच जाता है तब ही केवलज्ञानका लाभ होता है और यह जीवन्मुक्त अरहन्त परमात्मा होजाता है। अब संसारका भ्रमण व पर्यायका धारण बिलकुल नहीं रहता है। ज्ञान भावनासे विषय प्रवृत्ति हटती जाती है। इष्टोपदेशमें कहा है—

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्। तथा तथा न रोचते विषया सुलभा अपि ॥ ३७ ॥
यथा यथा न रोचंते विषया. सुलभा अपि। तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जैसे जैसे स्वानुभवमें उत्तम आत्म तत्त्व आता जाता है वैसे वैसे सुलभ भी विषय नहीं रुचते हैं अथवा जैसे२ सुलभ भी विषय नहीं रुचते हैं वैसे२ स्वानुभवमें उत्तम तत्त्व आता जाता है। जो शरीरके विषयोंके आधीन रहते हुए मोहांध बने रहते हैं, वे निगोदमें जाकर जन्म पाते हैं।

जह पज्जायं दिट्ठं, अप्पा समयं च मुक्त ज्ञानं च।
पज्जायं परु पिच्छदि, संसारे सरनि दुक्ख वीयंमि ॥ ८८ ॥

अन्वयार्थ—(जह पज्जयं दिट्ठ) जहां कर्मजनित शरीरादि पर्यायपर मोहकी दृष्टि रहती है (अप्पा समय च ज्ञानं च मुक्त) आत्मा चारित्र व ज्ञानको छोड़ बैठता है (पज्जाय परु पिच्छदि) जो कोई पर पर्जायपर दृष्टि रखता है वह (संसारे सरनि दुक्ख वीयंमि) संसारके मार्गमें दुःखका बीज बोता है।

भावार्थ—यहां मिथ्यादृष्टीका स्वरूप बताया है। बहिरात्माको आत्माकी बिलकुल भी श्रद्धा नहीं होती है, वह प्राप्त शरीरमें तीव्र रागी होता है, पांचों इंद्रियोंके विषयोंका तीव्र लोभी होता है। इसके पास न सम्यग्ज्ञान है, न सम्यक्चारित्र है। कदाचित् कोई क्षायिक सम्यक्ती न हो, क्षयोपशम या वेदक सम्यक्ती हो और वह ऐसी प्रवृत्तिमें झुक जावे जिससे शरीरका मोह बढ़ जावे तो वह ज्ञान व चारित्रसे गिरकर मिथ्यादृष्टी होजायगा। पर्यायमें रत होनेसे तीव्र मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषायका व अशुभ नाम-

कर्मका व असाता वेदनीयका बन्ध होता है इससे वह दु खका बीज बोकर संसारमें महान कष्ट पाता है।

सारसमुच्चयमें कहा है—

मिथ्यात्वं परमं बीजं ससारस्य दुरात्मन । तस्मात्तदेव मोक्तव्यं मोक्षसौख्यं जिघृक्षुणा ॥ ५२ ॥

भावार्थ—इस दु ख स्वरूप संसारका परम बीज मिथ्यात्व है इसलिये मोक्षसुखके इच्छुकको उचित है कि इस मिथ्यात्वका त्याग करे।

पज्जायं नहु दिट्ठदि, पर सहाव उपपत्ति पज्जायं।
ज्ञानेन ज्ञान समयं, विमल सहावेन निव्वुए जंति ॥ ८९ ॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं नहु दिट्ठदि) सम्यग्दृष्टी जीव पर्यायपर मोहकी दृष्टि नहीं रखता है (पर सहाव पज्जायं उपपत्ति) क्योंकि आत्मासे भिन्न कर्मपुद्गलोंके स्वभावसे पर्जायकी उत्पत्ति होती है (ज्ञानेन ज्ञान समयं) आत्मज्ञानसे ही ज्ञानमें थिरता बढ़ती जाती है। (विमल सहावेन निव्वुए जंति) जब स्वभाव निर्मल होता है तब ही यह जीव निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—जितने प्रकारके शरीर प्राप्त होते हैं उनका उपादान कारण पुद्गल है व निमित्त कारण उस-उसके योग्य कर्मोंका उदय है। जितनी भी अशुद्ध भावोंकी परिणतियें होती हैं उसका भी कारण घातीय कर्मोंका उदय है। इसलिये अन्तरंग व बहिरंग सर्व ही अशुद्ध व विभाव पर्याएं कर्मजनित हैं—आत्माका स्वभाव नहीं है, ऐसा जानकर सम्यग्दृष्टी इन क्षणिक नाशवन्त पर्यायोंमें किंचित् भी मोह नहीं करता है। वह इन्द्र पद, अहमिंद्र पद, चक्रवर्ती पद, बलदेव पद, आदि किन्हीं भी सांसारिक पर्यायोंको नहीं चाहता है। वह संसारकी सर्व क्षणिक विभूतियोंसे उदासीन रहता है तथा आत्मज्ञानके प्रतापसे स्वानुभवकी शक्ति बढ़ाता है। इसी उपायसे स्वभाव निर्मल होजाता है और यह आत्मा सर्व कर्मोंसे छुटकर मुक्त होजाता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

यथा च जायते चेत सम्यक् शुद्धि सुनिर्मलाम् । तथा ज्ञानविदा कार्य प्रयत्नेनापि भूरिणा ॥ १६१ ॥

भावार्थ—ज्ञानीको उचित है कि ऐसा दृढ़ प्रयत्न करे जिससे यह चित्त परम निर्मल हो यथार्थ शुद्धिको प्राप्त करे।

राग स्वरूप कथन ।

रागादी उववन्नं, राग सहावेन चौगए भमियं ।
रागं च विषय जुत्तं, राग विलयं च विमल सहकारं ॥ ९० ॥

अन्वयार्थ—(रागादी उववन्न) रागादि भाव जहां उत्पन्न होते हैं वहां (राग सहावेन चौगए भमिय) राग स्वभावमें आसक्त होनेसे यह प्राणी चारों गतियोंमें भ्रमण करता है (राग च विषय जुत्तं) यह राग पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें फँसा रहता है (राग विलयं च विमल सहकार) जब यह राग विलय होजाता है तब निर्मल होनेका सहकारी भाव पैदा होता है ।

भावार्थ—इंद्रियोंके भोगनेका राग तृष्णाके नसे कहा जाता है । विषयभोगकी तृष्णासे आतुर प्राणी यदि अन्यायसे सामग्री एकत्र करता है व र मूर्छावान होता है तौ नर्क आयु बांधकर नर्क चला जाता है । यदि मायाचार करके दूसरोंको ठग करके अपना स्वार्थ साधता है तौ तिर्यंचायु बांधकर तीव्र या मंद पापके अनुसार एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पशु तकमें जन्म लेता है । यदि तृष्णावान होकर भी कोमल भाव रखता है तौ मनुष्य आयु बांधकर मनुष्य जन्मता है । यदि विषयभोगकी लालसासे व तीव्र सुखकी वासनासे वासित हो धर्मका सेवन करता है, दान पूजा जप तप करता है या श्रावकका तथा साधुका चारित्र पालता है तौ देवायु बांधकर नौमें ग्रैवेयिक तक चला जाता है, वहांसे आकर मिथ्यात्वके योगसे हीन मनुष्य पैदा होजाता है । इसतरह यह तृष्णा इस जीवको चारों गतियोंमें भ्रमण कराती है । जिसने इस तृष्णाको वमन कर डाला है व आत्मसुखको पहचान लिया है वही जीव सम्यक्तको पालेता है । इस सम्यक्तके प्रभावसे ही जीव कर्ममल रहित होता है । सारसमुच्चयमें कहा है—

काममिच्छानिरोधेन क्रोध च क्षमया भृशं । जयेन्मान मृदुत्वेन मोह सज्ञानसेवया ॥ ११७ ॥
तस्मिन्नुपशमे प्राप्ते युक्तं सद्वृत्तधारणं । तृष्णा सुदूरतस्त्यक्त्वा विषान्नमिव भोजने ॥ ११८ ॥

भावार्थ—इच्छाको रोक करके कामको जीते, क्रोधको क्षमासे भलेप्रकार जीते, मानको मृदुतासे जीते तथा मोहको सम्यग्ज्ञानकी सेवासे जीते । मोहके उपशम होनेपर सम्यक्चारित्रको धारना उचित है ।

तृष्णाको दूरसे ही छोडना चाहिये जैसे–विषसे मिले हुए भोजनको दूरसे छोड़ना उचित है। सर्व संसारके दु:खोंका मूल तृष्णा है। स्वयंभूस्तोत्रमें स्वामी समन्तभद्र कहते हैं—

आयत्या च तदात्वे च दु:खयोनिर्निरुत्तरा। तृष्णा नदी त्वयोत्तीर्णा विद्यानावा विविक्तया ॥ ९२ ॥

भावार्थ—यह तृष्णा नदी बड़ी दुस्तर है। इस जन्ममें भी दु:खोंकी जननी है, परलोकमें भी दु:खोंकी योनि है। हे अरहभगवान! आपने वैराग्यमई सम्यग्ज्ञानकी नौकापर चढ़कर इस तृष्णा नदीको पार कर लिया है।

जन रंजन राग उप्पत्ती, जिन उत्तं जन रंजनानि सद्दिट्ठी।
परभावं परसमयं, तिक्कंति राग विमल ज्ञानस्य ॥ ९१ ॥

अन्वयार्थ—(जन रंजन राग उप्पत्ती) जगतके जनोंको रंजायमान करनेके हेतुसे रागकी उत्पत्ति होती है (सद्दिट्ठी) सम्यग्दृष्टी जीव (जन रंजनानि राग परभावं पर समय विमल ज्ञानस्य तिक्कंति) जनोंको रंजायमान करनेवाले रागको व परभावको व परमें लीनताको विमल ज्ञानके प्रतापसे त्याग देते हैं (जिन उत्तं) ऐसा जिनेन्द्र देवने कहा है।

भावार्थ—जैसे विषयभोग स्वयं करनेका राग होता है वैसा एक राग यह भी होता है कि ऐसे श्रृँगार काव्य बनाये जावें व ऐसे रागवर्द्धक खेल, तमाशे किये जावे व ऐसे गाने बजाने किये जावें जिससे दूसरोंका मन प्रसन्न हो और इंद्रियोंके विषयोंमें भोगनेकी लालसा बढे। ऐसे विषयवर्द्धक रागभावको सम्यग्दृष्टी ज्ञानी त्याग देता है। वह स्वसमय या स्वात्मानुभवका सच्चा प्रेमी होता है इससे वह किसी भी परभावमें व परपदार्थके मोहमें रंजायमान नहीं होता है। उसके पास निर्मल आत्मज्ञानका ऐसा उत्तम शस्त्र होता है जिसके प्रतापसे वह इन व्यर्थके दण्डोंसे अपनेको बचाता है।

राग सहावं उत्तं, जन रंजन पुन्य भाव संजुत्तं।
अनृत असत्य सहिओ, राग संयुत्त नरय वासम्मि ॥ ९२ ॥

अन्वयार्थ—(राग सहावं उत्त) एक प्रकारके रागका स्वभाव ऐसा कहा गया है जिससे (जन रंजन पुन्य भाव संजुत्तं) लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये पुण्यके काम पूजा गान–भजनादि किये जावे। यद्यपि यह देखनेमें

शुभ काम है परन्तु अन्तरंगमें (अनृत असत्य सहिओ) मिथ्यात्वभाव है व असत्य भाव है (राग संयुत्त नरय वासम्मि) ऐसा रागी जीव भी नरक जाता है।

भावार्थ—कोई कोई जीव धर्मकार्योंमें वड़ी भक्ति व बड़ा राग दिखलाते हैं। परन्तु इनका आशय आत्महित व वैराग्य लाभ नहीं होता है। वे ऐसा आशय रखते हैं कि स्त्री, पुरुष, वालक, वालिका वड़े प्रसन्न हों और मुझसे अति स्नेह करें। मेरा काम या स्वार्थ सिद्ध करे या मेरी प्रतिष्ठा करें। उसके भावोंमें असत्य संसारके विषयोंसे धनादिसे मोह होता है तथा मिथ्यात्व भाव भी होता है। इस कारण ऐसे माया, मिथ्या, निदान शल्य सहित तीव्र विषय रागी जीव वाहरसे पुण्य काम करते हुए भी तीव्र कृष्णादि लेश्यासे नर्क आयु बांधकर नर्क चले जाते हैं।

राग सहावं पिच्छदि, अज्ञान सहकार श्रुतं बहु भेयं।
मिच्छात विषय सहियं, रागं विलयन्ति ज्ञान सहकारं॥ ९३॥

अन्वयार्थ—(राग सहावं पिच्छदि) एक राग स्वभाव ऐसा देखा जाता है (अज्ञान सहकार श्रुतं बहु भेयं) जिस रागके वशीभूत हो मिथ्याज्ञान व अज्ञान वर्द्धक नाना प्रकार शास्त्रकी रचना की जाती है (मिच्छात विषय सहिय) जिसमें मिथ्यात्वकी व इन्द्रिय विषयभोगकी पुष्टि की जाती है (ज्ञान सहकारं रागं विलयन्ति) सम्यग्ज्ञानकी सहायतासे यह राग भी विलय होजाता है।

भावार्थ—जगतमें बहुतसे विद्वान ऐसे काव्यग्रन्थ व नाटक व उपन्यास रचते हैं जिनके पढ़नेसे संसारका व विषयभोगका राग बढ़ जाता है, कामेच्छा प्रबल होजाती है, पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी अति तृष्णा बढ़ जाती है। कोई २ विद्वान धर्मशास्त्रके नामसे ऐसे ग्रंथ रचते हैं जिनमें पशुबलिसे पुण्य बताया जाता है व बड़े पुरुषोंसे अन्याय काम कराना दिखाया जाता है व ऋषियोंको मांसाहारी लिख दिया जाता है, ऐसे ग्रन्थोंके पढ़नेसे साधारण प्राणी अन्याय सेवन करने लग जाते हैं, मांसाहार करने लग जाते हैं, पशुबलि करने लग जाते हैं अथवा कोई कोई मिथ्या वातको व एकांत वातको पुष्ट करनेवाले शास्त्र रचते हैं जिससे सत्य तत्व पढ़नेवालोंके समझमें औरका और आता है, इसतरह मिथ्यात्व व विषय कषायोंके पुष्ट करनेवाले शास्त्रोंकी रचनाका राग भी असत्य राग है। सम्यग्दृष्टी आत्मज्ञानकी सहायतासे ऐसे

कुत्सित रागको विलकुल त्याग देते हैं। वे ऐसे ही ग्रन्थ रचते हैं जिनसे प्राणी सच्ची सुख शांति पासकें, आत्मज्ञानी होसके, विषयोंसे वैराग्यवान होसकें, जगतमें परोपकारी होसकें—अहिंसातत्वके प्रेमी होसकें।

राग सहावं उत्तं, अज्ञानं तव तवंति संयुत्तं।
जनरंजन मूढ सहावं, जिन उत्तं राग नरय वासम्मि ॥ ९४ ॥

अन्वयार्थ—(राग सहावं उत्त) एक राग स्वभाव ऐसा कहा गया है जिस रागसे (अज्ञानं तव तवंति संयुत्त) अज्ञान तप तपा जाता है (जनरंजन मूढ सहावं) उससे लोगोंको रंजायमान किया जाता है वह मूढ़ता स्वभावको लिये हुए होता है (राग नरय वासम्मि) ऐसा राग भी नरकवास कराता है (जिन उत्त) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

भावार्थ—बहुतसे तपस्वी तीव्र लोभ रखके कि परलोकमें स्वर्ग मिलेगा अथवा लोगोंको राजी करनेका भाव करके कि लोग प्रसन्न होंगे तो हमें उत्तम भोजनादि देंगे पैसा देंगे, घोर हिंसाकारी अज्ञान तप तपते हैं, लकड़ी जलाते हैं, रातको भी आग जलाते हैं, गांजा तम्बाकू पीते हैं—अभिप्राय इस लोक व परलोकमें स्वार्थ-साधनका होता है, मूढ़तासे तप तपते हैं, भावोंकी शुद्धिकी पहचान नहीं है, भावोंमें विषय कषाय रखते हैं। ऐसे तीव्र मूर्छावान अज्ञान तपस्वी भी इस असत्य रागके कारण नरकायु बांधकर नर्क जाते हैं।

रागं च रागयुत्तं, मिच्छात वय एहिं संचरनं।
कुज्ञानं संयुत्तं, राग सहावेन दुग्गए पत्तं ॥ ९५ ॥

अन्वयार्थ—(राग च रागयुत्त) एक प्रकारका राग सहित राग ऐसा है जिससे (मिच्छात वय एहिं संचरनं) मिथ्यात्व सहित व्रतादिका आचरण किया जाता है (कुज्ञानं संयुत्तं) साथमें मिथ्याज्ञान होता है (राग सहावेन दुग्गए पत्त) इस राग स्वभावसे दुर्गति प्राप्त होती है।

भावार्थ—कोई कोई प्राणी तीव्र लोभ व तीव्र मान व तीव्र माया व तीव्र क्रोध या द्वेषके वशीभूत हो मुनिका व्रत या श्रावकका व्रत पालते हैं, भीतर मिथ्यात्वभाव होता है जिससे शुद्धोपयोगकी बिलकुल पहचान नहीं होती है तथा ज्ञान भी ठीक नहीं होता है जिससे क्रियाएँ भी ठीक २ नहीं पालते हैं। जरासा

अपमान होनेपर क्रोध करते हैं, अपशब्द कहते हैं। आचरण पालनेकी शक्ति न होनेपर ऊपरसे व्रतीपनेका दृश्य दिखाते हैं, भीतरसे कुछका कुछ आचरण करते हैं, इंद्रियोंके विजयी नहीं होते हैं, जिह्वा-लम्पटी होते हैं। गाने बजानेका शौक रखते हैं, स्त्रियोंके साथमें रागभाव दरशाते हैं। ऐसे संसारासक्त व्रती भी तीव्र कषायसे कर्म बांध दुर्गति जाते हैं।

राग च राग सहियं, जनरंजन विकह भाव संजुत्तं।
जिनद्रोही जिन उत्तं, राग सहावेन दुग्गए पत्तं ॥ ९६ ॥

अन्वयार्थ—(राग च राग सहिय) एक प्रकारका मिथ्या राग सहित राग ऐसा होता है (जनरजन विकह भाव संजुत्त) जहां जनोंको प्रसन्न करनेके लिये विकथाएँ कही जाती हैं (जिनद्रोही) वे जिन धर्मके द्रोही होते हैं (जिन उत्तं) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है (राग सहावेन दुग्गए पत्तं) वे ऐसे राग स्वभावसे दुर्गतिमें जाते हैं।

भावार्थ—कोई कोई मानव ऐसा राग भाव रखते हैं कि लोगोंका मन रंजायमान करनेके लिये नाना प्रकार स्त्री मोहमें, भोजनकी लम्पटतामें, लोक प्रपंचमें, व राजाओंके भोगोंकी तृष्णामें फंसानेवाली बड़ी ही मनोरंजक कथाएं व वार्ताएं कहते हैं, वे स्वयं जिनधर्मसे प्रेम नहीं करते हैं व दूसरोंको भी जिनधर्मके प्रेमसे हटाते हैं। वे लोगोंको इसतरह फंसा लेते हैं कि उनका मन ऐसा आसक्त होजाता है कि वे चैत्यालय जाना छोड़ बैठते हैं, शास्त्र पढ़ना त्याग देते हैं, सामायिक व ध्यानके लिये समय नहीं निकालते हैं। धर्म-कार्यमें द्रव्य व्यय नहीं करते हैं, विषयोंकी पुष्टिमें पैसा खर्च करते हैं, नाटक खेल तमाशोंमें उलझ जाते हैं। विषय सहाई मित्रोंके संगमें दावतें करते हैं, नाच गाना करते हैं, सैलसपाटा करते हैं, भक्ष्य अभक्ष्यका, न्याय अन्यायका विवेक छोड़ बैठते हैं। कभी २ इतने मदान्ध होजाते हैं कि धर्मकी हंसी उड़ाते हैं, धर्मात्माओंका तिरस्कार करते हैं। ऐसे रागवर्द्धक लोग आप भी जिनधर्म नहीं पालते हैं व दूसरोंको भी नहीं पालने देते हैं। वे वास्तवमें जिनद्रोही होजाते हैं। ऐसे कुत्सित रागसे तीव्र कर्म बांधकर दुर्गतिमें जाते हैं।

विज्ञान ज्ञान रहियं, राग सहावेन पर्जाय पर दिट्ठं।
ज्ञान सहावं विरयं, जनरंजन राग नरय वासम्मि ॥ ९७ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञान ज्ञान रहिय) जिसको भेदविज्ञान नहीं है वह (राग सहावेन रजंय पर दिट्ठ) रागमई स्वभावसे पर पर्यायमें ही रत रहता है (ज्ञान सहाव विरयं) वह ज्ञान स्वभावसे विरक्त है (जन रजन राग नरय वासम्मि) उसमें जनोंको प्रसन्न करनेवाला रागभाव रहता है जिसका फल नरकवास है।

भावार्थ—संसारासक्त बहिरात्मा मिथ्यादृष्टीको आत्मा व अनात्माका भिन्न२ निश्चय नहीं रहता है। वह जिस शरीरमें रहता है इसी रूप ही अपनेको मानके उसी पर्यायमें रत रहता है। और उसीके अनुकूल रागभावमें फँस जाता है। उसको स्वप्नमें भी यह भान नहीं होता है कि मैं सिद्ध समान ज्ञान स्वभावी हूं। उसमें ऐसा तीव्र रागभाव होता है कि आप नानाप्रकार विषयभोग करता है और दूसरोंको रंजायमान करनेके लिये नानाप्रकार कौतूहल प्रलाप खेल चेष्टा किया करता है, धर्मसे रुचि बिलकुल नहीं करता है, अन्यायपूर्ण आरम्भसे ग्लानि नहीं रखता है, बड़ा ही मूर्च्छावान होता है। स्त्री पुत्रादिके मोहमें इतना पागल होता है कि उनके लिये मिथ्यात्व सेवन कर लेता है, तीव्र हिंसा करनेपर भी उतारू होजाता है। उनके वियोगमें या उनके रोगी होनेपर घोर शोक करता है। इन परिणामोंसे नर्क आयु बांधकर नर्क चला जाता है।

रागं असुद्ध दिट्ठी, संसय सहकार अंतरं ज्ञानं।
संक सहाव न विरयं, ज्ञानं आवरन चउ गए गमनं॥ ९८॥

अन्वयार्थ—(रागं असुद्ध दिट्ठी) संसारका राग एक अशुद्ध दृष्टि है (संसय सहकार अंतरं ज्ञानं) इस रागी जीवमें अन्तरंग ज्ञानमें संशय रहता है (संक सहाव न विरयं) इस शंकाशील स्वभावको न छोड़नेसे (ज्ञान आवरन चउ गए गमनं) उसके ज्ञानपर आवरण पड़ा रहता है। अज्ञान भावसे जो क्रिया करता है उसके अनुकूल पुण्य या पाप बांधकर चारों गतियोंमें जाता है।

भावार्थ—जिसको संसारकी वासना तीव्र होती है उसको धर्मका उपदेश यदि दिया जावे तौ भी उसे रुचता नहीं है। वह उपदेश सुनकर भी संशयमई अज्ञानका त्याग नहीं करता। आत्मा है या नहीं, परलोक है या नहीं, पुण्य पाप है या नहीं, धर्मकी आवश्यक्ता है या नहीं, इसतरह शङ्काशील रहनेसे वह रुचिपूर्वक धर्मका सेवन नहीं करता है। यदि कुछ शुभ भावोंसे पुण्य कमा लेता है तो वह देवगति या मनुष्यगतिमें जाता है अन्यथा बहुत अधिक तो वह धर्मसे व शुभ कार्योंसे विमुख रहता है। संसा-

रासक्त होकर कषायोंके वशीभूत हो आरम्भ किया करता है। अन्याय भी कर लेता है। फल यह होता है कि तिर्यंचगति या नरकगतिको चला जाता है। धर्मके तत्वोंमें संशय होनेपर यदि वह धर्मकी कोटिपर अधिक झुका रहे तो इतना बुरा न हो, परन्तु वह धर्मसे उपेक्षा भाव रखके अधर्मकी तरफ झुक जाता है जिससे अपना बहुत बुरा करता है। शङ्कामय भाव भी अज्ञान है व विषयोंकी तृष्णाको बढानेवाला है।

राग च लोक मूढं, जनरंजन पर्याय दिट्ठि सदर्स।
ज्ञान सहाव न पिच्छं, विभ्रम संयुत्त दुग्गए सहिय ॥ ९९ ॥

अन्वयार्थ—(राग च लोक मूढं) एक राग लोकमूढ़ताका होता है (जनरंजन पर्याय दिट्ठि सदर्स) जिससे जनोंको रंजायमान करनेवाली दशापर वह अपनी दृष्टि रखता है (ज्ञान सहाव न पिच्छं) ज्ञान स्वभावी आत्माका श्रद्धान नहीं रखता है (विभ्रम संयुत्त दुग्गए सहियं) इस लोकमूढ़तासे भ्रममें पड़के दुर्गति चला जाता है।

भावार्थ—लोकमूढतासे जिस किसी अज्ञानमई क्रियाको धर्मरूप व हितरूप मानते हैं उनको आप भी मानके उनसे राग करना लोकमूढताका राग है। श्री रत्नकरंडमें कहा है—

आपगासागरस्नानमुच्चय सिकताश्मनाम्। गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

भावार्थ—लोकमूढता अनेक प्रकारकी होती है, उसके यहां कुछ दृष्टांत हैं—जैसे नदीके व समुद्रके स्नानसे धर्म मानना, वालू व पत्थरोंके ढेर करनेसे भला मानना, पर्वतसे गिरनेपर मुक्ति व स्वर्ग मानना, अग्निमें जलनेपर सती होना मानना, इनके सिवाय अनेक लोकमूढताएँ हैं। जैसे कलम, दावात, तलवार, बरछी, दूकानकी देहली, रुपयोंकी थैलीको पूजना। दिनको उपवास करके रातके खानेको धर्म मानना। देवी देवताके प्रसन्न करनेको पशुवलि चढ़ाना आदि। इनमें अज्ञानी राग कर लेता है कि लोग मूर्ख नहीं है, जरूर नदी व समुद्र-स्नानमें पुण्य होगा, पर्वतसे गिरनेपर स्वर्ग होगा। इस तरहका रागभाव रखकर लोगोंकी देखादेखी आप भी उन क्रियाओंको बड़े ही रागभावसे करता है जिससे लोग प्रसन्न हों व इसे बड़ा धर्मात्मा समझें। जिन बातोंसे पाप-बन्ध होता है उन बातोंसे भला होता है, ऐसा भ्रमभाव रखनेसे यह अज्ञानी यथार्थ धार्मिक भावको व आत्माकी शुद्ध परिणतिको न पहचान कर यद्वातद्वा आचरण करके दुर्गतिमें चला जाता है।

राग च भाव उत्तं, पर्याय पुरुषस्य स्त्रीत्व संदिस्टं ।
ज्ञान विज्ञान विमुक्तं, ज्ञान आवरन सु सहिय मूढं च ॥ १०० ॥

अन्वयार्थ—' रागं च भाव उत्तं) एक रागभाव ऐसा कहा गया है जिससे (पर्याय पुरुषस्य स्त्रीत्व संदिस्टं) पुरुषके शरीरमें स्त्रीपनेकी कल्पना करता है (ज्ञान विज्ञान विमुक्त) वह भेदविज्ञानसे रहित है (ज्ञान आवरन मूढं च सु सहिय) उसके ज्ञानपर पर्दा है, वह मूढ़ता सहित वर्तता है ।

भावार्थ—इस संसारमें ऐसा भी रागभाव देखा जाता है जिससे यह अज्ञानी, मोही, मूढ प्राणी पुरुषमें स्त्रीपनेका भाव करके पुरुषके साथ स्त्री सदृश रागभाव पूर्ण अज्ञान चेष्टा करने लगता है । ऐसा अज्ञानी सम्यग्ज्ञानसे रहित होकर मूढ़ता सहित वर्तन करके अपने अज्ञानका प्रकाश करता है । यह राग भी तीव्र कामभावका प्रदर्शक प्राणीको तीव्र पाप-बन्ध करानेवाला है ।

रागं च राग युत्तं, स्त्री पर्जाय पुरुस मल सहियं ।
अज्ञान ज्ञान मूढा, संसय महिय नरय वासम्मि ॥ १०१ ॥

अन्वयार्थ—(राग च राग युत्त) एक प्रकारका ऐसा रागभाव भी पाया जाता है जिससे (स्त्री पर्जाय पुरुस मल सहिय) स्त्रीके शरीरके साथ पुरुष शरीरवत् मलीन भावसे चेष्टा की जाती है (अज्ञान ज्ञान मूढा) ऐसे अज्ञानी प्राणी ज्ञानसे मूढ होते हुए संसय सहिय नरय वासम्मि) इस भ्रमभावके कारण नरक जाते हैं ।

भावार्थ—जगतमें कभीर दो चार स्त्रियां होती हैं वे तीव्र रागभावसे एक स्त्रीमें पुरुषकी कल्पना करके उसके साथ चेष्टा करती हैं जैसे पुरुषके साथ की जाती हो । इस अज्ञान व मूढ़तासे वे तीव्र रागके कारण घोर पापबन्ध करके नरक चली जाती हैं ।

जनरंजन सादिट्ठी, जिन उत्तं राग सहिय अज्ञानी ।
लाज भय गारव सहियं, राग संजुत्त भव नवीयम्मि ॥ १०२ ॥

अन्वयार्थ—(जनरंजन सादिट्ठी) जिसकी दृष्टि लोगोंको रंजायमान करनेकी रहती है वह (राग सहिय अज्ञानी) इस लोकरंजनके रागको रखता हुआ अज्ञानी (लाज भय गारव सहियं) लज्जा, भय तथा स्वाभिमान सहित

वर्तता है (राग संजुत भव नवीयम्मि) राग सहित भावोंमें नवीन जन्म धारण करता है (जिन उत्तं) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

भावार्थ—कोई कोई मानव इस राग भावके होते हैं कि हमसे सब प्रसन्न रहें, कोई असन्तुष्ट न रहें। इस रागभावसे वह लोगोंके अनुकूल वर्तते हैं। उनको यह लज्जा रहती है कि कोई अप्रतिष्ठा न करे, भय रहता है कि कोई नाराज न हो, अपना मद रहता है कि मेरेको कोई बुरा न कहे। इस लज्जा भय गौरवके रागके कारण वह कभी धर्मात्माओंके अनुकूल, कभी अधर्मात्माओंके अनुकूल वर्तता है। कभी सुसंगतिमें, कभी कुसंगतिमें पड़ जाता है। उसके अनेक मित्र होते हैं। कोई व्यसनासक्त होते हैं, वे द्यूतादि व्यसनोंमें फँसा देते हैं। कोई धर्मात्मा होते हैं वे उसे धर्ममें लगा देते हैं। वह अज्ञानी हित व अहितका विवेक नहीं रखता है। धर्म भी वह इसीलिये पाल लेता है कि कोई उसे अधर्मी न कहे। लोकरंजनके भावकी प्रधानता रहती है। कभी वह लोगोंकी सङ्गतिमें लोक मूढताको धर्म मानके सेवने लग जाता है। ऐसा अज्ञानी रागी जीव जैसे कर्म बांधता है उसके अनुकूल अन्य भवमें उत्पन्न होता है। उसे मोक्षमार्गका लाभ नहीं होता है।

रागं च सहिय सल्यं, दुबुद्धि उववन्न मिच्छ परिनामं।
जनरंजन जिन उत्तं, जिनद्रोही निगोय वासम्मि ॥ १०३ ॥

अन्वयार्थ—(राग च सहिय सल्य) राग भाव सहित शल्यको रखता हुआ (दुबुद्धि उववन्न मिच्छ परिनाम) दुर्बुद्धिको उत्पन्न करके मिथ्यात्व भाव रखता है (जनरंजन) जनोंके रंजायमान करनेमें लगा रहता है (जिनद्रोही) वह जिनमतका शत्रु (निगोय वासम्मि) निगोदमें जाता है (जिन उत्तं) ऐसा जिनेन्द्रने कहा है।

भावार्थ—राग भाव सहित प्राणी माया, मिथ्या, निदान इन शल्योंको रखते हुए सम्यक्बुद्धिको न पाते हुए मिथ्यात्व सहित जनोंको प्रसन्न करनेके लिये व्यवहार करते हैं। माया शल्य सहित उनकी क्रिया लोगोंको राजी करके अपने स्वार्थ-साधनकी होती है। यदि मुनि या श्रावकका चारित्र भी पालते हैं तो मायाचारसे लोगोंको प्रसन्न करके प्रतिष्ठा पानेके लिये या इंद्रियविषय पुष्ट करनेके लिये या मिथ्या श्रद्धान रखते हुए लोगोंके अनुकूल कभी धर्म कभी अधर्म करते हैं। तीव्र भोगोंकी प्राप्तिकी आगामी भावनारूपी निदानके वशीभूत हो दान जप तप आदि भी कर लेते हैं। ऐसे शल्य सहित प्राणी यदि कदाचित् देव भी

होते हैं तो मरकर एकेन्द्री होजाते हैं, कोई कोई सीधे निगोदमें चले जाते हैं। जैसे अच्छा अन्न भी विष सहित हानिकारक होता है वैसे अच्छा काम भी शल्यरूपी विष सहित हानिकारक होता है। इसलिये ज्ञानीको शल्य छोड़कर सम्यग्ज्ञानके साथ धर्म पालना चाहिये।

राग च भाव उत्तं, ज्ञानं आवरन रंजनं लोयं।
प्रपंच विभ्रम सहियं, विमल सहावेन राग मुक्कं च ॥ १०४ ॥

अन्वयार्थ—(राग च भाव उत्तं) एक राग भाव इसप्रकारका होता है जिससे (ज्ञानं आवरन) ज्ञान पर आवरण बना रहता है (लोय रंजन) व लोगोंको रंजायमान करनेका भाव रहता है (प्रपच विभ्रम सहिय) प्रपंच और भ्रांति सहित परिणाम रहते हैं (विमल सहावेन राग मुक्कं च) जब स्वभाव निर्मल होता है तब यह राग-भाव छूटता है।

भावार्थ—बहुतसे मानवोंको इसतरहका राग रहता है कि जो कुछ हम जानते हैं सो बस हैं, हमें धर्मका उपदेश व धर्मका ज्ञान आवश्यक नहीं है इसलिये उनका अज्ञान कभी मिटता नहीं—वे उतना ही धर्म व्यवहार पालके संतुष्ट रहते हैं जिससे लोग प्रसन्न रहें, लोग बुरा न कहें। यदि लोगोंमें यह धारणा है कि जो चैत्यालय आवे वह जैनी है, जो पानी छानकर पीवे वह जैनी है, जो रातको अन्न न खावे वह जैनी है, जो अष्टमी चौदसको हरी न खावे वह जैनी है, तो वे इतनी क्रियायें लोगोंको प्रसन्न करनेके लिये कर लेते हैं, उनके करनेसे क्या लाभ होगा इसपर दृष्टि नहीं देते हैं। वे बहुतसी क्रियाएँ भाव न रहते हुए भी मायाचारसे करते हैं व उनके मनमें भ्रांति रहती है कि कोई बुरा न कहे अथवा ये धर्म कार्य हम करते हैं, ये लाभकारी हैं या हानिकारक हैं ऐसी भ्रांति भी होती है। उनको परिणामोंकी पह-चान नहीं होती है। ऐसा मूढ़भाव सहित रागभाव तब ही जाता है जब कभी श्री गुरुका व धर्मशास्त्रका उपदेश दिलमें बैठता है और उनको पहचान होती है कि शुद्ध भाव क्या वस्तु है। जहां परिणामोंके फलकी पहचान हुई कि यह राग मिट जाता है तब वह भाव सहित अपनी शक्तिके अनुकूल धर्म पालता है।

रागं संसार सहावं, जन उत्तं लोक मूढ उवएसं।
रंजन लोक सहावं, ज्ञान सहावेन राग विलयंती ॥ १०५ ॥

अन्वयार्थ—(रागं ससार सहावं) संसारके स्वभावमें लीन रागभाव ऐसा भी होता है जिससे (जन उत्तं लोक मूढ उवएस) लोगोंके कहे अनुसार लोकमूढताका उपदेश देता फिरता है (रंजन लोक सहावं) लोगोंको रंजायमान करनेका स्वभाव रखता है (ज्ञान सहावेन राग विलयंती) यह राग भी ज्ञान स्वभावकी पहिचानसे विलय होता है।

भावार्थ—किन्हीं २ को ऐसा राग होता है कि मैं लोगोंके कष्ट मेटनेका उपाय लोगोंको बताऊँ, जिससे लोग राजी रहे। लोगोंसे लोक मूढताकी बहुतसी बातें सुनता है, उनपर विश्वास करके वैसा ही उपदेश देता है। जैसे यह सुना कि अमुकने गङ्गा-स्नान किया उसका भला होगया, अमुकने पशुबलि की थी उसका पुत्र अच्छा होगया, उसकी खेती फल गई। अमुकने रुपयोंकी थैलीकी पूजा की थी वह लक्ष्मीवान होगया। अमुकने कलम–दावात पूजी थी उसका व्यापार खूब चला। अमुकने गोदावरी स्नान किया था उसको बहुत ऐश्वर्यका लाभ हुआ। इसतरह प्रगट सच्चे दृष्टांत बनाकर लोगोंको लोकमूढताकी तरफ प्रेरित करता है। लोक मूढता सेवते हुए इच्छित वस्तुका लाभ तो अपने किसी पुण्यके उदयसे व किसी अन्य बाहरी पुरुषार्थसे होता है, परन्तु यह मान लेता है कि इस लोक मूढताकी क्रिया पालनेसे हुआ। इसतरह भ्रमसे कुछका कुछ विश्वास करके आप भी लोकमूढतामें फंसा रहता है व दूसरोंको भी ऐसा उपदेश देता है। यह रागभाव तब ही मिटता है जब सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होता है।

रागं उववन भावं, रागं संसार सरनि सद्भावं।
पर्याय दिट्ठि दिट्ठं, विमल सहावेन राग संषिपनं ॥ १०६ ॥

अन्वयार्थ—(राग भावं उववन) राग भाव प्राणियोंमें ऐसा रहता है (रागं समार सरनि सद्भावं) जो राग संसारके भ्रमणको बढ़ाता है (पर्याय दिट्ठि दिट्ठं) ऐसा रागी प्राणी पर्याय पर ही दृष्टि रखता है (विमल सहावेन राग संषिपनं) जब निर्मल स्वभाव प्रगट होता है तब यह संसारका राग क्षय होता है।

भावार्थ—बहिरात्मा मिथ्यादृष्टी जीव जिस शरीरको पाते हैं उसी रूप अपनेको मान लेते हैं। मैं शुद्धात्मा हूँ यह भाव भी नहीं होता। ऐसे शरीरासक्त प्राणी संसार बढ़ानेवाले भावोंमें ही रागी बने रहते हैं। वे रातदिन धन संचयमें, परिवार वृद्धिमें, प्रतिष्ठा पानेमें, यश कमानेमें, लोगोंको प्रसन्न रखनेमें

लगे रहते हैं। वे परिग्रहमें अति आसक्त रहते हैं। अपनी परिग्रह बढती है तो अति प्रसन्न होते हैं। दूसरोंकी परिग्रहकी वृद्धि देखकर कभी राजी होते हैं, कभी ईर्षाभाव करते हैं। धर्म अधर्मका विवेक न रखते हुए वे रूढ़िके दासत्वमें फँसे रहते हैं। यदि कोई रस्म हानिकारक भी है परन्तु लोग करते आरहे हैं, वे कभी उसे छोड़ते नहीं है। यदि कुलमें कोई कुदेवादिकी भक्ति चली आई है तो उसे त्यागते नहीं हैं। ऐसी संसारासक्तिका राग भी सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे दूर होजाता है।

जन उत्तं उत्त दिट्ठं, जम्मन मरनं च सरनि संसारे।
मूढ लोय स सहावं, ज्ञान विज्ञान राग विलयंती ॥ १०७ ॥

अन्वयार्थ—(जन उत्तं उत्त दिट्ठ) मानवोंकी कही हुई बात कहते हुए देखा जाता है (संसारे सरनि जम्मन मरनं च) इस संसार मार्गमें इसतरह जन्म मरण होता है (मूढ लोय स सहावं) मूढ़ लोगोंका ऐसा ही स्वभाव है (ज्ञान विज्ञान राग विलयंती) भेद विज्ञानके प्रतापसे यह मूढ़ राग विला जाता है।

भावार्थ—जगतमें यह मूढ लोगोंकी मान्यता है कि अमुक देव वा देवीको मानोगे व अमुक क्रिया करोगे तो पुत्रका जन्म होगा अथवा किसीका मरण हुआ तो यह बात फैलाते हैं कि इसने अमुक देव या देवीका निरादर किया व अमुक क्रिया नहीं की इसीसे इसका मरण होगया। इसतरहकी लोकोक्तिको ठीक मानकर बहुतसे लोग पुत्रादि जन्मके लिये नानाप्रकार मिथ्या क्रिया करते रहते हैं व मरणसे भयभीत होकर भी बहुतसी मूढ मान्यताएं किया करते हैं। इस मिथ्या कल्पनाओंका अंत उस समय होजाता है जब आत्मामें सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होजाता है। तब ज्ञानी यह जानता है कि जिसका जन्म होना होगा उसका होगा व जिसका आयुकर्म क्षय होजायगा वही मरण कर जायगा। कोई देवी देव किसीका जन्म कर नहीं सक्ते व किसीका मरण कर नहीं सक्ते।



पाक्षिक राग स्वरूप ।

पाषिक रागं उत्तं, संसारे पषि भाव राग सभावं ।
संसार वृद्धि सहियं, दंसन विमलं च राग गलियं च ॥ १०८ ॥

अन्वयार्थ—(पाषिक रागं उत्तं) एक प्रकारका पाक्षिक राग कहा गया है (संसारे पषि भाव राग सभावं) संसारमें पक्ष भावके राग स्वभावको रखनेवाले अनेक प्राणी हैं (संसार वृद्धि सहियं) वे संसारको बढ़ाते हैं (विमलं दसन च राग गलियं च) निर्मल सम्यग्दर्शनसे ही ऐसा राग गल जाता है ।

भावार्थ—पाक्षिक राग उसे कहते हैं कि जो हठ पकड़ ली जावे उसको कभी न छोड़ा जावे, उसपर तीव्र ममत्व रक्खा जावे । यदि कोई ठीक२ समझावे तो भी उस हठको न त्यागा जावे । बहुधा लोगोंको अपने अपने मतका पक्ष होता है कि इस पक्षपर चलनेसे ही जीवोंका भला होगा । वे दूसरोंके मत पक्षको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं । ऐसे पक्ष रागवाले अनेकांत स्वरूप सम्यक् पदार्थके ज्ञाता नहीं होते हैं। वे अपनी एकांत पक्षका ही मोह करके उसीको ही सच्चा मोक्षमार्ग जानते हैं । जैनधर्ममें भी आत्माके शुद्धोपयोग भावको मोक्षमार्ग न समझकर ऐसा हठ पकड़ा जाता है कि जो अमुक पूजा न करेगा व अमुक आरती न करेगा व अमुक कार्य न करेगा वह कभी मोक्षमार्गपर चलनेवाला जैनी नहीं है । इस पक्षके रागमें उनके हाथमें संसारनाशक समताभाव वर्द्धक शुद्ध भावका ज्ञान नहीं आता हैं । जो सच्चे मोक्ष-मार्गको न पाकर मत पक्षके रागमें उलझे हुए दूसरोंसे द्वेष करते हैं, अपने पक्षका अहंकार करते हैं इससे उनका संसार बढता ही है—संसारका अंत नहीं होता है । यहांपर प्रयोजन असत् पक्ष माननेके हठका निषेध है । जो सत्यको, अनेकांतको ठीक२ माने व उसका पक्ष समताभावसे करे तो वह सदोष पाक्षिक राग नहीं है—सत्यका अनुयायी तो होना ही चाहिये । सत्यका अनुयायी होकर भी उसको अपनेसे विपरीत पक्षपर द्वेषभाव न रखकर माध्यस्थ भाव रखना चाहिये । मत पक्षको लेकर रागद्वेष व कलह बढ़ानेकी जरूरत नहीं है ।

शरीर राग स्वरूप ।

सरीर राग जुत्तं, सहकारं चरन्ति अन्याय अनुमोयं ।
मिच्छात सल्य सहियं, अनुमोये निगोय वासम्मि ॥ १०९ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर राग जुत्त) शरीर सम्बन्धी राग भी होता है (सहकार चरन्ति अन्याय अनुमोय) जिसकी सहायतासे प्रसन्न होकर प्राणी अन्यायका आचरण करते हैं (मिच्छात सल्य सहिय) मिथ्यात भाव और शल्यको रखते हैं (अनुमोये निगोय वासम्मि) इस शरीरकी अनुमोदनासे निगोदमें चले जाते हैं ।

भावार्थ—शरीर सम्बन्धी राग उसे कहते हैं जो शरीरको पुष्ट व विषयोंमें उलझा हुआ रखना चाहते हैं । इस हेतुसे वे प्रसन्न होकर अज्ञानसे मांसादि भक्षण करते हैं, मादक पदार्थ खाते हैं, वेश्या व परस्त्री रमन करते हैं, गाने बजाने खेल तमाशेमें लगे रहते हैं, शरीर बना रहे व खूब विषयभोगमें सहकारी हो ऐसी रुचिसे वे अन्यायमें प्रवृत्ति करते हुए रंजायमान रहते हैं उनको पूरा अग्रहीत मिथ्यात्व होता है । शरीर रूप ही अपनेको मानते हैं । शरीरसे अतिरिक्त एक अमूर्तीक निराकार निर्विकार आत्मा हूँ ऐसा श्रद्धान उनको नहीं होता है । वे मायाचार भी करते हैं तथा यदि कोई धर्मक्रिया भी करते हैं, दान जप तप भी करते हैं तो भावना भोगोंके निदानकी होती है । ऐसे शरीरमें रंजायमानपनेके भावसे वे मरकर एकेंद्रिय साधारण वनस्पतिकायमें जन्म प्राप्त कर लेते हैं ।

कुल राग स्वरूप ।

कुल रागं च उवन्नं, अकुलं सहकार ज्ञान विरयंति ।
अज्ञान विषय वृद्धं, अनुमोये निगोय वासम्मि ॥ ११० ॥

अन्वयार्थ—(कुल रागं च उवन्न) अपने पिताके पक्षका कुल राग भी प्राणियोंमें उत्पन्न होजाता है (अकुलं सहकार ज्ञान विरयंति) वे नीच कुलकी संगतिसे ज्ञान बिगड़ जाता है ऐसा मानते हैं (अज्ञान विषय वृद्ध) अज्ञानसे विषयोंकी सामग्री बढ़ाते हैं (अनुमोये निगोय वासम्मि) इस कुल रागकी अनुमोदनासे निगोदमें वास करते हैं ।

भावार्थ—बहुतोंको अपने कुलका बड़ा राग होता है, बड़ा अभिमान होता है। जो बड़े खर्च व विषयसंभोग करते आए हैं उनहीको आप करना चाहता है, धनकी उतनी शक्ति न होनेपर भी हमारे बड़ोंका यश किसीतरह कम न होने पावे, विवाहादि कार्योंमें अन्धा हो खर्च करता है, कर्ज भी लेलेता है, परन्तु अपने बड़ोंकी नकल हरएक मान बढानेवाले कार्यमें करता है। बड़े धर्मात्मा थे, हम भी धर्मात्मा बनें ऐसा भाव नहीं लाता है। अपनेसे दूसरे कुलवालोंको व नीच कुलवालोंको बड़ी घृणासे देखता है, उनकी परछाईं पडनेसे अपने जानका बिगाड़ मान लेता है। आप चाहे कितना भी निन्द्य आचार रखता है तौ भी अपनेको बड़ा मानता है। कोई अन्य कुलवाला कितना भी अच्छा आचरण करता है तो भी उसे हलका जानता है। इस उन्मत्त भावसे, अहङ्कारसे, परकी घृणासे अति नीच गोत्र बांधकर एकेन्द्रिय निगोद पर्यायमें चला जाता है। जो मिथ्यादृष्टी है, शरीरासक्त हैं, पर पर्याय रत हैं उनहीको यह कुल मद या कुल राग होता है। सम्यग्दृष्टी शरीरके क्षणिक कुलका मोह नहीं करता है।

सहकार राग स्वरूप।

महकार राग युत्तं, अज्ञानं सत्य विषय महकारं।
अनुमोयं अज्ञानं, सहकारं संसार भावना हुंति ॥१११॥

अन्वयार्थ—(महकार राग युत्त) सङ्गतिका राग भी होता है (अज्ञान महर विषय महकार) प्राणी अज्ञानकी संगतिमें मायावी, मिथ्यादृष्टी व निदान भावधारियोंकी संगतिमें व विषयभोगोंकी संगतिमें रागी हो जाते हैं (अनुमोय अज्ञान) वे अज्ञानकी अनुमोदना करते हैं (महकार संसार भावना हुंति) इसी कारण उनमें संसारकी भावना रहा करती है।

भावार्थ—कुसंगतिसे अच्छेर प्राणी बिगड जाते हैं। जगतमें अनेक अज्ञानी प्राणी हैं जो अज्ञानसे मिथ्या देव, गुरु व धर्मको मानते हैं, अनेक प्राणी मायाचार करके दूसरोंको ठगते हैं, अनेक प्राणी आगामी भोगोंकी मान्यता करके देवी देवताओंकी भक्ति करते हैं। अनेक प्राणी अत्यन्त रागी हो, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंको सेवन करते हैं। भोले प्राणी ऐसे लोगोंकी संगतिमें पड़कर उनके इन अज्ञानमई

कार्योंकी अनुमोदना करते हैं व आप भी उनमें फँस जाते हैं। ऐसे प्राणी रात दिन उन ही संसारवर्द्धक कार्योंके करनेकी भावना किया करते हैं। उनको मोक्षमार्गकी कभी भावना ही नहीं होती है। इससे वे संसारमें ही भ्रमण करते हैं। सारसमुच्चयमें कहा है:—

कुसंसर्गं सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायक.। सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात् ॥ २६०॥

भावार्थ—अनेक दोषोंका कारण कुसंसर्ग सदा छोड़ना चाहिये। कुसंगतिसे गुणवान प्राणी भी उसी क्षण क्षुद्रपनेको प्राप्त होजाता है।

परिणाम राग स्वरूप।

परिनाम राग सहियं, परिनइ परिनवइ मिच्छ अज्ञानं।
पज्जायं पर पिच्छं, परिनाम राग नरय वासम्मि ॥ ११२ ॥

अन्वयार्थ—(राग सहियं परिनाम) राग सहित परिणाम उसे कहते हैं (परिनइ परिनवइ मिच्छ अज्ञान) जो आप मिथ्यात्व अज्ञान रूप परिणमै और दूसरोंको भी मिथ्यात्व अज्ञान रूप परिणमावे (पर पज्जायं पिच्छ) जो पर पर्यायकी ही ओर दृष्टि रखता है (परिनाम राग नरय वासम्मि) ऐसे राग परिणामवाला नरकमें जाता है।

भावार्थ—संसारमें जिसका परिणाम अत्यन्त आसक्त है वह आप भी धन, पुत्र आदि लौकिक कार्योंकी सिद्धिकी कामनासे मिथ्या देव गुरु धर्मको मानता है व अज्ञानसे न करने योग्य काम करता है व दूसरोंको भी ऐसा ही उपदेश देकर उन्हीं कार्योंमें लगाता है। वह प्राप्त शरीरमें अति रागी रहता है। शरीरके सम्बन्धी स्त्री पुत्रादिके साथ तीव्र मोह रखता है। बहु आरंभ व परिग्रहवान रहता है। अन्यायके कार्योंसे उसको ग्लानि नहीं होती है। दूसरोंको ठग करके अनेक कष्ट देकर भी अपना मतलब निकालना चाहता है। तीव्र खोटी लेश्यासे यह प्राणी नर्क आयु बांधकर नर्क चला जाता है।

काम राग स्वरूप ।

रागस्य राग जुत्तं, विकहा विमनस्य अवंभ रूवेन ।
धम्मं अधम्म उत्तं. उत्तं रागं च दुग्गए पत्तं ॥ ११३ ॥

अन्वयार्थ—(विकहा विसनस्य अवंभ रूवेन रागस्य राग जुत्त) चार विकथा, सात व्यसन तथा कुशीलका राग सहित राग ऐसा होता है जिससे (धम्मं अधम्म उत्त) धर्मको अधर्म कहा करता है (उत्तं रागं च दुग्गए पत्तं) ऐसा राग दुर्गतिमें लेजाता है।

भावार्थ—जिन प्राणियोंको स्त्रीकथा, भोजनकथा, देशकथा व राजकथा, इन चार विकथाओंके कहनेका राग होता है। जुआ खेलना, मांस भक्षण, मदिरापान, शिकार खेलना, चोरी करना व वेश्यासेवन तथा परस्त्री सेवनका राग होता है। इनमें भी अब्रह्मचर्य या कुशील सेवनका बहुत बड़ा राग होता है। ऐसा प्राणी धर्मको कुछ नहीं समझता है। वह धर्मको ही अधर्म व व्यर्थ समझता है। उसे जीवनका यही उद्देश्य सुहाता है कि वह मौज शौकमें व विषयभोगमें रत रहा करे। उसको धर्मका उपदेश एक प्रकारकी बकवाद मालूम पड़ती है। वह धर्मसे बाहर रहता हुआ तीव्र विषयोंके रागसे दुर्गतिमें चला जाता है। वास्तवमें काम भाव जीवका महान शत्रु है। सारसमुच्चयमें कहा है:—

दुःखानामाकरो यस्तु संसारस्य च वर्धनम् । स एव मदनो नाम नराणां स्मृतिसूदनः ॥ ९६ ॥
संकल्पाच्च समुद्भूतः कामसर्पोऽतिदारुणः । रागद्वेषद्विजिह्वोऽसौ वशीकर्तुं न शक्यते ॥ ९७ ॥
अहोते धिषणाहीना ये स्मरस्य वशं गताः । कृत्वा कल्मषमात्मानं पातयन्ति भवार्णवे ॥ ९८ ॥

भावार्थ—यह काम भाव दुःखोंकी खानि है, संसारको बढ़ानेवाला है, मानवोंके स्मरणको बिगाड़नेवाला है, यह कामरूपी सर्प बड़ा भयानक है, संकल्पसे पैदा होता है। इसकी दो जिह्वा हैं-एक राग, दूसरे द्वेष। इस काम सर्पको वश करना कठिन है। जो इस कामके वश होजाते हैं वे बुद्धिहीन हैं। वे आत्माको मलीन करके अपनेको संसार-समुद्रमें डुबो देते हैं।

अनुमोदना राग स्वरूप ।

अनुमोय राग उत्तं, अज्ञानं अनुमोय सल्य अनुमोयं ।
विषयं च अगुर वयनं, आलापं अनुमोय निगोय वीयम्मि ॥११४॥

अन्वयार्थ—(अनुमोय राग उत्त) एक अनुमोदनाका राग कहा गया है। (अज्ञानं अनुमोय सल्य अनुमोय) ऐसा रागी अज्ञानकी अनुमोदना करता है, शल्य भावोंकी अनुमोदना करता है। (विषय च अगुर वयनं आलापं अनुमोय) इन्द्रियोंके विषयोंकी अनुमोदना करता है, मिथ्या गुरुके वचनोंकी अनुमोदना करता है तथा आलाप बकवादकी अनुमोदना करता है। (निगोय वीयम्मि इस अनुमोदनाके रागसे कर्म बांधकर निगोदमें जानेका बीज बोदेते हैं।

भावार्थ—जगतमें कितने प्राणी स्वयं किसी कामको न करते हैं न कराते हैं, परन्तु दूसरोंको करते हुए देखकर व सुनकर उनकी सराहना अनुमोदना या पसन्दगी करते हैं, इससे भी तीव्र पाप बांधकर निगोद चले जाते हैं। कोई प्राणी अज्ञानसे नदी स्नानको धर्म मानते हैं। अग्नि, जल, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रकी पूजाको धर्म मानते हैं। रात्रिके भोजनको धर्म मानते हैं। श्रृङ्गार करने व देखनेको धर्म मानते हैं। जुआ खेलनेको धर्म मानते हैं। होलीमें गाली देने व बकनेको धर्म मानते हैं। पशुबलिको धर्म मानते हैं। यह अज्ञानी उनकी इस अज्ञान क्रियाकी सराहना करता है। कोई मायाचार करके दूसरोंको चतुराईसे ठगते हैं यह उनकी सराहना करता है। कोई विषय भोगोंकी भावनासे नानाप्रकारकी मान्यताएं देवी देवताओंसे मानते हैं यह उनको अच्छा समझता है, कोई अभक्ष्य भक्षण करते हैं, कुत्सित स्थानोंमें सैर करते हैं, खोटा गाना सुनते हैं, खोटा नाच तमाशा देखते हैं, कुशील सेवन करते हैं, यह उनकी विषय प्रवृत्तिको देखकर राजी होता है। बहुतसे मिथ्या गुरु अधर्मका उपदेश देते हैं। विषय कषायकी पुष्टिको व हिंसाको धर्म बताते हैं। अपनेको दान करानेको जिससे वे कुगुरु विषय भोग भोगें, धर्म कहते हैं। रागी द्वेषी देवोंको पुजवाते हैं, श्राद्ध कराते हैं, ऐसे कुगुरुओंके उपदेशकी यह सराहना करता है, उनकी प्रशंसा करता है। कोई मानव बहुत बकवादी होते हैं। नानाप्रकारकी गप्पें कहकरके लोगोंको रंजायमान करते हैं। यह उनकी अनुमोदना करता है। इसतरह उन कार्योंको स्वयं न करनेपर भी अनुमोदनासे वे तीव्र पाप बांध लेते हैं व निगोदमें चले जाते हैं।

प्रकीर्ति राग स्वरूप ।

प्रकीर्ति राग सहियं, ज्ञानं विज्ञान अनुमोय पर पिच्छं ।
बहिर सुभाव न मुक्कं, प्रकीर्ति रागं च नरय वीयम्मि ॥ ११५ ॥

अन्वयार्थ—(प्रकीर्ति राग सहिय) एक प्रकारका राग प्रकीर्ति राग होता है (पर पिच्छं ज्ञानं विज्ञान अनुमोय) जिसमें पर पदार्थमें लीन ऐसे मिथ्याज्ञान व विज्ञानकी अनुमोदना की जाती है (बहिर सुभाव न मुक्कं) वह बहिरात्मभावको नहीं छोड़ता है (प्रकीर्ति रागं न नरय वीयम्मि) ऐसे प्रकीर्ति रागसे नरकका बीज बोता है ।

भावार्थ—किन्ही प्राणियोंको ऐसा राग भाव होता है जिससे वे दूसरोंकी महिमा गाया करते हैं । दूसरोंकी प्रसिद्धि करते हैं । जो बड़े ज्ञानी हैं विद्वान हैं, परन्तु पर भावमें अनुरक्त हैं, लौकिक भावको पुष्ट करनेवाले ग्रंथ नाटक उपन्यास बनाते हैं, काव्य रचते हैं, उनमें मिथ्यात्व व विषय रागको पुष्ट करते हैं, ये अज्ञानी उनकी महिमा गाया करते हैं क्योंकि उनके भीतर बहिरात्मापना मौजूद है । वे शरीरमें व शरीरकी क्रियाहीमें रागी हैं । उनको आत्माकी बात नहीं सुहाती है । ऐसे कुज्ञानके कीर्तन करनेके रागवाले मानव भी नरक जानेका पाप बांध लेते हैं । जिन वेदोंमें व शास्त्रोंमें पशुवधको पुष्ट किया गया है उन ग्रन्थोंकी वह सराहना करता है । उनकी बड़ी प्रशंसा गाता है । यह कीर्तनका राग अनुमोदना रागसे भी बुरा है क्योंकि अनुमोदक तो मनही मनमें प्रसन्न होता है यह वचनोंसे कुमार्गके गुण कह कहकर दूसरोंको कुमार्गगामी बनाता है । इसलिये यह प्रकीर्ति राग बहुत ही बुरा है ।

अवकाश राग स्वरूप ।

अवयास राग जुत्तं, अवयासं ज्ञान विज्ञान पर पिच्छं ।
पर पुग्गल सहकारं, अवयास राग दुग्गए पत्तं ॥ ११६ ॥

अन्वयार्थ—(अवयास राग जुत्त) एक अवकाश राग सहित प्राणी होता है (अवयासं ज्ञान विज्ञान पर पिच्छ) पर पदार्थकी तरफ आसक्त ज्ञान विज्ञानको अवकाश कहते हैं (पर पुग्गल सहकार) पर पुद्गलकी सहायतासे ऐसा राग होता है । (अवयाम राग दुग्गए पत्त) यह अवकाश राग भी दुर्गतिको प्राप्त करानेवाला है ।

भावार्थ—अवकाश नाम स्थानका भी है, अवकाश नाम ज्ञानका भी है, जहां ज्ञेय पदार्थोंका ज्ञान जगह पाता है। यहां अभिप्राय यह है कि पर पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान विज्ञान जिसको होता है वह उसका बहुत वड़ा राग रखता है। अपनेको वड़ा ज्ञानी बुद्धिमान व विद्वान समझता है। तथा उस ज्ञानसे शरीरके मोहमें व इंद्रियोंके विषयोंके मोहमें पड़कर वही काम लेता है जिससे कषाय विषय पुष्ट हों, जगतमें मान्यता पावे, प्रतिष्ठा बढ़ावे, राज्यसे उपाधि पावे, प्रजासे माननीय होजावे। वह इतना पर पदार्थमें तन्मय होता है कि उसे अध्यात्म ज्ञान शुष्क, नीरस व अकार्यकारी दिखता है। कोई व्याकरणी होकर कोई नैयायिक होकर, कोई दर्शनाचार्य होकर, कोई प्रवीण वैद्य होकर, कोई प्रवीण इंजीनियर होकर, कोई चतुर वकील होकर, कोई प्रवीण व्यापारी होकर, कोई प्रवीण शिल्पकार होकर विद्याके रागमें व मदमें उलझा रहता है। उस ज्ञानसे भी अपने आत्माका अहित करता है। आत्मज्ञानकी तरफ कुछ भी झुकता नहीं है। ऐसा प्राणी भी कुरागसे दुर्गति जाता है।

जिन उत्तं नहु दिट्ठं, जन उत्तं जन रंजनस्य सद्भावं।
ज्ञान विज्ञान न रुचियं, अज्ञानं अनुमोय ज्ञान विरयंति ॥ ११७ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त नहु दिट्ठ) ऊपर कहे गए अनेक प्रकारके रागी जीव जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए तत्वोंपर दृष्टि नहीं देते हैं (जन उत्त जन रंजनस्य सद्भाव) लोगोंके कहनेपर लगे हुए जिनसे जनता रंजायमान हो, ऐसे भावोंमें लगे रहते हैं (ज्ञान विज्ञान न रुचिय) उनको आत्मज्ञान व भेद विज्ञान नहीं रूचता है (अज्ञानं अनुमोय ज्ञान विरयति) वे अज्ञानकी अनुमोदना करते हैं, ज्ञानसे विरक्त रहते हैं।

भावार्थ—संसारासक्त प्राणी अनेक प्रकारके कुरागोंमें फँसे रहते हैं, उनको जिनवाणी नहीं सुहाती है। न तो वे स्वयं शास्त्र पढ़ते न दूसरोंसे सुनते हैं। लोगोंकी सुनी हुई बातोंको मानते हैं व ऐसे काम करते हैं जिनसे लोग प्रसन्न रहें। उनको हित अहितका, कर्तव्य अकर्तव्यका, भक्ष्य अभक्ष्यका विवेक नहीं होता है। उनको आत्मा और अनात्माके भेदज्ञानकी चर्चा नहीं सुहाती है न उनका लक्ष्य कभी अपने आत्मस्वरूप पर जाता है। वे बिलकुल बहिरात्मा होते हुए मिथ्याज्ञानकी तो सराहना करते हैं, परन्तु सम्यग्ज्ञानसे बिलकुल ही विरक्त रहते हैं। उनके परिणाम कषायोंसे इतने मलीन होजाते हैं कि उनके

मनपर आत्मधर्मका उपदेश उसीतरह व्यर्थ जाता है जैसे पाषाण पर पड़ा पानी वह जाता है, पाषाण ढीला नहीं पड़ता है।

राग सहाव न गलियं, न हु गलयं मिच्छ विषय सल्यं च।
जिन उत्तं सह संकं, निःसंकं अगुर अजिन सरनि संसारे ॥११८॥

अन्वयार्थ—(राग सहाव न गलिय) जिसका सांसारिक रागका स्वभाव नहीं गला है। (न हु गल्यं मिच्छ विषय सल्यं च) न उसका मिथ्यात्व गला है न विषयवासना गली है न कोई शल्य मिटी है। (जिन उत्तं सह संकं) वह जिनेन्द्र कथित उपदेशमें तो शंका रखता है, श्रद्धान नहीं लाता है। (नि संकं अगुर अजिन सरनि संसारे) परंतु निःशंक होकर कुगुरुकी शरण लेकर संसारके मार्गमें ही भटकता है।

भावार्थ—यहां बहिरात्मा मिथ्यादृष्टीका स्वरूप बताया है। उसका संसार सम्बन्धी राग नहीं मिटता है। जबतक मोक्षका प्रेम पैदा नहीं होगा तबतक संसारका राग मिट नहीं सक्ता है। उसका मिथ्या श्रद्धान भी नहीं मिटा है। वह शरीरमें अहंकार व सचित्त अचित्त परिग्रहमें ममकार रखता है। पांचों इन्द्रियोंके भोगोंकी तृष्णा भी उसके जागृत है। स्वार्थसाधनके लिये वह मायाचारसे वर्तता है। मिथ्या श्रद्धा सहित देखादेखी धर्म क्रिया करता है। आगामी मनोज्ञ भोगोंकी दृढ़ भावना रूपी निदानके साथ कुछ भी धर्म पालता है। उसको श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंमें शंका रहती है। उनपर श्रद्धान बिलकुल नहीं लाता है, परंतु विषयोंके पदार्थ मिल जावेंगे इस लोभके वशीभूत होकर श्री जिनेन्द्रसे विपरीत रागी द्वेषी देवोंको मानता है। परिग्रहधारी बाहरी चमत्कार दिखानेवाले मंत्र यंत्र करनेवाले गुरुओंको मानता है, उनके वचनोंमें गाढ़ श्रद्धान रखता है। इसतरह यह मिथ्यादृष्टी जीव अपना संसार मार्ग बढ़ाता रहता है। उसे शुद्ध आत्मतत्वका स्वप्नमें भी लाभ नहीं होता है।

जिन उत्त भाव नहु लष्यं, जन उत्त भाव अनुमोय संजुत्तं।
जन रंजन राग सहावं, रागं अनुमोय सरनि भावना होई ॥ ११९ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त भाव नहु लष्यं) जिनेन्द्र भगवान कथित पदार्थोंपर व भाव भासनापर वह मिथ्यादृष्टी लक्ष्य नहीं देता है (जन उत्त भाव अनुमोय संजुत्त) परंतु अल्पज्ञानी लोगोंके कहे हुए पदार्थों व भावोंकी

अनुमोदना करता है (जन रंजन राग सहाव) उसका ऐसा राग स्वभाव बन जाता है कि वह लोगोंको प्रसन्न करना चाहता है (राग अनुमोय सरनि भावना होई) उसकी निरन्तर भावना यही होती है कि वह रागभावकी अनुमोदनाके मार्गमें लगा रहता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव अनन्तानुबंधी कषायके तीव्र उदयसे ऐसा विषय कषायोंमें फंसा रहता है कि उसको वीतराग विज्ञानमय जिनधर्मका मार्ग नहीं सुहाता है। उसे सात तत्वोंपर ध्यान नहीं जाता है। वह आत्माका स्वरूप व्यवहार नय तथा निश्चय नयसे जाननेकी तरफ दिल ही नहीं लगाता है। परंतु जिनसे धनादिकी प्राप्ति हो तथा विषयभोगके पदार्थ मिल सकें उन अल्पज्ञानियोंके रागवर्द्धक व संसारवर्द्धक उपदेशपर लक्ष्य देकर उनकी प्रशंसा करता है। उसका भाव ऐसा रागी होजाता है कि वह जगतके लोगोंको प्रसन्न रखना चाहता है। उनको खुश रखनेके लिये कभी धर्म कभी अधर्म सेवन करता है, कभी भक्ष्य, कभी अभक्ष्य खाता है। पांचों इंद्रियोंके रागकी अनुमोदनाकी भावनामें सदा उलझा रहता है। वह निरंतर इंद्रियोंके पोखनेके लिये आतुर रहता है। उसको अतीन्द्रिय सुखका न श्रद्धान होता है न उसका कुछ प्रयत्न होता है। वह संसारासक्त शरीरको विताकर अंतमें आशा तृष्णाको न पूरा किये हुए मरता है, अशुभ भावोंसे दुर्गतिमें चला जाता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

कषायकलुषो जीवो रागरंजितमानस । चतुर्गतिभवाम्भोधौ भिन्ना नौरिव सीदति ॥ ३१ ॥

भावार्थ—जो जीव कषायोंसे मैला है व रागमें जिसका मन रंगा हुआ है वह टूटी नावके समान चार गतिमय संसार-समुद्रमें डांवाडोल होता हुआ कष्ट पाता है।

राग जिने हि उत्तं, अप्पा सुद्धप्प परम अनुमोयं ।
संसार सरनि विरयं, ज्ञानं अनुमोय मुक्ति गमनं च ॥ १२० ॥

अन्वयार्थ—(जिने हि रागं उत्तं) जिनेन्द्र भगवानने शुभ रागको कहा है (अप्पा परम सुद्धप्प अनुमोयं) जहां आत्मा परम शुद्धात्माके स्वरूपमें प्रसन्न होता है (संसार सरनि विरयं) संसारके मार्गसे विरक्त होनेका राग होता है। (मुक्ति गमनं ज्ञानं अनुमोय) व जहां मुक्ति प्राप्तिके ज्ञानकी अनुमोदनाका राग होता है।

भावार्थ—ऊपर बहुतसी गाथाओंमें पापबंध कारक अशुभ रागका कथन किया है, अब यहां शुभ

रागको बताते हैं। जहां परमात्माके शुद्ध स्वरूपसे प्रेम हो, संसारसे छूटनेका उत्साह हो, आत्मज्ञानकी प्राप्तिकी रुचि हो, आत्मानुभव करनेकी उमङ्ग हो यह सब शुभ राग है जो हितकारी है। जहां आत्मशुद्धिमें व आत्मशुद्धिके मार्गमें राग होता है वही शुभ राग है।

श्री पञ्चास्तिकायमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य शुभ रागका स्वरूप कहते हैं—

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जा य खलु चेट्ठा। अणुगमणं पि गुरूणं पसत्थरागो त्ति वुच्चति ॥ १३६ ॥

भावार्थ—अरहंत भगवान, सिद्ध महाराज व साधु परमेष्ठीमें जो भक्तिका होना तथा मुनि व श्रावकधर्मके पालनेमें उद्योगपूर्ण उत्साह तथा अपने गुरुओंकी आज्ञानुसार चलना ये सब भाव शुभराग हैं।

ज्ञानानंद स्वरूप।

अकुर ज्ञान सहावं, अनुमोयं भावकम्म विलयती।
ज्ञानं च परम ज्ञानं, रागं समयं च कम्म संपिपन ॥ १२१ ॥

अन्वयार्थ—(अकुर ज्ञान सहावं) जब ज्ञान स्वभाव मैं हूं ऐसा श्रद्धानरूपी अंकुर फूटता है (अनुमोयं) और उस शुद्ध ज्ञानभावमें आनन्द प्राप्त किया जाता है तब इस आत्मानन्दी भावके प्रतापसे (भावकम्म विलयती) राग द्वेषादि भावकर्म विला जाते हैं (ज्ञानं च परम ज्ञानं) ज्ञान स्वाभाविक परम ज्ञानमें अनुरक्त होजाता है (समयं रागं च कम्म संपिपन) जब आत्माका दृढ प्रेम पैदा होजाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होने लगती है।

भावार्थ—जब इस जीवको श्री गुरुके उपदेशसे व जिनवाणीके अभ्याससे व वारवार मनन करनेसे मैं परमात्माके समान ज्ञान स्वभावी वीतराग आत्मा हूँ ऐसी प्रतीति जागृत होजाती है तब मानो मोक्षमार्गरूपी धर्मका अंकुर फूटता है जिस वृक्षका फल मोक्ष है। इस सम्यक्त भावमें जब यह भव्य आनंद मानता है तब शुद्धात्मानुभव प्रगट होता है। ज्ञान परम ज्ञान स्वभावमें एकाग्र होता है अथवा निज आत्माका राग परम दृढतासे होआता है तब आत्मानुभवरूपी ध्यानकी अग्नि जलती है जिससे कर्मोंकी निर्जरा होती है व नवीन कर्मास्रव रुकता है। योगसारमें कहा है—

अप्पसरूवइ जो रमइ छंडवि सहु ववहारु। सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भवपारु ॥ ८८ ॥

भावार्थ—जो सर्व व्यवहार छोड़कर आत्माके स्वरूपमें रमन करता है वही सम्यग्दृष्टी है। वह शीघ्र संसारसे पार होजाता है।

ज्ञानमई अनुमोयं, दंसन सहकार चरन अनुमोयं।
तव अनुमोय सहावं, अवयास अनुमोय सिद्धि संपत्तं ॥१२२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानमई अनुमोय) जहां ज्ञानमई आत्माके स्वभावकी अनुमोदना है (दंसन सहकार चरन अनुमोयं) सम्यग्दर्शनको पुष्ट करनेवाले चारित्रकी अनुमोदना है। (तव अनुमोय सहावं) जहां तपके अनुमोदनाका स्वभाव पैदा होजाता है (अवयास अनुमोय) सर्व पदार्थोंको जाननेको समर्थ केवलज्ञानकी प्राप्तिकी अनुमोदना होती है ऐसा शुद्धात्मानुरागी (सिद्धि सपत्त) सिद्धिको प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—सम्यक्ती जीव अपने ज्ञान स्वभावी आत्मामें आनन्द मानता है। आत्मानुभवकी वृद्धिके लिये चारित्र पालनेका उत्साह रखता है तथा आत्मामें थिरता पानेके लिये तप तपनेकी अनुमोदना करता है और यह भावना करता है कि मुझे परम ज्ञानका लाभ होजावे। ऐसा सम्यक्ती जीव संसारके रागसे बिलकुल विरक्त होजाता है और आत्माके स्वभावके प्रेममें अनुरक्त होजाता है। उसका प्रेम सिद्धि-वधूकी तरफ होजाता है, संसारसे वह पीठ दे लेता है। ऐसा ज्ञानी अवश्य मोक्षका भागी हो जाता है।

कलरंजन भाव स्वरूप।

कलरंजन दोष उवन्नं, कल सहकारं च वृद्धि संजुत्तं।
परिनइ कलुस सहावं, कललंकृत कर्म तिविह उववन्नं ॥ १२३ ॥

अन्वयार्थ—(कलरंजन दोष उवन्न) कल नाम शरीर। शरीरमें रंजायमान होनेसे दोषोंकी उत्पत्ति होती है (कल सहकार च वृद्धि संजुत्त) शरीरकी सहायतासे दोष बढते जाते हैं (कलुस सहावं परिनइ) कलुष स्वभावमें परिणति होजाती है (कललंकृत कर्म तिविह उववन्न) शरीरके साथ राग होनेसे तीन प्रकार कर्मोंकी उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—अब यहां शरीरके संयोगसे क्या क्या बुरा परिणाम होता है उसको दिखाते हैं। शरीरके

साथ राग करनेसे अनेक प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं तथा बढ़ते हैं। कभी शरीरके अनुकूल क्रिया नहीं होती है तब भाव कलुष या मैला होजाता है। मलीन भावोंसे द्रव्यकर्म बंधते हैं, राग द्वेष होते हैं तथा नामकर्मके बंधसे पुनः नोकर्म या शरीरकी प्राप्ति होती है।

कलुस भावका लक्षण पंचास्तिकायमें कहा है:—

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्त मासेज्ज, जीवस्स कुणदि खोह कलुसोत्तिय त बुधा वेंति ॥ १४५ ॥

भावार्थ—जब क्रोध या मान या माया या लोभ चित्तमें आकर जीवको क्षोभित कर देते हैं उस क्षोभित भावको कलुस भाव बुद्धिमानोंने कहा है।

शरीरके ऐश्वर्य व उसकी शोभा बढनेसे मान होता है। यदि कोई अपमान करता है व शरीरके सुखमें बाधक होता है तब क्रोध होजाता है। शरीर-सुखके लिये लोभ तथा मायाचार करता है, शरीरके मोहसे चारों ही कषाय भावोंको जकड़ते हैं तब हिंसादि पाप होजाते हैं।

जदि कलुस भाव दिट्ठं, दोपं उववन्नंत नंताई।
तदि दुग्गइ गइ गमनं, कलरंजन भाव नरय वीयम्मि ॥ १२४ ॥

अन्वयार्थ—(जदि कलुसभाव दिट्ठं) जब भावोंमें कषायोंके उदयसे कलुषता आजाती है। (दोष उववन्नंतनताई) तब अनन्तानन्त दोष पैदा होजाते हैं। (तदि दुग्गइ गइ गमन) तब दुर्गतिमें गमन होता है। (कलरंजन भावनरय वीयम्मि) शरीरमें रंजायमान होनेसे नरकका बीज बोया जाता है।

भावार्थ—कषायोंकी तीव्रतासे प्राणीके रौद्रध्यान होजाता है तब हिंसा, असत्य, चोरी, परिग्रहकी वृद्धिमें आनन्द मानता है। कभी आर्तध्यान होनेसे शोक करता है। इष्टवियोग अनिष्ट संयोग होनेसे महाविलाप करता है। परिणामोंमें अनंतगुणी मलीनता बढती जाती है। जिससे यह प्राणी नरकादि दुर्गतिमें जाने लायक पाप बांध लेता है।

कलं च किलि किलि सहियं, कलं च कर्म भावना जाने।
अगुरं च कल सहावं, कलरंजन दोष निगोय वासम्मि ॥ १२५ ॥

अन्वयार्थ— कल च किलि किलि सहिय) शरीरके निमित्त दुःख होनेपर चिल्लाता है, हाय हाय करता है

(कल च कर्म भावना जाने) शरीरके मोहमें निरन्तर कर्मबन्धकी भावना जाननी चाहिये (अगुरं च कल सहावं) जो कुगुरु मिलते हैं वे भी शरीराशक्त होनेसे शरीरके रागमें फँसा देते हैं (कल रंजन दोष निगोय वासम्मि) शरीरमें रंजायमान होनेसे यह दोष होता है कि यह प्राणी निगोदमें जाकर जन्मता है।

भावार्थ—शरीरमें पीड़ा चिंता होनेसे यह प्राणी भारी किलकिलाहट करता है। रात दिन पीड़ा चिंतवन आर्तध्यानसे कर्मोंको बांधता है, उसको कुगुरुका उपदेश भी ऐसा मिलता है जिससे वह और भी रागी होजाता है। शरीरके मोहमें गाफिल होजाता है, शरीरके सुखमें मगन होनेका व दुःख पड़नेपर महान आर्तध्यान करनेका फल तिर्यंचगति बांधकर निगोदमें जन्म प्राप्त करना है।

कलुस भाव स उत्तं, कृत सहकार कर्म वृद्धं च।
तह धम्मं उवएसं, विस्वासं नरय वासम्मि ॥ १२६ ॥

अन्वयार्थ—(कलुस भाव स उत्त) कलुस भाव वह कहा गया है जहां क्षोभित परिणामोंसे (कृत सहकार कर्म वृद्धं च) मन वचन कायकी क्रिया की जावे उस क्रियाके सहकारसे कर्मोंका बन्ध वढ़ता जाता है (तह धम्म उवएसं) उसको ऐसे ही धर्मका उपदेश मिलता है जिससे आरंभ परिग्रहका लोभ बढ़ जाता है (विस्वास नरय वासम्मि) उस कुधर्मका विश्वास करनेसे प्राणीका वास नरकमें होजाता है।

भावार्थ—क्रोधादिकी तीव्रतासे आकुलित परिणाम होजाते हैं। उन परिणामोंसे किया हुआ कार्य कर्मबन्धको बढ़ाता है। खेदकी बात यह है कि उसको ऐसा ही धर्मका उपदेश मिलता है, जिससे वह घोर हिंसामें-द्रव्यके मोहमें फँस जाता है। फल यह होता है कि नर्कमें जाना पड़ता है।

कल इस्टं सहिट्ठं, कलसंजोय निःकलं विरयं।
ज्ञानांतर अज्ञानं, अनुमोए अनिष्ट दुग्गए पत्तं ॥१२७॥

अन्वयार्थ—(कलइस्टं सहिट्ठ) शरीरका राग ऐसा देखा जाता है कि (कलसंजोय निःकलं विरयं) शरीरके संयोगसे आत्मवीर्य घट जाता है। (ज्ञानातर अज्ञानं) ज्ञानमें अज्ञान रहता है। (अनुमोए अनिष्ट दुग्गए पत्तं) अनिष्ट कार्योंकी अनुमोदना करनेसे दुर्गतिका लाभ होता है।

भावार्थ—जो शरीरके अत्यन्त रागी हैं वे आत्मवीर्यको प्रकाश नहीं कर सक्ते हैं। उनसे व्रत, उपवास, त्याग नियम नहीं होता। धर्मयात्राका साहस नहीं होता। धर्म कार्यमें विलकुल शिथिल होजाते हैं। लौकिक कार्योंमें भी साहस नहीं चलाते हैं। युद्धके अवसरपर कायर होजाते हैं। थोड़ासा भी परिश्रम बरदास्त नहीं करते हैं। शरदी, गर्मी नहीं सह सक्ते हैं। ज्ञानमें शरीरके मोहसे अज्ञान छाजाता है। आत्मोन्नति पर बिलकुल दुर्लक्ष्य रहता है। जिससे आत्माका हित नहीं होता है व शरीरका राग सधता है व शरीरके विषय पुष्ट होते हैं, उनमें प्रसन्नता बतानेसे दुर्गतिका बंध पड़ जाता है।

कल इस्ट अनिस्ट दिस्टं, इस्टं विओय ज्ञान विज्ञानं।
अनिस्ट रूवे रूवं, अनुमोयं अनिस्ट दुग्गए पत्तं ॥ १२८ ॥

अन्वयार्थ—(कल इस्ट अनिस्ट दिस्टं) जितना कुछ शरीरका राग है वह आत्माके हितमें अनिष्ट देखा गया है (ज्ञान विज्ञानं इस्ट विओय) ज्ञान विज्ञान जो आत्माको इष्ट हैं उनसे वियोग रहता है (अनिस्ट रूवे रूवं) अनिष्ट बातोंमें स्वभाव रंग जाता है (अनिस्ट अनुमोय दुग्गए पत्तं) अनिष्टकी अनुमोदनासे दुर्गतिका लाभ होता है।

भावार्थ—शरीरको आलस्य व सुखियापन पसन्द है, निद्रा पसन्द है, इन्द्रिय विषयका पोषना पसंद है, वहां आत्माका अवश्य अनिष्ट होता है। ऐसा शरीरका मोही पूजा, सामायिक, स्वाध्याय, उपवास, वैयावृत्त्य, परोपकार कोई भी धर्मके काम नहीं कर सक्ता है। ज्ञानविज्ञानकी, भेदज्ञानकी, आत्मज्ञानकी बातमें तो उस मोहीका मन ही नहीं लगता है। आत्माका अनिष्ट जिन विषयोंसे व कषायोंसे होता है उन हीका वह स्वभावसे रागी होजाता है। आत्माका जिनसे अहित होता है उन ही बातोंको यह पसंद करता है—फल दुर्गति लाभ है।

कलं सुभाव स उत्तं, कलियं विज्ञान अज्ञान संजोयं।
सुतं च विकह सहावं, अनुमोयं अनृत सरनि संसारे ॥ १२९ ॥

अन्वयार्थ—(कलं सुभाव स उत्त) शरीरका स्वभाव ऐसा कहा गया है कि (कलियं विज्ञान अज्ञान सजोयं) उसके मोहमें पड़कर विज्ञानको अज्ञानके साथ मिला देता है (सुत च विकह सहाव) विकथाओंके करनेके

स्वभावको शास्त्र पठन समझता है (अनृत अनुमोय सरनि संसारे) मिथ्या, असत्य, अहितकारी बातोंकी अनु-मोदना करनेसे संसारका ही मार्ग बढ़ता है।

भावार्थ—जो शरीरका मोही होता है वह शास्त्र ज्ञानको भी मिथ्या ज्ञानमें परिणमन कर देता है। अध्यात्म ज्ञानका विपरीत अर्थ लगाकर आत्माको अकर्ता अभोक्ता मानकर उसके कर्म बन्ध न जानकर शरीरके आराममें व विषयभोगमें और अधिक स्वच्छन्द होजाता है। तथा शास्त्रोंको पढ़ते हुए जहां युद्ध कथा व नगरकी शोभा व स्त्रीके रूपका वर्णन आता है उसमें अधिक रंजायमान होता है। शास्त्रमें जो पुण्य पापका फल बताया है उसपर दृष्टिपात नहीं करता है। मिथ्या विषयभोगोंमें व संसारकी विभूतिमें प्रसन्नता बतानेसे वह संसारके मार्गको ही बढ़ाता है।

सुतं च अनेय भेयं, वयनं आलाप भेयं वहु भेयं ।
कल सहाव विज्ञानं, अनिस्ट अनुमोय सरनि संसारे ॥ ॥१३०॥

अन्वयार्थ—(सुतं च अनेय भेयं) शास्त्रके अनेक भेद हैं (वयन आलाप भेयं बहु भेयं) वचनोंके आलाप व उनकी अपेक्षाके बहुतसे भेद हैं (कल सहाव विज्ञान) उनको अज्ञानी शरीरके स्वभावमें आरोपण कर लेता है (अनिष्ट अनुमोय सरनि ससारे) इस अनिष्टकी अनुमोदना करनेसे संसारका मार्ग बढ़ाता है।

भावार्थ—प्रथमानुयोग शास्त्रोंमें कथाओंका वर्णन होता है, उन कथनोंमें स्थान स्थापर नानाप्रकार वीर, शृंगार, बीभत्स तथा शांतरसका वर्णन होता है। कहीं व्यवहार-प्रधान व कहीं निश्चय-प्रधान उपदेश चरणानुयोग व द्रव्यानुयोगके शास्त्रोंमें होता है। उस सर्व कथनकी भिन्न २ अपेक्षा व नयोंको न समझकर अज्ञानी शरीरका मोही जीव उनको शरीरके मोहमें लगा लेता है। विषयोंकी [illegible]की बातोंको पढ़कर आप विशेष विषयानुरागी होजाता है। राजाओंके व चक्रवर्तियोंके भोग जानकर आप अधिक भोगासक्त होजाता है। निश्चय नयके कथनको व्यवहारमें लगाकर आचारमें स्वच्छन्द हो अधिक विषयलम्पटी होजाता है। इसतरह शरीरका मोही शास्त्रज्ञानसे भी शरीरका राग बढ़ाकर अपने संसारको ही बढ़ाता है।

गाह दोह छन्दानं, सामुद्रिक व्याकरण जोय संजुत्तं ।
सुरं च स्वास निःस्वासं, चंदं सूरं च गहन पज्जलियं ॥ १३१ ॥

प्रपंच विभ्रम सहियं, अनेय भेय सरनि संसारे ।
लोकमूढ कल रंजं, कलुस भाव नंत सरनि संसारे ॥ १३२ ॥

अन्वयार्थ—(सामुद्रिक व्याकरण जोय मंजुत्तं) सामुद्रिक शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, ज्योतिष शास्त्र व योग शास्त्र इनकी (गाह दोह छन्दानं) गाथा दोहा छन्दोंको जानकर (सुर च स्वास नि स्वामं) श्वासोच्छ्वासके सुरोंको प्राणायामकी रीतिसे जानकर (चद सुरं च गहन पज्जलिय) चन्द्रमा व सूर्यके ग्रहणको व उनके प्रकाशके भेदोंको जानकर (संसारे सरनि अनेय भेय प्रपंच विभ्रम सहिय) इस संसार–मार्गमें अनेक प्रकार प्रपंच व भ्रम भावको बढा लेता है (लोकमूढ कल रजं) लोकमूढताके साथ शरीरमें रंजायमान रहता है (कलुस भाव नंत सरनि संसारे) क्रोधादिसे कलुषित भावोंके करनेसे अनन्त संसारका मार्ग ही बनाता है ।

भावार्थ—शरीर मोही अज्ञानी जीव व्याकरण, ज्योतिष, सामुद्रिक शास्त्र, चन्द्रमाका व सूर्यका उदय अस्त ग्रहणादि व प्राणायामकी रीतियोंको जानकर उनसे अपना शरीरका मोह ही पुष्ट करता है, निरन्तर शरीरकी दशापर विचार किया करता है । यदि भविष्य अच्छा दीखता है तो बड़ा रंजायमान होता है । यदि भविष्य बुरा दीखता है तो बहुत भ्रममें व आकुलतामें पड़ता है व मूढतासे नानाप्रकार जप तप कराता है जिससे भविष्यका होनेवाला विघ्न टले । रात दिन चिन्तातुर रहता है । हरएक कामको करते हुए शोकित रहता है, कि होगा या नहीं, इसतरह इन शास्त्रोंको जानकर भी और अधिक अपनी आकुलता बढा लेता है, अशांतभावमें उलझ जाता है । कषायोंकी तीव्रतासे वह विचारा अपना संसार-मार्ग और अधिक बढा लेता है । व्याकरणादि शास्त्रोंके पढ़नेका सदुपयोग यह था कि आत्मकल्याणकारक शास्त्रोंको जानता और अपनी कषायोंको मंद करता । परंतु यह अज्ञानी उल्टा अपना अहित ही करता है । अनन्त संसार दृढ करता है । वास्तवमें शरीरका राग महान् दुःखदाई है ।

तवं च वय संजुत्तं, कल सहकार अनिस्ट दिस्टि संयुत्तं ।
तव वय क्रमय संजुत्तं, अनेय विभ्रम नरय वीयम्मि ॥ १३३ ॥

अन्वयार्थ—(तव च वय संजुत्त) जो कोई तप या व्रतोंको पालता है परंतु (कल सहकार अनिस्ट दिस्टि सजुत्तं)

शरीर सहकारी आत्माको अनिष्ट दृष्टि वर्तती है तो (तव वय कुमय सजुत्त) वह तप या व्रत कुमति सहित होता है (अनेय विभ्रम नरय बीयम्मि) उससे अनेक भ्रम परिणामोंमें रहते हैं, जिससे नरकका बीज बोया जाता है।

भावार्थ—जिसके भावोंमें आत्मज्ञान नहीं होता है, न आत्माको हितकारी मोक्षमार्गका विचार होता है वह यदि तप या व्रतोंको भी पालता है तो उससे शरीरके इंद्रियजनित सुख ही चाहता है। मैं देव होजाऊँ, राजा महाराजा चक्रवर्ती होजाऊँ और खूब विषयभोग करूँ, इस भावनासे किया हुआ तप या व्रत कुमति ज्ञान सहित होता है। ऐसे तप व व्रतको साधते हुए भी परिणामोंमेंसे भोगकी तृष्णा नहीं मिटती है। वे परिणाम कभी २ इतने मोहासक्त होते हैं व कृष्णादि खोटी लेश्या सहित होते हैं जिनसे नरकगति जाने योग्य पापबन्ध होता है। वास्तवमें शरीरका राग वारवार शरीरकी ही प्राप्तिका कारण है। जैसा समाधिशतकमें कहा है—

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना। बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ ॥

भावार्थ—इस शरीरमें आत्मा माननेकी भावना अन्य अन्य देहके पानेका बीज है। और आत्मामें ही आत्माकी भावना करनी शरीर रहित होनेका बीज है।

कलं सुभाव न ऋतं, ऋतं जानेइ ज्ञान सहकारं।
कल रंजन दुवुहि युतं, अनृत सहकार दुग्गए पत्तं ॥ १३४ ॥

अन्वयार्थ—(कल सुभाव न ऋतं) शरीरका स्वभाव सत्य नहीं है (ज्ञान सहकारं ऋतं जानेइ) सम्यग्ज्ञानकी सहायतासे सत्यका ज्ञान होता है (कल रंजन दुवुहि युतं) शरीरको प्रसन्न रखनेकी बुद्धि सहित जो प्राणी होता है वह (अनृत सहकार दुग्गए पत्तं) असत्यकी मददसे दुर्गति पाता है।

भावार्थ—जो नित्य एक स्वभावरूप द्रव्यकी अपेक्षा बना रहे उसे सत्य कह सक्ते हैं सो सत्यरूप एक आत्मा ही है। शरीर माता पिताके संयोगसे और पुद्गल परमाणुओंके मेलसे बना है, निरन्तर बनता विगड़ता रहता है, आयुकर्मके आधीन है, यह एकसा नहीं रहता है, बालकसे कुमार, कुमारसे युवान, युवानसे वृद्ध होजाता है। कभी रोगी, कभी निरोगी रहता है, एक दिन छूट जाता है तब सड़ने गलने लगता है, जला दिया जाता है व गाड़ दिया जाता है। इस शरीरको सत्य स्थाई व अपना मानना भारी

भूल है। यह तो एक छूटजानेवाली कुटी है। सत्य पदार्थ अपना आत्मा है, उसका बोध यथाथ ज्ञानके उपदेशसे होता है, उसकी बुद्धि शरीरके रागमें उलझी हुई है, वह दुर्बुद्धिका धारी नानाप्रकार राग द्वेष भाव करके इस असत्य शरीरके मोहसे दुर्गति चला जाता है। समाधिशतकमें कहा है—

प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ। स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥ ६९ ॥

भावार्थ—जैसे सेनाके चक्रमें पुराने सिपाही मरते हैं, नए उनकी जगह आजाते हैं, सेनाका चक्र एकसा नहीं रहता है, इसीतरह शरीरमें नए परमाणु मिलते हैं, पुराने गलते हैं। इस चञ्चल शरीरको स्थिर वे ही मानते हैं जो बुद्धि रहित हैं व इसे ही आत्मा मानना घोर मोह व मूढता है।

कलं सहाव समलयं, निम्मल जानेहि मोच्य सुभावं।
मलं च मल उववन्नं, कल रंजन अज्ञान सरनि संसारे ॥ १३५ ॥

अन्वयार्थ—(कल सहाव समलयं) शरीरका स्वभाव मलसे भरा हुआ है (निम्मल जानेहि मोच्य सुभावं) अज्ञानी इस शरीरको शुचि स्वभाव तथा निर्मल जानता है (मलं च मल उववन्नं) यह शरीर मैला है व मैल ही इससे उत्पन्न होता है (कल रंजन अज्ञान सरनि संसारे) इस शरीरमें रंजायमान होनेका जो अज्ञान है वह संसारमें भ्रमण करानेवाला है।

भावार्थ—यह शरीर मलसे उत्पन्न है। पिताका वीर्य व माताके रजसे इसकी उत्पत्ति है तथा इसके भीतर रुधिर, मांस, हाड, चाम, वीर्य, पीप, मल मूत्र, पसीना, कृमिजाल आदि मलीन पदार्थ ही भरे हैं व यह इतना घिनावना है कि यदि ऊपरकी जरासी खाल उखाड डाली जावे तो मक्खियां बैठ जायगी व अपनेसे अपना शरीर देखा नहीं जायगा। इसके नौ द्वारोंसे निरन्तर मल ही निकलता है। एक मुख, दो नाक छिद्र, दो आंखें, दो कान, दो मध्यके अङ्ग। कुछ लोग स्नान कराके व चन्दन लगाके इसे पवित्र मानते हैं सो यद्यपि लौकिकमें इसे शुचि कह दिया जावे परन्तु वास्तवमें यह शुचि नहीं होता है। नहानेके पीछे ही रोओंके छिद्रोंसे पसीना निकला करता है। जैसे कोयलेको कितना भी धोया जावे वह उजला नहीं होसक्ता वैसे इस शरीरको कितना भी साफ किया जावे यह शुचि या पवित्र नहीं होसक्ता। ऐसे शरीरमें ममत्व करना व इसे थिर मानना घोर अज्ञान है। इस अज्ञानसे संसार बढता है।

श्री ज्ञानार्णवमें शरीरका स्वभाव बताया है—

यदीदं शोध्यते दैवाच्छरीरं सागराम्बुभिः । दूषयत्यपि तान्येव शोध्यमानमपि क्षणे ॥ ६ ॥

कलेवरमिदं न स्याद्यदि चर्मावगुंठितम् । मक्षिकाकृमिकाकेभ्यः स्यात् त्रातुं कस्तदा प्रभुः ॥ ७ ॥

भवोद्भवानि दुःखानि यानि यानीह देहिभिः । सह्यन्ते तानि तान्युच्चैर्वपुरादाय केवलम् ॥ ११ ॥

भावार्थ—यदि इस शरीरको कदाचित् समुद्रके जलसे भी शुद्ध किया जाय तो उसी क्षण समुद्रके जलको भी यह अशुद्ध कर देता है । अन्य वस्तुको अपवित्र करदे तो आश्चर्य ही क्या है । यदि यह शरीर बाहरके चमड़ेसे ढका हुआ नहीं होता तो मक्खी कृमि तथा काकोंसे इसकी रक्षा करनेमें कोई समर्थ नहीं होता । ऐसे घृणास्पद शरीरको देखकर सत्पुरुष जब दूरहीसे छोड़ देते हैं तब इसकी रक्षा कौन करे ? इस जगतमें संसारसे उत्पन्न जो दुःख जीवोंको सहने पड़ते हैं वे सब इस शरीरके ग्रहणसे ही सहने पड़ते हैं। इस शरीरसे निवृत्त होनेपर फिर कोई दुःख नहीं होता है ।

कलं सहाव असुद्धं, स्नानं सौचि सुद्ध जानेहि ।

ते मूढा अज्ञानी, कल सहकारेन दुग्गई जाई ॥ १३६ ॥

अन्वयार्थ—(कल सहाव असुद्ध) इस शरीरका स्वभाव मैला है (स्नानं सौचि सुद्ध जानेहि) जो इसे स्नान करके शुचि व शुद्ध समझ लेते हैं (ते मूढा अज्ञानी) वे मूर्ख अज्ञानी हैं (कल सहकारेन दुग्गई जाई) इस शरीरके मोहसे ही प्राणी दुर्गति चला जाता है ।

भावार्थ—कोई कोई लौकिक जन गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्वदा, कावेरी आदि नदियोंमें स्नान करके अपने शरीरको पवित्र मानते हैं सो ऐसा मानना बुद्धिमानी नहीं है । क्योंकि शरीरको कितना भी बाहरसे धोया जावे यह मलको ही भीतरसे निकालता है, ऊपरसे कुछ धुल जाता है परन्तु भीतर इसकी गन्दगी जरा भी नहीं मिटती है। जैसे मदिराके भरे घडेको कितना भी धोया जावे उसमेंसे मदिराकी गन्ध दूर नहीं होती है वैसे शरीरकी अशुचि कभी नहीं मिटती है । इस शरीरसे जो मोह करके इसकी ही सेवामें लगे रहते हैं–धर्म अधर्मका विचार छोड़ बैठते हैं वे अज्ञानी दुर्गतिके ही पात्र होते हैं । शरीरको सदा क्षणभंगुर व अशुचि मानकर जो इस शरीरसे आत्मकल्याण करते हैं वे ही बुद्धिमान हैं ।

कलं च असुचि सहावं, एयंदी पुग्गलं न सौचि जानेहि ।
दोषं दोष उपपत्ती, अनुमोयं संसार सरनि वीयम्मि ॥ १३७ ॥

अन्वयार्थ—(कलं च असुचि सहाव) शरीर स्वभाव ही अशुचि है (एयदी पुग्गल न सौचि जानेहि) एकेन्द्रिय पुद्गल जल इस बातको नहीं जानता है कि किसीको शुचि कैसे करना (दोषं दोष उपपत्ती) दोषसे दोषोंकी उत्पत्ति होती है (अनुमोयं संसार सरनि वीयम्मि) जलसे शरीर पवित्र होता है। ऐसी अनुमोदना करनेसे संसार मार्गका बीज बोया जाता है।

भावार्थ—शरीर स्वभावसे ही अपवित्र है। वह एकेन्द्रिय जलसे पवित्र नहीं होसक्ता। एकेन्द्रियको इस बातका ज्ञान भी नहीं है कि मैं किसीको पवित्र करूं। अतएव जलसे शरीर पवित्र होजायगा यह भावना मिथ्या है। किन्तु शरीरके संसर्गसे जल और अपवित्र होजाता है। दोषीकी संगतिसे दोष ही उत्पन्न होता है। शरीर दोषी है, मल सहित है। जो जो वस्तु शरीरके संसर्गको प्राप्त होती है वह स्वयं अपवित्र होजाती है। शरीर स्पर्शित जल, फूलकी माला, वस्त्र आदि हरएक वस्तु स्वयं अपवित्र होजाती है। इस मिथ्याभावकी अनुमोदना करना कि जल स्नान पवित्र कर देगा मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व संसारका ही बीज है। यद्यपि लौकिक शुद्धि जलसे मानी जाती है व गृहस्थको स्नान भी करना चाहिये परंतु उससे मात्र बाहरी मैलका हटना ही मानना चाहिये—शरीर व आत्मा पवित्र होजाता है यह श्रद्धान मिथ्या है।

कलं च विप्रिय रूवं, स्थानं सर्वस्य असुद्ध जानेहि ।
ज्ञान सहाव न पिच्छं, अनुमोयं अनंत दुक्ख वीयम्मि ॥ १३८ ॥

अन्वयार्थ—(कल च विप्रिय रूव) शरीरका स्वभाव अनिष्ट है (सर्वस्य असुद्ध स्थानं जानेहि) यह सर्व पदार्थोंको अशुद्ध करनेका स्थान है ऐसा जानो (ज्ञान सहाव न पिच्छं) शरीरका मोही ज्ञान स्वभावी आत्माका श्रद्धान नहीं कर पाता है (अनुमोयं अनन्त दुक्ख वीयम्मि) इस शरीरका स्वागत करना अनन्त दुखोंका बीज है।

भावार्थ—जैसे दुष्टका स्वभाव दुष्टता करनेका होता है वैसे शरीरका स्वभाव बिगाड़ करनेका है। एक तो यह स्वयं अशुद्ध है, जो जो इसके संसर्गमें आता है उसको अशुद्ध कर देता है। आत्माका अत्यन्त अहित होजाता है, यदि शरीरसे तीव्र राग किया जाता है। शरीरके सुखियापनमें जो लीन होजाता

है वह आत्माकी बात भी सुनना पसन्द नहीं करता है। शरीरको अपने वश रखनेसे यह शरीर आत्माका उपकारी होजाता है क्योंकि शरीरके आश्रयसे ही मोक्षमार्गपर गमन किया जाता है, जप तप आदि किया जाता है। जैसे किसी बदमाशसे अपने मालकी रक्षा अन्य बदमाशोंसे करली जाती है, वैसे इस शरीरको वशमें रखके इससे आत्मकार्य कर लिया जाता है। शरीरको वश रखनेका उपाय इंद्रियोंका दासपना नहीं है किंतु इंद्रियोंको स्वाधीन रखनेसे ही शरीर वश रहता है। शरीरको वही भोजन पान देना चाहिये जिससे यह तन्दुरुस्त रहे, आलसी न बने, निद्रालु न बने, यह निर्बल न हो। इस तरह इंद्रियोंका भोग किया जावे। अन्याय व अभक्ष्यसे बचा जावे तब शरीर अपने आधीन रहता है और शरीर द्वारा बहुत धर्मसाधन होसक्ता है। ज्ञानी शरीरसे अपना उद्धार करते हुए रात दिन यही भावना भाते हैं कि ऐसा अवसर शीघ्र आवे जो शरीरका सम्बन्ध फिर कभी न हो, जन्म मरण न करना पड़े और यह आत्मा सदा ही शरीर रहित रहकर आत्मानन्दका भोग किया करे। जो शरीरके स्वभावको औरका और मानकर इसके रागमें आत्महित भूल जाते हैं वे संसारमें अनंत दुःख उठाते हैं।

कलं रूव संजुत्तं, कल इस्टी अज्ञान अनुमोय संजुत्तं।
ज्ञानांकुर अंतरयं, कल सहकारेन सरनि संसारे॥ १३९॥

अन्वयार्थ—(कल रूव सजुत्त) यह शरीर रूप सहित मूर्तीक है (कल इस्टी अज्ञान अनुमोय संजुत्त) जो इस जड़ मूर्तीक शरीरसे राग करता है वह अज्ञानकी अनुमोदना करता है (ज्ञानाकुर अतरय) उसके भीतर सम्यग्ज्ञान रूपी अँकुरके फूटनेमें अन्तराय आता है (कल सहकारेन सरनि ससारे) इस शरीरकी सहायतासे यह जीव संसार-मार्गमें भ्रमता है।

भावार्थ—आत्मा अमूर्तीक है, परमात्मा अमूर्तीक है, आत्माको उचित है कि अपने आत्मासे या परमात्मासे प्रेम करे तौ यह संसारका नाश कर सके। परन्तु अज्ञानी जीव आत्माको या अपनेको भूलकर इस छूटनेवाले जड़ मूर्तीक शरीरसे मोह करके अपनी मूढ़ताको प्रगट करता है। शरीरमें अहंबुद्धि रखनेसे आत्मज्ञान कभी नहीं जगता है। पर्याय बुद्धिसे शरीरकी ही सेवामें रंजायमान होता है इससे उसका संसार-भ्रमण कभी नहीं मिटता।

गलं च पूरन भावं, अनृत असरन असौच जानेहि ।
ज्ञानांतराय दिट्ठं, अनुमोयं कल दुग्गए पत्तं ॥ १४० ॥

अन्वयार्थ—(गल च पूरन भाव) इस शरीर पुद्गलका स्वभाव ही पूरन और गलन है (अनृत असरन असौच जानेहि) यह शरीर मिथ्या है, अशरण है, तथा अपवित्र है (ज्ञानांतराय दिट्ठ) इस शरीरका मोह ज्ञानमें अन्तराय करनेवाला देखा गया है (अनुमोय कल दुग्गए पत्त) इस शरीरकी अनुमोदनासे दुर्गति ही प्राप्त होती है ।

भावार्थ—पुद्गलके स्कन्धोंसे यह शरीर बना है । पुद्गलके स्कन्धोंमें नए परमाणु मिलते हैं पुराने झड़ते हैं, शरीरमें भी सदा नये पुद्गल मिलते हैं, पुराने झड़ते हैं। यह एकसा नहीं रहता है। पुद्गलका स्वभाव ही पूरन गलनरूप है । परमाणुमें भी गुणोंमें परिवर्तन हुआ करता है, इससे पूरन गलन स्वभाव वहां भी प्रगट है । फिर यह शरीर मिथ्या है । सत्य नित्य पदार्थ नहीं है । जब गल जाता है, जल जाता है, तब इसका कोई नाम नहीं लेता है । फिर यह शरीर अशरण है। इसकी कितनी भी रक्षा करो, किन्तु मरणकाल आता है, आयु कर्मका क्षय होता है तब यह एक मिनिट भी नहीं टिक सक्ता है, जीवितसे मृतक होजाता है । फिर यह मल-मूत्रादिका घर है इससे अशुचि है । शरीरका राग आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्नकारक है, ऐसे शरीरकी अनुमोदना अवश्य दुर्गतिका कारण है । जो शरीर त्यागने योग्य है उससे राग करना अपने क्लेशका ही कारण है । तत्वसारमें श्री देवसेनाचार्य कहते हैं—

देहसुहे पडिबद्धो जेण य सोनेण लहइ ण हु सुद्धं । तच्चं वियाररहियं णिच्चं चिय झायमाणो हु ॥ ४७ ॥
मुक्खो विणासरूवो चेयणपरिवज्जिओ सयादेहो । तस्स ममत्ति कुणतो बहिरप्पा होइ सो जीओ ॥ ४८ ॥
रोय सडण पडणं देहस्स य पिच्छिऊण जरमरणं । जो अप्पाणं झायदि सो मुच्चइ पचदेहेहिं ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जो देहके सुखमें आसक्त है वह ध्यान करता हुआ भी विकार रहित नित्य शुद्ध आत्म-तत्वका अनुभव नहीं कर पाता है । यह शरीर सदा मूर्ख है, विनाशरूप है, चेतना रहित है । जो जीव इसका ममत्व करता है वह बहिरात्मा है । इस शरीरमें रोग होते हैं यह सड़ता है, पड़ता है, जरा मरण रहित है । ऐसा देखकर जो आत्माको ध्याता है वह पांचों ही प्रकारके शरीरोंसे छूट जाता है ।

कल सम्बन्ध सरूवं, ग्रह परिवार सयल संमिलियं ।
जिन वयनं अन्तरयं, कल सुभाव नरय वीयम्मि ॥ १४१ ॥

अन्वयार्थ—(कल सम्बन्ध सरूव) शरीरके सम्बन्धका यह स्वरूप है, जो (ग्रह परिवार सयल संमिलियं) घर, कुटुम्ब, सर्व सम्बन्ध आकर मिल जाते हैं (जिन वयन अंतरयं) श्री जिन वचनके ग्रहणमें अन्तराय पड़ जाता है (कल सुभाव नरय वीयम्मि) शरीरके स्वभावमें लय होनेसे नरकका बीज बोया जाता है।

भावार्थ—शरीरकी ममतासे ही घरकी ममता होती है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, पुत्री, भाई, भगिनी आदि सर्व सम्बन्धोंकी ममता होती है। क्योंकि वास्तवमें शरीरके साथ ही सर्व परिवार कुटुम्बका नाता है। जब शरीर गिर जाता है, जला दिया जाता है तब सब नाता छूट जाता है। अतएव जिसका मोह शरीरसे है वह घर, कुटुम्ब, परिवार, सम्बन्धी, मित्र, व नौकर-चाकर सबसे तीव्र मोह रखता है। मेरा यह चाचा है, मामा है, दादा है, भाई है, यह मेरी माता है, बहिन है, भानजी है, पुत्री है, यह मेरा घर है, ग्राम है, यह मेरा वस्त्र है, आभूषण है; इसतरह सर्व ही शरीरके सम्बन्धोंको अपना मानके उनके दुःखमें दुःखी व सुखमें राजी रहा करता है। कुटुम्ब परिवारके प्रबन्धमें व घरके आरम्भमें इतना उलझ जाता है कि उसे धर्मके समझनेकी व आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी फुरसत नहीं मिलती है। वह जिनवाणी पर कभी ध्यान ही नहीं देता है। आत्म-हितको न समझ कर शरीरके मोहसे नरक जाने योग्य कर्म बांध लेता है।

कल सम्बन्ध स उत्तं, पर अप्पा भाव सुपएसं।
ज्ञानांतरं स दिट्ठं, पर अनुमोय सरनि संसारे ॥ १४२ ॥

अन्वयार्थ—(कल सम्बन्ध स उत्त) शरीरका सम्बन्ध ऐसा कहा जाता है जिससे (पर सुपएसं अप्पा भाव) पुद्गलके प्रदेशोंमें आत्मापनेका भाव होजाता है (ज्ञानांतरं स दिट्ठं) ऐसा मिथ्याज्ञान देखा जाता है (पर अनुमोय सरनि संसारे) ऐसे परकी अनुमोदनासे संसारमें भ्रमण होता है।

भावार्थ—बहुतोंको आत्मा कोई भिन्न पदार्थ है शरीरसे अलग है, ऐसी श्रद्धा बिलकुल नहीं होती है। शरीरके प्रदेशोंको ही–पुद्गलको ही आत्मा मान लेते हैं। ऐसा विपरीत नास्तिकताका ज्ञान उदय हो.

जाता है जिसके प्रतापसे शरीरके राग-रंगमें ही आसक्त होजाता है। पुण्य पापकी कल्पना मनसे हटती जाती है। स्वच्छन्द होकर धन एकत्र करके विषयभोगोंमें लगजाता है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशीलादि पापोंसे ग्लानि जाती रहती है। ऐसे शरीरमें मगन होनेका फल संसारमें भ्रमण है।

कल सम्बन्ध सुभावं, पर पज्जाय अप्प सं उत्तं।
अज्ञानं मिच्छातं, अनुमोय नरक दुक्ख वीयम्मि॥ १४३॥

अन्वयार्थ—(कल सम्बन्ध सुभावं) शरीरके सम्बन्धसे ऐसा स्वभाव बन जाता है जिससे (पर पज्जाय अप्प स उत्तं) पौद्गलिक पर्यायको ही व कर्मके उदयको ही आत्मा मान लेता है (अज्ञानं मिच्छातं) इस अज्ञान और मिथ्यात्वकी (अनुमोय) अनुमोदना करनेसे (नरक दुक्ख वीयम्मि) नरकके दु खोंका बीज बोदिया जाता है।

भावार्थ—कर्मके उदयसे रागद्वेष मोहादि अनेक पर या औपाधिक भाव होते हैं। अज्ञानी मिथ्यादृष्टी इन अशुद्ध भावोंको ही आत्मा मान लेता है। उसको वीतराग विज्ञानमई आत्मीक स्वभावकी प्रतीति नहीं आती है। इस पर परिणतिमें आपा माननेकी मिथ्या बुद्धिका फल यह होता है कि वह कभी रागद्वेष मोहादिके त्यागनेका यत्न नहीं करता है। किन्तु इन विभावोंको स्वभाव जान लेनेसे उनहीके अनुकूल असत् प्रवृत्ति करके—अन्यायमें व्यवहार करके नरक जाने योग्य पापकर्म बांध लेता है। पर्याय बुद्धिका अहङ्कार महा कष्टप्रद है।

कल अनुमोय स उत्तं, पर पज्जय वयन अप्पानं।
पर वृद्धं च स उत्तं, ज्ञानांतरं नरय दुक्ख वीयम्मि॥ १४४॥

अन्वयार्थ—(कल अनुमोय स उत्तं) शरीरकी अनुमोदना ऐसी कही गई है जिससे (पर पज्जय वयन अप्पान) पर पर्यायको आत्मा कहा जाता है (पर वृद्धं च स उत्तं) परकी वृद्धिको आत्माकी वृद्धि कही जाती है। (ज्ञानांतरं नरय दुक्ख वीयम्मि) यह मिथ्याज्ञान नरकके दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—इसका भाव भी यही है कि शरीररूप ही आत्माको जब माना जाता है तब शरीर जन्मा तो मैं जन्मा, शरीर बड़ा हुआ तो मैं बड़ा हुआ, शरीर जवान है तो मैं जवान हूं, शरीर वृद्ध है तो मैं वृद्ध हूं, शरीर मरा तो मैं मरा, ऐसी वचन—प्रणाली निकला करती है। शरीरमें ही आपपनेके मिथ्याज्ञानसे यह प्राणी

शरीरके बने रहनेके लिये अन्याय व अभक्ष्यके सेवनमें स्वच्छन्द रहता है जिससे नरकके दुःखोंका कारण पापकर्म बांध लेता है।

कल संकप्प वियप्पं, कल दिस्टी च अनिस्ट संजुत्तं।
ज्ञान सहाव न दिट्ठं, ज्ञानावरण दुःख संतानं ॥ १४५ ॥

अन्वयार्थ—(कल संकप्प वियप्पं) शरीर सम्बन्धी नानाप्रकार संकल्प विकल्प होते हैं (कल दिस्टी च अनिस्ट संजुत्त) शरीरकी दृष्टि ही व शरीरकी अहंबुद्धिरूपी श्रद्धा ही अनिष्ट करनेवाली है (ज्ञान सहाव न दिट्ठ) जिससे ज्ञान स्वभावी आत्माका दर्शन नहीं होता है (ज्ञानावरण दुःख संतानं) इससे ज्ञानावरण कर्मका प्रचुर बन्ध होता है तब दुःखकी सन्तान पड़ जाती है।

भावार्थ—शरीरमें आत्माकी मान्यताको संकल्प कहते हैं। शरीरके सम्बन्धमें दुःख सुखकी कल्पनाको या शरीर सम्बन्धी शङ्काको कि यह शरीर क्या है व क्या नहीं है, विकल्प कहते हैं। इस तरहके नानाप्रकारके अशुद्ध विचारोंके भीतर फँसा हुआ प्राणी शरीर बुद्धिवाला होकर अपना अनिष्ट करता है। उसको मैं ज्ञान स्वभाव आत्मा हूं ऐसी श्रद्धा नहीं आती है। घोर अज्ञानसे ऐसा तीव्र ज्ञानावरणका बन्ध करता है कि मरकर निगोदमें चला जाता है जहां ज्ञान बहुत ही मन्द होजाता है। फिर वहांसे उन्नति करके मनुष्य होना बड़ा ही दुर्लभ है। इसकी दुःखकी परिपाटी पड़ जाती है।

कल परिनाम उवन्नं, लाज भय गारवेन दिट्ठेई।
ससंक जान सहकारं, कल संजोय दुक्ख वीयम्मि ॥ १४६ ॥

अन्वयार्थ—(कल परिनाम उवन्नं) शरीर सम्बन्धी परिणाम जब पैदा होजाता है (लाज भय गारवेन दिट्ठेई) तब लज्जा, भय व मदके साथ देखा जाता है (ससंक ज्ञान सहकारं) भय सहित व शङ्का सहित ज्ञानकी सहायतासे (कल संजोय दुक्ख वीयम्मि) शरीरके संयोगसे दुःखका बीज बोता है।

भावार्थ—शरीरमें रागभाव रखता हुआ यह प्राणी लज्जाके भावसे सदा शङ्कित रहता है। ऐसा वस्त्र न पहनूंगा, ऐसा श्रृङ्गार न करूँगा, ऐसी बैठनेकी जगह न बनाऊँगा तो मेरी लाज जायगी। तथा भय होता है कि कोई मेरी निन्दा न करे, कोई मेरा बुरा न करदे, कहीं रोग न पैदा होजावे, कहीं मरण न होजावे, कहीं माल

असबाब चोरी न चला जावे। तथा गारव या मद होता है। यदि रूपवान शरीर हुआ तो रूपका मद करता है, बलवान शरीर हुआ तो बलका मद करता है, यदि युवान शरीर हुआ तो जवानीका मद करता है, यदि रसीले पदार्थ खाता है तो रस पानेका गर्व करता है। यदि सुन्दर वस्त्र अलङ्कार रखता है, महल व उपवन रखता है, मान्यता रखता है तो उसका गर्व करता है। इसतरह लज्जा, भय, मदके भावमें शङ्का सहित रहता हुआ शङ्कित ज्ञानसे महान् कर्म बांधकर दुःखका बीज बोता है।

कलं च उत्सह दिट्ठं, अज्ञानं सहाव अनुमोय संदिट्ठं।
ज्ञानांकुरं न लहियं, ज्ञानावरण नरय बीयम्मि ॥ १४७ ॥

अन्वयार्थ—(कल च उत्सह दिट्ठ) शरीर सम्बन्धी ऐसा उत्साह देखा जाता है कि (अज्ञान सहाव अनुमोय संदिट्ठ) अज्ञानमई स्वभावकी अनुमोदना किया करता है (ज्ञानांकुर न लहियं) सम्यग्ज्ञानके अंकुरको नहीं पाता है (ज्ञानावरण नरय बीयम्मि) ज्ञानावरण कर्मको बांधकर नरकका बीज बोता है।

भावार्थ—शरीरके तीव्र रागसे शरीरकी चेष्टाका बड़ा उत्साह होजाता है। जैसे अपनेको रूपवान बलवान, भोगासक्त, ऐशआराममें देखकर राजी होता है वैसे दूसरोंको इसप्रकार भोगासक्त व शरीरसे सुखी देखकर राजी होता है। जो उद्यम करके धन कमाकर शरीरको सुखी रखते हैं उनकी बड़ी अनुमोदना करता है। जो कदाचित् धर्मका सेवन कर व्रत उपवास करके शरीरको कुछ कृश करते हैं व धर्मसेवन करते हुए पूर्वजन्मके पापके उदयसे शरीरके सुखमें ओछे रहते हुए कष्टसे खाते पीते हैं व वस्त्राभूषण कम रखते हैं उनसे घृणा करता है। इस अज्ञान स्वभावकी अनुमोदना करनेसे उसके भीतर आत्मज्ञानका अंकुर फूटना अतिशय कठिन होजाता है। वह तीव्र ज्ञानावरण कर्म और नरक आयु बांधकर नरक चला जाता है।

कलरंजन दोष उवन्नं, असुद्ध अज्ञान अनुमोय सहकारं।
पर पुग्गलं सरूवं, कलरंजन दोष दुग्गए पत्तं ॥ १४८ ॥

अन्वयार्थ—(कलरंजन दोष उवन्न) शरीरमें रंजायमान होनेसे बहुतसे दोष पैदा होते हैं (असुद्ध अज्ञान अनुमोय सहकार) जो बातें अशुद्ध हैं व अज्ञानमय हैं उनकी अनुमोदना करता है (पर पुग्गल सरूव) आत्मासे

भिन्न जो पुद्गल है उसमें तन्मय होता है (कलरंजन दोष दुगए पत्त) शरीरके रागका दोष यह है कि यह प्राणी दुर्गति पाता है।

भावार्थ—शरीर ही को सब कुछ मानके जो शरीरमें रागी हैं वे शुद्ध आत्मीक भावोंपर लक्ष्य न देते हुए अशुद्ध विषय कषायमें रागी रहते हैं तथा अनेक प्रकार देव मूढता, गुरु मूढता व लोकमूढतामें फंसे रहते हैं। उनकी दृष्टि पुद्गल ही पर रहती है। शरीरकी उन्नतिमें अपनी उन्नति व शरीरके क्षयमें अपना क्षय समझते हैं। ऐसे मोही प्राणी दुर्गतिके योग्य कर्म बांधते हैं।

कलरंजन जिन उवएसं, सुद्ध सम्मत्त ज्ञान सहकारं।
दंसन अनंतदर्सं, अप्पा परमप्प सुद्ध सुभावं ॥ १४९ ॥

अन्वयार्थ—(कलरजन जिन उवएसं) शरीरके रागभावका उपदेश जो जिनेन्द्रने दिया है वह इसीलिये कि उसका राग छूटे जिससे (सुद्ध सम्मत्त ज्ञान सहकारं) शुद्ध सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका प्रकाश हो (दंसन अनन्त दर्सं) अनन्तदर्शनरूपी दर्शन प्रगट हो तथा (अप्पा परमप्प सुद्ध सुभावं) आत्माका परमात्मामय शुद्ध स्वभाव झलक जावे।

भावार्थ—ऊपर जो कई गाथाओंमें शरीरके रागके दोष बताए हैं वह इसीलिये बताए हैं कि इस प्राणीका रागभाव इस नाशवंत पुद्गलमय शरीरसे छूट जावे और शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका प्रकाश होजावे। जबतक पर्याय बुद्धिका अहंकार नहीं मिटता है तबतक निसर्ग मिथ्यात्वका अभाव नहीं होता है। मिथ्यात्व गए विना सम्यक्त प्रगट नहीं होता। सम्यक्तके प्रकाश होनेपर उसका अन्तिम फल यह होता है कि यह आत्मा कर्म काटकर परमात्मा होजाता है, जहां अनन्तदर्शन व अनन्त-ज्ञान प्रगट रहते हैं। सारसमुच्चयमें कहा है—

सम्यक्त्वभावशुद्धेन विषयासंगवर्जितः। कषायविरतेनैव भवदुख विहन्यते ॥ ५० ॥

भावार्थ—जिसके भावोंमें शुद्ध सम्यक्त है व विषयोंके संगसे रहित है व जो कषायोंसे विरक्त है वह संसारके दुःखोंको नाश कर डालता है।

चारित्र कथन ।

चरनं पि दुविह भेयं, सहकारेन तवंपि विमलं च ।
दंसन चौविहि उत्तं, ज्ञानं अवयास तजंति अज्ञानं ॥ १५० ॥

अन्वयार्थ—(चरनं पि दुविह भेय) **चारित्र दो प्रकारका है** (सहकारेन तवंपि विमलं च) **उस चारित्रके साथ२ निर्मल तप भी करना योग्य है** (चौविहि दंसन उत्तं) **जिससे चार प्रकारका दर्शन होता है ऐसा कहा गया है** (ज्ञान अवयास तजंति अज्ञान) **तथा पूर्ण ज्ञान होता है और अज्ञान मिट जाता है।**

भावार्थ—**सम्यग्दर्शनके प्राप्त होजानेपर रागद्वेषके दूर करनेके लिये चारित्र पालना चाहिये। वह चारित्र सकल और निकल दो प्रकारका है। जैसा रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—**

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसज्ञान । रागद्वेषनिवृत्यै चरण प्रतिपद्यते साधु ॥ ४७ ॥
हिसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्या च । पापप्रणालिकाभ्यो विरति संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥
सकलं विकल चरण तत्सकल सर्वसगविरतानाम् । अनगाराणा विकल सागाराणा ससंगानाम् ॥ ५० ॥
गृहिणा त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मक चरणम् । पचत्रिचतुर्भेद त्रय यथासंख्यमाख्यातम् ॥ ५१ ॥

भावार्थ—**दर्शनमोहरूपी अन्धकारके मिट जानेपर सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका लाभ होता है। फिर भी राग द्वेषोंको दूर करनेके लिये साधु चारित्रको पालते हैं।**

हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह ये पांच पाप आनेकी मोरी हैं, इनसे विरक्त होना सो सम्यग्ज्ञानीका चारित्र है।

चारित्र दो प्रकारका है–सर्व परिग्रहसे विरक्त गृह रहित साधुओंका सकल चारित्र है तथा परिग्रहधारी गृहस्थी श्रावकोंका विकल चारित्र है।

साधुको १३ प्रकार चारित्र पालना चाहिये—

१–अहिंसा महाव्रत—स्थावर व त्रस प्राणियोंकी रक्षा। मन, वचन, कायसे हिंसाका व द्वेषका भाव न रखना।

२–सत्य महाव्रत—शास्त्रोक्त सत्य वचन कहना।

३–अचौर्य महाव्रत—विना दी हुई किसी वस्तुको न लेना।

४–ब्रह्मचर्य महाव्रत—मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदनासे पूर्ण शीलव्रतको पालना।

५–परिग्रह त्याग—धन धान्य, वस्त्रादि परिग्रहको त्यागकर कषायोंसे विरक्त रहना।

पांच समिति—

१–ईर्या समिति—चार हाथ भूमि आगे देखकर दिनमें जंतुरहित भूमिपर चलना।

२–भाषासमिति—शुद्ध मधुर हितकारी भाषा कहना।

३–एषणासमिति—शुद्ध भोजन जो गृहस्थीने अपने कुटुम्बके लिये बनाया हो उसे भिक्षापूर्वक लेना।

४–आदाननिक्षेपण समिति—पीछी कमण्डल शास्त्र व देहको देखकर रखना उठाना।

५–उत्सर्ग समिति—मल मूत्र निर्जन्तु भूमिपर करना।

तीन गुप्ति—मनको वश रखना, वचनको वश रखना, कायको वश रखना।

इन तेरह प्रकारके चारित्रको पूर्ण रूपसे पालना साधुओंका सकल चारित्र है।

गृहस्थियोंका चारित्र पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकारका है।

पांच अणुव्रत—

१–अहिंसा अणुव्रत—संकल्पी त्रस हिंसा न करना, आरम्भीका त्याग नहीं जो गृहारंभ व उद्यममें व विरोधियोंके साथ होती है।

२–सत्य अणुव्रत—राज्य दण्ड व पंच दण्ड योग्य असत्य न कहना।

३–अचौर्य अणुव्रत—गिरी पड़ी भूली भटकी किसीकी वस्तु न उठाना न ठगना न लूटना।

४–ब्रह्मचर्य अणुव्रत—अपनी विवाहिता स्त्रीमें सन्तोष रखना।

५–परिग्रह प्रमाण अणुव्रत—रुपया, मकान, वस्त्रादि परिग्रहका जन्मभरके लिये प्रमाण कर लेना।

तीन गुणव्रत–जो अणुव्रतोंका मूल्य बढ़ा देते हैं—

१–दिग्व्रत—जन्मभरके लिये दसों दिशाओंमें लौकिक कामके लिये जानेकी मर्यादा बांध लेना।

२–अनर्थदण्ड त्याग व्रत—पांच प्रकार अनर्थके पाप न करना।

१–पापोपदेश, २ अपध्यान, ३ हिंसा दान, ४ दुःश्रुति, ५ प्रमादचर्या।

३–भोगोपभोग परिमाण व्रत—दिन भरके लिये भोग्य उपभोग्य पदार्थोंका प्रमाण कर लेना।

चार शिक्षाव्रत—

१–देशव्रत—नित्यप्रति दसों दिशाओंमें जानेका प्रमाण करना।

२–सामायिक—शांतिसे एकांतमें बैठ एक, दो व तीन दफे सबेरे दोपहर शामको ध्यान करना।

३–प्रोषधोपवास—अष्टमी चौदसको उपवास व एकासन करना, धर्मध्यानमें समय विताना।

४–वैय्यावृत्य—साधु या अन्य पात्रोंको दान देकर भोजन करना, सकल व विकल चारित्रको पालते हुए यथाशक्ति बारह प्रकार तप भी पालना चाहिये।

छः बाह्य—१ अनशन। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहार त्याग उपवास करना।

२–ऊनोदर—भूखसे कम खाना।

३–वृत्तिपरिसंख्यान—कोई प्रतिज्ञा लेकर भोजनको जाना, पूरी होनेपर लेना।

४–रस परित्याग—दूध, दही, घी, मीठा, तेल, निमक इन छःमेंसे एक दो तीन चारको छोड़ना।

५–विविक्त शयनासन—एकांतमें शयन करना व बैठना।

६–कायक्लेश—कठिन २ स्थानोंपर जाकर ध्यान करना।

छ अन्तरंग—

१–प्रायश्चित्त—दोष होनेपर दण्ड ले शुद्धि करना।

२–विनय—धर्म व धर्मात्माओंका आदर करना।

३–वैय्यावृत्य—रोगी दुखी धर्मात्माओंकी सेवा करना।

४–स्वाध्याय—शास्त्रको ध्यानसे पढ़ना।

५–व्युत्सर्ग—ममत्वका त्याग करना।

६–ध्यान—आत्मध्यान करना।

इसतरह तप सहित पूर्ण चारित्र पालनेसे अवधि दर्शन, केवलज्ञान, केवल दर्शन आदि गुण प्रगट होते हैं, अज्ञान मिटता है।

शुद्ध स्वभाव दृष्टि ।

सुद्ध सहावं पिच्छदि, अप्पा सुद्धप्प विमल झानत्थं ।
विज्ञान ज्ञान सुद्धं, ज्ञान सहावेन सयल तं भनियं ॥ १५१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं पिच्छदि) सम्यग्दृष्टी शुद्ध आत्मीक स्वभावका श्रद्धान रखता है (झानत्थं अप्पा सुद्धप्प विमल) ध्यानके लिये आत्माको शुद्ध निर्मल परमात्मारूप विचारता है (विज्ञान ज्ञान सुद्ध) इसीसे उसका भेदज्ञान तथा ज्ञान शुद्ध होता जाता है (ज्ञान सहावेन सयल तं भनियं) ज्ञान स्वभावमें रमन करनेसे उसको पूर्ण केवलज्ञानपना प्राप्त होता है ऐसा कहा गया है ।

भावार्थ—सम्यक्ती जीव शुद्ध स्वरूपका श्रद्धानी आत्मध्यानका अभ्यास करता रहता है । परमात्मारूप मैं हूं ऐसा ध्यानेसे उसका भेदविज्ञान–आत्मा और अनात्माका विवेक निर्मल होता जाता है । ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे ज्ञान बढ़ जाता है । तथा इस ज्ञान भावनाकी श्रेष्ठता प्राप्त कर लेनेपर उसको केवलज्ञानका लाभ होजाता है । वास्तवमें आत्माकी मुक्तिका उपाय निज आत्मानुभव है । जिसके लिये सम्यक्तीका सहज ही पुरुषार्थ होता है ।

अज्ञानं नहु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन रूव रूवं च ।
दुबुहि रूव नहि दिट्ठं, सुद्धं ज्ञानं च रूव मिलियं च ॥ १५२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानं नहु पिच्छदि) सम्यग्दृष्टीके मिथ्याज्ञान नहीं देखा जाता है (ज्ञान सहावेन रूव रूवं च) ज्ञान स्वभावसे आत्माके स्वभावको जानता है (दुबुहि रूव नहि दिट्ठं) उसके कुमति कुश्रुत ज्ञान रूप दुर्बुद्धि नहीं देखी जाती है (सुद्ध ज्ञानं च रूव मिलियं च) उसका ज्ञानोपयोग शुद्ध ज्ञान स्वभावमें मिल जाता है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके कुमति, कुश्रुति व कुअवधि ज्ञान कभी नहीं होता है । उसके पर अहितकारिणी बुद्धि नहीं पैदा होती है । वह शुद्ध आत्माका ध्यान करके अपने उपयोगको उसमें जोड़ता है । वह आत्मानुभवका बड़ा ही रसिक होता है ।

सम्यक्त प्राप्तिमें जाति कुल विचार न हो।

जायि कुलं नहु पिच्छदि, सुद्ध सम्मत दंसनं पिच्छइ।
ज्ञान सहाव अनुमोयं, अज्ञानं सल्य मिच्छ मुंचेइ ॥ १५३ ॥

अन्वयार्थ—(जायि कुलं नहु पिच्छदि) सम्यक्तीके जाति व कुलकी अपेक्षा नहीं है (सुद्ध सम्मत्त दंसनं पिच्छइ) वहां तो शुद्ध सम्यग्दर्शन होनेकी आवश्यक्ता है (ज्ञान सहाव अनुमोयं) वहां ज्ञान स्वभावी आत्मामें प्रसन्नता है (अज्ञानं सल्य मिच्छ मुचेइ) उस सम्यक्तीके भावोंमें न मिथ्या ज्ञान है न मिथ्या शल्य है।

भावार्थ—यह नियम नहीं है कि सम्यक्त अमुक जाति व कुलको पैदा होगा व अमुक जाति व कुलको न पैदा होगा। सम्यग्दर्शनको हरएक जाति व कुलका बुद्धिमान मनुष्य, हरएक नारकी, हरएक देव व हरएक सैनी पंचेन्द्रिय पशु प्राप्त कर सक्ता है। इसका सम्बन्ध आत्मासे है। जहां शुद्ध सम्यक्त है वहां शुद्ध ज्ञान स्वभावी आत्माके मननमें प्रसन्नता रहती है। न वहां कोई शरीरासक्ति रूपी मिथ्या ज्ञान है न कोई मिथ्या शल्य है। उसके परमाणु मात्र भी राग भाव, आत्माके सिवाय पर वस्तुमें नहीं है। सम्यक्तीको एक चांडाल भी प्राप्त करके पूज्यनीय होजाता है। श्री रत्नकरंडश्रावकाचारमें कहा है—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्। देवादेवं विदुर्भस्मगूढागारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित चाण्डाल देहधारीको गणधर देवोंने देव कहा है। वह भस्मसे दबे हुए अग्नि कुलिंगसे समान है।

ज्ञानस्य ज्ञान रूवं, दंसन दंसेइ ज्ञान चरनानं।
अज्ञान मिच्छ त्यक्तं, ज्ञानं अनुमोय रूव रूवं च ॥ १५४ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञानस्य ज्ञान रूवं ज्ञान चरनानं दंसेइ) सम्यग्दर्शन ज्ञानका यथार्थ ज्ञान स्वभाव तथा ज्ञानमें थिरतारूप चारित्रको चरण देखता है (अज्ञान मिच्छ त्यक्त) उस सम्यक्तीने मिथ्या ज्ञान व मिथ्या श्रद्धानको त्याग दिया है (ज्ञानं अनुमोय रूव रूव च) उसके ज्ञानमें आत्मस्वभावके मनन द्वारा प्रसन्नता रहती है।

भावार्थ—सम्यक्ती रत्नत्रयके यथार्थ स्वभावको जानता है। मैं शुद्धात्मा हूं इस प्रतीतिको निश्चय सम्यग्दर्शन, मैं शुद्धात्मा निःसंदेह हूं इस ज्ञानको सम्यग्ज्ञान, मैं शुद्धात्मा हूं इस ज्ञान श्रद्धानमें थिरताको सम्यक्चारित्र जानता है। उसकी दृष्टि निर्मल होगई है। वह आप व परको ठीक २ जानता है व श्रद्धता है इसलिये उसके न मिथ्या ज्ञान है न मिथ्या चारित्र है। वे अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें मगन रहकर अतीन्द्रिय आनंद भोगता है।

सम्यक्त भावमें लघु दीर्घ विचार नहीं।

लहु दीरघ नहु पिच्छइ, ज्ञान सहावेन अनुमोय संजुत्तं।
हितमित परिनइ सुद्धं, कोमल परिनाम अनुमोय संजुत्तं ॥ १५५ ॥

अन्वयार्थ—(लहु दीरघ नहु पिच्छइ) निश्चय नयसे जब देखता है तब किसीको छोटा व किसीको बड़ा नहीं देखता है—सब आत्माओंको एक समान परमात्मारूप देखता है (ज्ञान सहावेन अनुमोय सजुत्त) वह ज्ञान स्वभावके साथ अपनी प्रसन्नता रखता है (हितमित परिनइ सद्धं) वह जगतके जीवोंके साथ हितमित शुद्ध वचन बोलता है व सबके साथ हितरूप व्यवहार करता है (कोमल परिनाम अनुमोय संजुत्त) उसके परिणाम कोमल व प्रसन्न रहते हैं।

भावार्थ—सम्यक्ती जीवको समताभाव रखनेकी आदतसी पड़ जाती है। समताभाव तब ही होता है जब सब जीवोंको एक समान शुद्ध देखा जावे। उसे ज्ञान स्वभावके ही मननमें आनन्द आता है। व्यवहारमें वर्तते हुए वह सर्व प्राणी मात्रसे प्रेम रखता है, उनका हित चाहता है, उनकी तरफ कठोर भाव नहीं रखता है, कोमल परिणाम रखता है। दुःखी, रोगी, दलिद्रीको देखकर कर्मोदय विचार कर करुणाभाव रखता है। वह यथाशक्ति जगतके प्राणियोंका हित करता है। ऐसा स्वभाव सम्यक्तके प्रभावसे होजाता है।

सम्मत्त सहित दंसन, ज्ञान सहित चरन तव यरनं।
विमलं विमल सहावं, अनुमोयं ज्ञान सुग्गए जंति ॥ १५६ ॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त सहित दृस्न) सम्यग्दर्शनके साथ जहां श्रद्धान है (ज्ञान सहित चरन तव युगनं) तथा सम्यग्ज्ञान सहित जहां चारित्र व तपश्चरण है (विमल विमल सहावं) वहां परम निर्मल स्वभाव है (ज्ञान अनुमोय सुगए जंति) सम्यग्ज्ञानकी अनुमोदनासे प्राणी पुण्य बांधकर स्वर्ग जाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका एक अपूर्व गुण है। उसके साथ श्रद्धान सम्यक् श्रद्धान है, ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व सम्यक्त व सम्यग्ज्ञान सहित जो चारित्र व तप है वही सम्यक्चारित्र व सम्यक् तप है। जहां इन चारोंकी एकता है वहां परम निर्मल भाव रहता है। इस दशाको स्वात्म-लीनता व स्वात्मानुभव कहते हैं। जो इस ज्ञान स्वभावकी अनुमोदना करते हैं उनके ऐसा पुण्य-बन्ध होता है जिससे वे सुगतिमें जाते हैं।

गारव दोष कथन।

मनरंजन गारव उत्तं, मन सहकारेन सहाव संयुत्तं।
मन उववन्न सहावं, मन आनन्द गारवं भनियं ॥ १५७ ॥

अन्वयार्थ—(मनरंजन गारव उत्त) जहां मन परिग्रहादिकी वृद्धि होते हुए प्रसन्न हो उसको गारव कहते हैं (मन सहकारेन सहाव सयुत्त) जब आत्माके स्वभावके साथ ऐसा मनका सहकार होजाता है (मन उववन्न सहाव) उस समय मनका ही स्वभाव पैदा होजाता है (मन आनन्द गारव भनियं) इसी मनके आनन्दको गारव कहते हैं।

भावार्थ—मनका स्वभाव चंचल व संकल्प विकल्परूप है। वास्तवमें जब ज्ञानोपयोग द्रव्य मन द्वारा विचार करने लगजाता है तब उसको मन कहते हैं। मन धन, धान्य, कुटुम्ब, परिवार आदि परिग्रहको देखकर मद करता है, बड़ा प्रसन्न रहता है। इसतरहके भावको गारव कहते हैं। यह भाव त्यागने योग्य है।

गारव मन संयुत्तं, गारव संसार सरनि मोहंधं।
मन विषयं च सहावं, मन सहकारेन गारवं दिट्ठं ॥ १५८ ॥

अन्वयार्थ—(गारव मन संयुतं) जब मनमें मद भावका संयोग होता है (गारव संसार सरनि मोहंध) तब यह गारव भाव मोहमें अन्धपनेसे होता है और यह संसारका मार्ग है (मन विषयं च सहाव) जब मन पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें तल्लीन होता है तब (मन सहकारेन गारवं दिट्ठं) मनकी सहायतासे यह गारव देखा जाता है।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें तीव्र राग होनेसे जब इंद्रियोंकी विषय–सामग्री मनके अनुकूल होती है तब गारवभाव या मदभाव पैदा होता है। यह भाव सम्यक्तीके नहीं होता है क्योंकि वह विषयोंमें अन्ध मोह नहीं रखता है, मिथ्यात्वीके ही होता है क्योंकि वह पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें अन्धा है। ऐसा गारवभाव तीव्र कर्मको बांधता है जिससे प्राणी संसारमें भ्रमण करता है।

तव वय गहन उववन्नं, छाया कुज्ञान संयुक्त वय गहनं।
कुज्ञानं च उवन्नं, गारव अनुमोय नरय वासम्मि ॥१५९॥

अन्वयार्थ—(तव वय गहन उववन्नं) कोई गारव या मद तप तथा व्रतके ग्रहणसे उत्पन्न होता है (छाया कुज्ञान संयुक्त वय गहनं) क्योंकि वहां मिथ्याज्ञानकी छायासहित व्रत व तपका ग्रहण है। (कुज्ञानं च उवन्न) वहां मिथ्याज्ञानका प्रकाश है। इसलिये (गारव अनुमोय नरय वासम्मि) इस गारवभावमें प्रसन्नता रखनेसे नरकवास प्राप्त होता है।

भावार्थ—कोई २ मिथ्यादृष्टी मुनि या श्रावकके व्रतोंको धार करके व नाना प्रकार तप करके सम्यग्ज्ञानके न होनेपर मिथ्या ज्ञानके प्रभावसे बड़ा भारी घमंड करते हैं। हम व्रती, हम तपस्वी ऐसा तीव्र मान रखके अपनी प्रतिष्ठा कराना चाहते हैं। यदि प्रतिष्ठामें कमी हो तो क्रोध करते हैं। उनके भीतर बाहरी चारित्र व तप पालते हुए भी मायाचार बढ़ जाता है व लोभ कषायकी तीव्रता होजाती है, खानपानादि इच्छानुकूल चाहते हैं। यदि नहीं मिलता है तो भक्तोंको बुरा भला कहते हैं। वे मिथ्यात्व योगसे नरक जाने लायक पाप बांधकर नरक चले जाते हैं। उनके भीतर तीव्र गारव भाव अनन्तानुबन्धी कषाय व कृष्ण लेश्यारूप होजाता है।

संयम सम्मत्त सुभावं, छाया मिच्छत्त सल्य दुर्बुद्धी।
मिच्छा मय स सहावं, गारव उववंन्न दुक्ख वीयम्मि॥ १६० ॥

अन्वयार्थ—(संयम सम्मत्त सुभावं) संयम उसे कहते हैं जहां सम्यग्दर्शनके साथ आत्म-स्वभावमें थिरता हो (छाया मिच्छत्त सल्य दुर्बुद्धी) यदि व्रत नियम प्रतिज्ञाके साथ मिथ्यात्व शल्यकी छाया पड़ जाती है तब मिथ्या बुद्धि पैदा होजाती है। यथार्थ कषाय विषय निग्रहरूप संयम परिणति नहीं रहती है (मिच्छा मय स सहावं) तब उसका स्वभाव मिथ्यात्वमय होजाता है (गारव उववन्न दुक्ख बीयम्मि) और गारव या मद पैदा होजाता है जो कि दुःखका बीज है।

भावार्थ—आत्म-स्वभावमें रमणके उद्देश्यसे जहां संयम धारण किया जाता है वहां सम्यग्दर्शनके भाव सहित संयम होता है। यही संयम कषायोंको मन्द करनेवाला होता है। यदि कोई बाहरी नियम या प्रतिज्ञा धारण की जावे, परन्तु उद्देश्य विषयोंकी भोग प्राप्तिका हो या मान-प्रतिष्ठा पानेका हो व किसी लाभकी सिद्धि करनेका हो तौ वह मिथ्यात्व सहित संयम होजाता है। तब बाहरी संयम पालके अपनेको दूसरोंसे ऊँचा समझके आप मद करता है, दूसरोंको नीचा देखता है। इस तीव्र मानके भावसे पापकर्म बांधता है और दुःखोंका पात्र भविष्य कालमें होजाता है।

सुतं च अनेय भेयं, अंग पुव्वाइ मिच्छ संजुत्तं।
रागं मएहि रइयं, मनरंजन राग नरय वासम्मि ॥ १६१ ॥

अन्वयार्थ—(अनेय भेय च सुत) कोई अनेक प्रकार शास्त्रोंको जानता है (अग पुव्वाइ मिच्छ सजुत्त) यहां-तक कि ग्यारह अंग ९ पूर्व तकका ज्ञान रखता है। परन्तु मिथ्यात्व सहित है तो (राग मएहि रइयं) उसका भाव राग व मदसे रचा हुआ होता है (मनरंजन राग नरय वासम्मि) इस मनरंजन रागका फल नरकवास होजाता है।

भावार्थ—कोई साधु ग्यारह अङ्ग नौ पूर्व तकका ज्ञान रखता है, परन्तु उसको सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं है, तौ उसके भीतर न शुद्धात्माकी रुचि होती है न मोक्ष तत्वकी पहचान होती है, न उसकी रुचि होती है। किंतु भीतर कषाय वासना भरी होती है जिससे उसे अपने शास्त्रज्ञानका बड़ा राग व बड़ा घमंड होता है। उस श्रुतज्ञानसे कषायोंके घटानेका काम नहीं होकरके कषायोंके बढ़ानेका काम होता है। वह शास्त्रज्ञानसे मनको रंजायमान करके उन्मत्त रहता है। तीव्र कषायसे कभी२ ऐसा ज्ञानी नरक जाने-लायक कर्म बांधकर नरक चला जाता है।

तवं च तीव्र सहियं, सम्मत्तं, सुद्ध मिच्छ सद्भावं ।
पर पेच्छंतो गारव, पर पज्जाय दुक्ख वीयम्मि ॥ १६२ ॥

अन्वयार्थ—(तव च तीव्र सहिय) जो तीव्र तपको किया जावे (सम्मत्त सुद्ध) तो वह तप सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध कहलायगा (मिच्छ सद्भाव) परन्तु यदि मिथ्यात्व सहित है तो वह तप अशुद्ध कहा जायगा (पर पेच्छंतो गारव) क्योंकि वह आत्माकी तरफ दृष्टि न रखता हुआ पर पुद्गलकी ओर दृष्टि लगाए रहता है इससे मद होजाता है (पर पज्जाय दुक्ख वीयम्मि) पर पुद्गलीक पर्यायमें रत होनेसे दुःखका बीज ही बोता है।

भावार्थ—कठिन २ तपस्या करते हुए यदि सम्यक्तभाव है और आत्मध्यानमें जमनेका व कर्मोंकी निर्जराका उद्देश्य है तब तो वह शुद्ध तप है, परंतु यदि मिथ्यात्व सहित तप है तो वहां किसी लोभ या मान या माया या क्रोध कषायकी पुष्टिका उद्देश्य है। इसलिये वह तप मिथ्या तप है। मिथ्या तपको करते हुए दृष्टि शरीरपर व कषायकी पुष्टिपर रहती है इससे जों जों वह अपनेको तपस्वी देखता है उसको गारव या मद बढ़ता जाता है। यह तप मद भी पुद्गलीक कर्मोदयकी पर्याय है। इसमें रत होनेसे भी वह पाप-कर्मको ही बांधता है जो दुःखरूपी फलको देता है। आत्मानुशासनमें श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं—

शम बोध वृत्त तपसा पाषाणस्यैव गौरव पुंस । पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—शांत भाव हो, ज्ञान हो, चारित्र हो अथवा तप हो परंतु जो वह सम्यग्दर्शन सहित हो तो उसका मूल्य महान् रत्नके समान है और यदि सम्यक्त रहित हो तो उनकी कीमत कङ्कड पत्थरके समान तुच्छ है।

मन उववन्न सहावं, मन स सहावं च सहनि उवसग्गं ।
अज्ञानं पिच्छन्तो, तव षंडं नरय दुक्ख वीयम्मि ॥ १६३ ॥

अन्वयार्थ—(मन उववन्न सहावं) जहां मनका संकल्प विकल्प स्वभाव प्रगट होता है (मन स सहावं च सहनि उवसग्गं) वहां उस मनके स्वभाव सहित जो क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश मशक आदि परीषहोंको व मनुष्यकृत, देवकृत, पशुकृत व अचेतनकृत उपसर्गोंको सहन किया जाता है वहां भी (अज्ञानं पिच्छन्तो)

मिथ्याज्ञानकी दृष्टि होती है। इससे वह (तव पंडं) खंडित तप है या मिथ्या तप है (नरय दु ख वीयम्मि) सो नरकके दुःखोंका बीज है ।

भावार्थ—कोई मिथ्यादृष्टी आत्मज्ञान रहित तप करते हुए परीषह व उपसर्गोंको सहन करते हैं, उस उपसर्ग सहनमें उनका अभिप्राय वीतरागभाव व आत्मानुभव नहीं होता है किन्तु अज्ञानभाव ही होता है । हम उपसर्ग सह लेंगे तो हमारा बहुत मान होगा व हमको बहुत पुण्यकर्मका बंध होगा जिससे हम विषय भोग भविष्यमें पावेंगे। कषायोंकी वासना सहित यह उपसर्ग सहनरूपी तप भी मिथ्या तप ही है। परिणामोंमें कषाय भाव होनेसे पापकर्मका ही वन्ध होता है जिससे नरक तकके दुःख प्राप्त होसक्ते हैं ।

मन रंजन सुभावं, सोमा सहकार जलस्य सुचि चित्तं ।
अज्ञानं मिच्छत्तं, जलं सहावेन थावरं पत्तं ॥ १६४ ॥

अन्वयार्थ—(मन रजन सुभाव) मनको रंजायमान करनेका एक प्रकारका स्वभाव ऐसा होता है (सोमा सहकार जलस्य सुचि चित्त) जिससे शोभा बढ़ानेके लिये जलका व्यवहार करके मनको पवित्र मानता है (अज्ञानं मिच्छत्तं) यह अज्ञान तथा मिथ्यात्व है (जल सहावेन थावर पत्तं) ऐसे जलके स्वभावमें रंजायमान होनेसे स्थावर योनिकी प्राप्ति होती है ।

भावार्थ—कोई कोई अज्ञानी मिथ्यादृष्टी नदी या सरोवरके जलमें खूब क्रीड़ा करते हैं। शरीरको मल मल कर धोते हैं और मानते ऐसा है कि इस नदीके स्नानसे मन पवित्र होता है। इस अज्ञान तथा मिथ्याभावसे वह मरकर स्थावर काय पैदा होते हैं। ऐसे लोगोंमें मिथ्यात्व तो यह होता है कि जिस नदीके स्नानसे प्राणीहिंसा होती है उसको धर्म मान लेते हैं। तथा अज्ञान यह होता है कि मनकी पवित्रता अहिंसा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शील, परमात्म-भक्ति आदिसे होती है। इन बातोंपर लक्ष्य न देकर केवल जलके स्नानसे मन पवित्र होजायगा ऐसा मान लेते हैं। इसतरह बढ़ाते तो हैं शरीरका राग व मनका रंजायमानपना परंतु मानते हैं धर्म। इस कारण ऐसे भावोंसे तिर्यंच आयुका वंध पड़ जाता है।

सचित्त सहावं धरनं, चित्त सहावेन अज्ञान पर पिच्छं ।
पज्जायस्य उवन्नं, पज्जयरत्तो तिरिय दुःख वीयम्मि ॥ १६५ ॥

अन्वयार्थ—(सचित्त सहावं धरनं) जो मनके रंजायमान पनेके स्वभावको धरते हैं (चित्त सहावेन अज्ञान पर पिच्छं) वे ऐसे चित्तके मलीन स्वभावसे अज्ञान द्वारा परमें ही दृष्टि रखते हैं (पज्जायस्य उवन्नं) पर्याय भाव ही को पैदा करते हैं (पज्जयरत्तो तिरिय दु.ख वीयम्मि) इस पर्यायमें रत होते हुए तिर्यंचगतिके दुःखका बीज बोते हैं।

भावार्थ—सचित्त जलसे क्रीड़ा करते हुए मनको रंजायमान करनेवाले घोर अज्ञानी हैं। उनकी दृष्टि शरीर ही पर रहती है कि यह शरीर बहुत साफ सुथरा श्रृंगार युक्त दीखे। शरीरमें तल्लीनताके भावको उत्पन्न करके व अपने आत्मीक धर्मको बिलकुल भूलकरके वे तिर्यंच आयु व गति बांध लेते हैं।

मन मूल चंचल उत्तं, चंचल सुभाव सरनि संसारे।
जिन उत्तं नहु पिच्छं, जन उत्तं सहाव गारवं भनियं ॥१६६॥

अन्वयार्थ—(मन मूल चचल उत्त) जिसके मनकी जड़में चंचलता होती है—शांति नहीं होती है (चंचल सुभाव सरनि ससारे) इस चंचल स्वभावसे वह संसारमें ही भ्रमता है (जिन उत्तं नहु पिच्छं) वह जिनेन्द्र कथित तत्वपर श्रद्धान नहीं लाता है (जन उत्त सहाव गारवं भनियं) लोगोंकी कही हुई बातोंपर श्रद्धान करके उनमें रंजायमान होकर मद करता है, यह मनका गारव कहा गया है।

भावार्थ—जिसका मन इंद्रियोंके विषयोंका लोभी होता है, मान-प्रतिष्ठाका लोभी होता है, धनकी तृष्णामें आतुर रहता है, दूसरोंसे ईर्षाभाव रखता है, कभी इच्छित पदार्थोंके न मिलनेपर खेदित होता है, वह अपने मनमें सदा चंचलता व आकुलता रखता हुआ संसारका मार्ग बढ़ाता है। उसको जिनेन्द्रका तत्व उपदेश कुछ भी सुहाता नहीं है। वह लोगोंकी कही हुई बातोंपर विश्वास करके उन्हींपर चलता है। धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा अपनी प्रशंसा बढ़ते हुए व विषयोंकी पुष्टिमें धन खरचते हुए बड़ा भारी मद करता है। इस गारव भावसे पापको ही बांधता है।

मनरंजन स सहावं, सचित्त चित्तस्य भाव संजदो होति।
मन सुभाव पर पिच्छं, पज्जय रत्तो सु दुग्गए सहियं ॥१६७॥

अन्वयार्थ—(मनरंजन स सहावं) मनको रंजायमान करनेका स्वभाव रखता हुआ (सचित्त चित्तस्य भाव संजदो होति) इसी प्रकारके मन सहित वह संयमी होता है (मन सुभाव पर पिच्छ) परन्तु मनका स्वभाव पर पदार्थमें लगा रहता है (पज्जय रत्तो सु दुगए सहियं) पर्यायमें रत होनेसे दुर्गति ही होती है।

भावार्थ—कोई मनको प्रसन्न करनेके लिये अर्थात् अपना मान बढ़ानेके लिये मुनिपद या श्रावकपदको धारके संयमी होजाता है। उसका मन कषायकी पुष्टिमें व वर्तमान पर्यायके मोहमें फंसा रहता है। अतएव आत्मामें रत न होनेसे यथार्थ संयममें नहीं रहता है किन्तु पर पदार्थमें रत होनेसे उसके मिथ्यात्व सहित असंयम भाव होता है। ऊपरसे द्रव्य चारित्र पालते हुए भी उस जीवका गमन दुर्गतिमें होता है।

तव वय किरिय स उत्तं, सुत सुभाव सयल विज्ञानं।
अनेय कस्ट अनिस्टं, गारव भावेन निगोय वासम्मि॥ १६८ ॥

अन्वयार्थ—(तव वय किरिय स उत्त) तप, व्रत, क्रिया जहां देखी जाती है (सुत सुभाव सयल विज्ञानं) तथा शास्त्रोंका भी पूर्ण ज्ञान है (अनेय अनिस्ट कस्ट) और वह अनेक अप्रिय कष्ट भी सहता है (गारव भावेन निगोय वासम्मि) परंतु यदि गारवपना भावोंमें है तो उसका वास निगोदमें होता है।

भावार्थ—यदि कोई शास्त्रोंका बहुत ज्ञाता भी हो तथा बहुत भारी कष्ट सह करके तप व्रत क्रिया-काण्ड पालता हो, परन्तु मनमें अहंकार हो—मैं तपस्वी, मैं व्रती, मैं क्रिया-काण्डी। कषायके नाश करनेके लिये व्रत व तप व ज्ञानका प्रकाश होना चाहिये था। यह अज्ञानी उन सबको करते हुए भी भावोंमें अपनी कषायको ही पुष्ट करता है। मान व प्रतिष्ठाका ही इच्छुक है। अतएव भावानुसार वह एकेन्द्री निगोद पर्यायके योग्य कर्म बांध लेता है।

गलिय सुभाव न दिट्ठं, चेतन आनन्द चित्त नहु पिच्छं।
सूपम सुभाव रहियं, गारव सहकार दुक्ख वीयम्मि॥ १६९ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय सुभाव न दिट्ठ) जिसने यह नहीं देखा है या विचारा है कि इस शरीरका स्वभाव गलनेका है, नाश होनेका है (चेतन आनन्द चित्त नहु पिच्छ) न जिसने यह श्रद्धान किया है कि मैं चेतना गुणमय तथा आनन्द भावका धारी एक शुद्ध आत्म द्रव्य हूं (सूपम सुभाव रहिय) जिसको अपने अतीन्द्रिय

सूक्ष्म स्वभावका पता नहीं है वह (गारव सहकार दुक्ख वीयम्मि) धर्म क्रियाओंको पालते हुए भी शरीर व पर्यायके अहंकारसे व मदसे दुःखोंका ही बीज बोता है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन सहित सर्व ज्ञान व सर्व क्रिया कुज्ञान तथा कुचारित्र है। सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान सुज्ञान व चारित्र सुचारित्र होता है। जिसने शरीरको पुद्गल रचित एक दिन छूटनेवाला नहीं समझा है तथा शरीरसे भिन्न व कर्मसे भिन्न मैं एक आत्म द्रव्य ज्ञाताहष्टा आनन्दमय वीतराग स्वभावधारी हूं ऐसा नहीं अनुभव किया है। इंद्रियोंसे अतीत मैं स्वानुभव गम्य हूं ऐसा भाव जिसके भीतर नहीं झलका है वह अवश्य कर्मके उदयमें व कषायोंमें रत रहता है। वह कषायोंकी पुष्टिके लिये ही सब कुछ करता है। अतएव गारव भावके होनेसे वह संसारमें दुःखोंका ही पात्र होता है।

पर पंच वृत्ति पेच्छन्तो, विभ्रम सुभाव सयल उपपत्ती।
विज्ञान ज्ञान नहु पिच्छं, गारव सहकार निगोय वीयम्मि ॥ १७० ॥

अन्वयार्थ—(पर पच वृत्ति पेच्छनो) मायाचारके स्वभावको जो अनुभव करता है (विभ्रम सुभाव सयल उपपत्ती) व जिसके भीतर पूर्णपने भ्रामक स्वभाव भरा हुआ है (विज्ञान ज्ञान नहु पिच्छ) जिसने भेद ज्ञानपूर्वक आत्मज्ञानको नहीं जाना है (गारव सहकार निगोय वीयम्मि) वह मदभावके कारण निगोदका बीज बोता है।

भावार्थ—जो क्रिया तो बाहरी ऐसी पाले जिससे प्रगट हो कि यह मोक्षमार्गपर चल रहे हैं परन्तु अन्तरंगमें मोक्षमार्गका श्रद्धान न हो, वैराग्य भाव न हो, किंतु ख्याति लाभ पूजादिकी चाह हो। उसका सर्व कार्य मायाचाररूप व मिथ्याभाव रूप ही है, वह कषाय-पुष्टिके भ्रममें फँसा रहता है जिससे वह अहंकार व मान करनेसे नीच गोत्रका बँध करता है और सैनी पंचेन्द्रियसे एकेन्द्री साधारण वनस्पति होजाता है। तात्पर्य यह है कि भव्य जीवको मात्र कषाय निग्रह व आत्माके अनुभवके हेतुसे ही तप व्रतादि पालने चाहिये। भावोंकी शुद्धि ही पर ध्यान देना चाहिये तब ही मोक्षमार्ग रूप आत्मानुभवमें वे तप व्रतादि सहकारी होंगे। कषाय भाव ही संसार मार्ग है, वीतराग भाव मोक्षमार्ग है। जो संसारके दुःखोंसे बचना चाहे उसे उचित है कि कषायोंको वश करे, मानका भाव कभी न लावे। विनय व मार्दव भावको पाले जिससे गारव भाव नहीं आसके।

दर्शन मोह दोष कथन ।

दंसन मोहंध उत्तं, दर्सइ अन्नं च मोहए अंधं ।
दंसन मोहंध कहियं, अन्नानं नरय दुःख वीयम्मि ॥ १७१ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन मोहंध उत्त) अब अंधा करनेवाले दर्शन मोह कर्मका स्वभाव कहते हैं । (दर्सइ अन्न च मोहए अंध) दर्शन मोहके उदयसे यह प्राणी आत्माको छोड़कर अन्य शरीरादिमें आपापनेका श्रद्धान रखता है तथा अंध होकर संसारके विषयोंमें मूर्छावान होजाता है (दंसन मोहंध कहियं) ऐसी परिणतिको दर्शन मोहका अंधपना कहते हैं (अन्नानं नरय दुःख वीयम्मि) इसीसे मिथ्याज्ञान रहता है जो नरकके दुःखों-का बीज है ।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके दो भेद हैं-एक दर्शन मोह, दूसरा चारित्र मोह । दर्शन मोह सम्यग्दर्शनको प्रगट नहीं होने देता है, चारित्र मोह चारित्र नहीं होने देता है, कषायोंको उत्पन्न करता है । दर्शन मोह जीवका सबसे बड़ा वैरी है यही अन्धा करनेवाला है । इसके तीव्र उदयसे इसको आत्मप्रतीति बिलकुल नहीं होती है । यह शरीरमें व इंद्रियोंके विषयोंमें ही रागी बना रहता है । उसे संसारका झगड़ा ही सुहाता है । राग रंग, खेल तमाशा ही अच्छा लगता है । धन परिवार परिग्रहकी वृद्धि ही उसके मनको रंजायमान करती है । जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त होजावे व अपने घरको ही भूल जावे व अन्ध हो अपनी स्त्रीको माता व माताको स्त्री मानले उसीतरह दर्शन मोहके नशेमें यह बावला होकर अपने स्वरूपको भूले रहता है । जिस संसारको त्यागने योग्य समझना चाहिये उसको ग्रहण योग्य समझता है । धर्मकी चर्चाको बिलकुल भी सुनता नहीं है ।

दर्सइ दंसन उत्तं, अदर्स सहकार रूव सहियानं ।
उत्तं जिन उत्त परं, मोहंधं दिस्टि रूव बलिदानं ॥ १७२ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सइ दसन उत्तं) जो देखे उसको दर्शन कहते हैं या जो श्रद्धान करे उसको दर्शन कहते हैं (अदर्स सहकार रूव सहियानं) सो दर्शन मोहधारी आत्माकी श्रद्धासे रहित ऐसे अदर्शन या मिथ्यादर्श-

नको सहकारी स्वभावोंमें श्रद्धान रखता है (जिन उत्त परं उत्तं) जैसा श्री जिनेन्द्रने कहा है उससे विरुद्ध मानता है (मो:धं दिस्टि रूव बलिदान) मोहके अन्धपनेसे आत्मदर्शनका बलिदान कर देता है।

भावार्थ—दर्शन मोहके तीव्र उदयसे यह प्राणी आत्माके सच्चे स्वभावकी श्रद्धा नहीं पाता है किन्तु शरीररूप ही अपनेको माना करता है। श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंपर बिलकुल श्रद्धान नहीं लाता है। यह आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनका घात कर रहा है।

देवं देवाधिदेवं, देवं वर ज्ञान दंसन समग्गं।
चरनं अनन्तवीर्य, दर्सन मोहंध अदेव देवं च ॥ १७३ ॥

अन्वयार्थ—(देव देवाधिदेवं) जो चार प्रकारके देवोंके अधिपति परम देव हैं (देवं वर ज्ञान दंसन समग्ग) जो देव अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शनके धारी हैं (चरनं अनन्तवीर्यं) जो यथाख्यात वीतराग चारित्रवान हैं व अनन्त वीर्यके धारी हैं (दर्सन मोहंध अदेव देवं च) दर्शनमोहसे अन्धा प्राणी ऐसे देवको देव न मानकर अदेवको या कुदेवको देव मानता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीवको दर्शन मोहके उदयसे सच्चे पूज्यनीय देवकी श्रद्धा नहीं होती है। सच्चे देव श्री अर्हंत भगवान हैं। जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यधारी व परम वीतराग हैं, उनको देव न मानकर यह रागीद्वेषी देवोंको या जिनमें देवपना बिलकुल नहीं ऐसे अदेवोंको देव मान लेता है। जो भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व स्वर्गवासी देव हैं उनको सच्चा देव मानना कुदेवका श्रद्धान है। तथा जो देव गतिमें नहीं हैं ऐसे गाय, गरुड़, अग्नि, जल, आदिको देवता मानना अदेवको देव मानना है। वास्तवमें अदेव या कुदेवमें दोनों ही गर्भित हैं। यदि दोनों शब्दोंका भिन्न२ अर्थ करें तो ऐसा होसकता है। अमितगति महाराजने श्रावकाचारमें अदेवका स्वरूप बताया है—

मुशलं देहली चुली पिप्पलश्चंपकोजलम्। देवा यैरभिधीयन्ते वर्ज्यन्ते ते परेऽत्रके ॥ ९६ ॥

भावार्थ—मूसल, देहली, चूल्हा, पीपल, चम्पावृक्ष, जल आदिको जो देव मानते हैं वे इस लोक परलोकमें निषेधने योग्य हैं। प्रयोजन यहां यह है कि श्री अर्हंत सिद्ध भगवानको ही देव मानना योग्य है क्योंकि वे आत्मीक शुद्ध गुणोंके धारी हैं। जिनमें ये आत्मीक शुद्ध गुण न पाये जावें वे सर्व कुदेव या अदेव हैं।

देवं अरूव रूवं, रूवातीतं च विगत रूवेन।
ज्ञानमई स सहावं, दर्सन मोहंध रूव देवं च ॥ १७४ ॥

अन्वयार्थ—(देवं अरूव रूवं) देव वह है जिसका स्वभाव अमूर्तीक है (रूवातीतं च विगत रूवेन) जो रूपातीत हैं वर्णादि रहित हैं (ज्ञानमई स सहाव) जिनका स्वभाव ज्ञानमई है (दर्सन मोहंध रूव देवं च) दर्शन-मोहसे जो अन्धा है वह शरीरको देव मानता है।

भावार्थ—आत्माको देव कहते हैं जो कर्म रहित शुद्ध है, ज्ञाताद्रष्टा है व अमूर्तीक है। शरीर पौद्गलीक है उसको देव मान लेना मिथ्यात्व है। यद्यपि अर्हंत भगवान शरीर सहित देव हैं तथापि सम्यग्दृष्टी शरीरको मात्र अर्हंतके रहनेका आधार मानता है। अर्हंत तो शरीरमें तिष्ठनेवाला सर्वज्ञ वीतराग आत्मा है। ऐसा ही श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तीने द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

णट्ठचदुघाइकम्मो दसनसुहणाणवीरियमईओ। सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

भावार्थ—जिसने चार घातीय कर्म नाश कर दिये हैं, जो अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान व अनन्त वीर्यमई है, जो शुभ देहमें तिष्ठता है, जो शुद्ध आत्मा है, वह अर्हंत है ऐसा विचारना चाहिये।

देवं ऊर्ध सहावं, देवं तिलोय मंत सुपएसं।
देव अनन्तानन्तं, दर्सन मोहंध अनृतं देवं ॥ १७५ ॥

अन्वयार्थ—(देव ऊर्ध सहावं) श्रेष्ठ स्वभावधारी आत्माको देव कहते हैं (देवं तिलोय मंत सुपएस) देवके ज्ञानमें तीन लोकके पदार्थ अपने प्रदेशोंके साथ झलकते हैं (देव अनतानत) देव अनन्तानन्त गुणोंके धारी हैं (दर्सन मोहंध अनृत देव) जो मिथ्यात्वसे अन्धा है वह इससे विपरीत रागी द्वेषी व अज्ञानीको व असत्यको देव मानता है।

भावार्थ—अनन्त गुणोंका धारी वीतराग शुद्ध आत्मा ही सच्चा देव है, जो लोकालोकका ज्ञाता है। इससे विपरीतको जो देव मानता है वह मिथ्यादृष्टी है।

देवं अनन्त दिस्टी, इस्टी संयुक्त सहाव परमेस्टी।
आनन्दं परमानन्दं, दर्सन मोहंध असत्य देवं च ॥ १७६ ॥

अन्वयार्थ—(देवं अनत दिग्टी) देव वह है जो अनन्त दर्शनके धारी हैं (इस्टी संयुक्त सहाव परमेस्टी) जिनका स्वभाव सर्व प्राणी मात्रको हितकारी है तथा जो परम पदमें तिष्ठनेवाले हैं (आनंद परमानंदं) और जो परमानन्दमें मग्न हैं (दर्सन मोहंध असत्य देवं च) मिथ्यादृष्टी इससे विपरीत असत्य देवको मानता है।

भावार्थ—देव वही है जो परमात्मपदमें तिष्ठता है। जो अनन्तदर्शन व अनन्त सुखका धारी है व जो सर्व प्राणी मात्रको अभयदान व ज्ञानदान देता है।

अनन्त चतुस्टय सहियं, आचरनं चरन सयल सुइ रूवी।
सहजानन्द सुभावं, दर्सन मोहंध कुदेव देवं च ॥ १७७ ॥

अन्वयार्थ—(अनन्त चतुस्टय सहिय) देव वही है जो अनन्त ज्ञानादि चतुस्टय सहित है (आचरनं चरन सयल सुइ रूवी) जो स्वरूपाचरण चारित्रमें आचरण कर रहा है व जिससे सर्व श्रुतज्ञान प्रगट हुआ है (सहजानन्द सुभावं) जो स्वाभाविक आनन्दमई स्वभावका धारी है (दर्सन मोहंध कुदेव देव च) मिथ्यादृष्टी कुदेवोंको देव मानता है।

भावार्थ—अनन्त चतुष्टय सहित, अपने स्वसमयमें मग्न, सहजानन्दरूप परमात्माको देव कहते हैं। मिथ्यादृष्टी रागीद्वेषी आत्माको देव मानता है।

देवं च सल्य रहियं, देवं परिनाम सयल सुइ रूवी।
देवं च परम देवं, दर्सन मोहंध अनिस्ट देवं च ॥ १७८ ॥

अन्वयार्थ—(देवं च सल्य रहियं) देव वह है जिसमें कोई मायाचार, मिथ्यात्वभाव व भोग निदानरूपी शल्यें न हों (देवं परिनाम सयल सुइ रूवी) देवका भाव सदा ही शुद्ध व पवित्र रहता है (देवं च परम देवं) जो देवोंका देव है वही परमात्मा देव है (दर्सन मोहंध अनिस्ट देव च) परन्तु मिथ्यादृष्टी अहितकारी अनिष्टकारी रागद्वेष वर्द्धक देवको देव मान लेता है।

भावार्थ—देव वही होसक्ता है जिसके भावोंमें कोई विकार न हो। जो परम पवित्र] शुद्धोपयोगका धारी हो। जिसमें न भोगाकांक्षा हो, न कोई मायाचार हो, न कोई मिथ्यात्वभाव हो। ऐसे देवाधिदेवको ही देव मानना चाहिये। मिथ्याती जगतके प्रपंचमें ग्रसित देवको देव मान लेता है।

देवं अलष्य लष्यै, देवं संसार सरनि विगतो यं।
मिथ्या राग विमुक्तं, दर्सन मोहंध मिथ्य देवं च ॥ १७९ ॥

अन्वयार्थ—(देवं अलष्य लष्यै) देव वह है जो परम सूक्ष्म इंद्रियोंसे व मनसे न लखने योग्य आत्माको अनुभव करता है प्रत्यक्ष देखता है (देवं संसार सरनि विगतो य) देव वह है जो संसारके मार्गसे व प्रपंचसे दूर होगया है (मिथ्या राग विमुक्त) जिसमें कोई भी संसारका मिथ्या राग नहीं है (दर्सन मोहंध मिथ्य देवं च) मिथ्याती जीव इससे विपरीत मिथ्या देवको देव मान लेता है।

भावार्थ—आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन केवलज्ञानी अर्हंत ही कर सकते हैं, वे ही सच्चे देव हैं। जो संसारके सर्व प्रकारके आरम्भ व परिग्रहके भावसे विरक्त हैं, जिनमें कोई भी सांसारिक मिथ्या राग नहीं है, वे निरन्तर आत्मानन्दमें मग्न परम वीतराग हैं। ऐसे सत्यदेवको मिथ्यादृष्टी नहीं समझकर इससे विपरीत मिथ्यादेवको देव मानता है।

दर्सन मोहंध सुभावं, अनृत असत्य देव उत्तं च।
असरन संसार मइओ, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ १८० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सुभाव) दर्शन मोहका ऐसा अन्ध स्वभाव है (अनृत असत्य देव उत्तं च) जिससे मिथ्यादृष्टी नाशवन्त मिथ्या रागी द्वेषी देवको देव कहता है (असरन) जो स्वयं अशरन हैं, जो स्वयं काल मरणके वश हैं, जो स्वयं कर्मोंके उदयसे अपनी रक्षा नहीं कर सक्ते (संसार मइओ) जो संसारमई हैं, जन्म-मरण शील हैं व चार गतियोंमें भ्रमण करनेवाले हैं (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्त) ऐसे देवको देव माननेवाला मिथ्यादृष्टी दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—देवगतिमें रहनेवाले सर्व ही इंद्र धरणेन्द्र क्षेत्रपालादि देव कर्माधीन हैं। जब मरणका समय आता है वे अपनी रक्षा नहीं कर सक्ते, वे स्वयं कर्मोंके उदयके अनुसार अनेक गतियोंमें भ्रमण करते हैं, वे स्वयं भोगोमें लीन हैं, रागी हैं। ऐसे संसारी आत्माओंको देव मानना घोर मिथ्यात्व है। ऐसे मिथ्यात्वी जीव दुर्गतिमें जाते हैं।

मोहांधं च सुभावं, कुदेवं देव सयल सहकारं ।
अदेवं अनुमोयं, दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि ॥ १८१ ॥

अन्वयार्थ—(मोहांधं च सुभावं) यह दर्शन मोहके उदयका स्वभाव है (कुदेवं देव सयल सहकारं) जिससे यह कुदेवोंको अपना पूर्ण सहकारी देव मानता है (अदेवं अनुमोय) जिनमें देवपना बिलकुल नहीं है ऐसे अग्नि, जल, वृक्ष, गाय आदिकी पूजामें प्रसन्नता मानता है (दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि) जो दर्शन मोहसे अन्धा है वह निगोदमें वास पाता है ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव वीतराग सर्वज्ञ भगवानको देव नहीं मानता है किन्तु सांसारिक प्रयोजनको मनमें रखकर रागी द्वेषी चार प्रकारके देवोंको व जिनमें देवपना बिलकुल नहीं है ऐसे अदेवोंको देव मानके अपना हित चाहता है । ऐसा अज्ञानी एकेन्द्रिय पर्यायमें जाकर निगोद वास पाता है । वास्तवमें देवके माननेका अभिप्राय यह है कि अपने सामने ऐसा एक आदर्श रहे जिसपर हमको पहुचना है इसलिये आदर्श देव अरहन्त व सिद्ध भगवान ही होसक्ते हैं क्योंकि वे सर्वतरह शुद्ध वीतराग ज्ञातादृष्टा आनंदमई हैं । मेरा आत्मा भी परमात्माके समान है, ऐसी भावना ही परमात्मापदमें लेजाती है । जो सच्चे परमात्मादेवकी आत्माको पहचानता है वही परमात्माको भी पहचानता है तथा अपने आत्माको भी पहचानता है । प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्तपज्जत्तेहिं । सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ ८६ ॥

भावार्थ—जो अरहंत भगवानको उनके आत्म द्रव्यके द्वारा, उनके ज्ञान सुखादि गुणोंके द्वारा व उनके स्वाभाविक पर्यायके द्वारा जानता है वह अपने आत्माको जानता है, उसीका मोह दूर होता है ।

अरहन्तदेवके आत्मापर लक्ष्य जायगा तब ही सच्चे देवका श्रद्धान होगा । उनके आत्माकी भक्तिसे ही अपने आत्माका विचार होगा । आत्माके विचारसे ही आत्मानुभव जाग्रत होसकेगा । इसलिये सर्वज्ञ वीतराग आत्माको ही देव मानना चाहिये । जो ऐसा मानता है वह सम्यग्दृष्टी है । जो इससे विपरीत किसी भी शरीर सहित रागी द्वेषी देवको व देव वर्जित पदार्थको जिससे कुछ भी देवत्व नहीं झलकता है, देव मानेगा वह दर्शनमोहके उदयसे व्याप्त मिथ्यादृष्टी जीव है ।

गुरुं च गुपितुवदेसं, गुरु अप्पा सुद्ध सहावं च ।
दंसन ज्ञान पहानं, दर्सन मोहंध अगुरु गुरुवं च ॥ १८२ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च गुपितुवदेसं) गुरु वह है जो गुप्त अध्यात्मिक तत्त्वका उपदेश देते हों (गुरु अप्पा सुद्ध सहावं च) गुरु वह है जिनका आत्मा शुद्ध स्वभाव धारी वीतराग है (दसन ज्ञान पहानं) गुरुमें सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानकी प्रधानता है (दर्सन मोहंध अगुरु गुरुवं च) जो दर्शन मोहके उदयसे अन्धा है वह कुगुरुको गुरु मान लेता है ।

भावार्थ—गुरु वही हैं जो सम्यग्दृष्टी व सम्यग्ज्ञानी हैं तथा जिनका आत्मा राग द्वेष विकारोंसे रहित सरल शुद्ध वीतराग है । जो नित्य अध्यात्ममें रत हैं व दूसरोंको भी इसी गुप्त अध्यात्मज्ञानका उपदेश देते हैं, जो दूसरोंको दीक्षा शिक्षा देते हैं, आप भी आचरण पालते हैं व दूसरोंसे भी पलवाते हैं । द्रव्यसंग्रहमें गुरुका स्वरूप कहा है—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे । अप्पं परं च जुनइ सो आइरिओ मुणी उझेओ ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जिनके सम्मग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानकी मुख्यता है, जो इन दो सहित आत्मवीर्य, चारित्र व उत्तम तप इन पांच प्रकारके आचारमें अपनेको भी लगाते हैं व दूसरोंको भी लगाते हैं वे ही सच्चे आचार्य हैं । उन मुनियोंका ध्यान करना चाहिये ।

गुरु उवदेस स उत्तं, सूक्षम परिणाम कम्म संषिपनं ।
गुरुं च विमल सहावं, दर्सन मोहंध समल गुरुवं च ॥ १८३ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु उवदेस स उत्त) गुरु महाराज ऐसा उपदेश देते हैं (सूक्षम परिणाम कम्म संषिपनं) जिससे सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माकी शुद्धोपयोग परिणतिका ज्ञान होजावे, जिस परिणतिमें रमण करनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है (गुरुं च विमल सहावं) गुरुकी आत्माका स्वभाव मल व दोष रहित है (दर्सन मोहंध समल गुरुवं च) परन्तु जो मिथ्यादृष्टी है वह दोष सहित गुरुको गुरु मानता है ।

भावार्थ—गुरु बड़े दयालु हैं स्वयं वीतराग शुद्ध परिणतिमें रमण करते हुए अपने कर्मोंकी निर्जरा करते हैं तथा अपने शिष्योंको भी ऐसा उपदेश देते हैं जिससे वे भी शुद्धोपयोगकी पहचान करके उसमें

रमण कर सकें। गुरुमें इंद्रिय निग्रह, वीतरागता, समताभाव व उत्तम क्षमा आदि गुण होते हैं। वे परिग्रह व आरम्भसे विरक्त रहते हैं। ऐसे सच्चे गुरुको छोड़कर मिथ्यादृष्टी अन्धा होकर परिग्रहधारी, आरम्भमें लीन, अध्यात्मज्ञानसे शून्य, इंद्रिय-लम्पटी, प्रतिष्ठा चाहनेवाले, संसारासक्त, मिथ्या प्रपंचमें फंसानेवाले गुरुमन्योंको गुरु मान लेता है और अपना अहित करता है।

गुरुं च मग उवएसं, अमगं सयल भाव गलियं च।
गुरुं च ज्ञान सहावं, दर्सन मोहंध अज्ञान गुरुवं च॥ १८४॥

अन्वयार्थ—(गुरु च मग उवएस) गुरु वे ही हैं जो मोक्षमार्गका उपदेश देते हैं (अमगं सयल भाव गलियं च) जिनके भीतर मोक्षमार्गसे विपरीत सर्व भाव गल गये हैं (गुरु च ज्ञान सहावं) गुरु वे ही हैं जिनका स्वभाव सम्यग्ज्ञानमई है (दर्सन मोहंध अज्ञान गुरुव च) परन्तु जो मिथ्यात्वसे अन्ध हैं वे आत्मज्ञान रहितको गुरु मान लेते हैं।

भावार्थ—जो स्वयं आत्मानुभवरूप मोक्षमार्गपर चलते हैं व वैसा ही उपदेश करते हैं वे ही गुरु हैं। जिनके परिणामोंमें मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, व मिथ्याचारित्र सम्बन्धी कोई भी विकार नहीं है, उनका स्वभाव आत्मज्ञानमें रमणताका होगया है। मिथ्यादृष्टी इससे विपरीतको गुरु मानते हैं।

गुरुं च लोय पयासं, चेलं स सहाव ग्रन्थ मुक्तं च।
विमल सहावं सुद्धं, दर्सन मोहंध समल गुरुवं च॥ १८५॥

अन्वयार्थ—(गुरुं च लोय पयास) गुरु वे हैं जो लोकका स्वरूप ठीक२ प्रकाश करते हों (चेल स सहाव ग्रन्थ मुक्त च) जो बाहरमें वस्त्र परिग्रहके त्यागी हैं व अन्तरंगमें उस वस्त्र परिच्छादनके रागके त्यागी हैं (विमल सहाव सुद्ध) जिनका स्वभाव निर्मल व कषाय रहित शुद्ध है (दर्सन मोहंध समल गुरुव च) परन्तु मिथ्यादृष्टी दोष सहित सग्रन्थ हीको गुरु मान लेता है।

भावार्थ—गुरु वही है जो वस्त्रादि परिग्रहका त्यागी, शास्त्रोंका ज्ञाता, लोक स्वरूपका जाननेवाला तथा परम शांत स्वभावी हो, जिसके संसारके पदार्थोंसे राग बिलकुल न हो। मूलाचारके अनगार भावना अधिकारमें कहा है—

उपधिरर विप्पमुक्का वोसहगा णिरंबरा धीरा। णिक्किंचण परिसुद्धा साधू सिद्धि विमग्गंति ॥ ३० ॥

भावार्थ—साधु सर्व परिग्रहके त्यागी, शरीर ममत्व रहित, वस्त्र रहित, धीर, लोभ रहित, शुद्ध आचरणी होते हैं, जिनका लक्ष्य सिद्धि प्राप्ति रहता है। ऐसे साधुको मिथ्यादृष्टी न मानकर सग्रन्थको गुरु मान लेता है।

गुरुं सहाव स उत्तं, रागं दोसं पि गारव त्यक्तम्।
ज्ञानमई उवएसं, दर्सन मोहंध राइ मय गुरुवम् ॥ १८६ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु सहाव स उत्त) गुरुका ऐसा स्वभाव कहा गया है (राग दोस पि गारव त्यक्त) जिन्होंने राग, द्वेष तथा मदका त्याग कर दिया है (ज्ञानमई उवएसं) जिनका उपदेश ज्ञानमई होता है (दर्सन मोहंध राइ मय गुरुव) परन्तु मिथ्यात्वसे अंधा है, वह सरागीको ही गुरु मान लेता है।

भावार्थ—जो वीतरागी है तथा आत्मज्ञानका उपदेश देता है वही गुरु होसक्ता है। अज्ञानी विना पहचानके रागद्वेष पूर्णको गुरु मान लेता है।

गुरुं च दर्सन मइओ, गुरुं च ज्ञान चरन संयुत्तो।
मिथ्या सल्य विमुक्कं, दर्सन मोहंध सल्य गुरुवं च ॥ १८७ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च दर्सन मइओ) गुरु वही है जो सम्यग्दर्शनका धारी है (गुरु च ज्ञान चरन संयुत्तो) गुरु वही है जो सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र सहित है (मिथ्या सल्य विमुक्क) जिसमें कोई मिथ्यात्वकी शल्य नहीं है (दर्सन मोहंध सल्य गुरुव च) मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्व शल्य धारीको गुरु मान लेता है।

भावार्थ—व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय मोक्षमार्ग है। गुरु वही है जो व्यवहार रत्नत्रयके द्वारा निश्चय रत्नत्रयका साधन करता है जिसमें परमाणु मात्र भी राग परद्रव्य व पर भावोंमें नहीं है, पूर्ण प्रकारसे भिन्न आत्माका अनुभवी है। खेद है कि मिथ्यात्वी जीव मिथ्यात्व शल्य धारी संसार–मार्गीको गुरु मान लेता है। मूलाचारकी अनगार भावनामें कहा है—

सुदरयण पुण्ण कण्णा हेउणय विसारदा विउलबुद्धी। णिउणत्थसत्थ कुसला परमपय वियाणया समणा ॥ ६७ ॥

भावार्थ—जो शास्त्ररूपी रत्नसे अपने कर्णोंको शोभित करते हैं। हेतु व नयोंके ज्ञाता, बड़े बुद्धिमान, शास्त्रके अर्थके ज्ञानमें कुशल परम पदके अनुभव करनेवाले श्रमण होते हैं।

दर्सन मोह अदर्स, गुरु अगुरं च ज्ञान विज्ञानम्।
गुरं च गुनं न हि पिच्छं, अगुरं अनुमोय दुग्गए पत्तम् ॥१८८॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोह अदर्स) दर्शन मोहके उदयसे मिथ्यात्वी नहीं देखता है कि (गुरु अगुरं च ज्ञान विज्ञान) सुगुरु कौन है व कुगुरु कौन है। मिथ्या ज्ञान क्या है व सम्यग्ज्ञान क्या है (गुरं च गुन न हि पिच्छ) वह सद्गुरुके गुणोंको नहीं पहचानता है (अगुर अनुमोय दुग्गए पत्त) कुगुरुकी अनुमोदनासे दुर्गति पाता है।

भावार्थ—मिथ्यात्वीको जैसे सुदेव कुदेवकी पहचान नहीं है वैसे सुगुरु कुगुरुकी व मिथ्या या सम्यग्ज्ञानकी पहचान नहीं है। वह इस बातकी परीक्षा नहीं करता है कि सुगुरुमें क्या क्या गुण होने चाहिये। वह परिग्रहधारी सरागी गुरुकी भक्ति करके वक्र मार्गकी अनुमोदना करके दुर्गति पाता है।

गुरुं च लष्यं अलष्यं, अगुरं संसार सरनि उत्तं च।
गुन दोसं न वि जानइ, दर्सन मोहंध नरय वीयम्मि ॥ १८९ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च लष्य अलष्य) गुरु वे हैं जो अलक्ष्यको भी अनुभव करते हैं (अगुर ससार सरनि उत्त च) कुगुरु संसारके मार्गके अनुभवी कहे गए हैं (दर्सन मोहंध) मिथ्यादृष्टी जीव (गुन दोस न वि जानइ) सुगुरु कुगुरुके गुण दोषोंको नहीं जानता है (नरय वीयम्मि) वह मिथ्याज्ञान व चारित्रसे नरक जानेका बीज बोता है।

भावार्थ—यह आत्मा मन वचन काय द्वारा नहीं जाना जाता है इसलिये अलक्ष्य है। परन्तु आत्मा द्वारा जाना जाता है। सुगुरु ऐसे सूक्ष्म आत्मतत्वके अनुभवी होते हैं। परन्तु कुगुरु कभी भी इस तत्वको न पाकर संसारके विषय कषायोंका ही अनुभव करते रहते हैं। मिथ्यादृष्टी जीव सुगुरु कुगुरुकी पहचान नहीं करके कुगुरुको गुरु मानके नरक जाने योग्य कर्म बांधता है।

गुरुं च षिपनिक रूवं, अगुरं अभाव सयल उत्तं च।
तस्य गुन अनुमोयं, दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि ॥ १९० ॥

अन्वयार्थ—(गुरुं च षिपनिक रूवं) गुरु महाराज नग्न दिगम्बर रूपके धारी तथा कर्मोंके क्षय करनेवाले होते हैं (अगुरं अभाव सयल उत्तं च) कुगुरुमें इस सर्वका अभाव कहा गया है (तस्य गुनं अनुमोयं) जो कोई कुगुरुके गुणोंकी अनुमोदना करता है वह (दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि) दर्शन मोहसे अँध प्राणी निगोदमें वास पाता है।

भावार्थ—क्षपणकको नग्न दिगम्बर कहते हैं। वे द्रव्यलिंग व भावलिंग दोनोंके धारी होते हैं। भावोंमें भी पूर्ण ममता रहित है। जिनमें यह गुण नहीं है वे कुगुरु हैं। उनकी अनुमोदना करनेवाला महापाप बांधता है। इसतरह जो कोई सम्यक्तको प्राप्त करना चाहे उसको पहले श्री अर्हंत सिद्ध भगवान परमात्माको देव व परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ आत्म-रमी साधुको गुरु मानना चाहिये। इसके सिवाय अन्य सर्व देव व गुरुको यथार्थ पूज्यनीय देव व गुरु न मानना चाहिये। क्योंकि वे संसारके भीतर स्वयं लीन हैं, न उनकी भक्तिसे संसार ही बढ़ेगा। मूलाचारके समयसार अधिकारमें कहा है—

णिस्संगो णिरारंभो भिक्खा चरियाए सुद्ध भावो य। एगागी झाणरदो सव्व गुणड्ढो हवे समणो ॥ १००॥

भावार्थ—श्रमण या जैन साधु वही है जो अंतरंग बहिरंग परिग्रह रहित हो, आरंभ रहित हो। भिक्षा ग्रहणमें लोलुपता रहित शुद्ध भावधारी हो। जो एकाकी ध्यानमें रत हो और साधुके सर्व गुणोंसे पूर्ण हो, ऐसेको ही सुगुरु मानना चाहिये।

सुतं च सुत उववन्नं, सुतं च ज्ञान दंसन समग्गम्।
सुतं च मग उवएसं, दर्शन मोहंध कुसुतं अनुमोयम् ॥ १११ ॥

अन्वयार्थ—(सुतं च सुत उववन्न) शास्त्र वह है जो द्वादशांग वाणीसे उत्पन्न हुआ हो (सुत च ज्ञान दंसन समग्ग) शास्त्र वह है जिसमें सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शनका स्वरूप हो (सुत च मग उवएस) शास्त्र वह है जिसमें मोक्षमार्गका उपदेश हो (दर्सन मोहंध कुसुत अनुमोयं) परन्तु मिथ्यादृष्टी कुशास्त्रकी ही अनुमोदना करता है।

भावार्थ—अब सम्यग्दर्शनका विषयभूत सुशास्त्रका स्वरूप कहते हैं। जो शास्त्र परम्परा श्री तीर्थंकरोंके द्वारा रचित द्वादशांग वाणीके आधारसे बना है व जिसमें रत्नत्रयका स्वरूप मोक्षमार्गका उपदेश

हो वही सुशास्त्र है। इससे विपरीत जिसमें एकांत नयसे वस्तु स्वरूप बताया है व संसार-मार्गकी पुष्टि हो वह कुशास्त्र है। मिथ्यादृष्टी ऐसे हीको शास्त्र जानके मानता है।

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें शास्त्रका लक्षण ऐसा कहा है—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—शास्त्र वह है जो परम्परा अर्हंत आप्तका कहा हुआ हो, जो खण्डन न होसके, जो प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे बाधित न हो, जो तत्वोंका उपदेश करनेवाला हो व जो सर्वका हितकारी हो। तथा जो कुमार्गका खण्डन करनेवाला हो।

सुतं च अपर मइओ, सुतं च सुर विंजनस्य पद सहियम्।
सुतं च जिनपति वयनं, दर्सन मोहंध विकह सुतं च ॥ १९२ ॥

अन्वयार्थ—(सुत च अपर मइओ) शास्त्र वह है जो अक्षरोंसे बना हो (सुतं च सुर विंजनस्य पद सहिय) शास्त्र वह है जिसमें स्वर तथा व्यंजनोंसे रचे हुए पद हों (सुत च जिनपति वयन) शास्त्र वह है जो श्रीजिनेन्द्रकी वाणीरूप हो (दर्सन मोहंध विकह सुत च) परन्तु मिथ्यादृष्टी विकथाको ही शास्त्र मान लेता है।

भावार्थ—अक्षरोंसे बने हुए पदोंके संग्रहको शास्त्र कहते हैं, जिनसे वही अर्थका बोध हो जैसा श्री जिनेन्द्रने जैनधर्मका स्वरूप बताया है। अज्ञानी स्त्री, भोजन, देश व नृप कथाओंको बतानेवाले विकथामय शास्त्रोंको ही शास्त्र मान लेता है।

सुतं च षिपनिक रूवं, षिपिओ कम्मान तिविह जोगेन।
विकथा वसन असुतं, दर्सन मोहंध असुत पिच्छई ॥ १९३ ॥

अन्वयार्थ—(सुतं च षिपनिक रूवं) शास्त्र वह है जिसका भाव ध्यानमें लेनेसे कर्मोंका क्षय हो (षिपिओ कम्मान तिविह जोगेन) जिसके कथनसे मन, वचन, काय द्वारा ऐसा वर्ताव किया जावे जो रागादि भावकर्मोंका क्षय हो, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंका क्षय हो व शरीररूप नोकर्मोंकी प्राप्ति न हो (विकहा वसन असुतं) जिस शास्त्रमें चार विकथा व सात व्यसनोंकी पुष्टिका उपदेश हो वह कुशास्त्र है (दर्सन मोहंध असुत पिच्छई) मिथ्यादृष्टी ऐसे कुशास्त्रको ही शास्त्र मान लेता है।

भावार्थ—जिस शास्त्रके वीतराग विज्ञानमय उपदेशके ऊपर ध्यान देनेसे ऐसे परिणाम होजावें जिससे रागद्वेष घटे, कर्मोंकी निर्जरा हो, संसार घटे वही सुशास्त्र है। जबकि विषय कषायवर्द्धक उपदेशके दाता कुशास्त्र हैं।

सास्वत रूवं स सुतं, अनृत असत्य असुतं जानेहि।
सुतं जिन उत्त परं, दर्सन मोहंध असुतं परिनामम्॥ १९४ ॥

अन्वयार्थ—(सास्वत रूवं स सुतं) शास्त्र वह है जो अनादि कालकी परिपाटीसे नित्य चला आया हो (अनृत असत्य असुतं जानेहि) जो मिथ्या है कल्पित है वह कुशास्त्र है ऐसा जानो (सुतं जिन उत्त पर) शास्त्र वही उत्कृष्ट है जो जिनेन्द्रद्वारा कथित है (दर्सन मोहध असुत परिनामं) मिथ्यादृष्टी कुशास्त्रमें ही परिणमन करता है।

भावार्थ—अनादि कालीन जगतमें अनादिसे ही तीर्थंकर होते आए हैं। तीर्थंकरोंका जो उपदेश है वही श्रुत है। इसलिये यह श्रुत सदासे है व सदा ही रहेगा। इसलिये शाश्वत् है व सत्य है। जो अल्पज्ञानियों द्वारा एकांत कथन रूप व कल्पित तत्व कथन रूप व विषय कषाय वर्द्धन रूप हो वह कुशास्त्र है, अज्ञानी उसे ही शास्त्र मान लेता है।

सुतं असुतं न पिच्छदि, गुन दोसं न वि वुज्झए अंधः।
अंधः अंध सहावं, दर्सन मोहंध निगोय वीयम्मि ॥१९५॥

अन्वयार्थ—(अध) अन्ध मिथ्यादृष्टी जीव (सुत असुत न पिच्छदि) शास्त्र कुशास्त्रकी परीक्षा नहीं करता है (गुन दोस न वि वुज्झए) गुण व दोषोंका विचार नहीं करता है (अध. अंध सहावं) अंधेका स्वभाव ही अंधा होता है (दर्सन मोहध निगोय वीयम्मि , दर्शन मोहके उदयसे ग्रहीत ज्ञान अन्ध कुशास्त्रको शास्त्र मानकर निगोदका बीज बोता है।

भावार्थ—जैसे अंधेके आंखें न होनेसे उसे सर्व अन्धकार ही दिखता है, उसको रात दिनका भेद नहीं मालूम होता है, उसीतरह जिसकी बुद्धि मिथ्यात्वसे मलीन है वह परीक्षा न करके जिनशास्त्रोंके उपदेशसे उसके विषय कषाय पुष्ट हों, इच्छित धनादि मिल सके, उन्हीं शास्त्रोंको हितकारी शास्त्र जान लेता है। यदि कहीं लिखा हो कि नदी स्नानसे पुण्य होता है, चन्द्रमा व सूर्यके पूजनसे धन मिलता है,

थैलीके पूजनेसे लक्ष्मी आती है, श्राद्ध करनेसे बड़े प्रसन्न होकर कुटुम्बरक्षाकी आशीष देते हैं, देवीको पूजनेसे खेती फलती है, शीतलाके पूजनसे शीतलाका रोग जाता है, वर्गतके पूजनेसे स्त्रीका सौभाग्य रहता है, भैरोंको मदिरा चढ़ानेसे रोग मिटता है, तब यह अज्ञानी ऐसे कथनकी दृढ़ श्रद्धा कर लेता है, उसे आत्मज्ञान सूचक ग्रन्थ अच्छे नहीं लगते हैं।

दर्सन अनंत दर्स, सूषम दर्सेइ कम्म विलयं च।
दर्सति अनंत नंतं, दर्सन मोहंध अदर्सनं दिट्ठम् ॥ १९६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अनन दर्म) सम्यग्दर्शन अनन्त गुणरूपी आत्मापर श्रद्धान लाता है (सूषम दर्सेइ कम्म विलय च) जब सम्यग्दर्शनके प्रतापसे सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव होता है तब कर्मोंका क्षय होता है। (दर्सति अनंत नतं) सम्यग्दर्शन आत्माके अनन्तानन्त पर्यायोंपर विश्वास रखता है। (दर्सन मोहंध अदर्सन दिट्ठ) परन्तु जो दर्शन मोहके उदयसे अन्धा है उसके मिथ्यादर्शन ही देखा जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका एक गुण है जिसके प्रकाश होनेपर यह अपना आत्मा सर्व भावकर्म, द्रव्यकर्म व नोकर्मसे भिन्न परमात्मावत् झलकता है। जब ऐसा सम्यक्ती जीव निजात्माका अनुभव करता है तब वीतराग भावोंसे कर्मकी निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टीको इसकी प्राप्ति नहीं होती है।

दर्सन अरूव रूवं, दर्सन दर्सेइ मोष मग्गं च।
दर्सन विमल सहावं, दर्सन मोहंध समल दर्सति ॥ १९७ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अरूव रूव) सम्यग्दर्शन अमूर्तीक आत्माका श्रद्धान रखता है (दर्सन दर्सेइ मोष मग्गं च) सम्यग्दर्शन आत्मानुभवरूप मोक्षमार्ग पर विश्वास रखता है (दर्सन विमल सहाव) सम्यग्दर्शन आत्माका एक निर्मल स्वभाव है (दर्सन मोहंध समल दर्सति) परंतु मिथ्यादृष्टी जीवको अशुद्ध आत्माका ही श्रद्धान होता है।

भावार्थ—मैं सिद्ध समान शुद्ध अमूर्तीक निर्विकार आनन्दमई आत्मा हूं। तथा इस आत्माके ही ध्यानसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। वही आत्मानुभव ही यथार्थ मोक्षमार्ग है, ऐसा सच्चा श्रद्धान सम्यग्दृष्टीको होता है। मिथ्यादृष्टीको निर्मल स्वभावका ही श्रद्धान नहीं होता है। वह अपनेको रागी, द्वेषी ही मानता है।

दर्सन दिष्टि स दिट्ठं, इस्टं संजोय दर्सए सुद्धम् ।
सुद्धं च विमल सुद्धं, दर्सन मोहंध अनिस्ट दर्संति ॥ १९८॥

अन्वयार्थ—(दर्सन दिष्टि स दिट्ठं) वही सम्यग्दर्शनकी सच्ची श्रद्धा मानी गई है जहां (सुद्ध इस्ट सजोय दर्सए) शुद्ध इष्ट भावोंके लाभको देखा जावे (सुद्धं च विमल सुद्धं) परम शुद्ध वीतराग आत्माको अनुभव किया जावे (दर्सन मोहंध अनिस्ट दर्संति) मिथ्यादृष्टी इस इष्ट हितकारी आत्मापर श्रद्धान न लाकर अहितकारी संसार–मार्गपर ही विश्वास लाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवको दृढ़ श्रद्धान है कि शुद्धोपयोग ही परम हितकारी है, जहां परम शुद्ध आत्मापर ही ध्यान रहता है, परंतु मिथ्यादृष्टी आत्माको और रूप ही मानता है।

दर्सेइ इस्ट दर्स, इस्टं दर्सेइ लोय आलोयम् ।
इस्टं अनन्त नंतं, दर्सन मोहंध मिच्छ दर्संति ॥ १९९ ॥

अन्वयार्थ—(इस्ट दर्स दर्सेइ) सम्यग्दृष्टी परम हितकारी आत्मदर्शन पर श्रद्धान रखता है (इस्टं लोय आलोय दर्सेइ) वह यथार्थ लोक तथा अलोकका स्वरूप जानता है कि यह सब छः द्रव्योंका समुदाय है (इस्टं अनत नत) उसको अनंतगुण प्रकाश रूप मोक्ष हितकारी भासता है (दर्सन मोहंध मिच्छ दर्संति) परंतु मिथ्यादृष्टी मोक्षकी श्रद्धा न करके मिथ्या संसारकी ही श्रद्धा रखता है।

भावार्थ—सम्यक्तीको मोक्ष और मोक्षमार्ग पर दृढ़ श्रद्धान रहता है कि मोक्ष भी आत्मामें ही है व मोक्षमार्ग भी आत्मा ही है। मिथ्यात्वी कुछका कुछ श्रद्धान रखता है।

दर्सन मोहंध सहायं, अनृत अनिस्ट सहाव संयुत्तम् ।
कलं सहावं रसियं, पज्जायं दिस्टि सरनि संसारे ॥ २०० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सहाव) दर्शनमोह नाम मोहकी प्रकृतिके कारण (अनृत अनिस्ट सहाव संयुत्तं) प्राणीका स्वभाव असत्य व क्षणिक संसारके सुखोंमें लीन रहता है (कल सहाव रसिय) वह शरीरका ही रसिक रहता है (पज्जायं दिस्टि सरनि ससारे) वह पर्यायपर ही श्रद्धा रखता है। इसीसे संसारमें भ्रमण करता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव मिथ्यात्वके उदयसे इस वर्तमान प्राप्त शरीरको ही आप मानके उसीके क्षणिक व मिथ्या सुखमें लीन रहता है। पांचों इंद्रियोंका दासपना किया करता है। इस शरीरमें खूब विषयभोग करूँ ऐसी रातदिन भावना करता है। इससे संसारमें उसका भ्रमण मिटता नहीं है।

दर्सन असुद्ध दर्स, रूव सहावेन सरनि संसारे।
अनृत अचेत सहावं, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २०१ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन असुद्ध दर्स) मिथ्यादृष्टी जीव अशुद्ध भावका ही व अशुद्ध पदार्थका ही श्रद्धावान रहता है (रूव सहावेन सरनि संसारे) मूर्तीक शरीरके स्वभावमें रत होता है। इसीसे संसारमें भ्रमता है (अनृत अचेत सहावं) उसका स्वभाव मिथ्या व अज्ञानमय बना रहता है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं) ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव दुर्गतिको ही पाता है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शनके उदयसे शुद्ध मोक्षमार्गका श्रद्धान नहीं होपाता है। उसके भावोंमें संसारका राग नहीं मिटता। विषय-लोलुपता कम नहीं होती। शरीरका सुखियापना नहीं जाता। इसीसे वह पर समय रूप होकर अशुभ कर्म बांधता है और नर्क निगोद व पशुगतिमें जाकर पैदा होजाता है। कदाचित् मनुष्य होता है तो दीन हीन होता है, कदाचित् देव होता है तो नीच देव होता है।

दर्सन मोहंध अशुद्धं, कललंकृत कर्म दर्स दर्सेइ।
पज्जायं पेच्छंतो, अज्ञानं अनुमोय निगोय वासम्मि ॥ २०२ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध अशुद्धं) दर्शन मोह कर्म महान अशुद्ध है (कललंकृत कर्म दर्स दर्सेइ) जो शरीर सम्बन्धी क्रियाकांडमें ही श्रद्धान रखता है (पज्जायं पेच्छंतो) जो कर्म जनित पर्यायकी ही तरफ दृष्टि रखता है (अज्ञानं अनुमोय निगोय वासम्मि) मिथ्याज्ञानकी अनुमोदनासे मिथ्यात्वी निगोदवास पाता है।

भावार्थ—दर्शन मोहकी मिथ्यात्व प्रकृतिके तीव्र उदयसे आत्माका श्रद्धान नहीं होता है, न उसे यह श्रद्धान होता है कि शुद्धात्मानुभव मोक्षमार्ग है। कदाचित् धर्मका श्रद्धान भी करता है तो शरीरकी क्रियाको ही, बाहरी तप व्रतको ही धर्म मान लेता है। अन्तरंग परिणामोंपर दृष्टि नहीं देता है। वह शरीरके सुखोंका राग नहीं त्यागता है इसीसे निगोद तकमें चला जाता है।

ज्ञानं च परम ज्ञानं, ज्ञानं सहकार मिच्छ तिक्तं च।
ज्ञानं च विमल सहावं, दर्सन मोहंध पज्जाय आवरनं ॥ २०३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च परम ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान आत्माके परम स्वाभाविक ज्ञानको पूर्ण केवलज्ञान जानता है (ज्ञानं सहकार मिच्छ तिक्तं च) यद्यपि सम्यग्दर्शन होनेपर ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है तथापि पदार्थोंके यथार्थ ज्ञान विना, आत्मा व अनात्माके भिन्न वोधके विना मिथ्यात्वका त्याग नहीं होता है। यथार्थ भेदविज्ञान ही मिथ्यात्वको हटाता है (ज्ञानं च विमल सहावं) सहज ज्ञान आत्माका विमल स्वभाव है (दर्सन मोहंध पज्जाय आवरनं) दर्शन मोहके उदयसे जो अंधा है उसको इस पर्यायमें ज्ञानावरणका उदय रहता है व वह ज्ञानावरणका तीव्र वन्ध भी करता है।

भावार्थ—अव कुछ सम्यग्दर्शनका महात्म्य कहा जाता है। सम्यग्ज्ञान आत्मा व आत्मासे भिन्न पर पदार्थोंको भिन्न २ जानता है। तथा आत्माका स्वभाव केवलज्ञानमय पहचानता है। जिसके तीव्र मिथ्यात्वका उदय होता है उसके ज्ञानावरणका भी ऐसा उदय होता है जिससे उसे आत्मा व अनात्माका यथार्थ ज्ञान नहीं होने पाता। क्योंकि यथार्थ ज्ञान हीसे मिथ्यात्व हटता है और सम्यग्दर्शन प्रकाशित होता है तव ही ज्ञानको सम्यक्त सहित सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानं सुकिय सुभावं, ज्ञानं च षिपिय तिविह कम्मानं।
ज्ञानं अनन्त रूवं, दसन मोहंध ज्ञान आवरनं ॥ २०४ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं सुकिय सुभावं) ज्ञान आत्माका अपना स्वभाव है (ज्ञानं च षिपिय तिविह कम्मानं) सम्यग्ज्ञानमई आत्माका ज्ञान ही तीन प्रकार कर्मोंका क्षय करता है (ज्ञानं च अनन्त रूवं) ज्ञानका स्वभाव अनन्त है, ज्ञानकी कोई मर्यादा नहीं है (दर्सन मोहंध ज्ञान आवरनं) जो मिथ्यात्वसे अन्धा है उसके ज्ञानपर भी तीव्र आवरण होता है।

भावार्थ—ज्ञान आत्माका स्वभाव है, यद्यपि मतिश्रुत ज्ञान इंद्रिय व मनकी सहायतासे होते हैं तथापि आत्मा यदि न हो तो नहीं होसक्ते हैं। ज्ञानावरणके उदय व क्षयोपशमकी विचित्रतासे इन्द्रिय व मनकी सहायता लेनी पड़ती है। अवधि, मनःपर्यय ज्ञानमें स्वतंत्रतासे आत्मा ही जानता है परन्तु

अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे कम जानता है। केवलज्ञान शुद्ध स्वाभाविक ज्ञान है जो प्रत्यक्ष रूपसे क्रम रहित सर्व द्रव्योंकी सर्व पर्यायोंको जानता है। ऐसा जिसको ज्ञानके स्वरूपका श्रद्धान है वह सम्यक्ती जीव भाव कर्म रागादिको हटाता है। ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंकी भी यथासम्भव निर्जरा करता है। तथा शरीर प्राप्तिके अवसरोंको घटाता जाता है। मिथ्यादृष्टीका जैसा श्रद्धान मैला है वैसा उसका ज्ञान भी मैला है। उसके ज्ञानावरणका भी तीव्र उदय होता है जिससे उसे स्वानुभूतिका प्रकाश नहीं होता है।

ज्ञान सहाव स उत्तं, ज्ञानं दर्सेइ अनन्त सहकारं।
दर्सन मोहंध जीवो, अनुमोय पज्जाय दुग्गए गमनं ॥ २०५॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहाव स उत्तं) ज्ञान स्वभाव उसे कहते हैं (ज्ञानं दर्सेइ अनन्त सहकारं) जो ज्ञान अनंत पदार्थोंको एक साथ जान लेता है (दर्सन मोहंध जीवो) परन्तु जो जीव दर्शन मोहके उदयसे अंधा है वह (पज्जाय अनुमोय दुग्गए गमनं) शरीरकी पर्यायमें ही रत हो प्रसन्नता मानता है इससे दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीको ज्ञानके स्वभावका श्रद्धान नहीं होता है, वह अपनी शारीरिक शक्तिसे ही सब कुछ जानता है, ऐसा अहङ्कार रखता है। शरीरसे भिन्न ज्ञान आत्माका स्वभाव है ऐसा उसको श्रद्धान नहीं होता है। इसलिये शरीरके सुखोंमें रत होनेसे कुगति पाता है।

ज्ञानं वृद्ध अवयासं, लोयालोयं च विमल सद्भावं।
मल मुक्कं ज्ञान अनुमोयं, दर्सन मोहंध अवयास आवरनं ॥ २०६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं वृद्ध अवयासं) ज्ञान बढ़ते २ इतना बढ़ता है कि उसमें सर्वको जाननेकी शक्ति प्रगट होजाती है (लोयालोयं च विमल सदभावं) वह पूर्ण ज्ञान सर्व लोकालोकके स्वभावको यथार्थ रूपसे जानता है (मल मुक्कं ज्ञान अनुमोयं) जो ज्ञानावरणके मलसे रहित ज्ञान है वही प्रशंसनीय है (दर्सन मोहंध अवयास आवरनं) दर्शन मोहके उदयके जो आधीन है उसके ज्ञानका आवरण नहीं हटता है।

भावार्थ—ज्ञान जब सर्व आवरणसे रहित होजाता है तब इसमें ऐसी शक्ति है कि जो कुछ लोकालोक है उसको तो जान ही लेता है। परन्तु यदि ऐसे अनन्त लोक हों तौभी उनको जानले। ज्ञान स्वभा-

वकी महिमा अचिन्त्य है। ऐसा निर्मल ज्ञान ही प्रशंसाके लायक है। खेद है कि मिथ्यादृष्टी इस बातको नहीं समझता, उसके ज्ञानपर तीव्र आवरण रहता है।

ज्ञानानन्त विसेषं, ज्ञानं ज्ञानं च वृद्धि सद्भावं ।
अनुमोयं वयन सहावं, दर्सन मोहंध वयन आवरनं ॥२०७॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं वृद्धि सद्भावं च ज्ञानानन्त बिशेषं ज्ञानं) यह ज्ञान जब बढ़ते २ पूर्ण होजाता है तब यह ज्ञान अनन्त पदार्थोंके विशेष आकारोंको जान लेता है (अनुमोयं वयन सहावं) सम्यग्दृष्टी अपने वचनोंके स्वभावसे ऐसे निर्मल ज्ञानकी प्रशंसा या स्तुति करता है (दर्सन मोहंध वयन आवरनं) परन्तु मिथ्यादृष्टीके ज्ञानपर ऐसा तीव्र आवरण है कि वह अपने वचनोंसे प्रशंसा भी नहीं करता है।

भावार्थ—सम्यक्तीको केवलज्ञान स्वभावका पूर्ण विश्वास है इससे वह स्तुति करता है व भावना भाता है कि कब वह समय आवे जब ऐसा ज्ञान प्रकाशित होजावे। मिथ्यादृष्टीको इस बातपर विश्वास ही नहीं होता है, इसलिये वचनसे भी प्रशंसा नहीं करता है।

ज्ञानं सहाव उत्तं, सहकारे सहाव ज्ञान आयरनं ।
ज्ञान अनन्तानन्तं, दसन मोहंध सहाव आवरनं ॥ २०८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं सहाव उत्तं) ज्ञानका स्वभाव ऊपर कहा गया है (सहकारे सहाव ज्ञान आयरनं) इस निर्मल ज्ञानकी श्रद्धाकी मददसे ज्ञान ज्ञानमें आचरण करना है (ज्ञान अनन्तानन्तं) वह श्रद्धा इसी बातकी कि ज्ञान अनंत है (दर्सन मोहंध सहाव आवरनं) मिथ्यादृष्टीके स्वभाव पर ऐसा ज्ञानावरणका परदा है जिससे वह ज्ञानाचरण नहीं कर सक्ता है।

भावार्थ—जब सम्यक्तीको अपने ज्ञान स्वभावकी यथार्थ श्रद्धा होती है तब ही वह ज्ञान स्वभावमें आचरण करके स्वसंवेदनमई होजाता है अर्थात् ज्ञानका स्वाद लेता है। मिथ्यादृष्टी विचारा इस ज्ञाना-चरकणको करनेसे लाचार है।

ज्ञानं पार न उत्तं, परिनवै ज्ञान लोक अलोकंति ।
परिनै प्रमान सुद्धं, दर्सन मोहंध परिनए आवरनं ॥ २०९ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं पार न उत्तं) ज्ञानकी शक्तिका पार नहीं कहा गया है (परिनवै ज्ञान लोक अलोकंति) यह निर्मल लोक व अलोककी सर्व पर्यायोंके जाननेमें परिणमन करता है (परिनै प्रमान सुद्धं) यही ज्ञान शुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण रूप है (दर्सन मोहंध परिनए आवरनं) परन्तु मिथ्यादृष्टी जीव ज्ञानावरणके उदयमें ही-अज्ञानमें ही परिणमन करता है।

भावार्थ—ज्ञान जब शुद्ध होता है तब वह अपार व अनन्त है तथा वही प्रत्यक्ष प्रमाण रूप स्पष्ट है। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष केवलज्ञान ही है। मिथ्यादृष्टी इस बातको नहीं समझता है।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें ज्ञानकी महिमा बताते हैं—

घाइचउक्के णट्ठे उप्पज्जइ विमलकेवलं णाणं। लोयालोयपयासं कालत्तयजाणगं परमम् ॥ ६६ ॥

लोयालोय सव्वं जाणइ पिच्छेइ करणकमरहियं। मुत्तामुत्ते दव्वे अणंतपज्जायगुणकलिए ॥ ६९ ॥

भावार्थ—चार घातीय कर्मोंके नाश होनेपर निर्मल केवलज्ञान प्रगट होता है, जो उत्कृष्ट है व जो लोक अलोकको तीन काल सम्बन्धी पर्यायोंके साथ जानता है। जो ज्ञान इंद्रिय व मनकी सहायता विना क्रम रहित सर्व लोकालोकके मूर्तीक व अमूर्तीक द्रव्योंको उनके अनन्त गुण व पर्याय सहित जानता है वही केवलज्ञान है।

ज्ञानं हेय संयुत्तं, हित मित परिनवै अनंतनंताइं।
एयं विमल सहावं, दर्सन मोहंध हेय आवरनं ॥ २१० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं हेय संयुत्तं) सम्यग्ज्ञान त्यागने योग्य भाव या पदार्थोंको जानता है (हित मित परिनवै अनंतनंताइं) जब वह ज्ञान हितकारी आत्मामें मर्यादित होकर परिणमता है तब अनन्तानन्त पदार्थोंका ज्ञाता केवलज्ञान होजाता है (एयं विमल सहावं) तब वह एक अकेले निर्मल स्वभावरूप रहता है (दर्सन मोहंध हेय आवरनं) मिथ्यादृष्टीके ज्ञानपर ऐसा आवरण होता है जो वह हेयको नहीं जानता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानका यह स्वभाव है जो वह यह जाने कि त्यागने योग्य क्या है व ग्रहण करने-योग्य क्या है। निश्चयनयसे एक निज आत्मा ही ग्रहण करनेयोग्य है। शेष सब परद्रव्य, परभाव व कर्मके निमित्तसे होनेवाले रागादि भाव व गुणस्थानादि भाव व मार्गणादि पर्याय त्यागने योग्य हैं। ऐसा भेद-

विज्ञान जिसको होता है वह परम उपादेय निज आत्मामें ही रमण करता है जिससे एक निर्मल केवलज्ञान प्रकाशित होजाता है। मिथ्यादृष्टीको हेय उपादेयका ज्ञान नहीं होता है।

आप्तमीमांसामें श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः। पूर्वं वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥ १०२ ॥

भावार्थ—केवलज्ञानका फल तो वीतरागता है, परन्तु अल्पज्ञानरूप सम्यग्ज्ञानका फल यह है कि इस बातको जाने कि ग्रहण करने योग्य व त्याग करने योग्य क्या है। यों तो सर्व प्रकारके ज्ञानका फल अपने २ विषयोंमें हित व अहितका ज्ञान तथा अज्ञानका नाश है।

वास्तवमें ज्ञानरूपी दीपक विना हितकारी व अहितकारी बातोंका ज्ञान कैसे होसक्ता है।

ज्ञानं कोमल रूवं, कोमल परिनवै विमल सहकारं।
विमलं विमल सहावं, दर्सन मोहंध कोमल आवरनं ॥ २११ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान कोमल रूवं) सम्यग्ज्ञान कोमल या मार्दव स्वभावरूप होता है (कोमल परिनवै विमलं सहकार) यह कोमल ज्ञान ही निर्मल ज्ञानरूप परिणमता है (विमलं विमल सहावं) यह केवलज्ञान रहित होनेसे निर्मल स्वभाव है (दर्सन मोहंध कोमल आवरनं) मिथ्यादृष्टीके मार्दव भाव ढका रहता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानीके अनन्तानुवन्धी कषायके उदय न होनेसे व अन्य कषायोंके यथासंभव मन्द उदयसे परिणामोंमें मृदुता व विनय भाव व अनुकम्पा भाव रहता है। इसीसे वह प्रशम अर्थात् शांत भाव, संवेग अर्थात् संसारसे वैराग्य व धर्मसे प्रेम, करुणाभाव तथा आस्तिक्यभाव कि आत्मा परलोकादि है उन भावोंको रखता है। मंद कषायसे ज्ञानकी भावना करता है तब ज्ञान बढ़ते२ केवलज्ञानमें परिणमन कर जाता है। मिथ्यादृष्टीके कषायके तीव्रोदयसे मार्दव भाव या विनय भाव नहीं पाया जाता है। उसके अपने स्वार्थवश परिणामोंमें बड़ी कठोरता रहती है। काम पड़नेपर दीन दुःखियोंको बहुत कष्ट देता है। सम्यक्ती दयाभावसे वर्तता है।

ज्ञानं च दिस्टि विमलं, विमल सहावेन केवलं ज्ञानं।
दिस्टि अनन्त दिस्टं, दर्सन मोहंध दिस्टि आवरनं ॥ २१२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च दिस्टि विमलं) सम्यग्ज्ञानीके निर्मल दृष्टि या श्रद्धा रहती है (विमल सहावेन केवलं ज्ञानं) इसी निर्मल स्वाभाविक श्रद्धासे ही केवलज्ञान होता है (अनन्त दिस्टं दिस्टि) तथा अनन्त दर्शन प्रकाशित होता है (दर्सन मोहंध दिस्टि आवरनं) मिथ्यादृष्टीके सम्यग्दर्शन गुणके ऊपर परदा है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानीके जो निर्मल आत्मश्रद्धा होती है उसीके अभ्याससे वह गुणस्थानोंपर चढ़ते २ तेरहवे सयोगकेवली गुणस्थानपर चढ़ जाता है, जहां केवलज्ञान व केवलदर्शनका प्रकाश होजाता है। मिथ्यादृष्टी सम्यग्दर्शनके अभावमें अपने दर्शन गुणको ढका हुआ ही रखता है।

दर्सन मोहंध सहावं, ज्ञानं आवरनं सुकिय सुभावं।
दुकिय कम्म उववन्नं, दुग्गइ गइ भावना होई ॥ २१३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सहावं) दर्शन मोहके उदयका ऐसा स्वभाव है कि (सुकिय सुभावं ज्ञानं आवरन) अपने स्वाभाविक ज्ञानके प्रकाश पर आवरण रहता है (दुकिय कम्म उववन्नं) मिथ्यादृष्टी अशुभ कर्मोंको उत्पन्न करता रहता है (दुगइ गइ भावना होई) जिससे उसके ऐसी भावना रहती है जिसका फल दुर्गति गमन है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीवके ज्ञानपर ऐसा आवरण रहता है जिससे उसके भाव आत्मधर्म पर बिलकुल नहीं जाते हैं। वह शरीरके सुखमें मोही रहता है। इसलिये अपनी अशुद्ध भावनासे दुर्गति जाने-योग्य कर्म बांधता है।

दर्सन मोहंध विसेषं, पज्जाय रतो पज्जाय संयुत्तो ॥
आवरनं ज्ञान सहावं, पज्जय आवरन इंदिया पत्तं ॥ २१४ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध विसेषं) दर्शन मोहके उदयसे ऐसी विशेषता मिथ्यादृष्टीके रहती है कि वह (पज्जाय संयुत्तो पज्जाय रतो) जिस पर्यायका धारी होता है उसी पर्यायमें रत रहता है (ज्ञान सहावं आवरनं) उसका ज्ञान स्वभाव ढका रहता है, उसको ज्ञान स्वभावी आत्माकी पहचान नहीं होती है (पज्जय आवरन इंदिया पत्तं) उस पर्यायमें वह इंद्रियोंके आधीन रहता हुआ अपने ज्ञानावरणके उदयको भोगता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी शरीरासक्त होता है। जितनी इंद्रियाँ होती हैं उनकी इच्छाओंके वश रहता है।

उनकी पूर्तिमें रात दिन लवलीन रहता है। इसी कारण अपने ज्ञान स्वभावको नहीं समझते हुए अपने ज्ञानावरण कर्मका ऐसा क्षयोपशम नहीं कर पाता है जिससे सम्यग्ज्ञान होसके।

दर्सन मोहंध स उत्तं, अवयासं ज्ञान आवरन सहकारं।
अवयासं नहु पिच्छइ, थावर उप्पत्ति अनेय कालम्मि ॥ २१५ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहध स उत्तं) दर्शन मोहका उदय ऐसा कहा गया है जिससे (अवयासं ज्ञान आवरन सहकारं) उसका निर्मल ज्ञान ज्ञानावरणसे ढका रहता है (अवयासं नहु पिच्छइ) उसको स्वाभाविक पूर्ण ज्ञानका विश्वास नहीं होता है (थावर उप्पत्ति अनेय कालम्मि) वह ज्ञानावरण कर्मका ऐसा बन्ध करता है जिससे उसे एकेन्द्रिय स्थावरके योग्य बहुत अल्प ज्ञानमें बहुत काल विताना पड़ता है।

भावार्थ—दर्शन मोहके उदयसे अंध प्राणी आत्मज्ञानको न पाकर विषयोंकी तृष्णामें फँसा रहता है। मिथ्याज्ञानके वश अनेक तरह दूसरोंके ज्ञानोपयोगको कष्ट देता है। इस कारण वह तीव्र ज्ञानावरण कर्मोंका बन्ध करके एकेंद्रिय पर्यायमें जाकर बहुत काल विताता है।

दर्सन मोहंध सु समयं, ज्ञानं आवरन वयन सभावं।
सो वयनं विन पिच्छइ, नरये एइंदि अनेय कालम्मि ॥ २१६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सु समयं ज्ञानं आवरन वयन सभावं) दर्शन मोहके उदयसे स्वसमय सम्बन्धी ज्ञान ढका रहता है तथा उसके आत्मा सम्बन्धी वचनोंका प्रकाश भी नहीं होता है (सो वयनं विन पिच्छइ) वह उन वाक्योंको भी श्रद्धानमें नहीं लाता है (नरये एइंदि अनेय कालम्मि) वह मानवसे एकेन्द्रिय होकर अनेक काल वचन विनाके रहता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव जैसे अपने आत्माका ज्ञान नहीं पाता है वैसे वह आत्मज्ञान सम्बन्धी उपदेश पर भी ध्यान नहीं देता है, किन्तु उस उपदेशका निरादर करता है तथा स्वयं भी कभी आत्मज्ञान सम्बन्धी बात नहीं करता है, निरन्तर शरीरके राग वढ़ानेवाली वार्तालापमें फंसा रहता है, बहुत बकवाद करता है, दिकथाओंमें व परनिन्दामें रंजायमान रहता है, जिसके फलसे ऐसा कर्म बांधता है कि वह वचन विनाके दीर्घकाल एकेन्द्रिय पर्यायमें विताता है।

दर्सन मोहंध अंधं, ज्ञानं आवरन देइ सहकारं ।
असहावं उववन्नं, विकलत्तय नंत नंतकालम्मि ॥ २१७ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध अंधं) मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वके नशेमें ऐसा अंधा रहता है (ज्ञान आवरन देइ सहकारं) कि वह ज्ञानको आवरण करनेवाला अज्ञानमय उपदेश देता है (असहावं उववन्नं) वह स्वभावसे विपरीत भावोंको अपनेमें व दूसरोंमें उत्पन्न करता है (विकलत्तय नत नंतकालम्मि) जिससे वह अनन्तकालमें अनन्तवार विकलत्रय होता है ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वके उदयसे ऐसा बावला होता है कि जैसे वह शरीराशक्त विषयासक्त धर्मके ज्ञानसे शून्य होता है वैसे वह दूसरोंको भी उपदेश देकर स्वाभाविक आत्मज्ञानसे दूर रखता है। विषयोंमें फंसाता रहता है जिससे वह ऐसा कर्म बांधता है कि अनन्तकालके भीतर बहुतवार द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय व चौन्द्रिय पशु होता है । बीच २ में स्थावरकायमें जन्मता रहता है ।

दर्सन मोहंध सुभावं, परिनै आवरन ज्ञान सहकारं ।
परिनै सहाव न दिट्ठं, तिरिय गए कुदेव जोनीहि ॥ २१८ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सुभावं) मिथ्यात्वके उदयका ऐसा अंध स्वभाव है (सहकारं ज्ञान आवरन परिनै) जिसकी सहायतासे ज्ञानावरण कर्मका विशेष बन्ध होता है (सहाव दिट्ठं न परिनै) उसका परिणमन स्वाभाविक आत्म-श्रद्धापर नहीं होता है (तिरिय गए कुदेव जोनीहि) जिससे वह ऐसा कर्म बांधता है कि या तो वह तिर्यंच गतिमें पशु होता है या देवगतिमें कुदेव-नीच देव होता है ।

भावार्थ—मिथ्यात्वके परिणामोंसे जो अज्ञानमय भाव होता है उससे वह ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध करता है तथा अन्य भी कर्म ऐसा बांधता है कि मरकर या तो पशु होजाता है व देव योनिमें अभियोग व किलविष जातिका नीच देव होजाता है, जिन देवोंको वहां स्वयं पशु बनना पड़ता है या जो निरादरसे देखे जाते हैं ।

दर्सन मोहंध सुभावं, हितकारस्य ज्ञान आवरनं ।
हेयं कहपि न दिट्ठं, विकलत्तय अनेय कालम्मि ॥ २१९ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सुभावं) दर्शन मोह कर्मका ऐसा स्वभाव है (हितकारस्य ज्ञान आवरन) कि जिस ज्ञानसे आत्महित हो उसपर आवरण रहता है (हेयं कहपि न दिट्ठं) उसको त्यागने योग्य क्या है यह कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता है (विगलत्रय अनेय कालम्मि) वह अनेक काल तक विकलत्रय जन्मता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीके ज्ञानावरणका ऐसा उदय होता है जिससे उसे भेदविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान नहीं होपाता है। रागद्वेष मोह व विषय कषाय त्यागने योग्य हैं, ऐसा ज्ञान नहीं होता है। वह मिथ्या ज्ञानसे ऐसा आचरण करता है जिससे कर्म बांधकर अनेक काल द्वेन्द्रियसे चौंद्रिय पशु पर्यायमें जन्म धारना पड़ता है।

दर्सन मोहंध अन्धं, कोमल परिनाम ज्ञान आवरनं।
कोमल सहाव न दिट्ठं, निगोय वास अनेय कालम्मि ॥ २२० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध अन्धं) मिथ्यादृष्टी ऐसा अन्धा होता है (कोमल परिनाम ज्ञान आवरनं) कि उसके कोमल भावपर तथा ज्ञानपर परदा पड़ा रहता है (कोमल सहाव न दिट्ठ) उसको कोमलस्वभावी आत्माकी प्रतीति नहीं होती है (निगोय वास अनेय कालम्मि) उसको दीर्घकाल तक निगोदमें रहना पडता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीके कषायका ऐसा उदय रहता है जिससे उसके परिणामोंसे कठोरता नहीं जाती। वह अपने स्वार्थ सिद्ध करनेको हिंसक भावका धारी होता है तथा उसके ज्ञानपर भी ऐसा परदा रहता है जिससे उसको आत्माकी व उसके मार्दव गुणकी प्रतीति नहीं होने पाती। वह पर्यायमें रत रहता है, इससे एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिमें दीर्घकाल जन्म लेकर विताता है।

दर्सन मोहध सहियं, ज्ञानं आवरन देइ दिस्टं च।
दिस्टि सहाव न युत्तं, थावर गइ अनेय कालम्मि ॥ २२१ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहन्ध सहियं) जो मिथ्यादृष्टी दर्शन मोहके उदय सहित होता है (ज्ञानं आवरन देइ दिस्ट च) उसके ज्ञानपर आवरन रहता है तथा वह मिथ्या बुद्धिको दूसरोंको देता है (दिस्टि सहाव न युत्तं) उसको आत्माके स्वभाव सम्यग्दर्शनका सम्बन्ध नहीं होता है (थावर गइ अनेय कालम्मि) जिससे वह दीर्घ-काल तक स्थावर कायोंमें जन्मता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी सम्यग्दर्शनको न पाकर स्वयं अज्ञानी होता है व अज्ञानका प्रचार भी करता है। इससे तीव्र ज्ञानावरण कर्मको बांधता है और असत्य ज्ञानधारी स्थावर कायमें बहुत काल विताता है।

ज्ञानं आवरन स उत्तं, दर्सन मोहंध सहकारं ।
संसार सरनि बूडं, चौगइ संसार भावना होई ॥ २२२ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सहकारं) दर्शन मोह कर्मकी सहायतासे (ज्ञानं आवरन स उत्तं) उसका ज्ञान ऐसा ढका रहता है जैसा ऊपर कहा गया है (संसार सरनि बूडं) वह संसार-समुद्रके बीचमें डूबता है (चौगइ संसार भावना होई) उसके भावोंकी परिणति चारों गतिमय संसारमें जानेकी होती है।

भावार्थ—जबतक मिथ्यात्वका तीव्र उदय रहता है तबतक स्वपरका यथार्थ ज्ञान भी नहीं होने पाता है। वह पर्यायमें अहंकार करके रात दिन शरीरके सुखमें मग्न रहता है। कभी कुछ पुण्य बांध लेता है तो देवगति व मनुष्य गतिमें जन्मता है। यदि पाप बांधता है तो पशु गतिमें जाता है और वहां तीव्र पाप होता है तो नर्कमें चला जाता है। सम्यग्ज्ञान मोक्षका कारण है सो सम्यग्दर्शनके साथ साथ रहता है। जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है तब ही ऐसा ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है कि अपने आत्माका यथार्थ ज्ञान होजाता है। भेदज्ञान पूर्वक ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। समयसार कलशमें कहा है:—

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था–ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदास. ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातो'–क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावं ॥ १५–३ ॥

भावार्थ—ज्ञानके ही प्रतापसे गर्म जलमें उष्णपना अग्निका स्वभाव व शीतलपना जलका स्वभाव भासता है, ज्ञानसे ही किसी सागमें सागका स्वभाव भिन्न और लवणका स्वाद भिन्न मालूम होता है, ज्ञानसे ही आत्मा चैतन्य धातुमय मूर्ति नित्य आत्मीक रससें प्रकाशमान दीखता है। तथा क्रोधादि भावोंका वह निश्चयसे कर्ता नहीं है। ऐसा भेदविज्ञान पैदा होता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

अज्ञानी क्षिपयेत्कर्म यज्जन्मशतकोटिभि । तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा निहन्त्यन्तर्मुहूर्तत. ॥ १८८ ॥

भावार्थ—अज्ञानी जिन कर्मोंको करोड़ों जन्मोंमें क्षय करता है, ज्ञानी मन, वचन, कायकी गुप्तिसे उन कर्मोंको अन्तर्मुहूर्तमें क्षय कर डालता है। सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है।

दर्सन सम्यग्दर्स, सम्यग्ज्ञानं च दर्सये सुद्धं ।
ज्ञानं दंसन चरनं, दर्सन मोहंध चरन आवरनं ॥ २२३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन सम्यग्दर्स) सम्यग्दर्शन यथार्थ आत्माका श्रद्धान रखता है। तैसे ही (सम्यग्ज्ञानं च दर्सये सुद्धं) सम्यग्ज्ञान शुद्ध आत्माको वैसा ही जानता है (ज्ञानं दंसन चरनं) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके साथ सम्यक्चारित्र भी होता है (दर्सन मोहंध चरन आवरनं) परन्तु दर्शन मोहनीयके उदयसे चारित्रपर आवरण रहता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तीनोंकी एकता मोक्षमार्ग है। जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है तब जैसे ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है वैसे ही अनन्तानुबन्धी कषायके उदय न होनेसे स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होजाता है। परन्तु जिसके दर्शन मोहका उदय होता है उसके अनन्तानुबन्धीका भी उदय रहता है, यदि उसका विसंयोजन न किया हो–इसलिये दर्शन मोहको ही चारित्रको रोकनेवाला उपचारसे कहा गया है।

अब यहां चारित्र सम्बन्धी विचारका कथन है—

दर्सन ज्ञान संजुत्तो, चरनं दुविहंपि संजदो होई ।
दर्सन मोहंध असत्यं, चरनं आवरन सरनि संसारे ॥ २२४ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन ज्ञान संजुत्तो) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे संयुक्त होकर भव्य जीव (दुविहंपि चरनं संजदो होई) दो प्रकारके चारित्रको धारके संयमी होता है (दर्सन मोहन्ध असत्यं चरनं) परन्तु मिथ्यात्वके उदयसे सर्व चारित्र भी मिथ्या होता है (आवरन सरनि ससारे) जिसके चारित्रका प्रकाश नहीं होता है वह संसारमें भ्रमण करता है।

भावार्थ—यद्यपि सम्यक्तके साथ सम्यग्ज्ञान व स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होजाता है तथापि अभी पूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा पूर्ण चारित्रका होना शेष रह जाता है क्योंकि चौथे गुणस्थानवर्तीके अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन ऐसे बारह कषाय और हास्यादि नौ नोकषायका उदय रहता है इनको दूर करनेके लिये बहिरंग साधु व श्रावकका चारित्र व अन्तरङ्ग आत्मध्यानरूप चारित्रको धारना

पडता है। विना आत्मध्यानके कर्मोंकी निर्जरा नहीं होती है और संसारका भ्रमण दूर नहीं होता है। यदि कदाचित् कोई मिथ्यादृष्टी अंतरंगमें आत्म प्रतीति न रखता हुआ श्रावक या मुनिका बाहरी चारित्र पाले तौ वह सब मिथ्याचारित्र होता है। क्योंकि साथमें मिथ्यात्वका उदय है। मिथ्यात्वीके कदापि भी मोक्षका मार्गरूप सम्यक्चारित्र नहीं होता है।

रत्नत्रयकी एकता मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यक्चारित्रकी भी बहुत आवश्यक्ता है। चारित्रकी आवश्यक्तापर श्री प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं:—

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो समोत्तिणिद्दिट्ठो। मोहक्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो हि समो ॥ ७ ॥

भावार्थ—निश्चयसे चारित्र ही धर्म है। धर्म है सो समभावको कहा गया है। मोह व रागद्वेषमई क्षोभसे रहित जो आत्माका परिणाम है वही समभाव है।

दर्सन ज्ञान अनन्तं, अनन्त वीरी अनन्त चरनानि।
दर्सन मोहंध पज्जावं, चरनं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ २२५ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन ज्ञान अनन्तं अनन्त वीरी अनन्त चरनानि) रत्नत्रयमई धर्मके पालनेसे ही उसमें मुख्यता चारित्रकी है। चारित्रके प्रतापसे ही चार घातीय कर्मोंका क्षय होता है और अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, क्षायिक चारित्रादि गुणोंका प्रकाश होता है (दर्स मोहंध पज्जायं चरनं आवरन दुग्गए पत्तं) परन्तु मिथ्यादृष्टी शरीरमें रत रहता है, वह आत्माका ध्यानरूप चारित्र कपायके उदयसे नहीं कर सक्ता, वह मिथ्याचारित्री होता हुआ दुर्गतिमें चला जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव जब सम्यक्चारित्रमें उन्नति करता है और शुक्लध्यानको जागृत करता है तब ही चार घाती कर्मोंका क्षय करके अर्हंत परमात्मा होता है। मिथ्यादृष्टी कपायके उदयसे चारित्रको न पालता हुआ व विषय कषायोंमें रंजायमान रहता हुआ कुगतिमें चला जाता है।

दर्सन अरूव रूवं, ज्ञानं अरूव चरन चारित्तं।
सम्मत्त चरन चरनं, संजम चरनानि सुद्ध संजुत्तं ॥ २२६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अरूव रूवं) सम्यग्दर्शन अमूर्तीक आत्माके स्वभावमें श्रद्धा रखता है (ज्ञानं अरूव

चरन चारित्तं) सम्यग्ज्ञान अरूपी आत्माको यथार्थ जानता है, सम्यक्चारित्र अरूपी आत्मामें रमण करता है (सम्मत्त चरन चरनं संजम चरनानि सुद्ध संजुत्तं) जहां सम्यग्दर्शनका आचरण है वहीं संयमका आचरण है, वहीं शुद्धोपयोग है।

भावार्थ—निश्चयनयसे निज आत्माका द्रव्यदृष्टिसे यथावत् श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। उसीका यथावत् ध्यान सम्यग्ज्ञान है व उसीका यथावत् ध्यान सम्यक्चारित्र है, इन तीनोंकी एकताको आत्मध्यान, आत्मानुभव, सम्यक्त आचरन व निश्चय संयम आचरन व शुद्धोपयोग कहते हैं, यही मोक्षमार्ग कर्म क्षयकारक है व परमानन्दका दाता है।

तस्य दिस्टि आवरनं, आवरनं मुक्ति विमल मग्गस्य।
व्रत किरियं च अनिस्टं, चरन आवरन थावरं पत्तं ॥ २२७ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य दिस्टि आवरन) जिसकी सम्यग्दृष्टी ढकी है अर्थात् जो मिथ्यादृष्टी है (मुक्ति विमल मग्गस्य आवरनं) उसके परिणामोंमें निर्मल मोक्षमार्गका प्रकाश नहीं है (व्रतं किरियं च अनिस्टं) वह यदि व्रत करे व क्रिया पाले तौभी वे संसारमें भ्रमण करानेवाली हैं—मोक्षमार्ग नहीं हैं (चरन आवरन थावरं पत्तं) जिसके आत्मध्यानरूपी चारित्रका प्रकाश नहीं है, जो संसारमें रत है वह स्थावर योनिमें जाकर जन्म पाता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व सहित व्रत व क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है, किन्तु संसारका ही मार्ग है। यदि ऐसे व्रतोंसे कोई दूसरे स्वर्ग तक देव भी होजावे तो वहांसे आकर स्थावर पैदा होजाता है। विना सम्यक्तके प्रकाशके निर्मल मोक्षमार्गका लाभ नहीं होसक्ता है। वीतरागता विना कर्मका क्षय नहीं होसक्ता है।

चरनं चरित्त वंतं, चरनं संसार सरनि मुक्तस्य।
दर्सन मोहंध अभावं, अनृत चरनं नरय वासम्मि ॥ २२८ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं चरित्त वंतं) जो सम्यक्चारित्रको आचरण करता है (चरनं ससार सरनि मुक्तस्य) उसका चारित्र संसारमार्गसे छुड़ानेवाला होता है (दर्सन मोहंध अभावं) क्योंकि उस चारित्रमें दर्शन मोहका उदय नहीं है (अनृत चरनं नरय वासम्मि) मिथ्या चारित्र नरकवासको देता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित जो धर्मध्यान व शुक्लध्यानरूपी चारित्र है वह मोक्षका मार्ग है। वह

कर्मोंको काटके संसारसे छुड़ानेवाला है। जहां मिथ्याचारित्र है, कुतप है, कुध्यान है, परिणामोंमें रौद्र ध्यान है; हिंसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी व परिग्रहानन्दी भाव है वहां नरक आयुका बन्ध होजाता है।

चरनं पि सुद्ध चरनं, पषिक चरन पषि मोहंधं ।

पषि प्रवेस उवन्नं, चरनं आवरन पषि उववन्नं ॥ २२९ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं पि सुद्ध चरनं) चारित्र वही है जो शुद्ध चारित्र हो (पषिक चरन पषि मोहंधं) जो कोई किसी पक्षको लेकर चारित्र है वह पक्षके मोहसे अन्ध चारित्र है (पषि प्रवेस उवन्नं) वहां पक्ष भावका प्रवेश उत्पन्न होजाता है (चरनं आवरन पषि उववन्नं) जहां शुद्ध चारित्र पर आवरण है वहां ही पाक्षिक चारित्र उत्पन्न होता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीका जो चारित्र है वह शुद्ध चारित्र है। वह अपनी शक्तिको देखकर वाहरमें श्रावक या मुनिका चारित्र पालते हुए शुद्धोपयोगमें रमणका उत्साह रखता है। तथा वह आत्मानुभवका ही चारित्र जानता है। मैं मुनि हूं, श्रावक हूं, इस अहंकारको वह मिथ्यात्व समझता है।

मिथ्यादृष्टी इस शुद्ध वीतराग चारित्रको कषायोंके उदयसे न समझकर किसी मतका पक्ष रखता हुआ तपसीका, दण्डीका व कदाचित् जैन मतका श्रावक व मुनिका चारित्र पालता है। वाहरसे पक्ष रखकर चारित्र पालता है, भीतर परिणामोंकी पहचान नहीं रखता है। वह अहंकारमें भर जाता है कि मैं दण्डी हूं, तापसी हूं, श्रावक हूं, मैं मुनि हूं। ऐसे चारित्रको मिथ्या चारित्र ही कहते हैं।

दर्सन मोहंध उत्तं, चरनं आवरन अनृतं दिस्टं ।

अनाचार अज्ञानं, चरनं आवरन निगोय वासम्मि ॥ २३० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध उत्तं) यह दर्शनमोहका उदय कहा गया है जहां (चरनं आवरन अनृतं दिस्टं) चारित्र मोहका उदय होते हुए मिथ्या चारित्र पाला जावे (अनाचार अज्ञानं) वहां मिथ्या ज्ञानसे अनाचार ही मिलता है। वह रागद्वेष पूर्वक मिथ्या आचरनमें लगा रहता है (चरनं आवरन निगोय वासम्मि) चारित्रको न पालता हुआ वह दुःखोंका बीज बोता है और निगोदमें पहुंच जाता है।

भावार्थ—जहां मिथ्याज्ञान व मिथ्या दर्शन है, वहां आत्माके परिणामोंकी पहचान नहीं होती है, ऐसा प्राणी शरीरासक्त रहता हुआ हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहकी वृद्धि इन पांच पापोंको करता हुआ संसारमें दुःख पाने योग्य कर्मोंका बंध करता है तथा एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिमें जाकर जन्म पाता है।

चरनं पि विमल चरनं, चरनं संयुत्त मुक्ति गमनं च ।
दर्सन मोहंध अभावं, चरनं आवरन दुक्ख वीयम्मि ॥ २३१ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं पि विमल चरनं) निर्मल आचारको चारित्र कहते हैं (चरनं संयुत्त मुक्ति गमनं च) जो शुद्ध चारित्रको पालनेवाला है वही मोक्षको जाता है (दर्सन मोहंध अभावं) वहां दर्शन मोहके उदयका अभाव होता है (चरनं आवरन दुक्ख वीयम्मि) परन्तु जो कषायके उदयसे सम्यक्चारित्र नहीं पालता है वह दुःखोंका बीज बोता है।

भावार्थ—आत्मश्रद्धापूर्वक जो श्रावक या मुनिका निर्दोष चारित्र पाला जावे तथा आत्मध्यानकी उन्नतिपर ध्यान रक्खा जावे तो वह सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन पूर्वक मोक्षका कारण होता है, परन्तु जहां मिथ्यात्व है वहां मिथ्याचारित्र है वह तो पांच पापोंमें प्रवृत्तिरूप है। अतएव पाप बन्धका कारण व दुःखोंका हेतु है।

चरनं सुद्ध सहावं, सुद्धं सहकार कम्म षिपनं च ।
दर्सन मोहंध असुद्धं, चरनं आवरन सरनि संसारे ॥ २३२ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं सुद्ध सहावं) निश्चयसे चारित्र शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण रूप है (सुद्ध सहकार कम्म षिपनं च) शुद्ध वीतराग चारित्रकी सहायतासे ही कर्मोंका क्षय होता है (दर्सन मोहंध असुद्धं) जो कोई मिथ्या-दृष्टी है उसका चारित्र सब अशुद्ध है, मिथ्या है (चरनं आवरन सरनि संसारे) सम्यक्चारित्रको न पालके मिथ्यात्वी संसारमें ही भ्रमण करता है।

भावार्थ—व्यवहार मुनि या श्रावकके आचारमें केवल निमित्त कारण है, आलम्बन है। इसके होते हुए जब वीतराग चारित्र शुद्धात्मामें रमणरूप प्रगट होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टी

आत्मज्ञान रहित है, उसका शुभ या अशुभ कोई भी चारित्र सम्यक् नहीं है। वह नौ ग्रैवेयिक जाकर भी संसारमें ही भ्रमण करेगा। सम्यक्त विना सम्यक्चारित्र नहीं होसक्ता है।

चरनं इस्ट संजोयं, इस्टं संजोइ अनन्त दरसेई।
दर्सन मोहंध अनिस्टं, चरनं आवरन नरय वीयम्मि ॥ २३३ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं इस्ट संजोय) ध्यानमें हितकारी संयोगका प्राप्त करना व्यवहार चारित्र है (इस्टं सजोइ अनंत दरसेई) हितकारी व्यवहारके संयोग होनेपर अन्तरंग अनन्त गुणरूपी आत्माका अनुभव करना निश्चय चारित्र है। (दर्सन मोहंध अनिस्टं) दर्शन मोहके उदयसे अन्धा अहितकारी संयोग मिलाता है। (चरनं आवरन नरय वीयम्मि) सम्यक्चारित्रको न पाकर संसारवर्द्धक चारित्रको पालकर नर्क जानेका वीज वोता है।

भावार्थ—श्रावक व साधुका व्यवहार चारित्र मन वचन कायको रोकनेके लिये व आकुलता हटानेके लिये साधक है। इनके होते हुए आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लय होना निश्चय चारित्र है। यही मोक्षका मार्ग है। ऐसा ही श्री तत्वसारमें कहा है:—

जं अवियप्पं तच्च तं सारं मोक्खकारणं त च। तं णाऊण विसुद्धं झायह होऊण णिग्गथो ॥ ९ ॥
बहिरब्भतरगंथा मुक्का जेणेह तेविहजोएण। सो णिग्गंथो भणिओ जिणलिंगसमासिओ सवणो ॥ १० ॥
लाहालाहे सरिसो सुहदुक्खे तह य जीविए मरणे। बंधो अरयसमाणो झाणसमत्थो हु सो जोई ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो निर्विकल्प आत्मतत्व है वही सार है, वही मोक्षका कारण है। निर्ग्रन्थ होकर उस निर्मल तत्वका ध्यान करो। जिसने मन वचन कायसे बाहरी भीतरी परिग्रह त्याग दिया है सो निर्ग्रंथ कहा गया है। जिस मुनिका भेष तीर्थंकरके समान नग्न है, जो लाभ अलाभमें सुख दुःखमें जीवन मरणमें बंधु व शत्रुमें समान भाव रखता है वही योगी ध्यान करने योग्य है।

श्री समयसारमें श्री कुंदकुंदाचार्य महाराज कहते हैं—

अप्पाणमप्पणोरुभिदूण दोसु पुण्णपावजोगेसु। दंसणणाणह्मिठिदो इच्छाविरदो य अण्णह्मि ॥ १७७ ॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा। णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १७८ ॥

भावार्थ—अपने आत्माको आत्माके द्वारा पुण्य व पाप दोनों उपयोगोंसे रोककर, अन्य पदार्थकी

इच्छा छोड़कर एक दर्शन ज्ञानमई आत्मामें ठहरे। यह आत्मा सर्व परिग्रह त्यागकर अपने आत्माकेद्वारा आत्माको ही ध्याता है, द्रव्य कर्म व नोकर्मको नहीं ध्याता है। तथा वह अनुभव करनेवाला एक अपने स्वरूपको ही अनुभवमें लाता है।

इसतरह चारित्रको कर्मक्षयके लिये उपयोगी जानकर पालना चाहिये। मिथ्यादृष्टी जीव अहित-कारी रागद्वेषवर्द्धक विषयपोषक साधनोंमें रहकर हिंसादि पापोंमें प्रवृत्ति करता है, इससे वह नरकके दुःखोंके पानेका बीज बोता है।

तवं पि अप्प सहावं, ज्ञान सहावेन चरन सहकारं।
दर्सन मोहंध असत्यं, तव आवरन सरनि संसारे ॥ २३४ ॥

अन्वयार्थ—(तव पि अप्प सहावं) तप भी निश्चयसे आत्माका स्वभाव है (ज्ञान सहावेन चरन सहकारं) ज्ञान स्वभावसे आत्मामें तपना स्वचारित्रको सहकारी है (दर्सन मोहंध असत्य) मिथ्यादृष्टि मिथ्या तप करता है (तव आवरन सरनि संसारे) उसके सम्यक् तपके ऊपर परदा है, वह संसारमें ही भ्रमण करता है।

भावार्थ—यद्यपि तप भी चारित्रमें गर्भित है तथापि विशेष खुलाशा करनेके लिये तपको अलग कहा है। बारह प्रकार तप है जो कहा जाचुका है। यह व्यवहार तप इच्छाओंके रोकनेमें सहकारी है व निश्चय तपका साधक है। निश्चय तप आत्माका अपने आत्मामें ही तपना है। तपकी सहायतासे सामायिक आदि चारित्रकी वृद्धि होती है। साधकको शक्तिके अनुसार उपवास आदि तप भी करने चाहिये। मिथ्यादृष्टीके ऊपर ऐसा कर्मोंका आवरण है जिससे वह मिथ्या हिंसाकारक तप करता है। अहिंसात्मक आत्मज्ञानवर्द्धक तपको नहीं करता है। इससे कर्मोंकी निर्जरा न करके कर्मोंका बन्ध करता है और संसारमें भ्रमता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

यावत् स्वास्थ्यं शरीरस्य यावच्चेंद्रियसम्पदः। तावद्युक्तं तपः कर्तुं वार्द्धक्ये केवलं श्रमः ॥ १७ ॥

भावार्थ—जबतक शरीर तन्दुरुस्त हो, इन्द्रियोंमें शक्ति हो, तबतक तपका साधन कर लेना चाहिये, वृद्धावस्थामें तप न होसकेगा, केवल श्रम होगा। मूलाचारकी अनगार भावनामें कहा है—

णिच्चं च अप्पमत्ता संजमसमिदीसु झाणजोगेसु। तवचरणकरणजुत्ता हवंति सवणा समिदपावा ॥ ९६ ॥

वादं सीदं उण्हं तण्ह च क्षुधं च दंसमसयं च । मन्च सहति धीरा कम्माण खयं करेमाणा ॥ २०८ ॥

दुज्जणवयण चडयण सहंति अच्छोड सत्थपहरं च । ण य कुप्पंति महरिसी खमागुणविराणया साहू ॥ २०९ ॥

भावार्थ—जो नित्य प्रमाद रहित होते हुए-संयम-पांच समिति व ध्यानके योगमें लगे हुए-तपश्चरण करते हैं, चारित्र पालते हैं, वे मुनि पापोंका क्षय करते हैं। हवा, ठंडी, गरमी, प्यास, भूख, डांस, मच्छर आदि परीषहोंको वे धीर वीर मुनि सहते हैं तब ही कर्मोंका क्षय करते हैं। साधुगण महात्मापि क्षमा-गुणके ज्ञाता दुर्जनोंके वचन, गर्म लोहेके फुलिंगे, अपनी असत्य निन्दा, शस्त्रप्रहारादिको विना किसी तरह क्रोध किये सहते हैं। यही तप है।

तव पुन इस्ट सजोयं, इस्टं सहकार कम्म विलयंति ।
दर्सन मोहंध अनिस्टं, तव आवरन विषय नरयम्मि ॥ २३५ ॥

अन्वयार्थ—(तव पुन इस्ट सजोय) तब भी उसके सहकारी संयोगोंके होनेपर होता है। (इस्टं सहकार कम्म विलयंति) योग्य सहकारी कारणोंके मिलनेपर तप द्वारा कर्मोंकी निर्जरा होती है (दर्सन मोहंध अनिस्टं) मिथ्यादृष्टी अहितकारी निमित्त मिलाता है (तव आवरन विषय नरयम्मि) वह तपको न करता हुआ विषयोंमें रत रहता है इससे नरक जाता है।

भावार्थ—उपवास, ऊनोदर, रसत्याग, एकान्तवास आदि बाहरी तप योग्य निमित्त हैं, उनके होनेपर इच्छाएं मिटती हैं, मनकी चंचलता हटती है तब आत्मामें लीनरूप निश्चय तप कर्म निर्जराका कारण होता है। सम्यग्दृष्टी ही ऐसा सार तप कर सक्ता है। मिथ्यादृष्टी विषय भोगोंमें रत रहकर नर्क जाता है।

अप्प सहावे निलयं, पर सहकार विमुक्त तव उत्तं ।
कस्टं अनिस्ट रूवं, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २३६ ॥

अन्वयार्थ—(पर सहकार विमुक्त) पर पदार्थकी तरफ भावना त्यागके (अप्प सहावे निलयं तव उत्तं) आत्माके स्वरूपमें तल्लीन होना तप कहा गया है (अनिस्ट रूव कस्ट) जो इसके विरुद्ध बाहरी कष्ट देने रूप तप है वह हितकारी नहीं है। क्योंकि वहां आत्माका लक्ष्य नहीं है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्त) मिथ्यादृष्टी कुतप करके दुर्गति जाता है।

भावार्थ—आत्माके सिवाय जितने पुद्गलादि पर पदार्थ हैं व रागादि अशुद्ध भाव हैं उनको चित्तसे हटा करके एक शुद्ध आत्माके स्वभावमें मग्न होना ही तप है। यदि ऐसा तप न हो और बाहरी कायको कष्ट दे व आर्तध्यान करे तो वह मिथ्यातप है। मिथ्यादृष्टी ऐसा कुतप करके दुर्गति पाता है।

तवं च लषन अलष्यं, लपन्तो सुहाव सुद्ध विमलं च।
संसार सरनि विरयं, दसन मोहंध सरनि संजुत्तं ॥ २३७ ॥

अन्वयार्थ—(तवं च अरुष्यं लपन) तब वही है जहां अलक्ष्यका अनुभव किया जावे (सुद्ध विमल च लपंतो सुहाव) जहां आत्माका शुद्ध निर्मल स्वभाव ध्याया जावे (संसार सरनि विरयं) तथा संसारके कारण सर्व मार्गोंसे विरक्त रहा जावे (दर्सन मोहंध सरनि सजुत्त) मिथ्यादृष्टी तो संसारके मार्गमें ही चलता है।

भावार्थ—मन, वचन, काय तीनोंके द्वारा आत्मा अनुभवमें नहीं आता है इसलिये अलक्ष्य है। ऐसे सूक्ष्म आत्मासे शुद्ध स्वभावको जहां पर पदार्थोंसे बिलकुल विरक्त होकर ध्यानमें लिया जावे वही सच्चा तप है। यही तप संसार नाशक है। सम्यग्दृष्टी ही ऐसा तप कर सक्ता है। मिथ्यादृष्टी संसारका मोही है वह संसारमें ही भ्रमता है। उसका लक्ष्य सूक्ष्म आत्मतत्वपर नहीं जाता। समाधिशतकमें कहा है—

सोहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः। तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—मैं ही परमात्मा हूं ऐसा संस्कार जब जम जाता है तथा इसीकी भावना की जाती है। इस भावनाका भी जब दृढ़ संस्कार होजाता है तब ही आत्मा आत्मामें ठहर जाता है यही आत्मध्यान-रूपी यथार्थ तप है।

संसारे विरयंतो, ससारे सरनि सरंति नहु पिच्छ।
ज्ञानी ससंक मुकं, दर्सन मोहंध ससंक स सरूवं ॥ २३८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी) तत्वज्ञानी (संसारे विरयतो) संसारसे वैराग्यभाव रखता हुआ (संसारे सरनी सरति नहु पिच्छ) संसारके मार्गमें भ्रमणकी ओर लक्ष्य नहीं रखता है (ससक मुक्त) उसकी संसारकी शंका छूट गई है (दर्सन मोहंध ससक स सरुवं) किंतु मिथ्यादृष्टि स्वरूपमें शंकावान होता हुआ संसारके भ्रमणकी शंका रखता है।

भावार्थ—यहां सम्यग्दृष्टिके निर्भय भावको कहते हैं। सम्यग्दृष्टिका भाव संसारसे व संसारके मार्गसे बिलकुल विरक्त है, उसको अपने आत्माकी ऐसी दृढ़ श्रद्धा है कि उसको इस बातका निश्चय है कि मैं अवश्य संसारसे मुक्त होजाऊँगा। जबतक मुक्त नहीं हूंगा तबतक वीर सिपाहीके समान कर्मोंके उदयको भोग लूंगा। मिथ्यादृष्टिको शंका रहती है कि कहीं यहां आपत्ति या दुःख न आजावें व मरकर कहीं दुर्गतिमें जाकर दुःख न उठाऊँ। ऐसी शंका रखता हुआ भयभीत रहता है। परंतु जन्म मरणसे छूटनेका यत्न नहीं करता है क्योंकि वह विषयोंमें तीव्र रागी है।

संसारं सरति अनृतं, हिंडति संसार पपिनो भावं।
ज्ञानी ससंक विरयं, दर्सन मोहंध संक उपपत्ती ॥ २३९ ॥

अन्वयार्थ—(अनृतं संसारं सरति) मिथ्यादृष्टि इस मिथ्या संसारमें भ्रमता है (ससार पपिनो भावं हिंडति) उसके संसारमें घुमनेका कारण उसका संसारके पक्षका दृढ़ भाव है। (ज्ञानी ससंक विरयं) तत्वज्ञानीको कोई शंका नहीं रहती है (दर्सन मोहंध संक उपपत्ती) परन्तु मिथ्यादृष्टिको शंकाकी उत्पत्ति रहा करती है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीको संसार सुहाता है। विषयोंसे व मोह मायासे बहुत राग है। इसलिये वह इस क्षणभंगुर संसारकी पर्यायोंमें भ्रमण करता रहता है। उसको शंका भी रहती है कि कहीं आपत्ति न आजावे व मरकर कहीं कुगतिमें न चला जाऊं। तत्वज्ञानी बिलकुल निर्भय रहता है क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास अजर अमर आत्माके स्वभावपर है।

सरनि भाव उवलष्यं, व्रत तप किरियं च अज्ञान सहकारं।
ज्ञानी तं विरयंतो, अप्प सहावेन निसंक रूवेन ॥ २४० ॥

अन्वयार्थ—(सरनि भाव उवलष्यं) मिथ्यादृष्टीका लक्ष्य संसारके कारणीभूत भावोंपर ही रहता है। उसके भावोंसे विषयानुराग नहीं जाता (व्रत तप किरियं च अज्ञान सहकार) वह मिथ्याज्ञानके ही द्वारा व्रत, तप व क्रिया पालता है (ज्ञानी तं विरयते) ज्ञानी संसारके कारणीभूत भावोंसे-शुभ अशुभ दोनोंसे विरक्त है (अप्प सहावेन निसंक रूवेन) वह निःशंकभावसे आत्माके स्वभावपर श्रद्धान रखता हुआ उसीमें रत होता है।

भावार्थ—अज्ञानी मिथ्यादृष्टी अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे इंद्रिय सुखकी श्रद्धाको नहीं त्यागता

हुआ उसी सुखकी प्राप्ति पर लक्ष्य रखके व्रत करता है, तपश्चरण करता है व बाहरी क्रिया पालता है। इससे उसका संसार कटता नहीं—उलटा बढता है। परन्तु तत्वज्ञानी सर्व संसारकी वासनाओंसे इंद्र व अहमिन्द्र पद्से व चक्रवर्ती पद्से विरक्त रहता है। अपने आत्माके स्वभावकी शंका रहित दृढ श्रद्धा रखता है व उसे संसारकी कोई शंका नहीं रहती है। वह समझता है कि मेरा आत्मविश्वास मुझे शीघ्र ही निर्वाणका लाभ करा देगा।

सरनस्य अनेक भावा, दानं किरियं च विकह रूवेन।
ज्ञानी तं विरयन्तो, विमल सहावेन निसंक सहकारं ॥ २४१ ॥

अन्वयार्थ—(सरनस्य अनेक भावा) संसारमें भ्रमणके अनेक भाव होते हैं (दानं किरियं च विकह रूवेन) विकथारूपसे दान और क्रियाएं पालना (ज्ञानी तं विरयन्तो) ज्ञानी इन बातोंसे विरक्त रहता है (विमल सहावेन निसक सहकारं) निर्मल स्वभावकी सहायतासे निःशंक रहता है।

भावार्थ—जो कोई दान बहुत करे व अनेक क्रियाएं पालें परंतु अपनी बड़ाई करे—महिमा गावे व दान क्रिया करके स्त्री, भोजन, नगरकी सुन्दरता व राज्यपद आदि चाहै सो विकथारूपसे दान व क्रियाओंका पालन यह सब संसारके मार्गको बढ़ानेवाला है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी दान व चारित्र पालके अपनी बड़ाई नहीं चाहता है और न उनसे सांसारिक विभूतिके पानेकी कोई आशा करता है। क्योंकि उसका स्वभाव निर्मल है, वह निःशङ्क हो आत्माकी भावना करता है।

संसार मन्त तं तं, टोटक समाउ टेक अनन्ताइं।
ज्ञानी विमुक्त भावं, ज्ञान सहावेन संक रहितस्य ॥ २४२ ॥

अन्वयार्थ—(संसार मन्त तं तं) संसारके प्राणी मंत्र तंत्रमें फँसे रहते हैं (टोटक समाउ टेक अनन्ताइं) अनेक टोटके करते हैं, अनेक प्रकारके आग्रह या टेक रखते हैं (ज्ञानी विमुक्त भावं) ज्ञानी इन भावोंसे अलग रहता है (ज्ञान सहावेन संक रहितस्य) वह ज्ञान स्वभावसे निःशङ्क रहता है।

भावार्थ—अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीव अनेक प्रकारकी शङ्काएँ मनमें रखते हैं कि कहीं पुत्रका मरण न हो, स्त्रीका मरण न हो, व्यापारमें हानि न हो, शरीरमें रोग न हो इत्यादि शङ्काएँ रखके उनके दूर

करते कराते हैं। उनको यह विश्वास होता है कि ऐसा टोटका
करनेके लिये नानाप्रकार मंत्र तंत्र टोटके करते कराते हैं। उनको यह विश्वास होता है कि ऐसा टोटका करेंगे, यह मंत्र जपेंगे, यह तंत्र करेंगे तो अमुक काम सिद्ध होजायगा। सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको इन बातोंकी शङ्का व चाह नहीं रहती है, वह अपने कर्मके उदयपर शंका रहित होता है। वह जैन शास्त्रानुसार सम्यक्तमें बाधा नहीं आवे ऐसे योग्य उपाय औषधि उपचार व योग्य जैन मंत्रादि आदिका प्रयोग करता है तौभी वह यह जानता है कि मणि मंत्र औषधि ये मात्र बाहरी उपचार हैं, जबतक पाप क्षय व पुण्य उदय न होगा तबतक कार्य सिद्ध न होगा। वह किसी सांसारिक आपत्तिपर घबड़ाता नहीं, योग्य उपाय करनेपर कर्मोदयपर निर्भर रहता है।

दर्सन मोहंध भावं, संसार सरनि धरंति स सुभावं।
जिन वयनं नहु दिट्ठं, अनन्त संसार दुक्ख वीयम्मि ॥ २४३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध भावं) मिथ्यादृष्टीका ऐसा भाव होता है (संसार सरनि स सुभावं धरन्ति) कि वह संसारमें भ्रमणकारी अपने स्वभावको धरता है (जिन वयनं नहु दिट्ठं) वह जिन वचनोंको प्रतीतिमें नहीं लाता है (अनन्त संसार दुक्ख वीयम्मि) वह इस अनन्त संसारमें दुःखोंका बीज बोता है।

भावार्थ—बहिरात्मा अज्ञानी संसारमें लिप्त रहनेसे शरीर, कुटुम्ब, धन, परिग्रह, मान प्रतिष्ठा आदिकी चाहकी दाहमें जला करते हैं। इनके घटनेकी व वियोगकी शंकामें फँसे रहते हैं। इस शंकाके रोकनेके लिये चित्तको समाधान करनेके लिये नाना प्रकार मिथ्यात्व पूर्ण उपाय मंत्रतंत्र आदि पूजा पाठादि करते कराते रहते हैं। वे सांसारिक भावोंको ही दिनरात धारण करते हैं। उनको जिनवाणी सुहाती नहीं। एक तो वे सुनते पढ़ते नहीं-यदि सुनते पढ़ते भी हैं तो धारणामें नहीं लेते हैं, वे घोर कर्म बांधके संसारमें कष्ट उठाते हुए भ्रमते हैं। तत्वज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीवके परिणाम सदा निशंक रहते हैं। वह सात प्रकारका भय नहीं रखता है।

(१) इस लोकभय—लौकिक जन असन्तुष्ट होंगे तो मेरा बुरा करेंगे, कहीं कोई मेरा हास्य न करे आदि। वह लौकिक जनोंके कहने सुननेकी शंका रखके धर्ममार्गसे कभी नहीं हटता, सत्यपर आरूढ़ रहता है।

(२) परलोक भय—परलोकमें नर्कगति होगी तो क्या होगा, पशु हुआ तो बहुत दुःख उठाऊँगा ऐसा भय न रखके योग्य आचरण पालता है और कर्मोदयपर भरोसा रखता है। जैसी गति मिलेगी मैं शांतिसे भोग लूंगा, ऐसी वीरता रखता है।

(३) वेदना भय—शरीरमें रोग होनेकी शङ्का नहीं रखता है। यद्यपि रोग न होने पावे इसका पूरा २ यत्न रखता है। वेदनीके उदयसे यदि रोग होजावे तो सहनेको वीरता नहीं छोड़ता है।

(४) अनरक्षा भय—मेरा कोई रक्षक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, भाई नहीं, मेरी रक्षा कौन करेगा, यह शङ्का सम्यक्ती नहीं रखता है। वह अपने पुण्य कर्मपर भरोसा रखता है।

(५) अगुप्त भय—मेरा धन माल असबाव कोई चुरा लेजायगा तो क्या होगा, ऐसी शङ्का न रखके पुण्य कर्मपर भरोसा रखके निःशङ्क रहता है। धनादिकी रक्षाका योग्य यत्न करता है।

(६) मरण भय—मरनेका भय सम्यक्तीको नहीं होता। वह समझता है कि आत्माका तो मरण नहीं, शरीर बदलनेको ही मरण कहते हैं। आयु कर्मकी निर्जराको कोई रोक नहीं सक्ता।

(७) अकस्मात् भय—सम्यक्तीको ऐसा भय नहीं रहता है कि छत गिर पड़ेगी तो क्या होगा, गाड़ी टूट जायगी तो क्या होगा। वह यथासम्भव यत्न तो करता है परन्तु निर्भय रहता है।

व्यवहाररूप तथा निश्चयनयसे विचार कर सम्यक्ती सदा निःशंक रहता है। समयसार कलशमें मरणभयके निरोधमें ऐसा कहा है:—

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरण प्राणा किलस्यात्मनो। ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।
तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो। निःशंक सततं स्वयं स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ २६-७ ॥

भावार्थ—प्राणोंके नाशको मरण कहते है। आत्माके प्राण तो ज्ञान है। वह स्वयं अविनाशी है। वह कदापि भी नाश नहीं होसक्ता है। इसलिये उस ज्ञानका कभी मरण नहीं है। तब फिर ज्ञानीको मरनेसे क्या भय? वह सदा निःशंक रहता हुआ अपने सहज ज्ञानका अनुभव करता रहता है। सम्यक्तीका जीवन निर्भय और वीरताका है जब कि मिथ्यात्वीका जीवन शंकाशील व कायरताका है।

संसार भाव उवलष्यं, लाज भय गारवेन सद्भावं।
जिन उत्तं नहु लष्यं, संसारे सरनि भावना होई ॥ २४४ ॥

अन्वयार्थ—(संसार भाव उवलष्यं) मिथ्यादृष्टिका लक्ष्य बिंदु संसार भाव ही होता है (लाज भय गारवेन सद्भावं) वह लज्जा, भय, मदमें फंसा रहता है (जिन उत्त नहु लष्य) जिनेन्द्र कथित उपदेश पर लक्ष्य नहीं देता है (संसारे सरनि भावना होई) उसकी भावना संसारमें भ्रमण की ही होती है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिका लक्ष्य रागद्वेष, मोह व विषयोंकी पुष्टि होता है। वह लज्जामें फंसा रहता है। ऐसा काम न करूँगा तो मेरी लाज जायगी, कुलकी लाज जायगी; इस लज्जाके कारण शक्ति न रहने पर भी ब्याह शादीमें अधिक खर्च करता है, कुरीतियोंको व कुचालोंको नहीं छोडता है। वह सदा भयभीत रहता है कि कोई मेरी निन्दा न करे, मुझे नाम न रक्खे, मेरेको रोग न होजावे आदि शंकाशील रहकर न करने योग्य काम करता है। बहुतसे काम वह अपना अहंकार पुष्ट करनेको करता है। मेरा जगतमें नाम हो, दूसरोंकी बदनामी हो—उसके जीवनका ध्येय यही रहता है। वह जिनेन्द्र भगवानके उपदेश पर ध्यान नहीं देता है, क्योंकि उसकी सर्व भावना संसारमय होती है।

संसार सरनि सोधं, अभावं भाव सरनि सुविसुद्धं।
जिन समयं नहु पिच्छइ, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २४५ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि सोधं) मिथ्यादृष्टी संसार मार्गकी ही तरफ दृष्टि रखता है (अभाव भाव सरनि सुविसुद्धं जिन समयं नहु पिच्छइ) संसारका अभाव जैसे हो ऐसे भावोंके निर्मल मार्गको बतानेवाले जिन आगमपर दृष्टि नहीं रखता है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्त) इसलिये मिथ्यादृष्टी दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीकी रुचि शरीर सम्बन्धी व लौकिक सम्बन्धी कार्योंकी ही तरफ रहती है। वह जिनवाणीके उपदेशपर ध्यान नहीं देता है जिससे मोक्षमार्गके भावोंकी पहचान होसके। अधिकतर अशुभ भावनाके होनेसे वह दुर्गतिके योग्य कर्म बांध लेता है।

सरीरं विरयन्तो, सरीर भाव असुह मुक्कं च।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, दर्सन मोहंध सरीर सहकारं ॥ २४६ ॥

अन्वयार्थ—(सरीरं विरयन्तो) सम्यग्दृष्टी शरीरपर रुचि नहीं रखता है (सरीर भाव असुह मुक्क च) शरीर सम्बन्धी अशुभ भावोंको उन्होंने त्याग दिया है (ज्ञानेन ज्ञा । सुद्ध) उसको निश्चय है कि ज्ञानसे ही ज्ञानकी शुद्धि होती है (दर्सन मोहंध सरीर सहकार) परन्तु मिथ्यादृष्टी शरीरकी ही भावना रखता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीने अपने आत्माको भलेप्रकार पहचान लिया है कि वह परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आनन्दमई परम वीतराग अखण्ड पदार्थ है। उसके गाढ रुचि है कि शरीर सुख क्षणिक व अतृप्तिकारी है, अतीन्द्रिय सुख जो आत्मासे ही प्रगट होता है सच्चा सुख है। इसलिये वह शरीरसे वैरागी व आत्माका परम रुचिवान रहता है। तथा कर्मोंको काटकर अपने ज्ञानको शुद्ध करनेके लिये आत्मज्ञानकी ही भावना भाता है। मिथ्यादृष्टी बिलकुल इसके विरुद्ध रुचि रखता है। वह शरीरमें व इन्द्रिय सुखमें ही आसक्त रहता है।

अनृत असत्यं महियं, असुचि अनेय भाव अनन्तानं।
तं ऋतं जानन्तो, दर्सन मोहंध अनिस्ट रूवेन ॥ २४७ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत असत्यं महिय) मिथ्या व नाशवन्त इस शरीरके साथ (असुचि अनेय भाव अनंत नं) अपवित्र अनेक अनंतानंत भाव मिथ्यादृष्टि किया करता है (तं ऋतं जानन्तो) उस शरीरको ही सत्य जानता है (दर्सन मोहंध अनिष्टरूवेन) मिथ्यादृष्टि अपना बुरा ही करता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिको अपने शरीरके साथ ऐसा मोह रहता है कि उसके सम्बन्धको लेकर रातदिन पांच इंद्रिय भोग सम्बन्धी तथा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील तथा परिग्रह सम्बन्धी अनंत प्रकारके भाव किया करता है। वह शरीरको स्थिर व सत्य मान लेता है, आत्माकी तरफ दृष्टि नहीं रखता है इसलिये वह अपना बहुत बुरा करता है।

सरीर भाव सहिओ, जिन उत्तं सुत वयन नहु पिच्छं।
मिच्छा कुज्ञान सहिओ, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २४८ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर भाव सहिओ) शरीर सम्बन्धी भावोंमें लिप्तताके कारण (जिन उत्तं सुत वयन नहु पिच्छं) जिनेन्द्रोक्त शास्त्रके वचनोंको देखता नहीं है (मिच्छा कुज्ञान सहिओ) मिथ्यात्व और मिथ्याज्ञान सहित वर्तता है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं) इसीलिये मिथ्यादृष्टी दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी शरीरका मोही रहता हुआ जिनवाणीपर दृष्टि नहीं देता है, न पढता है, न सुनता है, न ध्यानमें लेता है। उसको वैराग्यकी बात कड़वी लगती है, किंतु रागकी बात प्यारी लगती है। मिथ्यादर्शन और अज्ञानके प्रतापसे अशुभ कर्म बांधकर वह दुर्गतिमें जाता है।

भोगं अनिस्ट रूवं, अनिस्ट भावेन सरनि संसारे ।
अनृतभाव स भोगं, दर्सन मोहंध अनृत भोगं च ॥ २४९ ॥

अन्वयार्थ—(भोगं अनिस्ट रूव) इंद्रियोंके भोग अहितकारी हैं, आत्माके शुद्ध स्वरूपसे हटानेवाले हैं। (अनिस्ट भावेन सरनि ससारे) इन अनिष्ट भोगोंकी आसक्तिकी भावनासे संसारमें भ्रमण होता है । (अनिष्ट भाव स भोगं) भोगोंके साथ तीव्र अशुभ भाव होते हैं । (दर्सन मोहंध अनृत भोग च) इन मिथ्या भोगोंमें ही उलझा रहता है ।

भावार्थ—इंद्रियोंके भोगोंके पीछे जो आसक्त होकर पड़ जाता है वह धर्मकार्यको भूलकर व न्याय व अन्यायका ख्याल छोड़कर महान तृष्णामें आतुर रहनेसे तीव्र अशुभ भावोंसे पापकर्मका वन्ध कर लेता है । इसीसे वह इन मिथ्या भोगोंमें अन्ध होनेसे संसारमें दीर्घकाल तक भ्रमण किया करता है ।

स्वयंभू स्तोत्रमें श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसा स्वार्थो न भोग परिभंगुरात्मा । तृषोऽनुसंगान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वे ॥

भावार्थ—प्राणियोंका परम हित अपने आत्माके स्वरूपमें तल्लीनता है न कि क्षणभंगुर भोग । इन भोगोंसे तो तृष्णाकी वृद्धि होती है, ताप शांत नहीं होता है । हे भगवान्! आपने ऐसा उपदेश किया है ।

भोगं संसार सुभावं, भोगं अभाव भाव उवलष्यं ।
अनिस्ट भोग स उत्तं, दर्सन मोहंध सुस्ट भोगं च ॥ २५० ॥

अन्वयार्थ—(भोग संसार सुभावं) ये भोग संसार स्वभावमई हैं (भोग अभाव भाव उवलष्यं) इन भोगोंके कारण नाशवंत शरीरके साथ ही परिचय रहता है (अनिष्ट भोग स उत्तं) ये भोग अहितकारी कहे गए हैं (दर्सन मोहंध सुस्ट भोगं च) मिथ्यादृष्टी इन भोगोंको हितरूप मानता है ।

भावार्थ—पंचेन्द्रियोंके भोगोंमें सारा संसार फंसा है तथा इनही भोगोंकी तृष्णासे ही वारवार शरीर प्राप्त होता है । यह अज्ञानी प्राणी उस नाशवान शरीरमें ही अनुरागी रहता है । रातदिन उस-हीकी सेवा किया करता है। जिससे वह आत्महितको भूल जाता है, भोगोंमें अन्ध भाव आत्म रूचिको हटानेवाला है । इन भोगोंसे तृष्णा बढती है, संसारमें ताप शांत नहीं होता है । संसारका भ्रमण बढता

हो जाता है। आत्मस्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है। इसलिये इनकी आसक्ती अहितकारी है परंतु मिथ्या-दृष्टीको सम्यग्ज्ञान नहीं होता है इसलिये वह इन भोगोंको ही हितकारी जानता है।

सार समुच्चयमें भोगोंके सम्बन्धमें कहा है—

भुक्त्वाप्यनन्तां भोगान् देवलोके यथेप्सितान्। यो हि तृप्तिं न सम्प्राप्तः स किं प्राप्स्यति सम्प्रति ॥ ७५ ॥

वरं हालाहलं भुक्तं विषं तद्भवनाशनम्। न तु भोगविषं भुक्तमनन्तभवदुःखदम् ॥ ७६ ॥

इन्द्रियप्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम्। तच्च कर्मविबन्धाय दुःखदानैकपण्डितम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ—स्वर्ग लोकमें इच्छानुसार सुखोंको निरन्तर भोग करके भी जो तृप्त न हुआ वह अब इन थोडे सुखोंसे कैसे तृप्त होगा। हालाहल जहर पीना तो अच्छा है, उससे इसी जन्मका नाश है परन्तु भोग रूपी विषका सेवना उचित नहीं जिससे अनन्त जन्मोंमें दुःख पहुंचता है। इंद्रियोंके द्वारा होनेवाला सुख सुखसा झलकता है पर वह सच्चा सुख नहीं है। इस इंद्रिय सुखके भोगनेसे कर्मोंका बन्ध होता है जिससे बहुत दुःख प्राप्त होता है।

भोगं भोग सुभावं, विकहा वसन विषय भाव उवभोगं।
आलापं असुद्ध भावं, दर्सन मोहंध अनृत भोगं च ॥ २५१ ॥

अन्वयार्थ—(भोग भोग सुभाव) भोगोंको भोगते हुए भोग करनेका ऐसा स्वभाव पड़ जाता है (विकहा वसन विषय भाव उवभोग) कि चार विकथा, सात व्यसन, पांच इंद्रियोंके विषय सम्बन्धी भावोंका उपभोग किया करता है (आलाप असुद्ध भाव) अशुद्ध भावोंको लिये हुए बकवाद करता है (दर्सन मोहंध अनृत भोग च) मिथ्यादृष्टी इन मिथ्या भोगोंमें आसक्त रहता है।

भावार्थ—जिनके भोगोंके भीतर लालसा होजाती है वे स्त्री, भोजन, देशके भोग व राजाओंके भोगकी कथाओंमें रंजायमान रहते हैं। जूआ खेलना, मांसाहार, मद्यपान, चोरी, शिकार, वेश्या सेवन व परस्त्री सेवन इन सात व्यसनोंकी आदत पड जाती है, रात दिन इनही भावोंमें उलझे रहते हैं तथा पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी भावना नित्य रहती है। परस्पर हास्य कौतूहलमें भी अशुचि भावोंकी प्रदर्शक वार्तालाप होती रहती है। खेद है मिथ्यादृष्टि जीव इन मिथ्या भोगोंके कारण अपना अहित कर लेता है।

भोगं नंत विसेषं, अज्ञानं तव वय किरिय विकह संयुत्तं ।
वयनं न सुद्ध वयनं, अनिस्ट रूवेन अन्ध अन्धानि ॥ २५२ ॥

अन्वयार्थ—(भोग नंत विसेषं) भोग सम्बन्धी भावोंके अनन्त भेद हैं (अज्ञानं तव वय किरिय विकह संयुत्त) भोगोंकी लालसासे अज्ञानी लोग तप करते हैं, व्रत पालते हैं, क्रिया साधते हैं परन्तु विकथाओंको नहीं त्यागते हैं (वयन न सुद्ध वयन) वे कभी शुद्ध वैराग्यपूर्ण वचन नहीं कहते हैं (अनिस्ट रूवेन अन्ध अन्धानि) वे अपना अहित करते हुए स्वयं अन्धे रहते हुए अन्धोंको मार्ग बताते हैं ।

भावार्थ—भोगोंकी तृष्णा मनमें रखके भविष्यमें भोग प्राप्त हों इस लालसासे मिथ्यादृष्टि उपवासादि तप करते हैं, मुनि व श्रावकके व्रत पालते हैं, भोजनादि क्रिया शुद्ध रखते हैं परंतु विकथा नहीं त्यागते हैं। न कभी आत्मज्ञानवर्द्धक चर्चा करते हैं । वे आप भी संसारमें डूबते हैं और दूसरे अज्ञानियोंको भी अज्ञानका मार्ग बताते हैं । बहुतसे जगतके प्राणी भोग लालसासे दिनमें व्रत करते हैं, रात्रिको चन्द्रमा व नक्षत्र देखकर खाते हैं । अग्नि तपन रूप तप करते हैं । अनेक भेष बनाकर साधुपना साधते हैं परन्तु धर्मकी चर्चा नहीं करते हैं। कोई २ जैनके व्रत तप आदि करते हैं, भावना विषयभोगकी रहती है। इससे वे परम्परा अनिष्ट फलको ही पाते हैं ।

अन्धं अन्ध सुभावं, दर्सन मोहंध दुक्ख वीयम्मि ।
दोसं अनन्त नन्तं, संसारे निरय निगोद वासम्मि ॥ २५३ ॥

अन्वयार्थ—(अन्धं अन्ध सुभावं) अन्ध पुरुषका स्वभाव ही अन्धा होता है, उसे कुछ दीखता ही नहीं है (दर्सन मोहंध दुक्ख वीयम्मि) इसी तरह जो मिथ्यात्वके उदयसे अन्धा है वह हित अहित धर्म अधर्मपर दृष्टि न देता हुआ अज्ञानसे कुआचरण करके भोगोंमें लिप्त होकर दुक्खका बीज बोता है (दोसं अनन्त नन्तं) अनन्तानन्त दोषोंका पात्र होता है (संसारे निरय निगोद वासम्मि) संसारमें नरकगतिमें जाता है या निगोदमें दीर्घकाल विताता है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन व अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जो कोई भोगोंमें अन्धा होजाता है वह महान् अन्धा है। वह कुत्सित आचरण करके घोर पाप बांधता है। वह अनन्त दोषमई भाव पैदा करता है। कोई २ नरक चला जाता है । कोई २ निगोदवास पाता है ।

मन चंचलता ।

उत्पन्नं मन चवलं, अनन्त विसेसेन पर्जाय संदिट्ठं ।
चेतन नन्द स्वरूवं, अप्प सहावेन कम्म षिपिऊनं ॥ २५४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्नं मन चवलं) जब यह चञ्चल मन उत्पन्न होता है (अनन्त विसेसेन पर्जाय संदिट्ठं) यह अनन्त प्रकारसे शरीरपर ही दृष्टि रखता है (चेतन नन्द सरूवं) आत्मा आनन्द स्वभावी है (अप्प सहावेन कम्म षिपिऊन) जब यह अपने शुद्ध स्वभावमें रत होता है तब कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—कर्मोंके बन्धका कारण संकल्प विकल्परूप यह मन है। यह मन इन्द्रियोंके विषयोंमें रंजायमान होकर शरीर भोग सम्बन्धी अनन्तभाव किया करता है। जो कोई इस मनको रोककर आनन्द स्वभावी निज आत्मामें तल्लीन होते हैं उसके वीतराग भावोंसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

सार समुच्चयमें कर्म निर्जराका उपाय कहा है—

सम्यक्त्वसमतायोगे नै·संग्य क्षमता तथा । कषायविषयासंग कर्मणा निर्जरा परा ॥ ३२४ ॥

भावार्थ—जो आत्मश्रद्धानरूपी सम्यक्तमें व समताभावमें लीन है, ममता रहित है, श्रद्धावान है, कषाय तथा विषयोंसे उदासीन है उसीके बहुत कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

मन चवलं उववन्नं, संसरइ सुभाव पर्जाय अनुरक्तं ।
अप्प सरूवं पिच्छदि, पर्जय विरतस्य कम्म षिपिऊनं ॥ २५५ ॥

अन्वयार्थ—(मन चवलं उववन्नं) मनकी चञ्चलता जब उत्पन्न होती है तब (संसरई सुभाव पर्जाय अनुरक्तं) वह मन संसारमें भ्रमणरूप पर्यायोंमें लवलीन रहता है (अप्प सरूवं पिच्छदि) जब ऐसे मनको रोककर जो आत्माके स्वभावका अनुभव करता है (पर्जय विरतस्य कम्म षिपिऊनं) और शरीर पर्यायसे विरक्त होता है उसीके कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीका मन चंचल होता है। वह वर्तमान शरीरमें आसक्त होता है इसीलिये संसारमें भ्रमणकारी भावी पर्यायोंमें भी आसक्त होता है। संसारके सुख भव भवमें प्राप्त हों यही उसके मनकी

आशा रहती है। ऐसे मनको रोककर सम्यग्दृष्टी जीव शरीरसे, संसारसे व भोगोंसे उदासीन होकर निज आत्मामें एकतान होकर अनुभव करता है तब उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

पर्जय सहाव उत्तं, सरीर संस्कार भाव उववन्नं ।
कृतकारित अनुमतयं, पज्जय विरतस्य कम्म विरयंतो ॥२५६॥

अन्वयार्थ—(पर्जय सहाव उत्त) पर्यायमें रत होनेका स्वभाव ऐसा कहा गया है कि (कृतकारित अनुमतयं) कृतकारित अनुमोदनासे (सरीर सस्कार भाव उववन्न) शरीर सम्बन्धी संस्कारके भावोंको पैदा करना (पज्जय विरतस्य कम्म विरयन्तो) जो कोई पर्यायसे विरक्त होता है उसीके कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—पर्याय स्वभावसे अभिप्राय है कि शरीरके सुखोंमें लवलीन रहना। जैसे मैंने शरीरको ऐसे ऐसे पदार्थोंका भोग कराया था, व मैंने दूसरोंको अमुक २ पदार्थ दिये थे जिससे वे शरीरके सुख भोग सकें अथवा जो कोई शरीरके सुखमें मग्न हैं, उनको जानकर प्रसन्न होना। इस तरह कृतकारित अनुमोदनासे शरीरके सुखकी व शरीरके श्रृङ्गारकी बातोंमें लवलीन रहना पर्याय स्वभाव है। जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव पर्यायको विनाशीक जानकर व शरीर सुखको अतृप्तिकारी तृष्णावर्द्धक जानकर उस पर्यायबुद्धिको त्याग देता है और निश्चल होकर आप आपमें लवलीन होता है उसीके कर्मोंका क्षय होता है।

इंद्रिय सुख स्वभाव।

इंदी सुभाव दिट्ठं, अनिस्ट संजोय सरनि संसारे ।
जिन वयनं पेच्छन्तो, आतिदी भाव इंदि विरयंति ॥ २५७ ॥

अन्वयार्थ—(इंदि सुभाव दिट्ठं) शरीराश्रित इंद्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा गया है कि वे (अनिस्ट संजोय सरनि संसारे) आत्माको अहितकारी विषयभोगोंका सम्भोग मिलाती हैं और उनमें तन्मय कराकर प्राणीको संसारमें भ्रमण कराती हैं (जिन वयनं पेच्छन्तो) जो सम्यग्दृष्टी जिनवाणीपर विश्वास लाता है वह (आतिदी भाव इंदि विरयंति) आत्माके अतीन्द्रिय सुखपर निश्चय रखता हुआ इंद्रियके सुखोंसे विरक्त रहता है।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी तृष्णाका यह स्वभाव है कि उससे पीड़ित हो, यह प्राणी नाना-प्रकार भोगोंकी सामग्री एकत्र करके उनके भोगमें फँस जाता है। आत्मीक उन्नतिसे वेखवर होजाता है, परन्तु सम्यग्दृष्टी जीव जिनवाणीके उपदेशपर पूर्ण विश्वास करता है और आत्माके स्वाभाविक इंद्रियातीत परमानन्दको ही सच्चा सुख जानता है। इंद्रिय सुखको झूठा व कल्पित सुख जानकर इससे विरक्त होजाता है। वास्तवमें इंद्रिय सुख दुःखरूप ही है, ऐसा श्री प्रवचनसारमें कहा है—

सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं । ज इन्दियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुःखमेव तहा ॥ ७६-१ ॥

भावार्थ—यह इन्द्रियजन्य सुख पराधीन है। इच्छित वस्तु मिले व भोगने योग्य इन्द्रिय हो तब होता है तथा इसमें विघ्न आजाते हैं इससे बाधा सहित है। एक दिन पदार्थोंके वियोगसे व अपने मरण होनेसे नाश होजाता है। तथा रागभावके विना इंद्रियभोग नहीं होता इससे यह बन्धका कारण है। तथा आकुलतामय है इससे विषम है अतएव यह इंद्रिय सुख दुःखरूप ही है। सार समुच्चयमें कहा है—

अक्षाण्येव स्वकीयानी शत्रवो दुःखहेतव । विषयेषु प्रवृत्तानि कषायवशवर्तिन ॥ ७९ ॥

भावार्थ—ये इंद्रियें ही अपने आत्माकी शत्रु हैं। क्योंकि दुःखोंके कारण हैं। कषायके वशमें होकर प्राणी इंद्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति करते रहते हैं।

जं इंदी च सहावं, तं जाने हि सयल मोहंधं ।
जिन उवएस लहंतो, अतिंदी सहकार कम्म विरयंतो ॥ २५८ ॥

अन्वयार्थ—(जं इंदी च सहावं) इंद्रियोंके सुखोंमें रत होनेका जो कुछ स्वभाव है (तं जाने हि सयल मोहंधं) उसीको सर्व प्रकारसे दर्शन मोहका उदय जानो (जिन उवएस लहंतो) जो श्री जिनेन्द्रके उपदेशको प्राप्त करता है (अतिंदी सहकार कम्म विरयंतो) वह अतीन्द्रिय आनन्दके साधनसे कर्मोंका क्षय करता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे इंद्रियोंके सुखोंको उपादेय जानकर इनमें तन्मय रहता है परन्तु सम्यग्दृष्टी जीव इस सुखको झूठा समझकर व जिनवाणीके प्रतापसे तत्वोंको जानकर आत्मीक आनन्दमें मग्न होता है। आत्मानन्दकी मग्नता ही कर्मोंकी निर्जरा करती है। सम्यग्दृष्टीके निःकांक्षित अङ्ग होता है इसलिये वह भोगोंकी तृष्णा कभी नहीं रखता है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

इह जन्मनि विभवादीनमुत्र चक्रित्वकेशवत्वादीन् । एकान्तवाददुषितपरसमयानपि च नाकाक्षेत् ॥ २४ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी इस जन्ममें धन कुटुम्ब आदिको व परलोकमें चक्रवर्ती व नारायण आदिके पदोंको व एकांतनयरूप पर दर्शनोंको नहीं चाहता है। वह अतीन्द्रिय सुखप्रदाता अनेकांत मतका दृढ़ श्रद्धालु रहता है।

जब ध्यानीके अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

आनंदो निर्दहत्युद्धं कर्मेधनमनारतं । न चासौ खिद्यते योगीर्बहिर्दु खेष्वचेतन. ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जब आत्मीक आनन्दका अनुभव होता हैं तब वह आनन्द ही प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा लगातार करता रहता है। आनन्दमग्न योगी बाहरी दुःखोंमें उपयोग न देता हुआ खेदित नहीं होता है।

दिस्टी दिस्टतु इंदी, दिस्टी संसार सरनि सद्भावं ।
जिनवयनं पेच्छंतो, दिस्टी अदिस्टि कम्म विरयंतु ॥ २५९ ॥

अन्वयार्थ—(दिस्टी दिस्टतु इदी) सामने पांचों इंद्रिये ही दिखलाई पड़ती हैं (दिस्टी संसार सरनि सद्भाव) पांचों इंद्रियोंकी ओर दृष्टि है सो ही संसारके मार्गको बढ़ानेवाली है (जिनवयनं पेच्छतो) जो सम्यग्दृष्टी जिनवाणीपर मनन करता है वह (दिस्टी अदिस्टि कम्म विरयंतु) अपनी दृष्टि अदृष्ट आत्मापर लेजाता है इसीसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—जहांतक ज्ञानोपयोग पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें रागी है वहांतक कर्मबन्ध है और संसार है। ज्ञानी जिनवाणीका भलेप्रकार अभ्यास करता है और पांचों इंद्रियोंसे जो नहीं जाना जासक्ता, ऐसे अदृष्ट आत्मापर विश्वास लाकर उसीका अनुभव करता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

दृष्टि गुण दोष कथन ।

दिट्ठी प्रपंच भावं, दिट्ठी उववन्न पर्याय सद्भावं ।
जिन सुभाव सहावं, अतिंदी दिट्ठि कम्म विरयंतु ॥ २६० ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी प्रपंच भावं) यह दृष्टि जगतके प्रपंच भावोंमें लगी रहती है (दिट्ठी उववन्न पर्याय सद्भाव) यह दृष्टि वर्तमान प्राप्त शरीरके संस्कार व सुखोंमें तन्मय रहती है वही दृष्टि जब प्रपंचसे और शरीरसे हटकर (जिन सुभाव सहावं) अपने आत्माके स्वभावपर जाती है जिसका स्वभाव श्री सिद्ध जिन परमात्माके समान है तब (अतिंदी दिट्ठी कम्म विरयंतु) इंद्रियोंसे छुटकर अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—संसारी जीवका उपयोग जगतकी मायामें, धन धान्यादि परिग्रहमें, कुटुम्ब परिवारमें, शरीरकी ममतामें फँसा रहता है । ज्ञानी जीव इन मिथ्या क्षणिक पदार्थोंसे वैरागी होकर जिनवाणीके तत्वोंपर ध्यान देता है और अतीन्द्रिय आत्माकी प्रतीति लाता है—समझ जाता है कि मेरे आत्मद्रव्यका वैसा ही स्वभाव है जैसा श्री सिद्ध परमात्माका है । फिर इंद्रियोंसे व मनसे उपयोगको हटाकर अपने निश्चय किये हुए आत्माके स्वरूपमें तन्मय होता है तब स्वानुभव जगता है—स्वानुभवके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

दिट्ठी विभ्रम रूवं, उत्साह उच्छाह दिट्ठि स सहावं ।
जिन रंजन जिन उत्तं, अतिन्दी भाव कम्म विरयंति ॥ २६१ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी विभ्रम रूवं) यह दृष्टि मिथ्यात्वरूप भ्रममें फँसी हुई है । इस दृष्टिको भ्रमसे हटाकर (उत्साह उच्छाह दिट्ठी स सहाव) जब अपने आत्माके स्वभावपर उत्साह व आनन्दके साथ लगाई जाती है (जिन रंजन जिन उत्त) तथा जिनेन्द्रके स्वरूपमें रंजायमान हुआ जाता है व जिनेन्द्र कथित तत्वोंपर ध्यान दिया जाता है तब (अतिंदी भाव कम्म विरयंति) अतीन्द्रिय भाव उत्पन्न होता है—आत्मस्थ परिणति होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—जब ज्ञानी जीव सर्व प्रकारकी शङ्काओंको व भ्रमभावको हटाकर अपने ज्ञानानन्द स्वभावकी पहचान करके उसके विचारमें बड़ा उत्साहित होता है व आनन्द मानता है तथा आदर्शरूप परमात्मा श्री जिनेन्द्रकी भक्ति बड़े भावसे करता है व जिनवाणीका मनन करता है तब इसकी परिणति इंद्रियोंसे अतीत आत्माके स्वरूपमें एकाग्र होती है। यही ध्यान अवस्था कर्मोंकी निर्जराकी कारण है।

दिष्टी अनेय रूवं, जन रंजन कल सहाव संदिट्ठं ।
ज्ञान सहाव स उत्तं, अप्प सहावेन दोष विरयंति ॥ २६२ ॥

अन्वयार्थ—(दिष्टी अनेय रूव) यह दृष्टि अनेक मार्गोंमें जाती है। (जन रंजन कल सहाय सदिट्ठं) यह देखा गया है कि यह दृष्टि लोगोंके रंजायमान करनेमें व शरीरके स्वभावमें अधिकतर लगी रहती है (ज्ञान सहाव स उत्तं) वही दृष्टि इस लौकिक प्रपंचसे हटकर ज्ञान स्वभावी आत्मामें लगी हुई तब कहलाती है जब (अप्प सहावेन दोष विरयंति) आत्माके स्वभावमें ठहरनेसे रागादि दोष दूर होजावें।

भावार्थ—आत्माका उपयोग शरीरके सुखमें व लोगोंको राजी रखनेमें अधिकतर लगा रहता है। जब इस उपयोगको इनसे हटाकर ज्ञानी जीव आपके ज्ञानानन्द स्वभावमें एकाग्र करता है तब रागादि दोष छूटते जाते हैं।

दिष्टी मन उपपत्ती, दिष्टी दिट्ठेइ अभाव भय जुत्तं ।
ज्ञान सहाव उवन्नं, अप्प सहावेन दोष विरयंति ॥ २६३ ॥

अन्वयार्थ—(दिष्टी मन उपपत्ती) जब दृष्टि मनके संकल्प विकल्पोंमें जाती है (दिष्टी दिट्ठेइ अभाव भय जुत्तं) तब यह दृष्टि भय सहित नाशवंत शरीरकी ही तरफ देखा करती है (ज्ञान सहाव उवन्नं जब ज्ञान स्वभाव उत्पन्न होजाता है (अप्प सहावेन दोष विरयंति) तब आत्माके स्वभावमें लीन होनेसे रागादि दोष दूर होजाते हैं।

भावार्थ—मनका स्वरूप संकल्प विकल्पमय है। जब दृष्टि मनके अनेक विचारोंमें लगी रहती है तब मनमें इस नाशवंत शरीरका ही खयाल आता है, शरीरके बने रहनेका भाव होता है, शरीर रोगी न हो छूट न जावे ऐसा भय होता है। यह सब मिथ्यात्वके उदयसे होता है। जब सम्यग्दृष्टी आत्माका स्वभाव ज्ञानानन्दमय निश्चय करके उसके ध्यानमें जमता है तब रागादि दोष स्वयं मिट जाते हैं।

दिट्ठी नन्त विसेसं, अनुमोयं पजाय भाव सद्भावं ।
ज्ञान सहावं सुद्धं, दिट्ठी विसेस कम्म विरयंति ॥ २६४ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी नन्त विसेस) दृष्टि अनन्त भेद रूप होती है [illegible] यह दृष्टि शरीरके वर्तमान भावोंमें प्रसन्न हुआ करती है [illegible] उससे हटकर जो दृष्टि शुद्ध ज्ञान स्वभावी आत्मामें अनुरक्त होती है [illegible] यही विशेष दृष्टि कर्मोंकी निर्जराका कारण है।

भावार्थ— उपयोग अनन्त प्रकारके भावोंमें रमा करता है। वर्तमान प्राप्त शरीर सम्बन्धी भावोंमें बड़ी प्रसन्नता रखता है। यदि शरीर सुन्दर बलिष्ठ है, यदि पुण्योदयसे धनकी वृद्धि होरही है, कुटुम्बकी वृद्धि होरही है, शरीरके भोग अनगिनती प्राप्त होरहे हैं तब यह उपयोग उन्हीं बातोंमें रात दिन उलझा रहता है। जो ज्ञानी उस उपयोगको सांसारिक प्रपन्चोंसे हटाकर ज्ञान स्वभावधारी शुद्ध आत्मामें लगाता है तब यह विशेष ज्ञानोपयोग कर्मोंकी निर्जराका कारण होता है।

दिट्ठी अनन्त रूवं, पजय सुभाव दिट्ठि अनुमोयं ।
दुग्गय गमन सहावं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २६५ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी अनन्त रूवं) यह दृष्टि अनन्त स्वभावोंमें फंसी रहती है ([illegible] दिट्ठि अनुमोयं) शरीरके स्वभावमें यह दृष्टि बड़ी प्रसन्न रहती है ([illegible]) जिससे उस जीवका दुर्गतिमें गमन होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—शरीरके सुखोंमें आनन्द माननेवाली दृष्टि रागद्वेष मोहके कारण तीव्र कर्मोंको बांधकर जीवको कुगतिमें पटक देती है। जब यह दृष्टि ज्ञान स्वभाव आत्मामें लीन होती है, तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

शब्द गुण दोष कथन।

अनिष्ट सब्द स उत्तं, सब्दं संसार सरनि पेच्छंतो ।
कम्म उववन्न भावं, अतिंदी सहकार कम्म विरयंति ॥ २६६ ॥

अन्वयार्थ—(अनिष्ट सब्द स उत्त) अहितकारी शब्द वे कहे गये हैं (सब्दं संसार सरनि पेच्छन्तो) जिन शब्दोंका लक्ष्यबिन्दु संसार मार्ग होता है (कम्म उववन्न भाव) इससे कर्मबन्धकारक भाव होते हैं (अतिंदी सहकार कम्म विरयंति) जब इन शब्दोंसे उपयोगको हटाकर अतीन्द्रिय आत्मामें रमण होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—शब्दोंका प्रयोग जहां अशुभ भाव सहित होता है; राग, रंग, कौतूहलरूप, इन्द्रिय विषयोंमें रंजायमान रूप व क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायकी पुष्टिरूप तब तो पापकर्मका बन्ध होता है । जब शब्दोंका प्रयोग शुभ भावसहित होता है; श्री जिनेन्द्रकी स्तुतिरूप, शास्त्रोपदेश रूप, जप रूप, सत्य वचनरूप, परोपकार रूप, दान धर्मरूप, मंत्रोंका मननरूप, तब पुण्य कर्मोंका बन्ध होता है । जब दोनों प्रकारके शब्दोंको रोककर शब्द रहित होकर इंद्रियातीत आत्मामें एकतानता होती है तब ही कर्मोंका क्षय होता है ।

सब्दं च सब्द रूवं, रस निकसनि तंति तार फूकं च ।
सब्द सहाव सकम्मं, अतिंदी सहकार कम्म विरयंति ॥ २६७ ॥

अन्वयार्थ—(सब्दं च सब्द रूवं) शब्दका स्वभाव अनेक शब्दरूप होता है (रस निकसनी तंति तार फूकं च) जिससे शृङ्गाररस, वीररस, बीभत्सरस आदि भाव निकलें; तांतोंका, तारोंका व फूकका बाजा होता है जिनसे अनेक रसीले शब्द निकलते हैं (सब्द सहाव सकम्म) इन शब्दोंके भीतर रंजायमान होनेसे कर्मोंका बन्ध होता है (अतिदी सहकार कम्म विरयति) जो अतीन्द्रिय आत्मामें लीन होता है उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—गानेमें शब्दोंके सात स्वर प्रसिद्ध हैं । इन स्वरोंको लेकर अनेक प्रकार बाजोंके द्वारा अनेक प्रकार रसोंके प्रगट करनेवाले शब्द निकलते हैं, जिनमें मन रंजायमान होजाता है । सर्वार्थसिद्धिमें बाजें

चार प्रकारके कहे गए हैं। (१) तत् चामके–जैसे ढोल, मृदंग, तबला आदि। (२) वितत् तारोंके–जैसे सितार, वीणा, सारंगी आदि। (३) घन–जैसे ताल, घंटा आदि। (४) सौषिर–फूंकके बांसरी, शंखादि। इन बाजोंकी ध्वनिमें मन रागी होजाता है जिससे कर्मोका बंध होता है। जब उपयोग सर्व प्रकारके शब्दोंसे छुटकर शब्दरहित अमूर्तीक आत्मामें लवलीन होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

रसनस्य रसनभावं, कसनस्य कम्म भाव उपपत्ती।
तंती अनन्त भावं, अतिंदी सहकार कम्म विरयंति॥ २६८॥

अन्वयार्थ—(रसनस्य रसनभाव) रसोंका रसीला रंजायमानकारक भाव होता है (कसनस्य कम्म भाव उपपत्ती) जब बाजोंको बजाया जाता है तब रागभावकी उत्पत्तिका कारण होता है। (तंती अनंत भावं) तारोंके द्वारा बाजेमें अनेक प्रकारके रसीले भाव निकलते हैं (अतिंदी सहकार कम्म विरयति) जब इन शब्दोंकी तरफसे उपयोगको रोककर अतीन्द्रिय आत्मामें उपयोगको तन्मय किया जाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—श्रृंगार आदि रसोंको प्रगट करनेवाले शब्द बाजोंके बजनेसे निकलते हैं उनके द्वारा अवश्य रागभाव पैदा होजाता है जिससे कर्मोका बन्ध होता है। इन शब्दोंसे उपयोगको हटाकर जब अतींद्रिय आत्मामें एकाग्र हुआ जाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

तारं नंत विसेसं, फूकं कम्मान भाव उववन्नं।
सव्द सुहाव असुद्धं, अतिंदी भाव कम्म षिपनं च॥ २६९॥

अन्वयार्थ—(तारं नंत विसेसं) तारोंके द्वारा बजनेवाले बाजोंके अनेक प्रकारके सुर तालादि होते हैं (फूक कम्मान भाव उववन्नं) इसीतरह बांसरी आदि फूकके बाजे भी होते हैं, ये सब बाजे रागादि भावकर्मको उत्पन्न करते हैं (सव्द सुहाव असुद्धं) सब ही शब्दोंका स्वभाव पौद्गलिक अशुद्ध है (अतिंदी भाव कम्म षिपनं च) जो शब्दोंसे रागभाव छोड़कर शब्द रहित आत्मामें उपयुक्त होता है उसीके कर्मकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—सर्व ही प्रकार बाजोंके शब्द रागभाव पैदा करनेमें हेतु हैं। शब्द आत्माका स्वभाव नहीं है, पुद्गलकी पर्याय है, भाषावर्गणाका परिणमन है। इनके भीतर आत्माका तत्व नहीं है। अतएव इन सर्व शब्दोंसे उपयोगको रोकर जो अतीन्द्रिय आत्मामें तन्मय होता है उसीके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

श्री पंचास्तिकायमें शब्दका स्वभाव कहा है—

सद्दो खंधप्पभवो खधो परमाणुसंगसघादो । पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥ ७९ ॥

भावार्थ—शब्द स्कन्धोंसे पैदा होता है। स्कन्ध परमाणुओंके मिलनेसे बनता है। उन स्कन्धोंके परस्पर मिलनेसे शब्द पैदा होता है। कोई शब्द स्वाभाविक होते हैं। जैसे मेघोंका गर्जन। कोई शब्द प्रायोगिक होते हैं जैसे बाजोंके शब्द।

सब्दं असब्द दिट्ठी, सब्दं सुह असुह कम्म बंधानं ।
संसार सरनि बूडं, अप्प सहावेन कम्म षिपिऊनं ॥ २७० ॥

अन्वयार्थ—(सब्द असब्द दिट्ठी) शब्द वे ही सफल हैं जिनकी दृष्टि शब्द रहित आत्माकी तरफ रहती है (सब्द सुह असुह कम्म बंधानं) शुभ भावोंसे कहे गये शब्द पुण्यकर्मको व अशुभ भावोंसे कहे गये शब्द पापकर्मोंको बांधते हैं (संसारसरनि बूडं) कर्मोंका बन्ध संसारमें डुबानेवाला है (अप्प सहावेन कम्म षिपिऊनं) केवल मात्र आत्माके स्वभावमें लीन होनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—जगतमें शब्दोंका व्यवहार दो प्रकारके भावोंसे किया जाता है। यदि दान, जप, तप, परोपकार, भगवत् स्तुति आदिमें शब्दोंका व्यवहार है तब तो पुण्य बन्ध होता है। यदि विषयोंमें लीनतारूप क्रोधादि कषायरूप, हिंसा, असत्य व चोरी व कुशीलमें व परिग्रहके संचयमें प्रेरणारूप तथा परके अपकाररूप, हास्यरूप, निन्दारूप, ईर्षारूप, हास्य कौतूहलरूप, कामोत्तेजकरूप शब्दोंका व्यवहार होता है तब पापकर्मका बन्ध होता है। शुभ भावनायुक्त शब्द पुण्य व अशुभ भावनायुक्त शब्द पापबन्ध करते हैं। कर्मोंका बन्ध संसारमें भ्रमण करानेवाला है। जिन शब्दोंका लक्ष्य अध्यात्म चर्चा है, जो शब्द अशब्दपर लक्ष्य दिलाते हैं, वे शब्द सर्व शब्दोंसे उत्तम हैं। यद्यपि उनसे भी पुण्य बन्ध होता है तथापि वे शब्द रहित आत्मापर लेजानेवाले होते हैं। ॐ ह्रीं अर्हं आदि शब्दोंके मनन करनेसे धीरे २ उपयोग आत्मस्थ होजाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

सब्दं च सुहं दिट्ठं, पुन्य सहकार कम्म उपपत्ती ।
पुन्य पाव उववन्नं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७१ ॥

अन्वयार्थ—(सव्दं च सुहं दिट्ठं जहां शुभ शब्द देखे जाते हैं वहां (पुन्य सहकार कम्म उपपत्ति) पुण्य-कर्मोंका वन्ध होता है (पुन्य पाप उववन्नं) यद्यपि शुभ शब्द पुण्यवन्ध करते हैं तथापि अशुभ शब्दोंसे पापका ही वन्ध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) जब उपयोग ज्ञान स्वभावमें लीन होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—ज्ञानी जीव मौन रहकर अशब्द आत्माके स्वभावमें लय होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है। जहांतक स्वानुभव नहीं है और अन्तर्जल्प अर्थात् भीतरमें मन्द मन्द शब्द उच्चारण है या वहिर्जल्प अर्थात् प्रगटरूप शब्दोंका कहना है वहांतक अवश्य पुण्यकर्मोंका वन्ध है। इसलिये शब्दातीत-भावमें रमनेका ही पुरुषार्थ करना योग्य है।

सव्दं पर आनन्दं, सव्दं पज्जाय भाव उवलष्यं।
सव्दं कम्मनुमोयं, अप्प सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७२ ॥

अन्वयार्थ—(सव्द पर आनन्दं) शब्दोंसे दूसरोंको आनन्दित किया जाता है (सव्दं पज्जाय भाव उवलष्य) शब्दोंका लक्ष्य शरीरकी अवस्थाकी तरफ रहता है (सव्दं कम्मनुमोयं) शब्द अच्छे बुरे कामोंकी अनुमोदना किया करते हैं (अप्प सहावेन कम्म विरयंति) इन सब शब्दोंको छोड़कर आत्म स्वभावमें रमण करनेसे ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—शब्दोंका प्रयोग नाना प्रकारसे होता है। बहुतसे शब्द इसी अभिप्रायसे कहे जाते हैं कि दूसरे लोग प्रसन्न रहें। कोई शब्द अपने शरीर सुख व परके शरीरके सुखोंका ही वर्णन करते हैं, कोई शब्द किन्हींके किये गए अच्छे बुरे कामोंकी अनुमोदना रूप होते हैं। इन शब्दोंमें शुभ अशुभ अभि-प्रायके अनुसार पुण्य पापका वन्ध होता है। ज्ञानी कर्मोंकी निर्जराके लिये शब्दोंका व्यवहार छोड़कर जब शब्द रहित आत्मामें लीन होता है तब ही कर्मकी निर्जरा होती है।

असव्दं सव्द उत्तं, असव्द कोह लोह संयुत्तं।
असव्द अनर्थ रूवं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७३ ॥

अन्वयार्थ—(असब्दं सब्द उत्त) अशब्द सहित शब्द वे कहे गए हैं जहां (असब्द कोह लोह सयुत्तं) अन्तरङ्ग क्रोध व लोभ सहित शब्द हों (असब्द अनर्थ रूप) ये शब्द रहित क्रोध लोभ भाव स्वपरको अनर्थकारी है (ज्ञान सहावेन कम्म विपयति , जहां इन भावोंको छोड़कर ज्ञान स्वभावमें रमण होता है वहीं कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—अन्तरंग भावको अशब्द कहते हैं। यदि अन्तरंग भावोंमें क्रोध है तथा लोभ है तौ उन भावोंसे मिश्रित ही शब्द निकलेंगे। चाहे वे ऊपरसे कितने ही सुन्दर हों। ऐसे शब्द भी शब्द प्रयोग करनेवालेको पाप बन्धकारी हैं तथा ऐसे शब्दोंसे परस्पर लड़ाई झगड़े युद्ध होजाते हैं। लोभके वशीभूत हो प्राणी परको ठगनेरूप मिथ्या शब्द कहता है। नानाप्रकार मीठी बातोंको कहकर विश्वास दिलाता है और अपना स्वार्थ साधता है। क्रोधके वशीभूत हो मर्मछेदी निन्दक अपमानवर्द्धक वचन कहता है, जिससे लड़ाई झगड़ा होजाता है, मारपीट होजाती है। अतएव बुद्धिमानको उचित है कि क्रोध व लोभके वशीभूत हो अनर्थकारी शब्दोंको न कहे। तथा कर्मकी निर्जराके लिये तो शब्द रहित हो केवल एक निज आत्मामें ही रमण करे।

असब्द अज्ञान सुभावं, असब्द कम्मान तिविह बंधानं।
असब्द असुद्ध रूवं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयन्ति ॥ २७४ ॥

अन्वयार्थ—(असब्द अज्ञान सुभावं) अशब्द क्रोधादि भाव अज्ञान स्वरूप है। (असब्द कम्मान तिविह बन्धान) इन भावोंसे कर्मोंका बन्ध तीन प्रकार रूप होता है (असब्द असुद्ध रूव) ये अशब्द भाव अशुद्ध भाव है। (ज्ञान सहावेन कम्म विपयति) जब इन कषाय भावोंको त्यागकर ज्ञान स्वभावमें रत हुवा जायगा तब कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—क्रोधादि कषाय भीतरमें उठते हैं जहां शब्द नहीं है। ये आत्माके पर निमित्तसे हुए औपाधिक अशुद्ध भाव हैं। इन भावोंके फलसे सात प्रकार व कभी आठ प्रकार कर्म बंधते हैं। उनही कर्मोंके उदयसे फिर रागादि भाव कर्म होते हैं व शरीरादि नोकर्म प्राप्त होते हैं। इसलिये कहा गया है कि इन भावोंसे तीन प्रकार कर्म बंधते हैं। कषाय रहित शुद्ध आत्माकी परिणतिके पाए विना कर्मकी निर्जरा न

होगी। कोई शब्द न बोले, मौन रहे, परंतु अन्तरंगमें क्रोध, लोभ आदि न छोडे तो उसको आत्माकी वीतराग परिणतिका लाभ न होगा, जिससे कर्मकी निर्जरा होती है।

रसना इंद्रिय दोष कथन।

जिह्वा स्वाद अनंतं, जिह्वा विचलंति स्वाद सहियानं।
स्वादं अनंत भावं, अप्प सहावेन कम्म विरयति ॥ २७५ ॥

अन्वयार्थ—(जिह्वा स्वाद अनंतं) जिह्वा अर्थात् रसना इंद्रिय अनन्त प्रकारके स्वादको ग्रहण करती है (स्वाद सहियानं जिह्वा विचलति) स्वादको ले करके रसना इंद्रिय चंचल होजाती है, तृष्णावान होजाती है (स्वाद अनन्त भावं) अनन्त प्रकारके स्वादको चाहती है (अप्प सहावेन कम्म विरयति) जो इस स्वादके रागको छोड़कर आत्माके स्वभावमें रमण करेंगे उनहींके कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—अब जिह्वा इंद्रियके जीतनेकी भावना भाई जाती है। जिह्वा इन्द्रिय खट्टे, मीठे, चरपड़े, तीखे, कसायले आदि स्वादकी लोलुपी रहती है। दूध, घी, दही, मीठा, लवण, तेल इन छ रसोंके बने हुए अनेक प्रकार व्यंजनोंको चाखना चाहती है, अनेक प्रकार फलोंका स्वाद चाहती है। जितने २ इस जिह्वाको इच्छानुकूल रसीले भोग्य पदार्थ मिलते जाते हैं उतनी २ इसकी स्वादकी तृष्णा बढती जाती है—अनगिनती पदार्थोंके स्वाद लेनेकी, देश विदेशके पदार्थोंको खानेकी भावना होजाती है। इस रसना—इन्द्रियकी लोलुपताको जो जीतकर आत्म—रसका रसिक हो आत्मामें रत होगा उसीके ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

जिह्वा स्वाद सुभावं, स्वाद सुभाव कम्म उववन्नं।
कम्मान बन्ध बन्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७६ ॥

अन्वयार्थ—(जिह्वा स्वाद सुभाव) जिह्वाके स्वादका स्वभाव ऐसा है (स्वाद सुभाव कम्म उववन्न) कि उस स्वादमें रंजायमान होनेसे रागरूपी भाव कर्म पैदा होजाता है (कम्मान बन्ध बन्ध) उस रागभावसे कर्मोंका

बन्ध होता रहता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) जो रसना इन्द्रियको जीतकर ज्ञान स्वभावमें रत होगा उसीके ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—वीतरागी साधु रसना इंद्रियके विजयी होते हैं। वे सरस नीरस आहारको विना रागद्वेपके संयमके पालनेके लिये शरीरके रक्षार्थ लेते हैं। उनके तो वह भोजन रागभाव उत्पन्न नहीं करता है, परंतु जो रागी, मोही, विषयासक्त हैं, वे निरन्तर रसीले पदार्थकी चाहमें रहते हैं। उनको रसयुक्त पदार्थोंके मिलनेपर अवश्य रागभाव पैदा होजाता है। तथा भावीके लिये भी अधिक तृष्णावान होजाते हैं। इन भावोंसे उनको कर्मका तीव्र बन्ध होता रहता है। जो कोई इस रसना इन्द्रियको जीतकर आत्माके स्वभावमें रमण करते हैं उनहीके कर्म क्षय होते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय दोष कथन।

सरीर सुभाव उववन्नं, अवंभ भावेन कम्म बन्धान।
दोसं अनन्त दिंठ, अतिंदी सहाव कम्म विरयंति ॥ २७७ ॥

अन्वयार्थ—(शरीर सुभाव उववन्न) स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्ध स्वभाव जब उत्पन्न होता है (अवम भावेन कम्म बंधान) तब अब्रह्म भावके होनेसे कर्मोंका बंध होता है (दोस अनत दिठ) इस कुशील भावसे अनंत दोष देखे जाते हैं (अतिंदी सहाव कम्म विरयति) जो स्पर्शेन्द्रियको जीत कर अतीन्द्रिय स्वभावमई आत्मामें रत होता है उसीके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—अब स्पर्शेन्द्रिय विजयकी भावनाका विचार किया जाता है। जगतमें जिह्वा इंद्रिय व स्पर्शेन्द्रिय दो ही बड़ी प्रबल हैं। इनके आधीन होकर प्राणी बहुत अनर्थ करता है। स्पर्शेन्द्रियके विषयोंकी वांछासे काम भाव जागृत होता है, तब शुद्ध ब्रह्म भाव व शील भाव नष्ट होजाता है। अब्रह्मभावके होने पर उसकी पूर्तिके लिये अनगिनती दोष व भाव व अनर्थ होते हैं। जो तत्वज्ञानी इस कुशील भावसे बिलकुल विरक्त हो व ब्रह्मचर्य भावमें लीन हो शुद्ध भावसे आत्माका ध्यान करते हैं उनके कर्मका क्षय होता है।

एयं अनेय भावं, मन पज्जाय कम्म बंधानं।
मनविलयं ज्ञान सहावं, अप्प सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७८ ॥

अन्वयार्थ—(एयं अनेय भाव) एक मनके भीतर ऊपर कथित अनेक भाव होते हैं (मनपज्जाय कम्मबन्धान) मनके विचारोंके कारण कार्यको किये विना भी कर्मोंका बंध हुआ करता है (मनविलय ज्ञान सहाव) जब मन विला जाता है—रुक जाता है तब आत्माका ज्ञान स्वभाव प्रकाशमान होता है (अप्प सहावेन कम्म विरयंति) आत्मीक स्वभावमें रत होनेसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—आत्मध्यानके लिये मनके रोकनेकी वडी जरूरत है। अतएव इंद्रियोंके विषयोंकी अपेक्षाको लेकर व शरीरमें व कुटुम्ब परिवारमें रागको लेकर व मान प्रतिष्ठाके भावको लेकर व क्रोधादि भावको लेकर मनमें अनेक प्रकारके कुभाव उत्पन्न होते हैं, जिन भावोंसे कर्मोंका बंध होता है। मनका विषयोंमें रमना आत्मस्वरूपसे हटानेवाला है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

जेहउ मणु विसयह रमइ तिम जे अप्प मुणेइ। जोइउ मुणइ रे जोइहु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जैसा मन विषयोंमें रमता है वैसा यदि यह आत्मामें लीन हो तो योगी कहते हैं हे योगी! शीघ्र ही निर्वाणका लाभ हो। जब मन विलीन होजाता है, आत्मध्यानमें गुप्त होजाता है तब ही आत्मानुभव जागृत होता है, जिससे कर्म क्षय होते हैं।

वचन गुण दोष कथन।

वयनं असुद्ध वयनं, असुद्ध आलाप कम्म बंधानं।
जन रंजन स सहावं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७९ ॥

अन्वयार्थ—(वयन असुद्ध वयनं) वचनोंको लेकर अज्ञानी प्राणी बहुत अशुद्ध व असत्य वचन बोलता है (असुद्ध आलाप कम्म बंधानं) शास्त्रविरुद्ध असत्य वचन कहनेसे कर्मोंका बन्ध होता है (जन रंजन स सहाव) प्राणियोंको नानाप्रकार वचनोंके विलाससे जगतके प्राणियोंको रंजायमान करनेका स्वभाव पड़ जाता है।

(ज्ञान सहावेन कम्म विग्यति) जो वचनोंकी प्रवृत्तिको भी रोककर अपने ज्ञानमई स्वभावमें लय होते हैं उन-हीके कर्मकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—कर्मोंके क्षयके लिये मन वचन कायकी क्रियाको रोकनेकी जरूरत है। मनको रोकनेकी आवश्यक्ता बताकर स्वामी अब वचनकी प्रवृत्तिको रोकनेका उपदेश करते हैं। वचनोंकी असत्य व निरर्थक प्रवृत्तिसे बहुत कर्मका बन्ध होता है। बहुतसे प्राणी शास्त्रविरुद्ध वचन कहते हैं, बहुतसे स्वार्थसाधक असत्य वचन कहते हैं, बहुतसे वृथा बहुत बकवक करके हास्य कौतूहल सहित लोगोंको खुशी करते हैं। इत्यादि वचनके व्यवहारसे कर्मका बन्ध होता है। आत्मामें लवलीन होनेके लिये इस वचनकी प्रवृत्तिको रोकना होगा तब ही कर्मोंका क्षय होगा। ज्ञानार्णवमें कहा है—

मर्मच्छेदि मनः शल्य च्युनस्थैर्यविरोधकम्। निर्दय च वचस्त्याज्य प्राणै कंठगतैरपि ॥ १३-९ ॥

भावार्थ—मर्मका छेदनेवाला, मनमें शल्य उपजानेवाला, चित्तमें आकुलता पैदा करनेवाला, विरोध उपजानेवाला, तथा हिंसाकारी निर्दय वचन कंठगत प्राण होनेपर भी नहीं बोलना चाहिये।

असद्वदनवल्मीके विशाला विषसर्पिणी। उद्वेजयति वागेव जगदन्तर्विषोल्वणा ॥ १०-९ ॥

भावार्थ—दुष्ट पुरुषोंके मुखरूपी वांवीमें अन्तरंगमें विषसे उत्कृष्ट ऐसी विस्तीर्ण विषवाली जो असत्य वाणीरूपी सर्पिणी रहती है वही जगतभरको दुःख देती है।

वयनं असुद्ध वयनं, पज्जायं रंजेइ वयन सहकारं।
जन रंजन मूढ सहावं, ज्ञान सहावेन वयन तिक्तंती ॥ २८० ॥

अन्वयार्थ—(वयनं असुद्ध वयनं) वचनोंमें अशुद्ध वचन वह है जो (पज्जायं रंजेइ वयन सहकारं) वचनोंकी सहायतासे शरीरके सुखमें रंजायमान होता है (जन रंजन मूढ सहावं) मूर्ख लोगोंका स्वभाव पड़ जाता है कि वे लोगोंका चित्त वचनोंसे प्रसन्न किया करते हैं। (ज्ञान सहावेन वयन तिक्तंती) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे वचनोंकी प्रवृत्ति स्वयं छूट जाती है।

भावार्थ—शरीरमें रागी मानव अपने वचनोंसे अपनी प्रशंसा व अपने सुखोंका भोग वर्णन किया करते हैं, विषयोंकी कथाएँ करते हैं। चार आदमियोंमें बैठकर मानवोंके मनोंको रंजायमान करना मूर्खोंका स्वभाव पड़ जाता है। इसतरह वचनोंकी वृथा प्रवृत्तिसे अज्ञानी कर्म बांधते हैं। आत्माके

अनुभवमें तब ही लीन हुआ जायगा जब वचनोंका व्यवहार बन्द होगा। अथवा आत्मामें लीन होनेसे स्वयं वचन व्यवहार नहीं रहता है।

अज्ञान सुभाव सुभावं, आलापं देह कम्म उववन्नं।
अज्ञानं सहकारं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८१ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान सुभाव सुभावं) अज्ञानीके स्वभावका ऐसा स्वरूप है कि वह (आलापं देइ) नाना-प्रकार चर्चा व बकवाद किया करता है (अज्ञान सहकारं कम्म उववन्नं) इस अज्ञानके कारण वह आलपी कर्मोंको बांधता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—मिथ्याज्ञानी तत्वचर्चा करनेसे व जिनवाणीके पढ़ने सुननेसे उदास होकर संसार सम्बंधी निन्दा प्रशंसाकी व विषयोंके सेवनकी वृथा बकवाद किया करता है। चार विकथाओंमें स्त्री, भोजन, देश व राजाओंकी कथाओंमें मग्न रहता है। दूसरोंकी हानिको कहते हुए प्रसन्न होता है। आपसे कुछ काम होगया हो तो अपनी बड़ाई करता है। इसतरह अज्ञानसे बहुत कर्मोंका बन्ध होता है। वचनोंको रोककर जब आत्मध्यान होता है तब ही कर्म क्षय होते हैं।

वयनं कम्म उववन्नं, अनंतविसेसेन नंतनंताइ।
गलियति पूरति उत्तं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८२ ॥

अन्वयार्थ—(गलियति पूरति उत्त) गलन पूरण स्वभाव पुद्गलमई यह शरीर कहा गया है (अनंत विसेसेन नंतनताइ वयनं कम्म उववन्नं) इस शरीर सम्बन्धी अनन्त प्रकारके भेदोंको लेकर अनेक प्रकार वचनोंको कहनेसे कर्मोंका बंध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ज्ञान स्वभावमें लय होनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—शरीरमें नये पुद्गल मिलते हैं, पुराने झड़ते हैं, इसलिये गलन पूरण स्वभाव यह शरीर है। शरीर सम्बन्धी दिन रातकी ही चर्चाको किया जावे तो बहुत बड़ी कहानी होजायगी। जो भूत भविष्यत् वर्तमान तीन काल सम्बन्धी शरीरकी चर्चाको एकत्र किया जावे तो बड़ा लम्बा चौड़ा विस्तार होजायगा। इन वचनविलासोंसे महान कर्मका बन्ध होता है। ज्ञानी जीव इनसे उदास होकर जब निजात्मामें रमण करता है तब ही कर्मोंका क्षय होता है।

वयनं सहाव उत्तं, नंत विसेसेन पजाय संयुत्तं।
वयनं विरयंति सुद्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८३ ॥

अन्वयार्थ— वयन सहाय उत्त) वचनोंका स्वभाव कहा गया है (नन विसेसेन पजाय संयुत्त) शरीर पर्यायको लेकर वचनोंके अनन्त भेद होते हैं (वयन विरयति सुद्ध) जो सर्व वचनोंसे विरक्त होकर शुद्ध भावमें जमते हैं वे (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंकी निर्जरा करते है।

भावार्थ—मन विकल्पोंके साथ २ वचनके सर्व भेदोंको त्यागनेकी जरूरत है। शरीर सम्बन्धी वचन विलास, रागद्वेप, मोह उत्पादक होनेसे पापकर्ममें बंध करानेवाला है। यदि आत्मा सम्बन्धी व तत्व सम्बन्धी वचन प्रयोग किया जावे तो उससे पुण्यकर्मका वन्ध होता है। पुण्य पापकर्मके वन्धसे बचनेके लिये व कर्मोंके क्षयके लिये यह आवश्यक है कि वचनोंकी सब प्रवृत्ति रोक दी जावे। मौन सहित निज आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय हुआ जावे। आत्माकी निर्विकल्प समाधी ही वह अग्नि है जो कर्मोंको जलाती है और आत्माको शुद्ध सुवर्णके समान परमात्मा बनाती है।

कायकृत कर्म गुणदोष कथन।

कृतस्य कम्म उववन्नं, कृतस्य पुग्गल सहाव अनेयं च।
कृतस्य बंध सम्बन्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८४ ॥

अन्वयार्थ—(कृतस्य कम्म उववन्न) काय द्वारा क्रिया करनेसे कर्मोंका वन्ध होता है (कृतस्य पुग्गल सहाव अनेयं च) शरीर पुद्गलके निमित्तसे अनेक प्रकार क्रियाएँ होती हैं (कृतस्य बंध सम्बन्धं) जहां कामोंके करनेकी आरंभ क्रिया है वहां वन्ध अवश्य है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) ज्ञान स्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—जैसे कर्मोंके क्षयके लिये मन द्वारा विकल्प व वचनोंका आलाप त्यागनेकी जरूरत है वैसे ही काय द्वारा क्रियाओंके भी त्यागनेकी जरूरत है। बहुधा लौकिक जन शरीरके सम्बन्धको लेकर द्रव्य

कमाना, तुलाना, वस्त्र पहनाना, खिलाना, पिलाना, सोना, कूदना, दौड़ना, चलना, कूटना, पीटना, पीसना, वर्तन बनाना, खेती करना, शस्त्र चलाना आदि अनेक क्रियाएँ करते हैं इनसे कर्मोंका बन्ध होता है। जो कर्मोंकी निर्जरा करना चाहे उसको इन सर्व क्रियाओंको छोड़कर आसन जमाकर निश्चल बैठकर काय द्वारा कर्मसे वैराग्यवान हो, आत्म-ध्यान करना चाहिये।

कृतस्य असुद्धं कम्म, गृह बालेन ग्रही कर्म कृतं च ।
अवंभं अभावं च, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८५ ॥

अन्वयार्थ—(कृतस्य असुद्धं कम्म) क्रिया द्वारा बहुतसे अशुद्ध कर्म किये जाते हैं (गृह बालेन ग्रही कर्म कृत च) अज्ञानी गृहस्थी द्वारा गृहस्थके अनेक कर्म किये जाते हैं (अवंभं अभावं च) जब इन गृह कर्मोंको और अब्रह्मका अभाव किया जायगा तब (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें रमनेसे कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—कायके वर्तनमें बहुतसे अशुद्ध कर्म होते हैं। गृहस्थी अज्ञानसे मूढ होकर व तन्मय होकर द्रव्य कमाना, पानी भरना, आटा पीसना, ऊखलीमें कूटना, बुहारना तथा रोटी बनाना इन छः कर्मोंको करता रहता है तथा स्त्रियोंके मोहमें रागी होकर ब्रह्मचर्यका घात करता है। जो कोई कर्मोंकी निर्जरा करना चाहे उसे बन्धकारक गृहस्थीके आरम्भोंको तथा कुशील भाव व कर्मको सर्वथा छोड़कर निर्ग्रन्थ होकर आत्मध्यानमें जमना होगा। सारसमुच्चयमें कामभावके जीतनेका उपदेश है—

दोषाणामाकरः कामो गुणानां च विनाशकृत् । पापस्य च निजो बन्धुः परापदां चैव संगमः ॥ १०४ ॥
पिशाचेनैव कामेन छिद्रितं सकलं जगत । बभ्रमेति परायत्तं भवाब्धौ स निरन्तरम् ॥ १०५ ॥
वैराग्यभावनामन्त्रैस्तन्निवार्य महाबलं । स्वच्छन्दवृत्तयो धीरा सिद्धिसौख्यं प्रपेदिरे ॥ १०६ ॥

भावार्थ—यह काम दोषोंकी खान है, गुणोंको नाश करनेवाला है, पापका अपना बन्धु है, बड़ी २ आपत्तियोंको लानेवाला है। पिशाचके समान इस कामसे सर्व जगत पीड़ित है। तथा जगतके प्राणी इसीके आधीन हो निरन्तर संसार–सागरमें भ्रमते रहते हैं। इस कामके महान् बलको वैराग्य भावनारूपी मन्त्रोंसे दूर करके स्वच्छन्द वृत्तिधारी धीरवीर साधुजन मुक्तिके सुखको पाते भए।

नोकम्मं उववन्नं, भावं कम्मं च सयल असहावं ।
कम्मं कम्म कलंकं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८६ ॥

अन्वयार्थ—(नोकम्मं उववन्न) यह शरीर उत्पत्तिरूप है (भावं कम्मं च सयल असहावं) इसके निमित्तसे सर्व ही वैभाविक भाव कर्म होते हैं (कम्म कम्म कलंक) उन भावोंके अनुसार क्रिया करनेसे कर्मकलङ्कका लोप होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—यह शरीर विनाशीक है, क्योंकि उत्पत्तिरूप है । इसके पालनेके लिये व इसके भीतर जो इंद्रियाँ होती हैं उनकी इच्छाकी पूर्तिके लिये नानाप्रकार रागभाव या विरोधकोंसे द्वेषभाव करने पड़ते हैं । उन भावोंके अनुसार नानाप्रकार हिंसा आदि आरंभ क्रियाएँ करनी पड़ती हैं जिनसे कर्मोंका बन्ध होता है । तत्वज्ञानी कायकी इन क्रियाओंको छोड़कर आत्माके स्वभावमें लीन होकर रत्नत्रयकी एकतासे कर्मोंकी निर्जरा करते हैं ।

पुन्य पाउ उववन्नं, हिंसानन्दी च दोष संयुत्तं ।
अनृत असत्य सहियं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयन्ति ॥ २८७ ॥

अन्वयार्थ—(पुन्य पाउ उववन्न) इस शरीरकी क्रियासे अभिप्रायके अनुसार पुण्य तथा पापका बन्ध होता है (हिंसानंदी च दोष संयुत्त) यदि परम द्वेषभाव सहित होकर हिंसामें आनन्द मानते हुए स्थावर व त्रसकी हिंसा की जाती है (अनृत असत्य सहियं) साथमें मिथ्यात्व भाव व अज्ञानभाव हो तो उससे पाप-कर्मका ही बन्ध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) जहां पुण्य व पापकर्म बन्धकारक सर्व कायकी क्रियाका त्याग होता है और ज्ञान स्वभावमें लीनता होती है वहीं कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—कायकी क्रिया यदि मन्द कषायसे शुभ भावनायुक्त होती है तब सातावेदनीय आदि पुण्य कर्मका बन्ध होता है । यदि तीव्र कषायसे अशुभ भावनायुक्त होती है तब असाता वेदनीय आदि पाप-कर्मका बन्ध होता है । महान् भारी पापकर्म बन्धकारक हिंसानन्दी भावसे हिंसा करता है, प्राणियोंको सताता है । ऐसी हिंसा वे ही लोग करते हैं जो मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी हैं तथा इस क्षणिक असत्य संसारकी पर्यायोंके मोही हैं। वे स्वार्थवश किसीका जडमूलसे नाश करके भी आनन्द मानते हैं। आत्म-ध्यानीको सर्व कायकी क्रियाको त्यागकर साम्यभावमें लय होना होगा तब ही कर्मोंका क्षय होगा ।

अनृत नन्द आनन्दं, स्तेयं अवंम नन्द सहकार ।

पुग्गल पज्जाय दिट्ठं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८८ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत नन्द आनन्दं) मृषा बोलनेके आनन्दमें मग्न होकर (स्तेय अबंम नन्द सहकार) या चोरी करने व कुशील सेवनेके आनन्दमें भरकर (पुग्गल पज्जाय दिट्ठं) शरीरकी पुद्गल पर्यायकी तरफ दृष्टि रखकर बहुतसी खोटी क्रियाएँ की जाती हैं उनसे पापकर्मका बन्ध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) जो सर्व कायकी क्रियाको त्यागकर ज्ञान स्वभावमें लय होते हैं वे कर्मोंसे छूटते हैं ।

भावार्थ—अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीव शरीरका मोही जैसी निर्दयतासे हिंसा करता है वैसी निर्दयतासे झूठ बोलकर विश्वासघात करता है, चोरी करता है व अब्रह्मका सेवन करता है । इन पापोंको सेवनकर बहुत राजी होता है । इससे वह घोर पापकर्म बांधता है । आत्माके ध्यानके लिये तो सर्व कायकी क्रियाएँ छोड़नी ही होंगी तब ही कर्मोंकी निर्जरा होसकेगी ।

विषय सहाव स उत्तं, व्रत तप किरियं च कस्ट अनेयं ।

अज्ञाने पेच्छंतो, ज्ञान वलेन कम्म विरयंति ॥ २८९ ॥

अन्वयार्थ—(विषय सहाव स उत्त) पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी वांछा करके जो विभाव कहा गया है उसके वश होकर (व्रत तप किरियं च कस्ट अनेयं) अज्ञानी व्रत करता है, तप साधता है, क्रियाकांड करता है तथा बहुत कष्ट उठाता है (अज्ञाने पेच्छंतो) उसकी इन क्रियाओंको करते हुए दृष्टि मिथ्याज्ञानकी तरफ है (ज्ञान-वलेन कम्म विरयंति) इन सबको छोड़कर जो ज्ञानस्वभावी आत्मामें लय होंगे उन्हींके कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—कर्मोंका क्षय मिथ्यात्व सहित व्रत, तप व क्रियासे कभी नहीं होगा । जहां भविष्यमें इंद्रियोंके सुखोंकी भावना है वहां सर्व कुछ जप तप बन्ध ही कारण हैं । जो कोई सम्यग्दृष्टी व्रत, तप, क्रियाको करते हुए आत्मध्यानमें ऐसा लय होगा जहां क्रियाओंका, व्रतोंका व तपका कोई विकल्प नहीं है । तब ही उसके कर्मोंकी निर्जरा होगी । समयसार कलशमें कहा है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः । क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं ॥

साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं । ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१०७॥

भावार्थ—मोक्षमार्गसे विरुद्ध महान कठिन तपादि कर्म करके कोई अपनेको क्लेश दे तो दे। अथवा दूसरे कोई मोक्षमार्गके अनुकूल अहिंसादि पांच महाव्रत व अनशनादि बारह प्रकार तपके भारकों ढोकर चिरकाल कष्ट उठावें तो उठावें परन्तु जो मोक्ष साक्षात् एक निराकुल अविनाशी स्वानुभवगम्य ज्ञानमय एक पद है सो आत्मज्ञान गुणके विना कोई किसी भी तरह प्राप्त नहीं कर सक्ता।

पुग्गल सहाव उत्तं, पज्जय अनिस्ट इस्ट सद्भावं।
अज्ञानं कम्म परं, ज्ञान वलेन कम्म विरयंति ॥ २९० ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल सहाव उत्तं) पुद्गलकी लीनताका ऐसा स्वभाव कहा गया है कि (पज्जय अनिस्ट इस्ट सद्भावं अज्ञान कम्म पर) शरीररूपी पर्यायका बुरा भला विचार कर अज्ञानी कर्म करता रहता है (ज्ञान बलेन कम्म विरयंति) जो पुद्गलसे वैरागी होकर आत्मज्ञानके बलको प्रगट करेगा उसीके कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—शरीरका मोही जीव रात दिन यही विचार करता है कि शरीरका भला जिनसे हो उन कामोंको करूं व बुरा जिनसे हो उन कामोंको न करूं। इसलिये वह शरीरको सुखदाई विषय भोगके कर्म तो करता है व दुखदाई तपादि कर्म नहीं करता है। यदि शरीरके सुखका लोभ मिलता है तो कदाचित् व्रत व तप भी आचरण करता है। इन सब कर्मोंसे कर्मका ही बंध होता है। कर्म छेदके लिये तो सर्व कायकी क्रियाको छोड़कर स्वयं आत्मस्थ होना होगा।

कम्मं कम्म विसेसं, भाव कुभाव कम्म उपपत्ति।
संसार कम्म विरयं, पुन्नं कम्मं च भाव सुह उत्तं ॥ २९१ ॥

अन्वयार्थ—(कम्मं कम्म विसेस) कर्मोंमें कर्मके भेद भी हैं (भाव कुभाव कम्म उपपत्ति) शुभ भावोंसे पाप-कर्मका बन्ध होता है (ससार कम्म विरय पुन्नं कम्मं च सुह भाव उत्त) जो कोई सांसारिक कर्मोंसे विरक्त होकर पुण्यकर्म करता है वह पुण्यकर्म शुभोपयोग सहित कहा गया है।

भावार्थ—सामान्यसे मन्द कषायरूप भावोंको शुभ भाव व तीव्र कषायरूप भावोंको अशुभ भाव कहते हैं। इनसे क्रमसे पुण्यकर्म व पापकर्मका बन्ध होता है, परन्तु मोक्षमार्गमें मिथ्यादृष्टी अज्ञानीका किया हुआ पुण्यकर्म भी शुभोपयोग सहित नहीं कहा जाता है क्योंकि उसकी भावना संसारके विषयोंकी प्राप्ति है।

जो संसारसे विरक्त है और मोक्षका परम रुचिवान है वह जब शुद्धोपयोगके साधक मन्द कषायरूप पूजा दान जप तप श्रावक व मुनिके व्रतोंको पालता है तब ही उसके शुभोपयोग कहा जाता है। धर्मध्यान शुभोपयोगमें होता है सो धर्मध्यान सम्यग्दृष्टीके ही संभव है। मिथ्यादृष्टी कितना भी तप व्रत पाले वह आर्त व रौद्रध्यान ही कहलायगा। श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें कहा है–'परे मोक्षहेतू' अर्थात् धर्मध्यान व शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं। मोक्षमार्ग सम्यग्दृष्टीको ही प्राप्त होता है।

श्री प्रवचनसारके ज्ञेयतत्व अधिकारमें शुभोपयोगका स्वरूप कहा है—

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे। जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स॥ ६५–२॥

भावार्थ—जो श्री जिनेन्द्रदेव अरहन्तको पहचानता है, सिद्धोंके स्वरूपका तथा निर्ग्रन्थ साधुओंका सच्चा स्वरूप श्रद्धानमें रखता है तथा जो जीवोंपर दया भावका धारी है उसीके शुभोपयोग होता है। इससे सिद्ध है कि सम्यग्दृष्टीके ही शुभोपयोग होता है। जिससे मोक्षमार्गमें अबाधक पुण्य कर्मका बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टीके संसारवर्द्धक पुण्यकर्मका बन्ध मन्द कषायसे होता है। वह मन्द कषायरूप भाव संसारवर्द्धक है, इससे उसको अशुभोपयोग कहा गया है, शुभोपयोग नहीं।

एकम्म कम्म जाने, जीव विरोह जीव घातं च।
सरनं कम्म विरोधं, नंदं कम्मं च घाइ संयुत्तं॥ २९२॥

अन्वयार्थ—(एकम्म कम्म जाने) इन कर्मोंमें जो बन्ध होते है उन कर्मोंको विशेष जानो, जो (जीव विरोह जीव घातं च) जीवके स्वभावके विराधक हैं व जीवके घातक हैं (विरोध कम्म सरन) यह विरोधी कर्म ही संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं (नंद कम्म च घाइ संयुत्तं) क्रिया करनेमें आनन्द माननेसे ही घातीयकर्मोंका बंध होता है।

भावार्थ—कर्म आठ हैं–चार घातीय, चार अघातीय। चार घातीय कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय जीवके ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त, चारित्र तथा वीर्य स्वभावके घातक हैं। इन हीसे जीवका महान बुरा होता है। ये ही कर्म रागद्वेप मोह भावोंको उत्पन्न करते हैं जो संसार भ्रमणके मूल कारण हैं। जब शुभ व अशुभ क्रिया करनेमें प्रसन्नता होती है तब इन कर्मोंका बंध अवश्य होता है

जहां कषायका उदय बिलकुल नहीं होता है वहां किसी क्रियामें किंचित् भी राग नहीं होता है, वहां इन चारोंका बन्ध नहीं होता है। ग्यारहवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थानोंमें योग सम्बन्धी क्रिया है परन्तु कषायका उदय नहीं है इसलिये मात्र सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। इस कारण यहांपर कहा गया है कि इस घातीयकर्मोंके क्षयके लिये राग भाव सहित सर्व मन वचन कायकी क्रियाको छोड़कर आत्मस्थ रहना योग्य है, जिससे कर्मोंकी निर्जरा होजावे।

कम्मं सहाव उत्तं, कृत विरयं च कारितं विरियं।
अनुमय विरयति सुद्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २९३ ॥

अन्वयार्थ—(कम्मं सहाव उत्त) मन वचन कायकी क्रियाका स्वभाव ऊपर कहा गया। (कृत विरयं च कारितं विरिय) ज्ञानीको स्वयं मन वचन कायकी क्रियासे विरक्त होना चाहिये तथा मन वचन कायसे क्रिया करानेसे भी विरक्त रहना चाहिये (अनुमय विरयति सुद्ध) तथा मन वचन कायसे किसीके कामकी अनुमोदनासे भी विरक्त होना चाहिये। मात्र शुद्ध भाव रखना चाहिये (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें ही रत होनेसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—कर्मोंकी निर्जराका उपाय निश्चिन्त होकर आत्माके स्वभावमें रत होना है। जब मन वचन काय कृतकारित अनुमोदनासे नौ प्रकार सर्व प्रवृत्तिके विचारको छोड़ा जायगा तब ही मन वचन कायके प्रपंचोंसे भिन्न होकर वीतरागभावके साथ आत्मध्यान होसकेगा, तब ही कर्मकी निर्जरा होगी।

समयसार कलशमें कहा है—

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषय मनोवचनकाये। परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥ ३२-१० ॥

भावार्थ—ध्यानी विचारता है कि मैं मन वचन काय कृतकारित अनुमोदनासे भूत भविष्य वर्तमान तीन काल सम्बन्धी सर्व कर्मोंको छोड़कर परम निष्कर्म या क्रियारहित भावको या शुद्ध वीतराग भावको अवलम्बन करता हूं। वास्तवमें श्री तारणतरण स्वामीने बहुत विस्तारके साथ मन वचन कायकी क्रियाका त्याग बताया है जो मनन करने योग्य है।

उत्पति षिपति स कम्मं, ज्ञान सहावेन विरय कम्मानं।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, चेतन आनन्द कम्म विरयंति ॥ २९४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पति षिपति स कम्मं) यह कर्म ही बन्धता है तथा झड़ता है, रागद्वेष मोहसे उनका बंध होता है और (ज्ञान सहावेन कम्मान विरय) वीतराग विज्ञानमई स्वभावसे कर्मोंका क्षय होता है (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) ज्ञान चेतनाके अनुभवसे ही या आत्मज्ञानमें मगन होनेसे ही ज्ञान शुद्ध होता है या केवलज्ञान पैदा होता है (चेतन आनन्द कम्म विरयंति) कर्मोंका क्षय दुःखित भावसे नहीं होता है। किन्तु जब चेतन स्वभावमें आनन्दका अनुभव होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव तो निश्चल व अखण्ड है। कर्म वर्गणाएँ जब आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूप ठहरती हैं तब कर्मोंकी उत्पत्ति कही जाती है और जब वे प्रदेशोंमेंसे चली जाती हैं, बंधावस्था त्याग देती हैं तब कर्मोंका क्षय कहलाता है। जबतक वीतराग ज्ञानानन्दमई स्वभावमें लयता न होगी व अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद न आयगा तबतक कर्मोंका क्षय न होगा। आर्तध्यान व रौद्रध्यानसे व भक्तिभावसे तो कर्मोंका बन्ध होता है। जहां मात्र वीतराग शुद्धभाव है वहां ही कर्मोंका क्षय होता है। श्री समयसारजीमें कहा है—

रत्तो बन्धदि कम्म मुंचदि जीवो विरागसपत्तो। एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥

भावार्थ—रागी जीव कर्मोंको बांधता है। वीतरागी जीव कर्मोंसे छूटता है। यह श्री जिनेन्द्रका उपदेश है। इसलिये हे भव्यो! शुभ व अशुभ कर्मोंमें राग मत करो।

चिदानन्द स्वभाव कथन।

चिदानंद स सहावं, कम्मं न पिच्छेइ नंद सहकारं।
सुकिय सुभाव सुसमयं, ज्ञानानंदेन कम्म नहु पिच्छं ॥ २९५ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद स सहाव) आत्माका अपना स्वभाव चैतन्यमय तथा आनन्दमय है (नंद सहकारं कम्मं न पिच्छेइ) वह आनन्दके भीतर मगनताके कारण मन वचन कायकी क्रियापर लक्ष्य नहीं रखता है (सुकिय सुभाव सुसमय) आत्माका अपने स्वभावरूप रहना ही स्वसमय है (ज्ञानानदेन कम्म नहु पिच्छं) ज्ञानानंदमें मगन होनेसे कर्मोंका बन्ध नहीं होता है।

भावार्थ—अब यहां यह बताते हैं कि आत्मानन्दमें मगन होना या स्वसमय रूप रहना ही कर्म-बन्धके अभावका कारण है। जिससमय आत्मा अपने दर्शन ज्ञान स्वभावमें सन्मुख होता है, उसका उपयोग मन वचन कायकी क्रियासे बिलकुल हट जाता है, तब ही सच्चा सुख वेदन होता है, यही संवर व निर्जराका कारण है। समय आत्माको कहते हैं उसके दो भेद हैं—स्वसमय तथा परसमय, उनका स्वरूप समयसारजीमें कहा हैः—

जीवो चरित्तदसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं ज ण, पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमय ॥ २ ॥

भावार्थ—जब यह आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यग्चारित्रमें ठहरता है, आप आपरूप एकाग्र होता है तब इसको स्वसमय जानो। जब यह पुद्गल कर्मके उदयकी अवस्थामें ठहरता है तब इसको परसमय जानो। स्वसमय ही हितकारी है।

चिदानन्द चेतनयं, षिपनिक रूवेन कम्म संषिपनं।
कम्म सहाव न पिच्छं, चिदानन्द नंद स सरूवं ॥ २९६ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद चेतनयं) यह आत्मा चिदानंद चैतन्यमय है (षिपनिक रूवेन कम्म संषिपनं) जब यह द्रव्य व भाव रूपसे क्षपणक होता है तब कर्मोंका क्षय होता है (कम्म सहाव न पिच्छ) जहां कर्मोंके स्वभावपर दृष्टि नहीं रहती है (चिदानद नंद स सरूवं) जहां आत्मा अपने ही चिदानन्द स्वभावमें मगन होता है।

भावार्थ—कर्मोंके क्षयका उपाय वीतरागभाव है। यथार्थ शुद्धोपयोगरूप वीतराग निर्विकल्प भाव जो अधिक कालतक ठहर सके क्षपणक रूपमें होता है। बाहरसे परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रंथ दिगम्बर भेष हो—अन्तरंगमें कषायोंको व इंद्रियोंको विजय करनेसे परम समताभाव व वीतरागभाव हो, ऐसे भावके धारी मन वचन कायकी क्रियासे व कर्मोंके उदयसे या कर्मचेतनासे या कर्मफलचेतनासे विरक्त होते हैं तब ही अपने ज्ञानानन्दमई स्वभावमें ठहरते हैं। और परमानन्दका स्वाद लेते हैं। रागद्वेष-पूर्वक काम करनेमें तन्मय होनेको कर्मचेतना कहते हैं। मैं सुखी, मैं दुःखी इस भावके अनुभवको कर्मफलचेतना कहते हैं।

चिदानन्द लष्य नयं, लष्यंतो ज्ञान ज्ञान विज्ञानं ।
अलषं लषंतु रूवं, लष्यन्तो कम्म नहु पिच्छं ॥ २९७ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द लष्य नयं) आत्माका लक्षण चिदानन्द है (लष्यन्तो ज्ञान ज्ञान विज्ञानं) इस लक्षणकी पहचानसे ही आत्माका ज्ञान होता है, आत्माका ध्यान होता है तथा भेदविज्ञान होता है (अलषं रूवं लखतु) हे भव्यजीव ! मन, वचन, कायसे न लखने योग्य आत्माको पहचानो, उसका अनुभव करो (लष्यंतो कम्म नहु पिच्छ) अनुभव करते हुए कर्मोंका बन्ध नहीं होगा ।

भावार्थ—आत्माका असाधारण गुण चिदानन्द है जो सिवाय आत्माके और किसी पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल व आकाश द्रव्यमें नहीं पाया जाता है। इस लक्षणसे लक्ष्यरूप आत्माका ज्ञान करके उसको परद्रव्य, परगुण, पर पर्याय, विभाव भावादिसे भिन्न जानना चाहिये तथा इसी लक्षणको लेकर उसका ध्यान करना चाहिये। यह आत्मा मनसे विचारा जाता है, परन्तु उसका अनुभव या उसमें तल्लीनता तब ही होती है जब मनका विचार भी बन्द होजाता है, वचन व काय तो थिर होना ही चाहिये। जहां आत्मानुभव है वहीं संवर पूर्वक निर्जरा है।

चैतन्यभावसे ही आत्मा ग्रहण किया जाता है ऐसा ही समयसारकलशमें कहा है—

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो, नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्वं ततः ।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचित नाव्याप्यतिव्यापि वा, व्यक्तं व्यंजितजीवतत्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यता ॥ १०–२॥

भावार्थ—अजीव द्रव्य वर्णादि सहित मूर्तीक भी है व वर्णादि रहित अमूर्तीक भी है इसलिये अमूर्तीकपनेके लक्षण द्वारा देखनेसे जगतको जीव तत्व नहीं दिख सक्ता है, इसमें अति दूषण आता है। यदि रागादि भावलक्षण करें तो अव्याप्ति दोष आता है इसलिये भेदविज्ञानियों द्वारा भलेप्रकार निर्णीत एक निश्चल चैतन्य लक्षण ही ठीक है। इसीसे जीवतत्वका ग्रहण होता है। जो गुण एक द्रव्यमें व दूसरेमें भी पाया जावे उसमें अतिव्याप्ति दोष है, जो गुण एक उस द्रव्यकी सर्व जातिमें न पाया जावे उसको अव्याप्ति दोष कहते हैं। अमूर्तीकपना जीवमें भी है, आकाशादिमें भी हैं, रागादिभाव किन्हीं जीवोंमें है, किन्हींमें नहीं है।

चिदानन्द चिंतवनं, चिन्तंतो ज्ञान विमल सद्भावं ।
मल सुभाव न दिट्ठं, चेतन आनन्द कम्म संषिपनं ॥ २९८ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद चितवन) चिदानन्द स्वभावका चितवन करना चाहिये (चिंततो ज्ञान विमल सद्भाव) ऐसा विचारनेसे ज्ञान निर्मल होजायगा (मल सुभाव न दिट्ठ) आत्माका मलीन स्वभाव रागादि रूप व संसारी पर्याय रूप न दिखलाई पडेगा (चेतन आनद कम्म सषिपनं) इसी चिदानन्द स्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—मैं चिदानन्द स्वभाव हूं ऐसी भावना वारवार करनेसे ज्ञानमेंसे राग दि मैल निकल जायगा तथा आत्मा वीतराग विज्ञान रूप ही झलकेगा, एकेन्द्रिय पर्याय रूप या क्रोधादि रूप नहीं दिखलाई पडेगा । द्रव्यकी दृष्टिसे देखते हुए पर्याय नहीं दीखेगी । इसतरह भावना करते २ जब इस चिदानंद स्वभावमें तल्लीनता होगी तब कर्मोंकी निर्जरा होगी ।

चिदानन्द संदिट्ठं, दंसन दंसेइ ज्ञान सहकारं ।
चरनं दुविह संयोगं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ २९९ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद सदिट्ठ) चिदानन्द स्वभावको भले प्रकार देखना चाहिये दसन दसेइ ज्ञान सहकारं) मैं चिदानन्द स्वभाव हूं इस ज्ञानकी सहायतासे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब सम्यक्त भाव ऐसा ही श्रद्धान करता है । तब ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान होजाता है । सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानकी प्रगटता पर (चरन दुविह सयोग) व्यवहार तथा निश्चय चारित्रका संयोग मिलाना चाहिये । (ज्ञान सहावेन कम्म संषिपन) ज्ञान स्वभावमें जब एकता होगी तब ही कर्मोंकी अविपाक निर्जरा होगी ।

भावार्थ—कर्म अपना फल देकर तो सर्व प्राणियोंके झड़ते रहते हैं, इसको सविपाक निर्जरा कहते हैं परंतु प्रचुर कर्मोंका विना फल दिये हुए स्थिति व अनुभाग खण्डन होकर झड जाना सो अविपाक निर्जरा है । यह निर्जरा आत्मानुभवसे ही होती है । तत्वज्ञानी जीव मैं चिदानन्द स्वभाव हूं ऐसी भावना भाते भाते ही सम्यक्ती व सम्यग्ज्ञानी होता है । फिर रागद्वेषको हटानेके लिये शक्तिके अनुसार श्रावकके एक देश या मुनिके सर्व देश व्यवहार चारित्रके द्वारा आत्मानुभव रूप निश्चय चारित्रकी उन्नति करता है जितनी २ वीतरागता इस स्वानुभवकी वृद्धिसे होगी उतनी २ अधिक कर्मोंकी निर्जरा होगी ।

चिदानन्द सहकारं, ज्ञान विज्ञान सहाव संजुत्तं ।
अंकुर ज्ञान स्वभावं, नन्द आनंद कम्म संषिपनं ॥ ३०० ॥

(चिदानंद सहकार) चिदानन्द लक्षणकी सहायतासे (ज्ञान विज्ञान सहाव संजुत्तं) ज्ञान या केवलज्ञान स्वभावधारी आत्मा है ऐसा विश्वास होता है (अंकुर ज्ञान स्वभाव) तब ही ज्ञान स्वभावमई अंकुर फूटता है (नन्द आनन्द कम्म संषिपनं) इसी ज्ञानांकुरमें आनन्दित होनेसे जो परम सुख होता है उसीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—चिदानन्द लक्षणके आश्रय मनन करनेसे ज्ञान स्वभावी आत्माका निश्चय होकर मोक्ष प्राप्तिका कारण भाव भेदविज्ञान रूपी अंकुर प्रकाशित होता है। इसी अंकुरकी सहायतासे जब आत्माके स्वभावमें रमण किया जाता है तब परमानन्दका स्वाद आता है, तब ही कर्मोंका क्षय होता है। भेद विज्ञान ही सिद्ध होनेका उपाय है। समयसार कलशमें कहा है—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन । तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥ ७-८ ॥

भावार्थ—जितने भी सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञानसे हुए हैं। जितने संसारमें बद्ध हैं वे भेदविज्ञानकी अप्राप्तिसे बद्ध हैं।

चिदानंद संदिट्ठं, दिट्ठी दिट्ठ ज्ञान अनुमोयं ।
पज्जाव नहु पिच्छदि, दिट्ठी आनंद कम्म संषिपनं ॥ ३०१ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानद संदिट्ठ) चिदानन्द स्वभावका अनुभव करना चाहिये (दिट्ठी दिट्ठइ ज्ञान अनुमोयं) भेदविज्ञानकी दृष्टि आनन्दमय ज्ञानकी तरफ सन्मुख रहती है (पज्जावं नहु पिच्छदि) शरीरकी तरफ दृष्टि नहीं रखती है (दिट्ठी आनन्द कम्म सषिपन) जब आनन्दमय दृष्टि होती है तब कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—शरीर व उसके सम्बन्धी सर्व चेतन व अचेतन पदार्थोंसे उपयोगको हटाकर एक ज्ञानानन्दमय आत्माकी तरफ लौ लगानेसे और अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

चिदानन्द सुभावं, अनुमोय देइ ज्ञान विज्ञानं ।
पज्जायं नहु पिच्छदि, सुकिय सुभाव कम्म षिपनं च ॥ ३०२ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द सुभाव अनुमोय ज्ञान विज्ञानं देइ) चिदानन्दमई स्वभावमें प्रसन्नता रखनेसे ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है (पज्जायं नहु पिच्छदि) सम्यग्दृष्टी जीव शरीर पर्यायपर दृष्टि नहीं रखता है (सुक्रिय सुभाव कम्म षिपनं च) किन्तु अपने आत्माके स्वभावपर दृष्टि रखता है इसीसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—मैं आत्मा चिदानन्दमय स्वभाववाला हूं, ऐसी भावना करते करते परसे भिन्न आत्माकी प्रतीति होती है। ज्ञानी जीव जब सर्व कर्मजनित पर्यायोंसे उदास होकर एक अपने स्वभाव हीमें तन्मय होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

षिपिओ संसार सुभावं, षिपिओ नन्त नन्त कम्मानं।
अनुमोयं ज्ञान सुभावं, कम्मं पिपिऊण तिविह योगेन ॥ ३०३ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिओ ससार सुभावं) जब संसार स्वभावरूप दर्शनमोहका क्षय होजाता है (षिपिओ नन्त नन्त कम्मानं) तथा अनन्तानुबन्धी कषायोंका क्षय होजाता है (अनुमोयं ज्ञान सुभावं) तब क्षायिक सम्यग्दृष्टी अपने ज्ञान स्वभावमें ही अनुमोदना करता है (तिविह योगेन कम्मं पिपिऊण) तब मन, वचन, कायको रोक लेनेसे शेष कर्मोंका भी क्षय होजाता है।

भावार्थ—सात प्रकृति–चार अनन्तानुबन्धी कषाय व तीन दर्शन मोहनीय इनके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त होता है। यह सम्यक्ती निरन्तर ज्ञान स्वभावमें रत रहता है। यह बहुत शीघ्र ही ध्यानका अभ्यास करके ज्ञानानन्दमय स्वभावमें थिर होकर सर्व ही कर्मोंका क्षय कर डालता है।

चिदानन्द आनन्दं, ज्ञान सहावेन सुभाव आनन्दं।
ज्ञानेन ज्ञान लब्धं, अनुमोयं कम्म नन्त संषिपनं ॥ ३०४ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द आनन्दं) चिदानन्दमई स्वभावमें आनन्द मानना चाहिये (ज्ञान सहावेन सुभाव आनन्दं) जब ज्ञान स्वभावमें रतिपना होता है तब स्वाभाविक सहज आनन्द अनुभवमें आता है (ज्ञानेन ज्ञान लब्धं) ज्ञानके द्वारा ही केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है (अनुमोयं कम्म नन्त संषिपनं) इस बातकी अनुमोदना करनेसे अनन्त कर्मोंका नाश होजाता है।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव चिदानन्दमई है। इस स्वभावमें जो रागद्वेष छोड़कर संलग्न होजाता

है उसके ही परिणामोंसे मोक्षमार्गकी सची अनुमोदना रहती है-वीतरागभावसे कर्मोंका क्षय होता है।

चिदानन्द परिनामं, परिनवै ज्ञान विज्ञान सहकारं ।
पर पज्जाय न दिट्ठं, परिनवै अनुमोय कम्म षिपनं च ॥ ३०५ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द परिनाम) चिदानन्द आत्माका परिणाम (ज्ञान विज्ञान सहकारं परिनवै) जब भेद विज्ञानकी सहायतासे निज स्वभावमें परिणमन करता है तब (पर पज्जाव न दिट्ठ) पर पर्याय या अशुद्ध संसार पर्याय नहीं दीखती है (परिनवै अनुमोय कम्म षिपनं च) आनन्दमय भावमें परिणमन होनेसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—चिदानन्दमय स्वभावमें रमणता तथा शरीर व कर्म सम्बन्धी भावोंसे वैराग्य आत्म-ध्यान है जो कर्मोंको क्षय करता है।

चिदानंद षिपिऊनं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ।
ज्ञान विज्ञान सुभावं, लघु गुरु पंच ज्ञान अनुमोयं ॥ ३०६ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद षिपिऊनं) चिदानन्द भाव ही कर्मोंका क्षय करनेवाला है (तिविह जोएन कम्मान षिपिओ) जब मन वचन काय तीनों योगोंसे थिर हुआ जाता है तब कर्मोंका क्षय होता है (ज्ञान विज्ञान सुभावं) आत्माका स्वभाव ही ज्ञानमय है (लघु गुरु पच ज्ञान अनुमोय) ज्ञान थोड़ा हो या बहुत हो, सम्यग्ज्ञानमें प्रसन्न रहना योग्य है।

भावार्थ—जब सम्यग्दृष्टीको ज्ञानस्वभावी आत्माकी दृढ़ता होजाती है तब चाहे श्रुतज्ञान थोड़ा हो या बहुत हो, सम्यग्ज्ञानमें ही आनन्द मानता है, उसीमें रमण करता है, जिससे कर्मोंका क्षय होता है।

ज्ञानं ज्ञान सहावं, ज्ञान विज्ञान कम्म संषिपनं ।
विमलं सुभाव उत्तं, ज्ञानं ज्ञानेन विमल मिलियं च ॥ ३०७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं ज्ञान सहाव) जब ज्ञान ज्ञानस्वभावमें रत होता है (ज्ञान विज्ञान कम्म सषिपनं) तब भेदज्ञान पूर्वक सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होता है (विमल सुभाव उत्त) आत्माका स्वभाव मलरहित निर्मल शुद्ध कहा गया है (ज्ञानेन विमल ज्ञानं मिलिय च) ज्ञानका अनुभव करनेसे ही केवलज्ञानका लाभ होता है।

भावार्थ—सर्व पर भावोंसे भिन्न होकर जब ज्ञान शुद्धात्मामें रत होता है तब ही कर्मोंका क्षय होता है और तब ही केवलज्ञानका लाभ होता है।

चिदानन्द सुभावं, उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि।
परम सहावं सुद्धं, चेतन आनंद निव्वुए जंति ॥ ३०८ ॥

अन्वयार्थ—(परम जिनवरेंदेहि उवइट्ठं) श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंने उपदेश किया है (चिदानंद सुभावं) कि आत्माका स्वभाव चिदानन्द है (परम सहावं सुद्धं) तथा उत्कृष्ट स्वभाव शुद्ध वीतराग है। (चेतन आनंद निव्वुए जंति) जो कोई इस चिदानन्द स्वभावमें मग्न होता है वही निर्वाणको जाता है।

भावार्थ—श्री तीर्थंकरोंने यही बताया है कि हरएक आत्मा परमात्माके समान शुद्ध चिदानन्दमय वीतरागी है। जो इसीका निश्चय करके ध्यानमग्न होता है वही निर्वाण पाता है।

योगसारमें कहा है—

जो जिण सो हउ सो जि हउ एहउ भाव णिभंतु। मोक्खह कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जो जिनेन्द्र है सो ही मैं हूं, ऐसी निःशङ्क हो भावना करो। यही मोक्षका कारण है। हे योगी! और कोई तंत्र व मंत्र नहीं है।

चिदानन्द आनन्दं, परम सुभावेन कम्म संषिपनं।
सीह सुभाव सुदिट्ठं, गयंद जूहेन दिट्ठि विरयंति ॥ ३०९ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द आनन्दं परम सुभावेन कम्म सषिपनं) यह आत्मा चिदानन्दमई परमात्माके स्वभावके समा है, ऐसी भावना करनेसे कर्मोंका क्षय होजाता है (सीह सुभाव सुदिट्ठं गयंद जूहेन दिट्ठि विरयंति) जैसे सि को देखते ही हाथियोंके समूह भाग जाते हैं, दृष्टिसे बाहर होजाते हैं।

भावार्थ—जैसे सिंहके तेजके सामने हाथीके झुण्ड नहीं ठहरते हैं, भाग जाते हैं, वैसे चिदानन्दमई आत्मीक स्वभावके प्रकाश होनेसे कर्मोंके समूह क्षय होजाते हैं।

तं सुभाव सभावं, परमं आनन्द चेतनं सहियं।
कम्मं तिविह विमुकं, विमलं ज्ञानेन सिद्धि संपत्तं ॥ ३१० ॥

अन्वयार्थ—(परमं आनन्द चेतनं सहियं तं सभावं-सुभावे) परम आनन्दमई चैतन्य स्वभावधारी उस आत्माकी भलेप्रकार भावना कर (कम्मं तिविह विमुक्कं) जिससे तीनों प्रकार कर्म छूट जावें (विमलं ज्ञानेन सिद्धि संपत्तं) शुद्ध ज्ञानके प्रकाश होनेपर सिद्ध गति प्राप्त होती है।

भावार्थ—शुद्धात्माकी भावनासे रागद्वेष भाव कर्म छूटते हैं, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म क्षय होते हैं तथा पुनः पुनः शरीररूपी नोकर्मके पानेका अवसर छूटता है—आत्मध्यानसे ही केवलज्ञान होता है, तब शीघ्र सिद्ध गति मिल जाती है।

गलित स्वभाव कथन ।

गलियं सुभाव उत्तं, गलियं कम्मान तिविह योएन ।
गलियं परिनाम असुद्धं, गलियं विषयं च मिच्छ सद्भावं ॥ ३११ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं सुभाव उत्तं) गलनशील स्वभावोंको कहा जाता है (गलिय कम्मान तिविह योएन) तीन योगोंको रोकनेसे कर्म गल जाते हैं (गलियं परिनाम असुद्धं) अशुद्ध भाव सब गल जाते हैं (गलियं विषयं च मिच्छ सदभाव) विषयोंकी इच्छा व मिथ्यात्वभाव भी गल जाता है।

भावार्थ—अब गलित स्वभाववाली वस्तुओंको बताते हैं। आत्मा तो अगलित स्वभाव है। आत्माका स्वभाव कभी नहीं गलता, कभी नष्ट नहीं होता। परन्तु जो२ आत्मामें पर पुद्गलका संयोग है तथा कर्म-जनित भावोंका संयोग है सो सब गलित स्वभाव है, छूट जानेवाला है। जब मन, वचन, कायकी गुप्तिमई आत्म-समाधिमें एकाग्र हुआ जाता है तब इस वीतराग तपसे द्रव्य कर्मोंका क्षय होजाता है। ये द्रव्य कर्म गलित स्वभाव हैं। बन्धनेके पीछे अपने समयपर पक करके झड़ते ही रहते हैं। ध्यानसे उनको शीघ्र विपाकसे पहले गला डाला जाता है। अशुद्ध रागादि भाव भी या शुभ व अशुभ उपयोग भी सब गलित स्वभाव हैं—एकसे नहीं रहते, बदलते रहते हैं। तथा शुद्धोपयोगी इनको गला डालता है। विषय वांछा व मिथ्यात्वभाव गलन स्वभाव है—एकसे नहीं रहते तथा सम्यग्दृष्टी ज्ञानी इनको गला डालता है। इसतरह गलित स्वभाववाले पदार्थोंसे मोह करना उचित नहीं है।

गलियं कुज्ञान उत्तं, गलियं परिनाम गलिय मोहंधं ।
ज्ञान सहावं सुद्धं, विमल सुभाव मुक्ति गमनं च ॥ ३१२ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं कुज्ञान उत्तं) मिथ्या ज्ञानका स्वभाव भी गलनशील है, एकसे भाव नहीं रहते तथा सम्यग्ज्ञानसे उसका नाश होजाता है (गलिय परिनाम गलिय मोहंध) सर्व ही पर्याय गलित स्वभाव अर्थात् क्षणभंगुर हैं, दर्शन मोह भी सम्यक्तसे गल जाता है (ज्ञान सहावं सुद्ध) आत्माका शुद्ध ज्ञान स्वभाव अविनाशी है (विमल सुभाव मुक्ति गमनं च) इसी निर्मल स्वभावको लिये हुए जीव मोक्षमें जाकर अनन्तकाल तक रहता है ।

भावार्थ—जितनी पर्यायें या अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं सब व्ययशील या गलित स्वभाव हैं। कुज्ञान सम्यग्ज्ञानसे गल जाता है। दर्शन मोह सम्यक्तसे गल जाता है। एक आत्माका निज शुद्ध ज्ञान स्वभाव सदा बना रहता है। संसार अवस्थामें यह ढ़का रहता है। कर्मावरण हटनेसे यह प्रकाशमान होजाता है तब मोक्षमें अनन्तकाल तक बना रहता है।

गलियं सहाव उत्तं, गलियं सलं च रागदोसं च ।
गारव गलिय अनिस्टं, ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ३१३ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं सहाव उत्तं) गलित स्वभाववाली वस्तुओंको कहते हैं (गलियं सलं च रागदोसं च) माया मिथ्या, निदान ये तीन शल्य राग तथा द्वेष भी गलन स्वभाव हैं, गल जाते हैं (गारव गलिय अनिस्टं) अशुभकारी मद भाव भी गल जाता है (ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च) आत्मा एक अविनाशी ज्ञान स्वभावके ही द्वारा मुक्तिमें जाता है।

भावार्थ—कोई ऐसा माने कि मेरे रागद्वेष नहीं जांयगे, मेरी शल्यें नहीं मिटेंगी, मेरा मदभाव नहीं मिटेगा, उस जीवको समझानेके लिये यह कहा गया है कि जितने कर्मजनित परभाव हैं, वे अपने स्वभावमें आनेसे मिट जाते हैं। जैसे गर्म पानीकी गर्मी अवश्य मिटेगी, गर्म लोहा अवश्य ठण्डा होगा उसी-तरह जब सम्यक्ती निज आत्माका यथार्थ स्वभाव अनुभव करता है तब उसकी शल्यें मिट जाती हैं, मदभाव नहीं रहता है व जैसे २ वीतरागताकी वृद्धि करता है, रागद्वेष मिटता जाता है।

गलियं घाय चउक्कं, गलियं संसार सरनि सहकारं ।
गलिओ कम्म स उत्तं, ज्ञान सहावेन जंति निव्वानं ॥ ३१४ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं घाय चउक्क) चार घातीय कर्म भी गल जाते हैं (गलिय संसार सरनि सहकारं) संसारके भ्रमणके सहकारी रागादि भाव भी गल जाते हैं (गलिओ कम्म स उत्त) और सर्व ही कर्म गल जाते हैं ऐसा कहा है (ज्ञान सहावेन निव्वान जंति) यह आत्मा ज्ञान स्वभावमें लय होनेसे ही निर्वाणको जाता है ।

भावार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय ये चार घातीय कर्म भी गलन स्वभाव हैं । शुक्लध्यानके द्वारा ये भी विलकुल नष्ट होजाते हैं । संसारके भ्रमणके कारण रागद्वेष मोह भाव हैं । ये भी वीतरागमई स्वभावके प्रकाशसे गल जाते हैं, सारे ही कर्म आने जानेवाले हैं । चौथे शुक्लध्यानसे अघातीय कर्म भी गल जाते हैं, मात्र एक अविनाशी ज्ञानानन्द स्वभाव रह जाता है । यह ही नित्य है इसीको लिये हुए निर्वाणमें जाता है ।

गलियं अर्थ अनर्थ, गलियं अनुमोय अज्ञान सहकारं ।
गलियं पुग्गल रूवं, ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ३१५ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय अर्थ अनर्थ) जितने अनर्थकारक भाव हैं या संयोग हैं वे सब गल जाते हैं (गलियं अनुमोय अज्ञान सहकार) मिथ्याज्ञानसे जो यह अपनी प्रसन्नता रखता है वह भाव भी गल जाता है (गलियं पुग्गल रूव) पुद्गलका सर्व स्वभाव गल जाता है (ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च) एक ज्ञान स्वभावको लिये हुए आत्मा मुक्तिमें जाता है ।

भावार्थ—कर्मबन्धकारक मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग हैं । ये ही अनर्थकारी हैं, ये सब गलनशील हैं, गल जाते हैं । मिथ्याज्ञानसे जो संसारमें व कुधर्ममें अनुमोदक भाव था वह भी सम्यग्ज्ञानसे जाता रहता है । सर्व ही पुद्गलका संयोग–तैजस, कार्माण, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर, भाषा वर्गणा तथा मन ये सब छूट जाते हैं । पुद्गलसे सर्वथा छूटनेपर आत्माका एक अविनाशी स्वभाव रह जाता है उसीको लिये हुए यह मोक्षमें चला जाता है ।

गलियं मनस्य रुचियं, गलियं वचनस्य असुह सुह जननं ।
कललंकृत कर्म सुगलियं, गलियं स भाव कम्म नहु पिच्छं ॥ ३१६ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय मनस्य रुचिय) शुद्ध आत्माके मनकी रुचि या मन द्वारा राग भाव गल जाता है (गलिय वचनस्य असुह सुह जनन) शुभ अशुभ भावोंमें उत्पन्न करनेवाला वचनका प्रयोग भी नहीं रहता है (कललकृत कर्म सुगलियं) शरीर सम्बन्धी क्रिया भी बन्द होजाती है (गलिय स भाव कम्म नहु पिच्छ) सर्व भाव कर्म रागादिक औपाधिक भाव भी गल जाते हैं, वहां कोई दिखलाई नहीं पड़ते हैं।

भावार्थ—जब आत्मा कर्मरहित होजाता है तब उसके मन वचन काय व उनकी क्रियाएँ कोई नहीं रहती हैं। सर्व ही भाव जो स्वभावसे विरुद्ध हैं, नहीं रहते हैं।

गलियं गमनागमनं, गलियं च कोप विषय सम्बन्धं ।
गलियं मान कषायं, गलियं कम्मान सव्वहा सव्वे ॥ ३१७ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय गमनागमनं) सिद्ध शुद्ध आत्माके जाना आना बन्द होजाता है (गलियं च कोप विषय सम्बन्ध) क्रोध आने योग्य विषयका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है (गलिय मान कषाय) मान कषाय भी गल जाता है (गलिय कम्मान सव्वहा सव्वे) उनके सर्व ही कर्म सर्वथा नष्ट होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवानके योग व कषाय नहीं रहते न कोई कर्म शेष रहते हैं, इससे वे सब क्रोध मानादि कषाय रहित व इच्छा रहित व द्वेष रहित अपने स्वभावमें निश्चल विराजते हैं। उनका फिर किसी अन्य गतिमें गमनागमन नहीं होता है। वह सिद्ध गति निश्चल अविनाशी रहती है।

चौदस प्रान उववन्नं, उववन्नं विमल केवल ज्ञानं ।
केवल दर्शन दर्स, नंत चतुस्टै सुभाव संतुस्टं ॥ ३१८ ॥

अन्वयार्थ—(चौदस प्रान उववन्नं) सयोग केवली अरहंत भगवानके चार या दस प्राण अभी हैं (उववन्न विमल केवल ज्ञानं) उनके निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न होगया है। (केवल दर्सन दर्स) वह केवल दर्शनसे देखते हैं (नंत चतुस्ट सुभाव संतुस्टं) वे अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य इन चार प्रकार अनन्त-चतुष्टय स्वभावमें संतोषी हैं।

भावार्थ—अरहन्त भगवान अभी शरीर सहित हैं इसलिये प्रगटपने पांच इंद्रिय, मन वचन काय, तीन बल, आयु व श्वासोच्छ्वास ये दश प्राण हैं तथा कार्यकी अपेक्षा उनके चार ही प्राण हैं—आयुकर्म, श्वासोच्छ्वास, वचनयोग तथा काययोग। उनका भाव अत्यन्त सन्तोषी है, वे परम सुखी हैं, परम ज्ञानी हैं, परम वीतरागी हैं।

नन्तानन्त सुदिट्ठं, लोयं अवलोय लोकनं भावं।
नंदं परमानन्दं, परमप्पा परम निव्वुए जंति ॥ ३१९ ॥

अन्वयार्थ—(नंतानंत सुदिट्ठ) श्री परमात्मा अनंतानंत द्रव्यगुण पर्यायोंको भलेप्रकार देखनेवाले हैं (लोय अवलोय लोकन भावं) उनके भीतर लोक व अलोकको देखने योग्य केवलज्ञान प्रगट होगया है (नंद परमानंद) वे परमानन्दमें मग्न हैं (परमप्पा परम निव्वुए जंति) वे परमात्मा परम निर्वाणको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—कर्मोंके गलनसे यह आत्मा परमात्मा होकर निर्वाणको चला जाता है।

विलय स्वभाव कथन।

विलयं सुभाव उत्तं, कम्म निबंधाइ वंस विलयंति।
विमल सुभावं दिट्ठं, अनुमोयं विमल सिद्धि संपत्तं ॥ ३२० ॥

अन्वयार्थ—(विलयं सुभाव उत्त) अब विलय स्वभावको कहते हैं (कम्म निबंधाइ वंस विलयंति) केवली परमात्माके कर्मोंके बंधे हुए वंश विला जाते हैं (विमल सुभाव दिट्ठ) निर्मल आत्माका स्वभाव झलक जाता है (अनुमोय विमल सिद्धि संपत्त) वह स्वभाव आनन्दमई है और वीतराग सिद्धावस्थाको प्राप्त होचुका है।

भावार्थ—कर्मोंका स्वभाव नित्य नहीं है, वे यातो अपना फल देकर विलय होते हैं या ध्यानके बलसे विलय होते हैं। परम मुनि तपस्वी ऐसा शुक्लध्यान जगाते हैं कि जिसकी ज्वालासे घाति अघाति आठों ही कर्मोंके वंश जो अनादिकालसे अपनी वंशावली जमाए हुए थे सो नष्ट होजाते हैं, तब जैसे शुद्ध सुवर्ण सोलह तापके देनेसे सर्व किट कालिमासे रहित हो चमक उठता है तथा फिर कभी अशुद्ध नहीं होता है

वैसे ही यह आत्मा सर्व कर्म मैल गल जानेपर परम सिद्ध परमात्मा होजाता है और नित्य अपने स्वभावमें रमण करता है।

कम्म स्वभावं विलयं, सिद्ध सहावेन विमल ज्ञानस्य ।
अनुमोयं उवएसं, परम जिनं परम सिद्धि संपत्तं ॥ ३२१ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म स्वभाव विलयं) कर्मोका स्वभाव विला गया (सिद्ध सहावेन विमल ज्ञानस्य) सिद्ध स्वभाव निर्मल ज्ञानके साथ प्रगट होगया (अनुमोय उवएस) अर्हत् अवस्थामें जिनका उपदेश आनन्दका दाता है (परम जिनं परम सिद्धि सपत्त) परम रागादिके विजयी अर्हत् परमात्मा परम सिद्धभावको प्राप्त होजाते हैं।

भावार्थ—जबतक कर्म आत्माके साथ बन्धे रहते हैं तबतक उनकी कर्मसंज्ञा रहती है। जब उन कर्मोकी निर्जरा होती है तब उन कर्मोका कर्मस्वभावपना चला जाता है। कर्मवर्गणा पुद्गलरूप रह जाती है जैसे बन्धके पहले थी। बन्ध प्राप्त कर्म ही आत्माके गुणोंको रोक सक्ते हैं। जब उनकी मुक्ति होजाती है तब आत्मा अपने निर्मल शुद्ध स्वभावमें प्रगट होता है। स शरीर अर्हत् अवस्थामें उपदेश होता है। जब शरीर नहीं रहता है तब मात्र आत्मा अपने स्वभावमें रह जाता है, उनको अशरीर व सिद्ध परमात्मा कहते हैं।

विमल स्वभाव कथन।

विमलं विमल सहावं, विमलं विमलं च लद्ध सम भावं ।
अनुमोय विमल स उत्तं, विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥ ३२२ ॥

अन्वयार्थ—(विमल विमल सहावं) परमात्माका विमल स्वभाव सर्व मलसे रहित है (विमल विमल च लद्ध सम भावं) वह स्वभाव द्रव्यकर्मरूपी मलसे भी रहित है व भावकर्मरूपी मलसे भी रहित है, समताभावका जहां लाभ होगया है (अनुमोय विमल स उत्त) उसीको परमानन्दमय विमल स्वभाव कहते हैं (विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं) विमल स्वभाव होनेहीसे सिद्ध गति प्राप्त होती है।

भावार्थ—पुद्गलका जहांतक आत्माके साथ संयोग है वहांतक मल स्वभाव झलकता है जैसे—स्फटि-

कके साथ किसी वस्तुका संयोग होनेसे उस वस्तुका संयोगिक वर्ण झलकता है उसीतरह कर्मके संयोगसे ही रागादि विभाव आत्मामें प्रगट होता है—कर्म संयोग हटते ही आत्मा निर्मल स्फटिकके समान शुद्ध अपने स्वभावमें रह जाता है, तब ही इसे सिद्ध परमात्मा कहते हैं। कर्मवर्गणाएं सिद्ध स्थानमें भरी रहें तथापि अबंधवर्गणाएं कुछ भी विकार व आवरण आत्मामें नहीं कर सक्ती हैं। जैसे आकाशका कोई बिगाड़ परद्रव्य नहीं कर सक्ते वैसे ही सिद्धात्माका कोई बिगाड़ परद्रव्य नहीं कर सक्ता।

नन्त चतुस्टय युत्तं, अयसय पडिहार विमल ज्ञानस्य।
चौदस प्रान संजुत्तं, ज्ञानं अनुमोय सिद्धि संपत्तं ॥ ३२३ ॥

अन्वयार्थ—(नन्त चतुस्टय युत्त) श्री अर्हंत सशरीर परमात्मा चार अनन्त चतुस्टय बिराजमान होते हैं (अयसय पडिहार विमल ज्ञानस्य) केवलज्ञान होते ही उनमें अतिशय व प्रातिहार्य प्रगट होजाते हैं (चौदस प्रान सजुत्त) चार या दश प्राण सहित हैं (ज्ञानं अनुमोय सिद्धि सपत्त) ज्ञान व आनन्द गुणके साथ वे सिद्ध दशाको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके शरीरकी रचनाकी अपेक्षा दश प्राण हैं—पांच इंद्रिय, मन, वचन, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास परन्तु कार्य करनेकी अपेक्षा केवल चार प्राण हैं। वचन बल, काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास। उनके अर्हंत अवस्थामें बहुतसे अतिशय प्रगट होजाते हैं। जैसे उनके निकट वैर विरोध न रहना, जाति विरोधी पशुओंमें भी मैत्रीभाव होना, चारों तरफ दुर्भिक्ष न पड़ना आदि तथा आठ प्रातिहार्य प्रगट होते हैं। अशोक वृक्ष, सिंहासन, छत्र, चमर, दुंदुभि बाजे, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, भामण्डल। इनमें पहले छः देवों द्वारा निर्मित होते हैं। दिव्यध्वनि जिनेन्द्रकी वाणी है। भामण्डल उनके परमौदारिक सूर्य कोटिसम भासमान प्रभाका भण्डार है। वे शरीरकी आयु तक अर्हंत अवस्थामें कहलाते हैं। फिर शरीरसे रहित होनेपर सिद्ध नाम पाते हैं।

ज्ञानं दंसन सम्मं, दानं लाभं च भोय उवभोयं।
वीर्यं सम्मत सुचरनं, लब्धि संजुत्त सिद्धि संपत्तं ॥ ३२४ ॥

अन्वयार्थ—(सम्म ज्ञान दसन) अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन (दानं लाभ च भोय उवभोय) अनन्त दान, अनन्त

लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग (वीर्य सम्मत सुचरन) अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र (लब्धि सजुत्त सिद्धि संपत्त) इन नौ लब्धियोंके साथ वे अर्हंत सिद्ध गतिको प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—चार घातीय कर्मोंके क्षयसे ये नौ मुख्य गुण अर्हंतके प्रगट होजाते हैं। इन्हींको नौ लब्धियाँ कहते हैं। ये कभी नष्ट नहीं होती हैं। सिद्ध अवस्थामें भी बनी रहती हैं। ये स्वाभाविक हैं। कर्मोंके उदयसे ढकी हुई थीं सो कर्मके क्षयसे प्रगट होगई।

ज्ञानावरण कर्मबन्ध व फल।

ज्ञानं च परम ज्ञानं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं।
अक्षर सुर विंजन रूवं, ज्ञान विज्ञान अप्प परमप्पं॥ ३२५॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च परम ज्ञान) ज्ञान केवलज्ञान है यही श्रेष्ठ है (ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं) भेदविज्ञानसे उस ज्ञानका जानना केवलज्ञानकी प्रगटताका कारण है (अक्षर सुर विंजन रूवं) वह ज्ञान जिस आगमसे होता है वह स्वर व्यंजन अक्षरोंसे बना है अथवा ज्ञान ही अक्षर, स्वर, व्यंजन स्वभाव रूप है (ज्ञान विज्ञान अप्प परमप्पं) भेदविज्ञानके द्वारा ही आत्मा परमात्मा होता है।

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक ज्ञान केवलज्ञान है। इसपर ज्ञानावरण कर्मका आवरण है, इससे प्रगट नहीं है। उस आवरणको हटानेका उपाय, मैं केवलज्ञानमय हूँ अज्ञानमय नहीं हूँ ऐसा भेदविज्ञान है। आत्माकी इसी भावनासे आत्मा शुद्ध होजाता है। जैसे मलीन सुवर्ण अग्निकी पुनः पुनः आंच देनेसे शुद्ध होजाता है। यहां गाथामें अक्षर सुर व्यंजन स्वरूप ज्ञानको कहा है, सो इनका शब्दार्थ विचारनेसे ऐसा अर्थ होता है कि आत्माका स्वाभाविक ज्ञान अक्षर रूप है, अर्थात् अविनाशी है, सुर रूप है, अर्थात् सूर्यवत् प्रकाशित है, व्यंजन रूप है अर्थात् स्पष्ट प्रगट है।

अक्षर अक्षर रूवं, अषय पदं अषय सुद्ध सद्भावं।
अषयं च विमल रूवं, विमल सहावेन निव्वुए जंति॥ ३२६॥

अन्वयार्थ—(अक्षर अक्षर रूवं) ज्ञान कभी नाश नहीं होता है इसलिये आत्माका स्वाभाविक ज्ञान

अक्षर स्वरूप है (अषय पदं अषय सुद्र सदभावं) वही अविनाशी पद है व अविनाशी शुद्ध सत्तारूप है (अषय च विमल रूव) जो अक्षय स्वभाव है वही निर्मल स्वभाव है (विमल सहावेन निव्वुए जंति) जब स्वभाव निर्मल होजाता है तब ही जीव निर्वाणको जाता है।

भावार्थ—आत्माका ज्ञान स्वभाव अक्षररूप है अर्थात् कभी मिट नहीं सक्ता, अविनाशी है। जब ज्ञानावरणका पर्दा हट जाता है तब उसका निर्मल स्वभाव प्रकाशमान होजाता है। इसी निर्मल स्वभावको लिये हुए यह जीव सिद्ध गतिमें सदा काल बना रहता है।

ज्ञानं अक्षर सुरयं, ज्ञानं संसार सरनि मुक्तं च।
अज्ञान मिच्छ सहियं, ज्ञानं आवरन नरय वासम्मि ॥ ३२७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं अक्षर सुरय) ज्ञान अक्षररूप अविनाशी है व ज्ञान ही सूर्यसम स्वपर प्रकाशक है (ज्ञान संसार सरनि मुक्तं च) ज्ञान ही संसारके भ्रमणसे छुड़ानेवाला है (अज्ञान मिच्छ सहियं) परन्तु यदि ज्ञान मिथ्या दर्शन और मिथ्याज्ञान सहित हो तो (ज्ञानं आवरन नरय वासम्मि) ऐसा ज्ञानावरण कर्मका क्षय हो जिससे नरकमें जाकर नारकीके योग्य ही ज्ञान रहे।

भावार्थ—ज्ञान ही अक्षर है व सुर है। अर्थात् ज्ञान अविनाशी है व सूर्यके समान प्रकाशमान है। सम्यग्ज्ञानसे ही संसार भ्रमण कटता है जब कि मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानसे संसार भ्रमण बढ़ता है। ज्ञानावरणका बन्ध विशेष होता है—नरकमें जाकर मूढ़ होना पड़ता है।

सुरं च सुरं च रूवं, सुरं च सुद्ध समय संयुत्तं।
जोजन रंजन सहियं, ज्ञानं आवरन थावरं पत्तं ॥ ३२८ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुरं च रूवं) ज्ञान सुररूप सूर्यके स्वभावके समान वीतराग स्वपर प्रकाशक है (सुरं च सुद्ध समय संयुत्त , यह सूर्यसम ज्ञान शुद्ध आत्मीक भाव सहित है (जोजन रंजन सहिय) जो अपने ज्ञानको लोगोंके रंजायमान करनेमें लगाते, आत्मकल्याणमें नहीं लगाते वे (ज्ञानं आवरन थावरं पत्तं) ऐसा तीव्र ज्ञानावरण कर्मका बन्ध करते हैं जिससे मरकर एकेन्द्रिय स्थावरमें जन्म पाते हैं।

भावार्थ—ज्ञान उसे ही कहते हैं जो यथार्थ जाने फिर उससे यथार्थ ही काम लिया जावे। सम्य-

ज्ञान आत्मा व अनात्माको ठीक जानके आत्माके मननमें झुकता है जिससे केवलज्ञानका प्रकाश हो जाता है। जिसके आत्मतत्वका सच्चा श्रद्धान नहीं होता है वह अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता होकर व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि जानकर उस ज्ञानका उपयोग लोगोंके मन प्रसन्न करनेमें लगाता है, रागवर्द्धक भाषण करता है, शृङ्गारका नाटक ग्रन्थ रचकर विषयोंमें लोगोंका मन अनुरक्त कराता है। जो ज्ञानका खोटा उपयोग करता है उसके ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध होता है जिसके फलसे वह पंचेन्द्रियसे एकेन्द्रिय होजाता है फिर पंचेन्द्रिय होना अति दुर्लभ होजाता है। इसलिये उचित है कि यदि हम विद्वान हैं तो हम अध्यात्म विद्याको जानकर वैराग्यवान बने। उस विद्यासे जनताको मोक्षमार्गपर लगावे तब वह ज्ञान तारक होगा अथवा वही ज्ञान संसारसागरमें डूबानेवाला होगा।

सुरं च सुयं सुलष्यं, अलषं लषियं च सुरं स सहावं।
जे कल रंजन विषयं, ज्ञानं आवरन नरय वियम्मि ॥ ३२९ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुयं सुलष्य) उस स्वाभाविक सूर्यसम ज्ञानका स्वयं ही प्रकाश होता है (स सहावं सुरं च अलषं लषियं) स्वाभाविक ज्ञान अलख आत्माका अनुभव कर सक्ता है (जे कल रंजन विषय) जिनके ज्ञानका विषय शरीरको प्रसन्न रखाना है वे (ज्ञानं आवरन नरय वीयम्मि) ज्ञानावरण कर्मको बांधकर नरकका बीज बोते हैं।

भावार्थ—शुद्ध ज्ञान जो केवलज्ञान है वह प्रत्यक्ष मन वचन कायसे न लखने योग्य आत्माका अनुभव करता है जब कि स्वसंवेदन ज्ञान परोक्ष रूपसे आगमके आधारसे उसी अलख आत्माका अनुभव करता है। जो अपने आत्माकी तरफ ज्ञानको न लगाकर ज्ञानसे शरीरकी ही शोभा वढ़ाने व शरीरको आराम देने व विषय भोगोंके भोगनेमें काम लेते हैं, ज्ञानका दुरुपयोग करते हैं वे ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरक जाते हैं।

सुरं च सुद्धुववन्नं, सुरं च षिपिओ हि सुयं कम्मानं।
मनरंजन गारव सहियं, ज्ञानं आवरन थावरं वीयं ॥ ३३० ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुद्धुववन्न) सूर्य समान ज्ञान जब निर्मल होकर प्रगट होता है (सुरं च षिपिओ

सुयं कम्मानं) तब इस ज्ञानके होते ही स्वयं ही घातीय कर्म क्षय होजाते हैं (मनरंजन गारव सहियं) परन्तु यदि ज्ञानको अपने व दूसरोंके मनके रंजायमान करनेमें व मदके प्रकाशमें लगाया जावे तो (ज्ञानं आवरन थावर वीय) ज्ञानावरण कर्मका वन्ध होकर स्थावरमें जन्म प्राप्त हो।

भावार्थ—जिस [illegible] कर्मोंका नाश होकर परमात्मपद होता है उसी ज्ञानके द्वारा जो श्रृङ्गाररस, काव्य, कविता [illegible] वनाकर विषयवासनाके द्वारा अपना मन व दूसरोंका मन प्रसन्न किया जावे अथवा मानमें भरकर दूसरोंको मूर्ख कहकर तिरस्कार किया जावे, तो इस मान व लोभ कपायकी तीव्रतासे ज्ञानावरणका वन्ध ऐसा होगा कि वोलनेकी शक्तिरहित स्थावर योनिमें जन्म प्राप्त होगा।

सुरं च सुयं षिपनं, सूषम सभाव विमल ज्ञानं च।
पज्जय सहाव रुचियं, ज्ञानं आवरन नरय संजुत्तं ॥ ३३१ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुयं षिपनं) यह सूर्य समान ज्ञान स्वयं क्षायिक भाव है (सूषम सभाव विमल ज्ञान च) यह इंद्रियोंसे अगोचर अतीन्द्रिय सूक्ष्मभाव है तथा निर्मल ज्ञानमय है (पज्जय सहाव रुचियं) यदि वह ज्ञान शरीर पर्यायमें रुचिवान होजावे तो (ज्ञानं आवरन नरय सजुत्त) ज्ञानावरणका वन्ध होकर नरकमें जन्म हो।

भावार्थ—निर्मल ज्ञान अतीन्द्रिय है व क्षायिक है, सर्व ज्ञानावरणके क्षयसे प्रगट होता है। ज्ञानसे ही ज्ञानकी पूर्णता होती है ऐसा होनेपर भी जिस ज्ञानसे केवलज्ञान होता है उसी ज्ञानोपयोगको यदि शरीरके सुखोंमें लगा दिया जावे–शरीरसे मौजशौकमें, खिलाने, पिलाने, हुलाने, साफ करने, कपड़े व गहने पहिनाने, श्रृङ्गार करनेमें व आलसी, सुखिया वनानेमें व इंद्रियोंके भोगमें लगा दिया जावे तौ वही ज्ञान कषाय सहित होकर ऐसा ज्ञानावरणका वन्ध कराता है जिससे नरक धरामें जाकर मूढ़ता प्रगट हो जाती है।

सुरं च सूषम रूवं, सुरं च संसार विषय विरयम्मि।
यदि पज्जय संजुत्तं, ज्ञानं आवरन थावरं पत्तं ॥ ३३२ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सूषम रूवं) ज्ञान सूर्य अति सूक्ष्म है, इंद्रियातीत है, अनुभवगम्य है (सुरं च संसार विषय विरयम्मि) यह सूर्यसम केवलज्ञान व उसका उपाय सम्यग्दर्शनमई आत्मज्ञान संसारके विषय-

भोगोंसे विरक्त है (यदि पज्जय सजुत्तं) यदि यही ज्ञान पर्यायमें रत हो तो (ज्ञान आवरन थावर पत्त) ज्ञानावरणका बन्ध होकर स्थावरोंमें जन्म प्राप्त होवे।

भावार्थ—ज्ञान उसे ही कहते हैं जो स्वाधीनताके सन्मुख हो व पराधीन असार संसारसे विमुख हो, परन्तु जिसका ज्ञान मिथ्या होजाता है वह पर्याय रत होजाता है। मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं गुरु, मैं शिष्य, मैं तपस्वी, मैं भोगी, मैं रागी, मैं परोपकारी, मैं हिंसक, मैं निपुण, मैं कर्ता, मैं भोक्ता, मैं धर्मात्मा ऐसा अहङ्कार भाव उसके ऊपर छाजाता है, जिससे वह तीव्र मानी होजाता है। दूसरोंसे अपनी प्रतिष्ठा कराता है। प्रतिष्ठा न पानेपर क्रोध करता है। ज्ञानका दुरुपयोग करनेसे वह नीच गोत्र व स्थावर नामकर्म बांधकर स्थावरोंमें जन्म पालेता है।

विंजन सहाव ज्ञानं, ज्ञानं जानन्ति अलष लष्येय।
ज्ञानहीन पज्जायं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३३३ ॥

अन्वयार्थ—(विंजन सहाव ज्ञानं) ज्ञानको व्यंजन स्वभाव भी कहते हैं क्योंकि यह अपनेको प्रगट है (ज्ञान जानंति अलष लष्येय) यही ज्ञान उस आत्माको जानता है जो अलक्ष्यसे ही व ज्ञानसे ही अनुभवने योग्य है (ज्ञानहीन पज्जायं) जिसका शरीरमें मोह है, जो ज्ञानहीन है (ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं) वह ज्ञानावरण कर्मको बांधकर दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—व्यंजन भी ज्ञानको ही कहते हैं। यह ज्ञान प्रकाशमान है। सबको ज्ञानका अनुभव है कि मैं जानता हूं। ज्ञानसे ही ज्ञानी आत्माका अनुभव होता है। ऐसा होनेपर भी जो मूर्ख ज्ञानसे अपने शरीरको ही आत्मा मानते हैं—शरीरके ही प्रबन्धमें रात दिन ज्ञानका उपयोग रखते हैं, बुद्धिबलसे असत्य व अन्याय करके दूसरोंको ठगकर धन कमाते हैं व अपनी चतुरताका बड़ा अभिमान करते हैं। वे ज्ञानावरणका तीव्र बन्धकर कुगतिमें ज्ञानहीन होते हैं।

विंजन विज्ञान जनयं, लोकं आलोक लोकनं सुद्धं।
पज्जायं संजुत्तं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३३४ ॥

अन्वयार्थ—(विंजन विज्ञान जनयं) यह ज्ञान ही भेदविज्ञानको उत्पन्न करता है (सुद्ध लोक अलोक लोकनं)

शुद्ध ज्ञान लोक अलोकको एक काल देखता है (पज्जायं संजुत) परन्तु जो ज्ञान पर्यायमें रत होजावे (ज्ञानं आवरन दुगए पत्त) तो ज्ञानावरणका बन्ध होकर दुर्गतिकी प्राप्ति हो।

भावार्थ—शास्त्र द्वारा व गुरु द्वारा ज्ञानका मनन करनेसे ही आत्मा और आत्माका विवेकरूप भेद विज्ञान पैदा होता है और उस भेदविज्ञानसे सर्वज्ञ स्वरूप केवलज्ञान होजाता है ऐसा ज्ञानका महात्म्य है, परन्तु जो मूर्ख ज्ञानी होकर भी शरीरके मोहमें फँस जावे—शरीर व शरीरके सम्बन्धी पुत्र, पुत्री, पौत्र आदिके स्नेहमें इतना मूर्छावान होजावे कि उनके शादी विवाह आदि कार्योंकी रात दिन चिन्ता करे, धनादिके विशेष खर्चके लिये असत्यसे धन कमावे, मान पुष्ट करनेको वहुत अधिक खर्च करे। धर्मके काममें न समय दे न धन दे न तन दे। संसार कार्यमें चतुराई वतावे, धर्मके समझनेमें अपनेको वुद्धिहीन बतावे ऐसा मोही ज्ञानावरण कर्म बांधकर दुर्गति पाता है।

अक्षर सुर विंजनयं, पदं च परम तत्त परमेस्टी।
पद लोयन पज्जायं, ज्ञानं आवरन नरय गइ सहियं ॥३३५॥

अन्वयार्थ—(अक्षर सुर विंजनय पद च परम तत्त परमेस्टी) अक्षर स्वरूप अविनाशी सुर अर्थात् सूर्यसम स्वपर प्रकाशक व्यंजन रूप अर्थात् स्पष्ट प्रगटरूप तथा पदरूप अर्थात् ज्ञान ज्योति स्वरूप सबसे बड़ा तत्व परमेष्ठी परमात्माका है (पद लोयन पज्जाय) जो शरीरधारी इस ज्ञान ज्योतिका लोप करता है (ज्ञानं आवरन नरय गइ सहिय) वह ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरक जाता है।

भावार्थ—अक्षर, सुर, व्यंजन व पद ये सर्व ही शब्दकोषके अनुसार ज्ञानके ही वाचक हैं। शुद्ध ज्ञानके धारक अरहंत व सिद्ध परमेष्ठी हैं। जो कोई मानव इन सच्चे परमात्मामें श्रद्धा न लाकर इनका खण्डन करते हैं व शुद्ध ज्ञानके होनेका निषेध करते हैं, नास्तिक भावमें लीन होकर लोक परलोक नहीं मानते हैं, शरीरके सुखमें रात दिन मग्न हैं, वे ज्ञानका दुरुपयोग करनेसे ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरक-गति पाते हैं।

पदं च अर्थ संयुत्तं, अर्थति अर्थ च ज्ञान सहकारं।
पद विनस्ट पर पिच्छं, ज्ञानं आवरन नरक गय सहियं ॥३३६॥

अन्वयार्थ—(पद च अर्थ सयुत्तं) पद वही है जो अर्थ सहित हो प्रयोजनीय हो, (ज्ञान सहकार अर्थ अर्थति) इस ज्ञानरूपी पदकी सहायतासे आत्म पदार्थका निश्चय किया जाता है (पद विनस्ट पर पिच्छ) परन्तु जो भ्रष्ट ज्ञान है सो परपदार्थमें ही रत है इसलिये (ज्ञानं आवरन नरक गय सहियं) वह ज्ञानावरणका वन्ध कराकर नर्क गतिमें पहुंचा देता है।

भावार्थ—ज्ञानका यथार्थ फल आत्मज्ञान तथा केवलज्ञान है। इस कार्यको न लेकर जो ज्ञानको शरीर पर्यायमें रत करा देते हैं वे आत्माका कुछ भी विचार न करते हुए शरीरको सर्व प्रकारका आराम देनेके लिये बहुत प्रारंभ अन्याय पूर्वक हिंसा पूर्वक करते हैं व धन धान्यादिमें तीव्र ममता रखते हैं। किसी अनाथ, किसी गरीबका धन मारनेमें जिनको ग्लानि नहीं आती है। ऐसे स्वार्थान्ध तीव्र हिंसक भावोंसे नर्क आयु बांधते हैं व साथमें ज्ञानावरण कर्मका भी ऐसा वन्ध करते हैं जो ज्ञान विपाकमें नरक गति लायक रह जाता है।

पदं च शब्द संयुत्तं, पदं च परम भाव संदर्स।
शब्दं विनष्ट रूवं, पर षज्जाय ज्ञान आवरनं ॥ ३३७ ॥

अन्वयार्थ—(शब्द सयुत्तं च पदं) शब्द सहित पद शब्द द्वारा ज्ञानका बोध कराता है (पद च परम भाव सदर्स) यह शुद्ध ज्ञान पद परम भावको देखनेवाला है (रूवं विनष्ट शब्द) जो शब्द आत्मस्वभावके लोपनेवाले हैं (पर पज्जाय) पर पर्यायमें ही रत हैं। (ज्ञान आवरनं) उनसे ज्ञानावरण कर्मका ही बंध होता है।

भावार्थ—शब्द और ज्ञानमें वाच्य वाचक सम्बन्ध है। जिन शब्दोंसे आत्मज्ञानका परमात्माका बोध हो वे ही शब्द हितकारी हैं। जो शब्द आत्मज्ञानके व परमात्म ज्ञानके लोपक हैं उनके कहनेवालोंको ज्ञानावरणका ही बन्ध होता है। नास्तिकताके वचन, विषय सुखमें फंसानेवाले वचन, कुटुम्बमें रति करानेवाले वचन, बहु धन, बहु परिग्रह एकत्र करानेवाले वचन, सप्त व्यसनोंमें फंसानेवाले वचन, मिथ्यात्व दुष्टकारक वचन जीवोंको मोक्षमार्गसे हटाकर संसारमार्गमें लगानेवाले हैं। जो इन वचनोंका प्रयोग करता है उसको ज्ञानावरणका तीव्र वन्ध पडता है।

पद अर्थ सब्द सुभावं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान सुह रूवी ।
रागं जन रंजयनं, ज्ञानं आवरन दुक्ख वीयम्मि ॥ ३३८ ॥

अन्वयार्थ—(सब्द सुभावं पद अर्थ) शब्दका यह स्वभाव है जो पदार्थको या वस्तुको व ज्ञानको बोधन करावे (ज्ञान विज्ञान ज्ञान सुह रूवी) श्रुतरूपी शब्दोंका भंडार आगम ज्ञान विज्ञानका बोध करानेवाला होता है (राग जन रंजयनं) यदि वे ही शब्द रागमें, मानवोंके रंजायमान करनेमें अनुरक्त हों तो उनके प्रयोग-कर्ताको (ज्ञान आवरन दुक्ख वीयम्मि) ज्ञानावरणका बन्ध होगा जिससे दुःखोंकी प्राप्ति होगी ।

भावार्थ—शब्दोंको कहनेका व लिखनेका प्रयोजन यह होना चाहिये जो सम्यग्ज्ञान व तत्वज्ञानकी प्राप्ति होसके । बड़े २ आचार्य आगमकी रचना इसी हेतुसे करते हैं । यदि मोक्षमार्गमें लगानेका हेतु होता है तो शब्दोंकी रचना करनेवालेको व भाषण करनेवालोंको ज्ञानावरणका विशेष क्षयोपशम होता है । यदि कोई संसारमार्गवर्द्धक उपदेश देनेमें व कुमार्ग पोषक, हिंसा पोषक, शृङ्गाररसवर्द्धक ग्रन्थ, काव्य, नाटक आदि रचनेमें शब्दोंका प्रयोग करता है तो वे शब्द खोटे अभिप्रायसे कहे हुए ज्ञानावरण कर्मका बन्ध कराते हैं, जिससे अज्ञानकी वृद्धि होगी ।

पद रहियं अज्ञानं, सुत उत्तं पज्जाय दिट्ठि संदर्स ।
वत तव क्रिय अज्ञानं, ज्ञानं आवरन सरनि संसारे ॥ ३३९ ॥

अन्वयार्थ—(पद रहिय अज्ञान) सम्यग्ज्ञानसे रहित जो कुछ ज्ञान है वह मिथ्याज्ञान है (पज्जाय दिट्ठि सदर्स सुत उत्त) इस मिथ्याज्ञानके आधीन होकर पर्यायपर दृष्टि रखते हुए शास्त्र कहा जाता है (वत तव क्रिय अज्ञान) उस शास्त्राधारसे व्रत, तप, क्रिया भी सब मिथ्याज्ञानरूप होती है । (ज्ञान आवरन सरनि संसारे) उनके पालनेपर भी ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है जो संसारमें भ्रमण कराता है ।

भावार्थ—जो मिथ्या शास्त्रोंकी रचना मिथ्याज्ञानके द्वारा की जाती है उससे जगतका बहुत अकल्याण होता है । साधारण जनता उनपर विश्वास करके मिथ्या व्रत, तप, क्रिया पालती है । जैसे उपवास करके फलाहार, मिठाई खाना, रात्रिको भक्षण करना, व्रत करके भी रागरंग गाजेबाजेमें लगे रहना, नाच खेल तमाशोंमें धर्म मान लेना, कायक्लेश देनेवाला तप करना, पंचाग्नि जलाना, गांजा तम्बाकू पीना,

पशुबलिमें धर्म मानना, द्यूत रमनमें शिकार खेलनेमें धर्म मानना, श्रृङ्गारभावकी भक्ति करना आदि जगतमें अनेक क्रियाएँ मिथ्या शास्त्रोंसे ही चली हैं। जो ऐसे शास्त्रोंको रचते हैं व जो इनपर चलते हैं वे सब ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध करते हैं।

पदं च पद वेदंतो, पद दर्स विज्ञान विंदु दसतो।
पद विज्ञान विहीनो, ज्ञानं आवरन निगोय वासम्मि ॥३४०॥

अन्वयार्थ—(पदं च पद वेदन्तो) सम्यग्ज्ञान ही परमात्माके पदका अनुभव कर सक्ता है (पद दर्स विज्ञान बिन्दु दर्संतो) वह भेदविज्ञान जो आत्माके स्वरूपको भिन्न देखनेवाला है वही सिद्ध पदको देख सक्ता है जो बिन्दुसे उपलक्षित है (पद विज्ञान विहीनो) जिसको परमात्मपदका ज्ञान नहीं है वे (ज्ञानं आवरन निगोय वासम्मि) ज्ञानावरण कर्मको बांधकर निगोद वास पाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति विना न भेद विज्ञान होता है न केवलज्ञान होता है न सिद्ध पदका दर्शन होता है। जो लोग अपने ज्ञानको स्वपदके जाननेमें व परमात्माके जाननेमें नहीं लगाते हैं, ज्ञानकी प्राप्तिमें प्रमाद करते हैं, उनके भावोंमें तीव्र आलस्य रहती है। अज्ञानमें ही रंजायमान रहते हैं। अज्ञानसे मनमाना व्यवहार करते हैं। भावोंकी मलीनतासे वे ज्ञानावरण कर्मका ऐसा तीव्र बन्ध करते हैं कि वे एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिकायमें चले जाते हैं, जहां ज्ञान बहुत ही अल्प होता है।

पदविंदं सर्वज्ञं, पदविंद परम केवलं ज्ञानं।
पदविंदेय अनिष्टं, ज्ञान आवरन दुःख वीयम्मि ॥ ३४१ ॥

अन्वयार्थ—(पदविद सर्वज्ञ) ज्ञान सर्वज्ञको पहचानता है (पदविंद परम केवलं ज्ञानं) ज्ञान पद परम केवल ज्ञानको अनुभव करता है (पद अनिष्ट विदेय) यदि ज्ञानपद आत्माको जो अहितकारी है उसका अनुभव करने लगे तो (ज्ञान आवरन दुःख वीयम्मि) ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होगा जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—ज्ञान ज्योति जो हमारेमें है, यदि वह परमात्मा व उसके केवलज्ञान गुणकी भक्ति सम्पन्न है तब तो आत्माका हित है, परंतु यदि वह ज्ञान ज्योति आत्माके अहितकारी मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योगोंके ही प्रपंचमें आसक्त है तो उससे ज्ञानावरणका बन्ध ही होगा। आत्माका इष्ट

कार्य सम्यक्त, व्रत, चारित्र, तप व ध्यान है। इनको छोड़कर जहां सांसारिक प्रपंचमें तल्लीनता है वहां आत्माके बन्ध ही है।

पद विंदं च सहावं, पदर्थं परम अर्थ स सरूवं।
पर पज्जाय सहावं, ज्ञानं आवरन सरनि संसारे ॥ ३४२ ॥

अन्वयार्थ—(पद सहावं च विंद) ज्ञानपद आत्माके स्वभावका अनुभव करता है (पदर्थं परम अर्थ स सरूव) तथा ज्ञानका प्रयोजन परम पदार्थरूप अपने ही आत्माके स्वस्वरूका मनन है (पर पज्जाय सहावं) परंतु वही ज्ञान यदि शरीररूपी पर पर्यायके स्वभावमें रत होजावे तो (ज्ञानं आवरन सरनि संसारे) ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होकर संसारहीमें भ्रमना होगा।

भावार्थ—ज्ञानकी सफलता निज आत्मीक ज्ञानसे व निज आत्मीक ध्यानसे है। यदि ज्ञान कर्मोदयजनित पर्यायोंको ही आत्मा मान ले और उनमें ही आसक्त होजावे—अज्ञानसे मैं रागी द्वेषी हूं, मैं उच्च हूं, मैं नीच हूं, मैं हितकर्ता हूं, मैं अहितकर्ता हूं ऐसा मान ले—परिग्रहके प्रपंचमें ही फंसा रहे, कभी भूलकर भी अपना ज्ञान न पावे तो इस अज्ञानसे ज्ञानावरण कर्मका ही तीव्र बन्ध होगा जो दीर्घकाल भव भ्रमण कराएगा।

पद विंदं परमानन्दं, दिगंगं सर्वज्ञ सुद्ध स सरूवं।
परमानन्दं पज्जायं, ज्ञानावरन दुक्ख वीयम्मि ॥ ३४३ ॥

अन्वयार्थ—(पद विंद परमानन्दं दिगग सर्वज्ञ सुद्ध स सरूवं) ज्ञानज्योति उस परमानन्दमई दिगम्बर सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूपमें लीन अरहन्त भगवानको जानती है (परमानन्दं पज्जायं) यदि वह ज्ञानज्योति पर पर्यायमें आनन्द मानने लगे तो (ज्ञानावरन दुक्ख वीयम्मि) उसे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध हो जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—ज्ञानका यथार्थ स्वरूप यह है कि वह अरहन्त सर्वज्ञ वीतराग परमात्माको भलेप्रकार जाने, जो शरीर सहित होते भी दिशा ही जिनका वस्त्र है अथवा जो अमूर्तीक हैं, दिशा ही जिनका अङ्ग है। भेदविज्ञानके द्वारा परमात्म—स्वरूपका यथार्थ वोध होता है, यदि वह ज्ञान मिथ्या हो शरीर हीमें आपा मानने लग जावे, परमात्माको श्रद्धामें न लावे। शरीरके ही सुखमें लीन हो। शरीरका ही यत्नशील हो। रागद्वेषके वशीभूत हो तो उसे ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध होगा क्योंकि वह ज्ञान-स्वरूपसे बाहर है।

पद विंदं परमेस्टी, इस्टी संयोग कम्म षिपनं च ।
जे पज्जायं सहियं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३४४ ॥

अन्वयार्थ—(पद विन्दं परमेस्टी) ज्ञान ज्योति परमेष्टीको पहचानती है (इस्टी संयोग कम्म षिपनं च) जब उस ज्ञानमें शुद्धात्माके स्वभावका जो परम इष्ट है अनुभव होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है (जे पज्जायं सहिय) जो शरीररूपी पर्यायमें रत हैं उनको (ज्ञान आवरन दुग्गए पत्त) ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है, वे दुर्गतिमें जाते हैं।

भावार्थ—शुद्धात्माके अनुभवमें उपयोगकी स्थिरता कर्मबन्धनाशक है जबकि शरीरमें रागभाव कर्मबन्धकारक है। पर्यायसे यहां प्रयोजन उन सर्व ही अवस्थाओंसे है जो कर्मोंके उदयके निमित्तसे होती है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत व रागद्वेषादि व गुणस्थानादि ये सर्व शुद्धात्मासे भिन्न अवस्थाएँ हैं इनको अपना मानना यही पर्याय दृष्टि है। इस अज्ञानसे ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध होता है।

पदविंद च उवन्नं, पर्नै परम तत्त परमप्पं ।
इष्टविओय अनिष्टं, ज्ञानं आवरण चउ गए भमनं ॥ ३४५ ॥

अन्वयार्थ—(पदविंदं च उवन्नं , जब भेद विज्ञान ज्योतिका उदय होता है तब (परम तत्त परमप्पं पर्नै) परम तत्व परमात्माके स्वभावमें परिणमन होता है (इष्टविओय अनिष्ट) जब यह उपयोग इष्टवियोग व अनिष्ट संयोग जनित आर्तध्यानमें लय होता है (ज्ञान आवरण चउ गए भमनं) तब ज्ञानावरणका विशेष बंध होकर चारों गतियोंमें जीव भ्रमण करता है।

भावार्थ—भेद विज्ञानके होने पर सम्यग्दृष्टि आत्माके स्वभावमें तल्लीन होता है। जो कोई शरीरासक्त है वह पुत्र, मित्र, स्त्री आदि चेतन व धन मकानादि अचेतन पदार्थोंका वियोग पाने पर परिणा[illegible] बहुत ही क्लेशित करता है। इसीतरह जब किसीको अनिष्ट स्त्री, पुत्र, भ्राता, स्वामी व स्थान[illegible] संयोग होता है और क्लेशका वेदन होता है तब अनिष्ट संयोग जनित आर्तध्यान होता है। यह आर्त[illegible] होना अज्ञान है, इससे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है।

अर्थ च-अर्थ सुद्धं, अर्थति अर्थ सुद्ध परमत्थं।
अर्थ विरय अनर्थ, ज्ञानं आवरन अनृतं दिट्टं ॥ ३४६ ॥

अन्वयार्थ—(अनर्थ च अर्थ सुद्ध) सर्व पदार्थोंमें मुख्य पदार्थ शुद्ध आत्मा है (अर्थति अर्थ सुद्ध परमत्थं) वही रत्नत्रय स्वरूप पदार्थ है, वही शुद्ध परमार्थ है (अर्थ विरय अनर्थ) जो इस परमार्थसे विपरीत है वह इस अनर्थकारी संसारपर्यायमें मगन है (अनृतं दिट्ठ) वह असत्य जगत प्रपंच ही देखा जाता है (ज्ञानं आवरन) इससे ज्ञानावरण कर्मका वन्ध होता है।

भावार्थ—शुद्ध पदार्थ श्री अरहंत व सिद्ध परमात्मा है या अपना ही आत्मा है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ये रत्नत्रय धर्म आत्माका स्वभाव है। जो इस भेदको नहीं पहचानता है और संसारके शरीर, धन, कुटुम्बादि पदार्थोंमें मगन है वह सच्चे ज्ञानसे दूर रहनेके कारण तीव्र ज्ञानावरण कर्मका वन्ध करता है।

अर्थ ति अर्थ सुद्धं, सम सम्पूर्ण ज्ञान समयं च।
ज्ञान विहीन अनर्थ, पज्जय सहकार ज्ञान आवरनं ॥ ३४७ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थ ति अर्थ सुद्धं) रत्नत्रय स्वरूप शुद्ध पदार्थ है (सम संपूर्ण ज्ञान समयं च) वही समतासे पूर्ण ज्ञानमई पदार्थ है (ज्ञान विहीन अनर्थ) जो इस आत्माके यथार्थ ज्ञानसे बाहर है वही अनर्थमें मगन है, मिथ्यादृष्टी अज्ञानी है (पज्जय सहकार ज्ञान आवरन) शरीरमें रागभावके कारण ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध होता है।

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे रत्नत्रय स्वरूप व परम साम्यरूप सत् पदार्थ है। जो इस ज्ञानको नहीं जानता है वह अज्ञानी मिथ्या दर्शनमें रत होनेसे, संसारकी मायामें फँस जानेसे और निरंतर अज्ञानकी भावना करनेसे ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध करता है।

अर्थ अवयास अर्थ, अवयासं सुद्ध विमल ज्ञानस्य।
अवयास रहिय अज्ञानं, आवरन नरय वीयम्मि ॥ ३४८ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थ अवयास अर्थ) जो सर्वव्यापक पदार्थ है वह ज्ञानरूपी पर्याय है (अवय स सुद्ध विमलज्ञानस्य' शुद्ध आवरण रहित ज्ञानमें आकाशके समान शक्ति है। सर्व लोकलोक ि निक ालवर्ती पर्यायोंको जान सक्ता है (अवयास रहिय अज्ञानं) जिसकी ऐसी समझ हो कि ज्ञानमें ऐसा अवकाश नहीं होता है है (ज्ञानं आवरन नरय वीयम्मि) वह ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरकका बीज बोता है।

भावार्थ—आत्माका मुख्य स्वभाव ज्ञान है। उसमें लोकाकाशके सर्व पदार्थोंकी सर्व पर्यायें अवकाश पासक्ती हैं। ऐसे निर्मल ज्ञानका जिसको विश्वास नहीं है, वह अपनेको अल्पज्ञानी ही म न ा है वह विषयभोगोंका करना ही अपना कर्तव्य जानता है। इस अज्ञानसे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होजाता है।

अवयासं सुद्ध सहावं, अवयासं परम भाव उवलद्धं।
अवयास कम्म पिपनं, अवयासं रहिय ज्ञान आवरनं ॥ ३४९ ॥

अन्वयार्थ—(अवयासं सुद्ध सहाव) सर्वको जाननेवाला आत्माका शुद्ध स्वभाव है (परम भाव अवयास उवलद्ध) जिसने ऐसे उत्कृष्ट भावको अर्थात् ज्ञान स्वभावको पहचान लिया है (अवयास कम्म पिपनं) उसका ज्ञान कर्मोंको क्षय करनेवाला है (अवयास रहिय ज्ञान आवरन) जिसको ऐसे व्यापक ज्ञानका श्रद्धान नहीं है वह मिथ्यादृष्टी ज्ञानावरण कर्मको बांधता है।

भावार्थ—यह आत्मा परमात्माके समान शुद्ध ज्ञानका धारी है ऐसा जिसको श्रद्धान है वह सम्यग्दृष्टी है। जिसको ऐसा निश्चय नहीं है वह बहिरात्मा मिथ्याज्ञानी है। वह संसारके ही कार्योंमें तन्मय रहता है। अतएव ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध करता है।

अवयास नंतनंतं, अनन्त चतुस्टय विमल सभावं।
अवयास हीन पुरिया, ज्ञानं आवरन सरनि संसारे ॥ ३५० ॥

अन्वयार्थ—(अवयास नंतनंत) ज्ञान अनन्त है उसमें अनन्त पदार्थोंके जाननेका अवकाश है (अनन्त चतुस्टय विमल सभावं) ऐसा अवकाश जिसके होता है वह अनन्त चतुष्टय रूप विमल स्वभावी परमात्मा है (अवयास हीन पुरिसा) जो पुरुष इस आत्माके व आत्माके निर्मल ज्ञानके श्रद्धानसे शून्य हैं वे मिथ्यादृष्टी (ज्ञानं आवरन सरनि संसारे)-ज्ञानावरण कर्मको बांधकर संसारमें भ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—परमात्माके निर्मल ज्ञानमें ऐसी शक्ति है जो वर्तमान लोकालोक जैसे अनन्त भी लोकालोक हों उन सबको क्रम रहित जान सके। जो ऐसी ज्ञानकी शक्तिको नहीं पहचानते हैं, वे शरीरके रागी इंद्रियजनित ज्ञानमें ही श्रद्धानी हैं। वे इंद्रियोंसे पदार्थोंको जानकर रागद्वेष करते हैं। पुद्गलमें मग्नता होनेसे वे ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध कर लेते हैं।

सदर्थ अप्प सहावं, सहकारेन सदर्थ विज्ञानं।
अनृत अचेत अनर्थ, अज्ञान कस्ट ज्ञान आवरनं ॥ ३५१ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहाव सदर्थ) आत्माका स्वभाव ही सत्य पदार्थ है (सहकारेन सदर्थ विज्ञान) इस श्रद्धानकी सहकारतासे ही सत्य पदार्थका विशेष ज्ञान होता है (अनृत अचेत अनर्थ) जो कोई मिथ्या अज्ञान व असत् पदार्थके रागी हैं (अज्ञान कस्ट ज्ञान आवरनं) उनको अज्ञानका बड़ा दुःख होता है। वे ज्ञानावरण कर्मका तो तीव्र बन्ध करते ही है।

भावार्थ—मैं आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वभावी हूँ यह श्रद्धान व यही मनन ज्ञानको बढ़ाते २ केवलज्ञानमें पहुँचा देता है। परन्तु जिसको यह श्रद्धान नहीं है वह जगतके नाशवंत जूठे अज्ञान स्वरूप स्त्री, पुत्र, मित्र, ग्राम, धनादिमें लीन होते हुए अपने अज्ञानसे बड़ा कष्ट पाते हैं। पदार्थोंके प्राप्त करनेकी चितामें वे धर्म कर्म छोड़ देते हैं। यदि ऐसा उद्यम करते हुए भी धन लाभ नहीं होता है तो बड़ा कष्ट पाते हैं। यदि धनका, स्त्रीका, पुत्रका, पुत्रीका वियोग होजाता है तो महान् कष्ट पाते हैं। अज्ञानसे दुःख बढ़ता है। ज्ञानीके यथार्थ विचार है। वह इष्टवियोगादिमें समताभाव रखता है। ऐसे मोही जीव ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध करते हैं।

सहकार अर्थ स सहावं, सहजोपनीत सहाव सत् अर्थ।
अनेय विभ्रम सहियं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३५२ ॥

अन्वयार्थ—(स सहाव अर्थ सहकार) अपने स्वभावमई पदार्थकी मददसे (सहजोपनीत सहाव सत अर्थ) सहज ही प्रकाशने योग्य स्वभावमई सत् पदार्थ आत्मा झलक जाता है (अनेय विभ्रम सहियं) जिनको आत्माके

स्वरूपमें भ्रम होता है व अनेक शंकाएँ होती हैं, निर्णय नहीं कर पाते, ज्ञानको यथार्थ नहीं कर पाते (ज्ञान आवरन दुग्गए पत्तं) वे ज्ञानावरणसे दुर्गतिके पात्र होते हैं।

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक केवलज्ञान सहज ज्ञान है। आत्माका अनुभव करनेसे वह ज्ञान आपोआप सहजमें प्रगट होजाता है। जिनको आत्माके स्वरूपमें भ्रम है, शङ्का है वे जीवनभर अज्ञानी रहते हुए ज्ञानावरणका तीव्र बंध करते हैं।

सव्दं सदर्थ रूवं, सव्दं षिपिओय कम्म तिविहेन।
सव्दं अलष्य लष्यं, सव्दं अनिस्ट ज्ञान आवरनं ॥ ३५३ ॥

अन्वयार्थ—(सव्दं सदर्थ रूवं) शब्दोंसे सत् पदार्थ आत्माका स्वरूप मालूम होता है (सव्दं षिपिओय कम्म तिविहेन) ॐ ह्रीं आदि शब्दोंकी सहायतासे आत्माका मनन करते हुए मन वचन कायकी गुप्तिसे जब भावोंमें वीतरागता झलकती है तब कर्मोंकी निर्जरा होजाती है (सव्द अलष्य लष्य) शब्दकी सहायतासे ही जो अलक्ष्य आत्मा है उसका लक्ष्य होजाता है (सव्द अनिस्ट ज्ञान आवरनं) यदि सम्यग्ज्ञान वर्द्धक शब्दोंको न बोलकर संसारवर्द्धक अनिष्ट शब्दोंका उच्चारण होगा तो अज्ञानके कारण ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होगा।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा अनुभवगम्य है तथापि शास्त्रोपदेश व गुरूपदेश द्वारा जो योग्य शब्द सुनने व देखनेमें आते हैं उनके अर्थपर मनन करनेसे आत्माके स्वरूपका बोध होजाता है। तथा अनेक मन्त्रोंको जपनेसे व मन्त्रपर ध्यान लगानेसे अभ्यास करते करते धीरे २ वह आत्मा जो मन वचन कायसे अलक्ष्य है सो लक्ष्यमें आजाता है। शब्दोंके द्वारा आगम पढ़नेसे व तत्वका विचार करनेसे जितने अंश वीतरागता होती है, कर्म क्षय होजाते हैं। शब्दोंमें ऐसी शक्ति है जो उनका सदुपयोग किया जावे तो अपना उपकार होता है। परंतु यदि मिथ्या उपदेश सुना जावे व मिथ्या शास्त्र पढे जावें व मिथ्या उपदेश दिया जावे व संसारका पोषण किया जावे तो उन शब्दोंके द्वारा अपने आत्माका बुरा होता है व ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध होता है।

वयनं च कम्म जिनियं, वयनं च सुद्ध सहाव निम्मलयं।
वयनं सास्वय रूवं, अनिस्ट वयनं च ज्ञान आवरनं ॥ ३५४ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं च कम्म जिनियं) जिनेन्द्रके वचनोंका मनन करनेसे कर्मोंको जीता जाता है (वयनं

च सुद्ध सहाव निम्मलयं) वचनोंको जपनेसे व उनके अर्थपर विचार करनेसे शुद्ध स्वभाव निर्मल होजाता है (वयनं सास्वय रूवं) ये जिनवचन प्रवाहकी अपेक्षा शाश्वत-अविनाशी हैं। (अनिस्ट वयन च ज्ञान आवरन) परंतु जो संसारवर्द्धक वचनोंको सुना, पढ़ा जावे व उनके अर्थपर श्रद्धा लाई जावे व तदनुकूल आचरण किया जावे तो ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध होता है।

भावार्थ—जिनेन्द्रकी वाणीके प्रतापसे जो यथार्थ तत्वका अनुभव करते हैं वे कर्मोंका क्षय करते हैं। उनका ज्ञान स्वभाव शुद्ध रूपसे प्रकाशित होता जाता है। यह जिनवाणी सदासे ही जगतमें विद्यमान है इसलिये शाश्वत है। विदेह क्षेत्रोंमें सदा ही तीर्थंकर विहार करते रहते हैं। कुशास्त्रोंके प्रतापसे जीवका बुरा होता है। वह मूढतासे सराग व कषाय पोपनेवाले धर्मको ग्रहण कर लेता है, अज्ञानके कारण तीव्र ज्ञानावरणका वन्ध करता है।

वयनं च ऋतं वयनं, ऋत सहकार अनृतं विरयं।
जे अनृत उवएसं, ज्ञानं आवरन दुक्ख वीयम्मि ॥ ३५५ ॥

अन्वयार्थ—(वयन च ऋतं वयन) वचन वे ही हितरूप हैं जो सत्य शास्त्रोक्त वचन हों। (ऋत सहकार अनृतं विरयं) सत्य वचनोंको जान लेनेसे मिथ्याज्ञान चला जाता है। (जे अनृत उवएस) जो मिथ्या उपदेश करते हैं (ज्ञान आवरन दुक्ख वीयम्मि) वे ज्ञानावरणको बांधकर दुःखोंका बीज बोते हैं।

भावार्थ—श्री सर्वज्ञ वीतराग भगवानकी परम्परासे जो ऋषिगणोंने शास्त्रोंकी रचना की है उनमें यथार्थ आत्म-कल्याणकारक उपदेश है। उस उपदेशको मनन करनेसे मिथ्याज्ञान व मिथ्या श्रद्धान चला जाता है। उनके ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे ज्ञानका प्रकाश बढता है। परन्तु जो मिथ्यात्वका उपदेश करते हैं व जो उनपर श्रद्धान लाते हैं, वे तीव्र ज्ञानावरण कर्मका वन्ध करके दुःखोंका बीज बोते हैं।

ज्ञानं च विमल ज्ञानं, ज्ञानं सहकार कम्म संपिपनं।
पज्जायं न हु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च ॥३५६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च विमल ज्ञान) ज्ञान वही है जो सत्य निर्मल सम्यग्ज्ञान हो (ज्ञान सहकार कम्म सपिपन) सम्यग्ज्ञानके होनेपर आत्मज्ञानका अनुभव होता है जिससे कर्मोंका क्षय होजाता है (पज्जाय नहु पिच्छदि)

तव वह आत्माका यथार्थ ज्ञान कर्मजनित पर्यायपर दृष्टि नहीं रखता है (ज्ञान सहावेन मुक्तिगमनं च) ऐसे आत्मज्ञानकी सहायतासे यह जीव मुक्तिको पाता है।

भावार्थ—भेदविज्ञान केवलज्ञानका कारण है, भेदविज्ञान दोइजका चन्द्रमा है, केवलज्ञान पूर्णमासीका चन्द्रमा है, भेदविज्ञानके प्रतापसे आत्मामें आत्मा ठहरता है तव आत्मानुभव झलकता है। यही यथार्थ धर्मध्यान तथा यही शुक्लध्यान है। इसी ज्ञानपूर्वक ध्यानसे कर्मोंका क्षय होकर यह जीव अर्हंत परमात्मा होता है, फिर सिद्ध परमात्मा होजाता है। ऊपरके कथनोंमें वताया है कि जो आत्मज्ञानसे शून्य हो अन्य शरीरादिमें आपा मानके सत्य धर्मसे वाहर रहते हैं, मिथ्याज्ञानकी आराधना करते हैं, सम्यग्ज्ञानका निरादर करते हैं उनके ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध पड़ता है, जिससे वे नर्क व निगोदमें जाकर मूढ़ व अल्पज्ञानी होजाते हैं। अतएव ज्ञानीको ज्ञानावरणके वन्धके कारणोंसे वचना चाहिये और ज्ञानके प्रकाशके कारणोंको आचरणमें लाना चाहिये। श्री तत्वार्थसारमें अमृतचन्द्र आचार्यने कहा है—

मात्सर्यमन्तरायश्च प्रदोपो निह्नवस्तथा। आसादनोपघातौ च ज्ञानस्योत्सूत्र—चोदितौ ॥ १३—४ ॥
अनादरार्थश्रवणमालस्य शास्त्रविक्रय। वहुश्रुताभिमानेन तथा मिथ्योपदेशनम् ॥ १४ ॥
अकालाधीतिराचार्योपाध्यायप्रत्यनीकता। श्रद्धाभावोऽप्यनभ्यासस्तथा तीर्थोपरोधनम् ॥ १५ ॥
वहुश्रुतावमानश्च ज्ञानाधीतेश्च शाठ्यता। इत्येते ज्ञानरोधस्य भवन्त्यास्रवहेतव ॥ १६ ॥

भावार्थ—नीचे लिखे भावोंसे व कर्मोंसे ज्ञानावरण कर्मका आस्रव तथा वन्ध होता है। (१) ज्ञानियोंसे ईर्षाभाव रखना, (२) ज्ञानके प्रकाशमें विघ्न करना, (३) उत्तम ज्ञानसे भी वुरा मानना, (४) ज्ञान होते हुए भी अपने ज्ञानको छिपाना, (५) ज्ञानियोंका निरादर करके ज्ञान प्रकाशसे रोकना, (६) सत्य ज्ञानका मिथ्या युक्तियोंसे खण्डन करना, (७) अनादरके साथ शास्त्रको सुनना, (८) ज्ञान प्राप्तिमें आलस्य रखना, (९) शास्त्र बेचकर धनशाली होनेकी इच्छा रखना, (१०) वहुत शास्त्रज्ञाता होनेपर अभिमानसे मिथ्या उपदेश करना, (११) अकालमें पढना, जैसे सामायिकके समय, संध्याके समय व अन्य ऋतु खराव होनेपर, तूफानके समय, भूकम्पके समय आदि अकालमें, (१२) आचार्य तथा उपाध्यायसे विरुद्ध चलना व कहना, (१३) शास्त्रमें श्रद्धा नहीं रखना, (१४) शास्त्रका अभ्यास न करना, (१५) धर्मतीर्थका प्रचार रोकना, (१६) वहुत शास्त्रोंके जाननेका घमंड रखना, (१७) ज्ञानके पढ़नेमें मूर्खता इत्यादि।

दर्शनावरण कर्मका बंध व फल।

दर्सन अनन्त दर्सं, दर्सन विन्नान ज्ञान सहकारं।
दर्सन भेय चवक्कं, दंसन दंसेइ अप्प परमप्पं ॥ ३५७ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अनंत दर्सं) दर्शन भी आत्माका गुण है। यह अनन्त पदार्थोंको एकसाथ देखनेवाला है (दर्सन विन्नान ज्ञान सहकारं) यह दर्शनोपयोग ज्ञानका सहकारी है (दर्सन भेय चवक्कं) दर्शनोपयोगके चार भेद हैं (दंसन दसेइ अप्प परमप्पं) दर्शनोपयोग आत्मा तथा परमात्माको समानपने देखता है।

भावार्थ—अब दर्शनोपयोग व दर्शनावरण कर्मका वर्णन करते हैं–ज्ञान जब पदार्थको विशेष जानता है तब दर्शन सामान्यपने जानता है। विषप और आत्माकी चेतन परिणतिकी जब ज्ञानके लिये प्रथम सन्मुखता होती है। जबतक पदार्थका आकार नहीं जाना गया तबतक दर्शनोपयोग होता है। ऐसा ही द्रव्यसंग्रहमें कहा है:—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु मायार। अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समये ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो आकारको न जानकर पदार्थोंका सामान्य ग्रहण हो जिसमें पदार्थका विशेष न जाना जावे उसको आगममें दर्शन कहा है। मतिज्ञानके पहले दर्शन काम करता है। दर्शनोपयोगके चार भेद हैं–

चक्षु दर्शन—जो चक्षु द्वारा सामान्यपने जानता है, चक्षुद्वारा मतिज्ञानके पहले होता है।

अचक्षु दर्शन—जो चक्षुको छोड़कर अन्य चार इन्द्रिय तथा मन द्वारा सामान्यपने ग्रहण करता है। यह चक्षु सिवाय अन्य इंद्रिय व मन द्वारा मतिज्ञानके पहले होता है।

अवधि दर्शन—सम्यग्दृष्टी जीव जब प्रत्यक्ष, भूत व भावी पदार्थोंको जानते हैं तब उस ज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है वह अवधि दर्शन है।

केवल दर्शन—जो केवज्ञानके साथ२ दर्शनावरण कर्मके सर्वथा क्षय होनेपर प्रकाशमान होता है। जैसे–ज्ञान विशेषपने आत्मा व परमात्माको जानता है, दर्शन सामान्यपने उनको ग्रहण करता है।

चषु दरसति सुद्धं, अचष्य दर्सन दर्सयति सुद्धं च ।
अवधे अवहि संजुत्तं, केवल दंसेइ नन्त नन्ताइं ॥ ३५८ ॥

अन्वयार्थ—(चषु सुद्ध दरसति) चक्षुदर्शन सामान्यपने देखता है (अचष्य दर्सन दर्सयति सुद्धं च) अचक्षु दर्शन भी सामान्यपने देखता है (अवधे अवहि सजुत्त) अवधिदर्शन अवधिज्ञानके समय पहले होता है (केवल दंसेइ नंत नंताइ) केवलदर्शन अनन्तानन्त पदार्थोंको देखता है।

भावार्थ—इस गाथामें चार दर्शनका स्वरूप बताया है ।

चषुं च सुद्ध भावं, चषुं च विमल दिस्टि सद्भावं ।
संसार सरनि विरयं, पज्जय रत्तं च चषु आवरनं ॥ ३५९ ॥

अन्वयार्थ—(चषु च सुद्ध भावं) यदि चक्षु शुद्ध भावसे आत्मज्ञानोपयोगी पदार्थोंको देखनेको सन्मुख होता है (चषु च विमल दिस्टि सद्भाव) यदि चक्षु निर्मल आत्माके स्वभावको देखनेमें उद्देश्यवान होती है (संसार सरनि विरय) संसार मार्गसे विरक्तपने जहां चक्षुका उपयोग होता है वही यथार्थ चक्षु दर्शन है (पज्जय रत्तं च चषु आवरनं) यदि शरीर व शरीर सम्बन्धी विषयभोगोंमें चक्षु रागी है तो चक्षु दर्शनावरण कर्मका बन्ध होता है ।

भावार्थ—चक्षु प्राप्त करनेका यही सदुपयोग है कि जिनशास्त्रोंको देखा जावे, जैन महात्माओंका दर्शन किया जावे, व उनही स्थानोंको व वस्तुओंको देखा जावे जिससे मोक्षमार्गकी तरफ प्रवृत्ति होसके। यही यथार्थ चक्षुदर्शनका उपयोग है । जो कोई अज्ञानी ऐसा न करके कुशास्त्रोंके शृंगाररस नाटकोंको, खेल तमाशोंको, कुत्सितभाव करनेवाले स्थानोंको, रागवर्द्धक स्त्रियोंके रूपोंको व पांचों इंद्रियोंके भोग्य पदार्थोंको देखा करता है वह चक्षुका दुरुपयोग करता है । उसके दर्शनावरण कर्मका बन्ध होता है ।

वरन विसेस न दिस्टं, नहु दिट्ठं असुद्ध भाव अनिस्टं ।
इस्ट संजोई दिट्ठं, पर्जय रूवं च चषु आवरनं ॥ ३६० ॥

अन्वयार्थ—(वरन विसेस न दिस्टं) जो चक्षु विशेष रागवर्द्धक वर्णोंको नहीं देखती है (असुद्ध भाव अनिस्टं नहु दिट्ठ) अशुद्ध भावको उत्पन्न करनेवाले अहितकारी पदार्थोंको नहीं देखती है (इस्ट संजोई दिट्ठं आत्माको

अहितकारी पदार्थोंको ही देखती है वही चक्षुदर्शन है (पर्जय रूवं च चषु आवरन) यदि चक्षु शरीरके देखनेमें आसक्त है तो उससे चक्षुदर्शनावरण कर्मका वन्ध होगा।

भावार्थ—चक्षु होनेका सदुपयोग यही है जो उससे रागद्वेष मोहवर्द्धक चेतन अचेतन पदार्थोंको न देखा जावे। यदि नानाप्रकारके सुन्दर बाग, महल, किले आदिको देखा जायगा तो राग बढेगा। यदि वेश्यादिको व स्त्रियोंके मनोहर चित्रोंको व परस्त्रियोंको व उनके वस्त्राभूषणोंको देखा जायगा तो राग बढ़ेगा। यदि चैत्यालयोंको, शास्त्रोंको, साधुओंको, धर्मस्थानोंको, तीर्थोंको देखा जायगा तो वैराग्य बढ़ेगा। सम्यग्दृष्टीको चक्षुका सदुपयोग करना चाहिये। अज्ञानी चक्षुका उपयोग रागवर्द्धक पदार्थोंके देखनेमें करते हैं। शरीरोंको, वस्त्राभूषणोंको, सुन्दर नगरादिको, नाटकादिको देखा करते हैं जिनसे भाव विगड़ जाते हैं। तब वे दर्शनावरण कर्मका वन्ध करते हैं जिसके फलसे चक्षुका ही मिलना कठिन होगा।

चषुं विमल सहावं, दंसन ज्ञानेन अनुमोयं संजुत्तं।
अनुमोय अन्तरियं, चषुं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३६१ ॥

अन्वयार्थ—(चषुं विमल सहावं) चक्षु दर्शनका विमल स्वभाव यह होना चाहिये जो (दसन ज्ञानेन अनुमोयं सजुत्त) दर्शन ज्ञान गुणधारी आत्माके स्वभावमें अनादिका वोध हो, ऐसे शास्त्रोंको व सद्गुरुओंको देखा जावे (अनुमोयं अन्तरिय , यदि आत्मानन्दके भीतर अन्तराय डाला जावे, अर्थात् आत्मज्ञान वर्द्धक शास्त्रोंको व अल्पज्ञानी गुरुओंको न आप देखें न दूसरोंको देखने दें तो (चषु आवरन दुग्गए पत्तं) चक्षु दर्शनावरणका वन्ध होगा और यह जीव कुगति जाकर चक्षु रहित होगा।

भावार्थ—सच्चा चक्षुका काम यही होना चाहिये जो आत्मज्ञानके आनन्द देनेवाले कारणोंका दर्शन किया जावे। जो कोई शास्त्रावलोकनमें, धर्मतीर्थके दर्शनमें, चैत्यालय दर्शनमें, सद्गुरुके दर्शनमें रोकते हैं व उनका नाश करते हैं व विगाड़ते हैं, ऐसे विघ्नकर्ता चक्षु दर्शनावरण कर्मका बन्ध करते हैं।

चषुं च दिस्टि इस्टं, अतिंदी सहकार ज्ञान सहकारं।
दंसन सुद्ध अनुमोयं, दंसन आवरन पज्जाय संदिट्ठं ॥ ३६२ ॥

अन्वयार्थ—(चषुं च दिस्ट इस्ट) चक्षुको आत्म–हितकारी पदार्थोंको ही देखना चाहिये (अतिन्दी सहकार ज्ञान सहकार) जिससे ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जिससे अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद पासके (सुद्ध दंसन अनुमोय) जिससे शुद्ध सम्यग्दर्शनकी अनुमोदना की जावे (दंसन आवरन पज्ज य सदिट्ठ) यदि शरीरके रागवर्द्धक पदार्थोंको देखा जावेगा तो दर्शनावरणका बन्ध होगा।

भावार्थ—चक्षु होनेका यही फल है जो अध्यात्म ग्रन्थोंका अवलोकन किया जावे जिससे आत्मानन्दका लाभ हो। शरीरमें राग बढानेवाले शास्त्रोंको व पदार्थोंको देखना चक्षु दर्शनावरणके बन्धका कारण है।

दंसेई मोष मग्गं, मल रहिओ सुद्ध दंसनं विमलं।
असत्य असरन तिक्तं, दंसन सहकार कम्म विलयंति ॥ ३६३ ॥

अन्वयार्थ—(मोषमग्गं दसेइ) चक्षु दर्शनसे मोक्षमार्ग बतानेवाले ग्रन्थोंको देखना चाहिये (मल रहिओ सुद्ध विमल दंसनं) जिससे दोष रहित निर्मल सम्यग्दर्शनका लाभ होसके (असत्य असरन तिक्त , और इस मिथ्या अशरण संसारका त्याग होसके (दंसन सहकार कम्म विलयति) ऐसे दर्शनोपयोगकी मददसे कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—चक्षु दर्शनसे मोक्षमार्ग साधक शास्त्रोंको देखकर अपनी श्रद्धाको, अपने ज्ञानको व अपने चारित्रको निर्मल करना चाहिये। आत्मध्यानकी विशेष योग्यता बढानी चाहिये जिससे कर्मोंका क्षय हो। शास्त्रोंके देखनेसे भी उपयोग रमनेसे भी तप होता है और कर्म झड़ते हैं।

अचष्यं दंसन उत्तं, सव्द सहकार ज्ञान विज्ञानं।
कम्म मल सुयं च षिपनं, अचषु दर्सन दर्सए सुद्धं ॥ ३६४ ॥

अन्वयार्थ—(अचष्य दंसन उत्त) अब अचक्षु दर्शनको कहते हैं (सव्द सहकार ज्ञान विज्ञानं) शब्दोंकी से भेद विज्ञानको प्राप्त करना योग्य है (कम्म मल सुय च षिपनं) आत्मानुभव होते ही कम मल स्वयं लगता है (अचषु दर्सन दर्सए सुद्धं) अचक्षु दर्शन सामान्यपने देखता है।

वार्थ—अचक्षु दर्शन चक्षुको छोड़कर अन्य इंद्रिय व मन द्वारा सामान्यपने देखता है। जैसे शब्दको रते हुए पहले अचक्षुदर्शन होगा पीछे शब्दका मतिज्ञान होगा, फिर शब्द द्वारा श्रुतज्ञान होगा

अतएव जिन शास्त्रोंके ज्ञानसे भेदविज्ञानका लाभ होता है उन शास्त्रोंके देखनेमें यह अचक्षु दर्शन सहकारी है। भेदविज्ञानसे आत्मानुभव होता है, आत्मानुभवसे कर्मोंका क्षय होता है। ऐसा यह अचक्षुदर्शन यदि सदुपयोगमें लाया जावे तो परम उपकार करता है।

दंसन लोयालोयं, दंसन दंसेइ मुक्ति सहकारं।
पज्जायं पर रत्तं, दंसन आवरन सरनि संसारे ॥ ३६५ ॥

अन्वयार्थ—(दसन लोयालोयं) दर्शन लोक अलोकको देख सक्ता है (दसन दसेइ मुक्ति सहकार) अचक्षुदर्शन मुक्ति प्राप्तिमें सहकारी शास्त्रोंको देख सक्ता है तव ही यह सफल है (प' पज्जायं रत्तं) यदि वह दर्शन शरीरादि व रागादि पर पर्यायमें अनुरक्त हो (दंसन आवरन समारे सरनि) तो दर्शनावरण कर्मका बंध होकर संसारमें भ्रमना होगा।

भावार्थ—केवलदर्शन यद्यपि सर्वदर्शी है तथापि अचक्षुदर्शन भी मोक्षमार्गका सहकारी है। यदि जिनवाणीको व गुरुके उपदेशको सुननेमें अचक्षुदर्शनको लगाया जावे तो यह आत्माका परम उपकारक है परन्तु यदि रागवर्द्धक विकथा, नाटक, खेल, तमाशोंमें इसे लगाया जावे, चारों इंद्रियोंके भोगोंमें व मनके असद्विचारोंमें इसे परणमाया जावे तो अशुभ भावनाके फलसे दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा जिससे कर्णद्वारा या घ्राण द्वारा या रसना द्वारा दर्शनकी शक्तिसे विहीन एकेंद्रिय, द्वेन्द्रियादिमें उत्पन्न होना होगा।

दंसन अनन्त रूवं, दंसन दिट्ठी च कम्म पिपिऊनं।
यदि पज्जय अनुरत्तं, दंसन आवरन बेंदिया पत्तं ॥ ३६६ ॥

अन्वयार्थ—(दसन अनन्त रूव) यद्यपि केवलदर्शन अनन्त पदार्थोंको देखनेवाला है तथापि (दसन दिट्ठी च कम्म पिपिऊन) अचक्षुदर्शनके द्वारा व शास्त्रोंके सुनने व तत्व मनन करनेसे कर्मोंका क्षय होता है (यदि पज्जय अनुरत्त) परन्तु यदि शरीरादि पर्यायमें लीन किया जाय तो (दंसन आवरन बेंदिया पत्त) दर्शनावरण कर्म बंध जायगा जिससे द्वेन्द्रियमें जन्म होगा।

भावार्थ—यदि कोई अचक्षुदर्शनका सदुपयोग मोक्षमार्गके सहकारी कार्योंमें करे तो कर्मोंकी निर्जरामें यह सहकारी होगा, स्पर्शइंद्रिय द्वारा धर्मस्थानोंकी यात्रा करे, भक्ति करे, दंडवत् प्रणाम करे, कुशीलके

कारणोंको न स्पर्शे। रसनाइंद्रिय द्वारा शुद्ध भोजन राग रहित भक्षण करे। घ्राणइंद्रिय द्वारा पदार्थकी परीक्षा करे, रागभावमें न लीन हो। कर्ण इंद्रिय द्वारा तत्वोपदेश सुने, मनसे तत्वका मनन करे तो यह अचक्षु-दर्शन मोक्षमार्गमें सहकारी होजायगा, परन्तु यदि अन्याययुक्त कुशीलके स्पर्शमें, अभक्षके भक्षणमें, रागवर्द्धक पदार्थोंके सूंघनेमें, रागवर्द्धक कुत्सित शब्दोंके सुननेमें, अपध्यानमें अचक्षुदर्शनको उपयुक्त किया जायगा तो दर्शनावरण कर्मका ऐसा बंध पड़ जायगा कि यह प्राणी परभवमें मन रहित, कर्ण रहित, चक्षु रहित, घ्राण रहित द्वेन्द्रिय पर्यायमें लट केंचुआ आदि पैदा होजायगा।

दंसेई तिहुवनग्गं, दंसन ज्ञानं च अनुमोय संजुत्तं।
यदि पज्जाय सुभावं, दंसन आवरन सरनि संसारे ॥ ३६७ ॥

अन्वयार्थ—(दंसेई तिहुवनग्गं दमन ज्ञानं च अनुमोय संजुत्तं) केवलदर्शन तीन लोकके अग्रभागमें विराजित अनंतदर्शन, अनन्तज्ञान व परमानन्द सहित श्री सिद्ध भगवानको सामान्यपने देखता है (यदि पज्जाय सुभावं) यदि दर्शनोपयोग शरीरकी ओर रागी हो तो (दंसन आवरन सरनि संसारे) दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा जिससे संसारमें भ्रमण होगा।

भावार्थ—यदि दर्शनोपयोग श्री सिद्ध भगवानको केवलदर्शनसे या अचक्षुदर्शनसे जान रहा है तो आत्माका परम हित है। परन्तु यदि दर्शनोपयोग इन्द्रिय भोग्य पदार्थोंके भीतर राग सहित उपयुक्त हो, जिससे सांसारिक भाव बढे तो संसारमें मग्नताके अभिप्रायसे प्राणीके दर्शनावरण कर्मका बंध होगा।

दंसन षिपनिक रूवं, दंसन सहकार कम्म विलयंति।
यदि पज्जाये रत्तं, दंसन आवरन सरनि संसारे ॥ ३६८ ॥

अन्वयार्थ—(दसन षिपनिक रूवं) दर्शन क्षायिक भाव रूप है अर्थात् केवलदर्शन दर्शनावरणके सर्वथा क्षयसे प्रगट होता है (दंसन सहकार कम्म विलयति) इसकी सहायतासे शेष घातीय कर्म क्षय होजाता है। (यदि पज्जाए रत्त) यदि शरीर पर्यायमें राग सहित वर्तन करे तो (दंसन आवरन सरनि संसारे) दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा जो भ्रमण कराएगा।

भावार्थ—केवलदर्शन क्षायिकभाव आत्माको पूर्ण शुद्ध कर देता है वही अशुद्ध व क्षयोपशम रूप

दर्शन यदि इंद्रिय सम्बन्धी पदार्थोंके देखने व जाननेमें राग सहित उपयुक्त होगा तो दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा।

दंसन विमल सहावं, ज्ञान विज्ञान दंसनं सुद्धं।
संसरनि भाव सहकारं, दंसन आवरन दुक्ख संतत्तं ॥३६९॥

अन्वयार्थ—(दंसन विमल सहावं) निर्मल वीतराग स्वभाव दर्शनोपयोग (सुद्धं ज्ञान विज्ञान दंसनं) शब्द ज्ञानके धारी आत्माका दर्शन करता है (संसरनि भाव सहकारं) परन्तु जो दर्शनोपयोग संसारके भावोंमें अनुरक्त होता है (दंसन आवरन दुक्ख संतत्तं) वह दर्शनावरण कर्मका बन्ध करता है जिसके फलसे यह जीव दुःखोंसे संतप्त होता है।

भावार्थ—दर्शनोपयोग जो उपयोग शास्त्रावलोकनमें, शास्त्र श्रवणमें, धर्मकार्यमें किया जाता है तो वह आत्मानुभवके लिये परम्परासे सहकारी होजाता है। इसके विरुद्ध जो इस दर्शनोपयोगको संसार-मार्गमें लगाया जावे, कषाय व विषयके साधनोंके अवलोकनमें लगाया जावे तो इससे दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा व संसारमें कष्ट उठाना पड़ेगा।

दंसन अरूव रूवं, रूवातीतं च निम्मलं विमलं।
यदि कल इस्ट सुभावं, दंसन आवरन नन्त संसारे ॥३७०॥

अन्वयार्थ—(दंसन अरूव रूव) यद्यपि दर्शनोपयोग निराकार स्वभाव है (रूवातीत च निम्मल विमल) तथापि अमूर्तीक कर्म रहित वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभवमें सहकारी है (यदि कल इस्ट सुभाव) यदि वह दर्शनोपयोग शरीरके रागमें लीन हो तो (दंसन आवरन नन्त संसारे) दर्शनावरण कर्मका बन्ध होकर अनन्त संसारमें भ्रमण हो।

भावार्थ—मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान होता है। श्रुतज्ञानसे शुद्ध आत्माका अनुभव होता है। यह मतिज्ञान दर्शनोपयोग पूर्वक होता है। अध्यात्म शास्त्र सुनने व विचारने व मननकी रुचि होते ही इंद्रियोंसे व मनसे काम लिया जाता है तब दर्शनोपयोग प्रथम सहकारी है। परन्तु यदि शरीरके रागपूर्वक इस दर्शनोपयोगको सुन्दर २ रूपोंके देखनेमें, सुन्दर नाटक काव्य सुननेमें, अश्लील गाली व गान सुन-

नेमें, परस्त्रियोंके स्पर्शमें, मांस मदिरा भक्षण करनेमें, अतर फुलेल सूँघनेमें आदि शरीर सम्बन्धी विष-
योंमें लीन किया जावे तो ऐसा दर्शनावरण कर्मका वन्ध हो जिससे यह जीव निगोदमें जाकर केवल एक
स्पर्शन इंद्रियसे दर्शनकी अल्पशक्ति रखता हुआ वारवार जन्म लेकर अनन्तकालको पूरा करे।

इस्ट संजोयं सुद्धं, इस्टं षिपिऊन कम्म तिविहेन ।
जो अनिस्ट दिस्ट सहकारं, दंसन आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३७१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं इस्ट संजोयं) यदि दर्शनोपयोगको शुद्ध वीतराग आत्म हितकारी संजोगमें जोड़ा
जावे (इस्ट तिविहेन कम्म षिपिऊन) तो वह इस्ट वीतरागभाव मन, वचन कायकी गुप्तिसे कर्मोंका क्षय कर
देता है (जो अनिस्ट दिस्ट सहकारं) जो रागद्वेष वर्द्धक अनिष्ट दृष्टिमें लगाया जावे तो (दंसन आवरन दुग्गए पत्तं)
दर्शन आवरण कर्मका तीव्र वन्ध होकर दुर्गतिमें जाना पडता है।

भावार्थ—वीतराग वर्द्धक निमित्तोंमें दर्शनोपयोगका उपयोग कर्मकी निर्जराका कारण होजाता है।
परंतु यदि उसी उपयोगको रौद्रध्यान सम्बन्धी हिंसा, असत्य, चोरी व परिग्रहके कार्योंमें या आर्तध्यान
सम्बन्धी इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीडा चितवन व भोगाभिलापके कार्योंमें लगाया जावे तो दर्शना-
वरणका तीव्र वन्ध होकर यह जीव दुर्गतिमें चला जावे। जैसे शस्त्र प्रयोगके लिये शस्त्रोंका वनाना,
देखना, मिथ्या बुलवानेके लिये झूठे गवाहोंसे मिलना, उनकी सेवा करनी, ठगनेके लिये मीठी २ वातें
कहना व परिग्रह सम्बन्धी सामानका लाना, रखना, खरीदना, वारवार देखना, रंजायमान होना रौद्रध्यान
सम्बन्धी कार्योंमें दर्शनज्ञानका उपयोग है। इष्टमित्रोंकी तसवीर देखकर उनके वियोगको याद करना,
अनिष्ट स्थान, भाई, स्वामीको देखते हुए, स्पर्शते हुए, सेवा करते हुए आर्तभाव लाना, शरीरके रोगीको
देखते हुए स्पर्शते हुए हायहाय करना, किसीके सुन्दर हार कुण्डलादिको देखकर अपनेको मिले ऐसी
भावना करनी, ये सब आर्तध्यान सम्बन्धी दर्शन व ज्ञानका उपयोग है। इन वातोंसे दर्शनावरण कर्मका
तीव्र बन्ध होता है। श्री तत्वार्थसारमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

दर्शनस्यान्तरायश्च प्रदोषो निह्नवोऽपि च। मात्सर्यमुपघातश्च तस्यैवासादनं तथा ॥१७–४॥
नयनोत्पाटनं दीर्घस्वापिता शयनं दिवा। नास्तिक्यवासना सम्यग्दृष्टिसंदूषणं तथा ॥ १८ ॥
कुतीर्थाना प्रशंसा च जुगुप्सा च तपस्विनाम्। दर्शनावरणस्यैते भवन्त्यास्रवहेतवः ॥ १९ ॥

भावार्थ—दर्शनावरण कर्मके आस्रव व बन्धके कारण नीचे प्रकार हैं-(१) शास्त्र, चैत्यालय, साधु महात्मा आदिके देखनेमें किसीको विघ्न कर देना, (२) किसीकी दृष्टि अच्छी हो व बुद्धि अच्छी हो व ज्ञान निर्मल हो तौभी उससे द्वेष रखना, (३) स्वयं किसी तीर्थको या मन्दिरको या शास्त्रको देख चुका है तौभी यह कहना कि हमने नहीं देखा है, (४) दूसरेकी दृष्टि उत्तम हो व इंद्रियोंकी शक्ति उत्तम हो या शास्त्रावलोकम अच्छा किया हो तौभी उससे इर्षा रखना अथवा इर्षाभावसे धर्मस्थानोंमें जानेकी व शास्त्र देखनेकी मनाई करना, (५) किसीने किसी धर्मस्थानको व शास्त्रको ठीक २ देखा है वह उसका ठीक ठीक वर्णन करता है तौभी उसके कथनकी मिथ्या बातें बनाकर खण्डन करना, (६) कोई विद्वान अपनी देखी यथार्थ हितकारी बातको कहना चाहता है तौभी उसकी अविनय करना, न कहने देना, (७) किसीकी आंखें उपाड़ डालना—अन्धा कर देना, (८) बहुत अधिक सोना, (९) दिनमें निद्राकी आदत रखना, (१०) नास्तिकपनेकी अन्तरङ्गमें वासना रखनी, (११) सम्यग्दृष्टि धर्मात्माके ज्ञानमें, श्रद्धानमें व आचरणमें मिथ्या दोष लगाना, (१२) अधर्मवर्द्धक खोटे तीर्थोंकी प्रशंसा करना, (१३) तपस्वी धर्मात्मा साधुओंसे ग्लानि करना इत्यादि।

दंसन परनै उत्तं, अनन्त चतुस्टै विमल सहकारं।
आनन्दं परमानन्दं, दंसन धरनं च मुक्ति गमनं च ॥ ३७२ ॥

अन्वयार्थ—(दसन पानै उत्तं) इसतरह दर्शनोपयोगके परिणमनको कहा गया (अनंत चतुष्टै विमल आनंदं परमानन्द सहकारं) यह दर्शनोपयोग अर्हत पदकी प्राप्तिका सहकारी होजाता है जहां अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होते हैं, जो वीतराग हैं व परमानन्दमें मग्न हैं (दंसन धरन च मुक्तिगमनं) दर्शनोपयोगका यथार्थ उपयोग मोक्षके गमनका हेतु है।

भावार्थ—ज्ञान विना चारित्र नहीं, चारित्र विना मोहादि कर्मोंका क्षय नहीं, कर्मोंके क्षय विना अर्हन्त परमात्मा पद नहीं, दर्शनोपयोगकी सहायता विना ज्ञान नहीं, अतएव जो उत्तम उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए अपने चक्षु व अचक्षु दर्शनका उपयोग मोक्षमार्गके सहकारी कारणोंमें करते हैं उनके लिये यह दर्शन ही परमात्मा पदका हेतु होजाता है।

मोहनीय कर्मका बन्ध व फल।

मोह प्रमान उत्तं, अप्पा परमप्प लोक लोकं च।
जदि सरनि भाव मोहं, चौ गई संसार मोहं च ॥ ३७३ ॥

अन्वयार्थ—(मोह प्रमान उत्तं) अब मोहनीयकर्मकी शक्ति कही जाती है (अप्पा परमप्प लोक लोकं च) यदि मोहनीय कर्मका अभाव हो तो यह आत्मा परमात्मा व त्रिलोकदर्शी होजाता है (जदि सरनि भाव मोहं) परंतु संसारके कार्योंमें मोह हो तो (चौ गई संसार मोह च) चार गतिमें भ्रमण करानेवाले मोहका बन्ध होजाता है।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके उदय रहते हुए इस जीवको रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं होती है। दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसे ही क्षायिक सम्यक्त, वीतराग यथाख्यात चारित्र होता है तब ही अन्य ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय कर्मका क्षय होकर परमात्म पद प्रगट होता है। यह मोह ही आत्मीक स्वभावका मुख्य घातक है। संसारका मोह–इन्द्रिय विषयोंका मोह, प्रतिष्ठा पानेका मोह, स्त्री पुत्रादि धनादिका मोह इस जीवको बावला बना देता है जिससे यह मिथ्या कुदेवादिकी भक्ति करता है व तीव्र लोभ, मान, माया व क्रोधके वशीभूत होजाता है, तीव्र काम भावमें मूर्छित होजाता है अतएव मोहनीय कर्मका ऐसा बन्ध करता है कि मिथ्यात्व दशामें यह चारों ही गतियोंमें बारबार भ्रमण किया करता है।

मोहं च परम मोहं, ज्ञानं अनुमोय मोह सहकारं।
यदि कल इस्ट विमोहं, पुग्गल सभाव नंत नंताई ॥ ३७४ ॥

अन्वयार्थ—(मोहं च परम मोह यदि परम तत्वके प्रेममें मोहित हो (मोह सहकार ज्ञानं अनुमोय) तो यह ज्ञानी इस मोहकी सहायतासे शास्त्र ज्ञानमें व गुरु द्वारा प्रगट ज्ञानमें व ज्ञानके साधनोंमें आनन्द मानता है (यदि कल इस्ट विमोहं) परंतु यदि शरीरके रागमें मूढ़ होजावे तो (पुग्गल सभ व नंत नंताई) अनन्तानन्त काल तक पुद्गल स्वभावमें ही रति प्राप्त हो इतना भ्रमण करे।

भावार्थ—मोह भी दो प्रकारका है–एक प्रशस्त, दूसरा अप्रशस्त। प्रशस्त मोह उसे कहते हैं जिससे

शुद्धोपयोगके स्वामी परमात्माके स्वरूपमें मगन हो भक्ति कीजावे, उनकी स्तुति कीजावे, शुद्धोपयोगके निमित्त शास्त्र चर्चामें प्रेम किया जावे, अध्यात्मके ज्ञाता गुरुओंकी वाणी सुननेमें प्रेम किया जावे। इत्यादि। यह मोह मोक्षमार्ग साधक है। अप्रशस्त मोह उसे कहते हैं जिससे विषयभोगोंमें मोह किया जावे। भोग सहकारी स्त्री पुत्रादि मित्रादिमें राग किया जावे। भोज्य पदार्थ भोजन सुगंध पुष्प वस्त्राभूषणसे राग किया जावे। शरीरके संस्कारमें मोह किया जावे। धन संग्रहमें मोह किया जावे। उसके लिये परके ठगनेमें राग किया जावे। महान कष्ट देकर भी स्वार्थ साधनमें मोह किया जावे। अपने स्वार्थ विरोधकको जड़मूलसे नाश करनेमें राग किया जावे। इस अप्रशस्त रागमें तीव्र कषाय व मिथ्यात्व होनेसे मोहनीय कर्मका ऐसा तीव्र बंध पडता है कि वह जीव एकेन्द्रिय निगोद पर्यायमें चला जाता है जहां पुद्गलके ही अज्ञान स्वभावमें अनन्तकाल इस जीवको विताना पडता है। शरीर रूप ही मैं हूं यह बुद्धि अनन्तकाल तक रहा करती है। पर्याय बुद्धिका मिटना अनन्तकालमें भी दुर्लभ होजाता है।

मोहं दंसन सुद्धं, सुद्धं ज्ञानं च कम्म षिपिऊनं।
जदि पज्जय मोह सहावं, पज्जायं लेंति नंत नंताइं॥ ३७५॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध दंसन मोइ) शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रेम (सुद्धं ज्ञानं च कम्म षिपिऊनं) तथा शुद्ध आत्मज्ञानका प्रेम कर्मोंका क्षय करनेवाला है (जदि पज्जय मोंसहाव) परंतु यदि शरीरका मोह हो तो (नंत नंताइ पज्जायं लेंति) अनंतानंत पर्यायोंको यह जीव लेता रहता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग भावका राग यद्यपि शुभ है तथापि उसमें शुद्धभावके भी अंश होते हैं। इसलिये जितने अंश वीतरागता होती है उतने अंश कर्मोंकी निर्जरा होजाती है। परन्तु शरीरका मोह, शरीरके सुखोंका मोह, शरीरके सम्बन्धियोंका मोह प्राणीको अंधा कर देता है जिससे यह मूढ़ हो कभी कभी ऐसे मिथ्यात्वमें फँस जाता है कि अपना भला होनेको वृक्षोंकी पूजा करता है, तीव्र अज्ञानके सेवनसे घोर मोहनीय कर्मको बांधकर एकेन्द्रिय पर्यायमें अनन्तानन्तवार जन्मता मरता है।

मोहं ज्ञानमईओ, इस्टं मोह च विगत संसारे।
जदि कल मोह सहावं, कल सहकार नन्त संसारे॥ ३७६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानमई ओ मोहं) सम्यग्ज्ञानमई मोह या आत्माके अनुभवका राग (इस्टं मोहं च विमल संसारे) हितकारी व प्रशस्त मोह है और संसारसे छुड़ानेवाला है (जदि कल मोह सहावं) यदि शरीरके मोहमें लिप्त होजावे (कल सहकार नन्त संसारे) तो इस शरीरके मोहसे अनन्त संसारमें रुलता है।

भावार्थ—मोक्षसे प्रेम व मोक्षमार्ग जो निश्चय रत्नत्रयमई आत्मानुभूति है उससे प्रेम शुभ राग है जिसका फल संसारका नाश है। परन्तु यदि शरीरका मोह हो आत्माके रागसे विमुख हो और पर्याय-बुद्धि धारकर शरीरके सुखके लिये मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यका सेवन करे, धर्मकी ओरसे बिलकुल बेखबर रहे, तीव्र कृष्णलेश्याके परिणाम रक्खे तो यह जीव ऐसा मोहनीयकर्म बांधता है कि जिससे अनन्त संसारमें रुलना पड़ता है।

मोहं दंसन ज्ञानं, चरनं तव सहाव इस्टं च।
जदि अनिस्ट मोहंधं, अनिस्ट संसार सरनि वीयम्मि ॥ ३७७ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञानं मोहं) सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका राग (चरनं तव सहाव इस्टं च) तथा सम्यक्-चारित्र व सम्यक् तपका राग तथा अपने आत्मस्वभावका प्रेम परम हितकारी है (जदि अनिस्ट मोहंध) यदि आत्माके अहितकारी कार्योंमें मोहांध होजावे तो (अनिस्ट संसार सरनि वीयम्मि) इस दुःखदाई संसार-भ्रमणका बीज बो देवेगा।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप ये चार आराधनाएँ मोक्षमार्ग हैं। जो इनका प्रेम रखता है वह प्रेम मोक्ष लेजानेका कारण है। परन्तु यदि संसारकी वासनाके मोहमें अन्ध हो व्यसनी होजावे, हिंसक होजावे, ठग, चोर, व्यभिचारी होजावे तो ऐसा मोहनीयकर्म बांधता है जो कष्टमई संसारमें दीर्घ कालतक कष्टको दिलाता है।

मोहं परमप्पानं, मोहं कल्यान परंपराइ सुखदं।
जदि मोहं पजायं, पज्जय रत्तं संसार दुक्ख वीयम्मि ॥ ३७८ ॥

अन्वयार्थ—(परमप्पानं मोहं)-परमात्माके स्वरूपसे राग (मोहं कल्यान परम्पराइ सुखदं) ऐसा शुभ राग

परम्परासे कल्याणकारी व सुखदाई है (जदि मोह पज्जयं) यदि शरीरका मोह हो पज्जयरत्त ससार दुक्ख वीयमिम) तो शरीरका रागी संसारके दुःखोंका बीज बोनेवाला होता है।

भावार्थ— परम पद, सिद्धपद, स्वस्वरूपका राग यद्यपि शुभ राग है, परन्तु परम्परा शुद्धोपयोगमई वीतराग भावमें पहुँचानेवाला परम कल्याणकारी व परम सुखदाई राग है। जब कि शरीरका राग मोहांध बनाकर विषय व कषायोंमें उलझाकर हिंसक कार्योंको करानेवाला है जिसका फल तीव्र मोहनीयका बंध है जो संसारके दुःखोंका बीज है।

श्री तत्वार्थसारमें दर्शनमोह व चारित्रमोहके बन्धके कारण बताए हैं—

केवलीश्रुतसघाना धर्मस्य त्रिदिवौकसाम्। अवर्णग्रहणं तथा तीर्थकृत मपि ॥ २७-४ ॥

मार्गसदूषण चैव तथैवोन्मार्गदेशनम्। इति दर्शनमोहस्य भवन्त्यास्रवहेतव ॥ २८ ॥

स्यात्तीव्रपरिणामो य कषायाणा विपाकत। चारित्रमोहनीयस्य स एवास्रवकारणम् ॥ २९ ॥

भावार्थ— दर्शनमोहके आस्रव बन्धके कारण नीचे प्रकार हैं-(१) केवली भगवानकी निंदा करनी, (२) सच्चे शास्त्रकी बुराई करनी, (३) साधु संघ, आर्यिका संघ, श्रावक संघ, श्राविका संघकी झूठी निंदा करनी, (४) जिनधर्मकी निंदा करनी, (५) चार प्रकार देवोंकी झूठी निंदा करनी, (६) उत्तम मार्गमें दोष लगाना, (७) कुमार्गकी पुष्टि करना।

चारित्र मोहके बन्धका कारण कषायोंके उदयसे तीव्र परिणाम करना है। सर्वार्थसिद्धिमें श्री पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि अपनेमें व दूसरोंमें कषाय पैदा करना, तपस्वी जनके चारित्रमें दोष लगाना, संक्लेश भावसे साधु लिंग व व्रत पालना, ये सामान्यसे चारित्र मोहका बन्धका कारण है। साधर्मियोंकी व दीनोंकी हँसी करना, बहुत बकवाद अट्टहास करना हास्य नोकर्म बन्धका कारण है। नानाप्रकार क्रीड़ा करना, व्रत व शीलकी अरुचि रखना रति नोकषायके बन्धका कारण है। दूसरोंमें अरति पैदा कराना, रतिका नाश करना, पापियोंका संसर्ग करना अरतिके बन्धका कारण है। अपनेमें व दूसरोंमें शोक पैदा करना, दूसरोंको शोक होजानेपर अभिनन्दन करना शोकके बन्धका कारण है। आप भयभीत रहना व दूसरोंको भय पैदा करना भयके बन्धका कारण है। उत्तम कामोंसे घृणा भाव जुगुप्साके बंधका

कारण है। झूठ बोलना, मायाचारसे ठगना, दूसरोंके छिद्र देखना तीव्र काम राग रखना स्त्रीवेदनीयके बन्धका कारण है। अल्प क्रोध, उद्धत न होना, स्वदार सन्तोष आदि पुरुषवेदके वन्धका कारण है। तीव्र काम भाव, गुप्त इंद्रियका छेद, परस्त्रीका सेवन नपुंसकवेदके बन्धका कारण है।

आनन्दं परमानन्दं, परमप्पा परम भाव दरसीहिं।
हित मित ज्ञान सहावं, विमल सहावेन निव्वुए जंति ॥३७९॥

अन्वयार्थ—(परमप्पा परम भाव दरसीहिं आनन्दं परमानन्दं) परम भावके देखनेवाले परमात्माके आनन्द स्वभावमें परमानन्द मानना (हित मित ज्ञान सहाव) तथा अपने ज्ञान स्वभावमें प्रेम रखना तथा ज्ञानकी मर्यादाको पहिचानना (विमल सहावेन निव्वुए जंति) ऐसा वीतराग स्वभावके रखनेसे यह जीव निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—संसारके साथ मोह त्याग देनेसे व मोक्षसे राग करनेसे, परमात्माके गुणोंका अभिनन्दन करनेसे, आत्माके ज्ञान स्वभावमें मग्न होनेसे, अनन्तज्ञानको पहचानेसे, आगमकी रुचि रखनेसे यह जीव शीघ्र ही निर्वाणका लाभ करता है।

अंतराय कर्मबन्ध व फल।

ज्ञानं च ज्ञान रूवं, ज्ञान सहावेन दंसनं विमलं।
अनुमोयं यदि रूवं, ज्ञानं अंतरं च नरय वीयम्मि ॥ ३८० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च ज्ञान रूवं) ज्ञानका स्वभाव जानना है (ज्ञान सहावेन विमलं दसन) ज्ञानके स्वभावसे निर्मल आत्माका दर्शन होता है (यदि रूवं अनुमोय) यदि पुद्गलके रूपकी अनुमोदना करे तो (ज्ञान अंतर च नरय वीयम्मि) ज्ञानमें विघ्न होनेसे अन्तराय कर्मका बन्ध हो व नर्कका बीज बोया जावे।

भावार्थ—अब अन्तराय कर्मके बन्धके कारण भावको कहते हैं। ज्ञान होनेका यही सदुपयोग है जो आत्माके स्वभावको पहचाना जावे, उसे निश्चयसे परमात्मा रूप माना जावे, आत्मानुभव होना ही

ज्ञानका सदुपयोग है। जो कोई ज्ञानका उपयोग इस हितकारी कार्यमें न लेवे, किंतु पुद्गलके भीतर रागी होकर ज्ञान साधनमें विघ्न डाले तो अन्तराय कर्मका बन्ध होगा जो नर्कका दुःख मिलेगा।

ज्ञानं ज्ञान सुसमयं, ज्ञानी अनुमोय विमल सहकारं।
जदि पज्जय अनुमोयं, अन्तर आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३८१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं ज्ञान सुसमय) ज्ञानका यही कार्य होना चाहिये जो अपने आत्माका यथार्थ ज्ञान पावे (ज्ञानी विमल सहकारं अनुमोय) ज्ञानी होकर वीतरागताके कारणोंका अभिनन्दन किया जावे (जदि पज्जय अनुमोय) जो कोई ऐसा न करके शरीरका व शरीरके सुखोंका व शरीरके सम्बन्धियोंका अभिनन्दन करे (अंतर आवरन दुग्गए पत्तं) तो वह आत्मशक्तिघातक अन्तराय कर्मोंको बांधे व दुर्गतिको प्राप्त होवै।

भावार्थ—आत्मज्ञानको पाकर मोक्षप्राप्तिके साधनोंका स्वागत करना योग्य है। जो कोई संसार-वर्द्धक, विषयकषाय पोषक, दुराचार प्रेरक कार्योंका स्वागत करके आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्न डालता है वह अन्तराय कर्म बांधता है जो दुर्गतिका देनेवाला है।

ज्ञानं च सुद्ध भावं सुद्धं अवयास नन्त नन्ताइं।
जदि पज्जय सहकारं, पज्जय अनुमोय निगोय वासम्मि ॥३८२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञ न च सुद्ध भावं) ज्ञानका स्वभाव शुद्ध भाव है (सुद्धं अवयास नन्त नन्ताइं) शुद्ध ज्ञानमें अनन्तानन्त भाव झलकते हैं (जदि पज्जय सहकार) यदि शरीरके मोहमें मगनता हो (पज्जय अनुमोय निगोय वासम्मि) तो पर्यायके भीतर प्रसन्न होनेसे निगोदका वास प्राप्त हो।

भावार्थ—जो ज्ञान लोकालोक प्रकाशक है वह ज्ञान शरीरके सुखमें मगन होनेसे, शरीरके लिये दुराचार सेवनेसे, हिंसादि पांच पापोंमें लिप्त होनेसे इतना कम रह जाता है कि यह प्राणी एकेन्द्रियका बहुत अल्पज्ञान रखनेवाला निगोद प्राणी पैदा होजाता है। शरीरासक्तको अन्तराय कर्मका तीव्र बन्ध पडता है।

नन्त चतुस्टै जाने, ज्ञानं अंकुर अनुमोय मिलियं च।
जदि पज्जाय सुभावं, ज्ञानं अन्तर दुक्ख वीयम्मि ॥ ३८३ ॥

अन्वयार्थ—(नन्त चतुरुटै जाने) बुद्धिमानको उचित है कि अनन्तज्ञानादि चतुष्टय स्वरूपको पहचाने (ज्ञान अकुर अनुमोय मिलियं च) आत्मज्ञान रूपी अंकुरको पाकर उसके मिलनेमें बड़ा ही हर्ष माने (जदि पज्जाय सुभावं) यदि शरीरके स्वभावमें लीन हो (ज्ञानं अन्तर दुक्ख वीयम्मि) और ज्ञानमें विघ्न डाले तो वह अन्तराय कर्म बांधे जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—भेदविज्ञानकी प्राप्तिमें आनन्द मानना हमारा कर्तव्य है। यह भावना भानी चाहिये कि परमात्मपद प्रगट हो। जो कोई इस भेदविज्ञान प्राप्तिका उपाय न करके शरीरके सुखोंमें रंजायमान हो-जावे–ऐसा शरीरासक्त हो कि धर्मको न सेवन करे, न धर्मके ज्ञानको पानेका उत्साह करे, विषयभोगोंमें ही आसक्त हो तो वह अज्ञानी अपने आत्मकार्यमें विघ्न करनेसे घोर अन्तराय कर्मका वन्ध करेगा जिसके उदयसे ऐसी पर्याएं पाएगा जहां पंचेन्द्रिय सैनी होना भी कठिन होगा।

पज्जायं पर पिच्छं, पज्जाय नन्त विसेस संदिट्ठं।
पज्जायं विरयन्तो, ज्ञानं अनुमोय कम्म संषिपनं ॥ ३८४ ॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं पर पिच्छ) सर्व ही परकृत पर्यायोंको पर देखना चाहिये (पज्जाय नन्त विसेस संदिट्ठं) पर्यायोंके अनन्त भेद जानना चाहिये (पज्जाय विरयतो) जो पर्यायोंसे विरक्त होते हैं (ज्ञानं अनुमोय कम्म संषिपनं) और आत्मज्ञानमें आनन्द मानते हैं उनहीके कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—कर्मोंके उदयसे निगोदसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत अनेक व्यंजन पर्यायें तथा भावोंकी अपेक्षा अनन्त प्रकारके अज्ञानभाव व असंख्यात प्रकारके कषायभाव होते हैं। ये सर्व ही भाव पर हैं, मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो ज्ञाता दृष्टा वीतराग आनन्दमई अविनाशी एक पदार्थ हूँ। ऐसा जानकर जो सर्व सांसारिक अवस्थाओंसे विरक्त होकर निश्चिन्त होकर निज आत्माके अनुभवमें लीन होते हैं और आत्मानन्दका स्वाद लेते हैं, उनके कर्मोंका विशेष क्षय होता है।

जदि कस्टं च अनेयं, सुतं तवं च नन्तनन्ताइं।
जदि पज्जायं पिच्छदि, ज्ञानंतर दुक्ख वीयम्मि ॥ ३८५ ॥

अन्वयार्थ—(जदि कस्टं च अनेयं नन्तनन्ताइं सुतं तवं च) यदि अनेक कष्ट उठाकर भी अनेक तरहके

शास्त्रोंके अर्थोंको जाने तथा तपस्या भी करे (जदि पज्जायं पिच्छदि) परन्तु यदि शरीरादि अशुद्ध अवस्थाोंका राग बना रहे तो (ज्ञानतर दुक्ख वीयम्मि) ज्ञानमें विघ्न डालनेसे अन्तराय कर्मका बन्ध पड़ेगा जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—यदि कोई बहुत परिश्रम करके ग्यारह अंग नौ पूर्व तक शास्त्रोंको जानले तथा शरीरको क्लेश देता हुआ अनेक प्रकारका तप करे, परन्तु आत्मज्ञानसे शून्य हो, भावना मान प्रतिष्ठाकी हो व आगामी विषयभोगोंके भोगनेकी हो तौ उसके मिथ्याज्ञान होनेसे अन्तराय कर्मका अवश्य बन्ध पड़ेगा।

ज्ञान सहावं जानदि, ज्ञानं विज्ञान मनुवरं जेई।
ज्ञान अनुमोय अन्तरयं, अज्ञानं सहकार नरय वासम्मि ॥३८६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं जानदि) बुद्धिमान आत्माके ज्ञान स्वभावको जानता है (ज्ञानं विज्ञान मनुवरं जेई) तथा भेदविज्ञानमें व आत्माके विचारमें मनको रंजायमान रखता है (ज्ञान अनुमोय अंतरयं) जो कोई इस आत्माके ज्ञानानन्दके लाभमें अंतराय डालता है (अज्ञानं सहकार नरय वासम्मि) अज्ञानके कारण वह नर्कमें जाता है।

भावार्थ—जो संसारासक्त प्राणी है वह अपने कर्तव्यसे विमुख है अतएव वह अपने हितमें अंतराय करनेसे अंतराय कर्मका बंध करता है।

ज्ञान दंसन समं, चरनं चरन्ति मनुव रंजेइ।
जदि पज्जाय सदिट्ठं, नवि ज्ञानं नवि दंसनं चरनं ॥ ३८७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दसन चरन मनुव रजेइ चरंति) ज्ञानी जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका आचरण बडे प्रसन्न मनसे करते हैं (जदि पज्जाय सदिट्ठ) यदि कोई मूर्ख आत्माके स्वभावमें रंजायमान न होकर शरीरके ही रागपर दृष्टि रखता है (नवि ज्ञानं नवि दपन चरनं) वहां न सम्यग्ज्ञान है, न सम्यग्दर्शन है, न सम्यक्चारित्र है।

भावार्थ—जिसकी दृष्टि शुद्ध आत्माके श्रद्धान ज्ञान चारित्रपर है वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हैं। जहां शुद्धात्माका अनुभव नहीं है, न उसका श्रद्धान है, किन्तु कर्मकृत व्यवहार रचनामें ही

ध्यान है, व्यवहार सम्यक्त ज्ञान चारित्र पर ही लक्ष्य है, जीवादि सात तत्वोंके श्रद्धानको ही सम्यक्त जानता है, शुद्धात्माकी अनुभूति व श्रद्धाको सम्यक्त नहीं जानता है वहां वास्तविक रत्नत्रय नहीं है न सच्चा मोक्षमार्ग है।

अज्ञानं भत्तीए, अज्ञानं सहकार ज्ञान विरयन्तो।
तव वय कृत पज्जायं, अज्ञानं सहकार दुक्ख वीयम्मि ॥ ३८८ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानं भत्तीए) जहां मिथ्याज्ञानकी भक्ति है वहां (अज्ञान सहकार ज्ञान विरयन्तो) मिथ्या ज्ञानके कारण सम्यग्ज्ञानका अभाव ही रहता है (तव वय कृत पज्जायं) केवल शरीर सम्बन्धी कायक्लेश, तप व शरीर सम्बन्धी व्रत आदि क्रिया (अज्ञान सहकार दुक्ख वीयम्मि) मिथ्याज्ञानके होनेसे दुक्खोंके बीज हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं जहां शुद्धात्माका यथार्थ श्रद्धान तथा ज्ञान है। इस भावको ध्यानमें रखते हुए शुद्धात्माके अनुभवके हेतुसे मन वचन कायको रोकनेके लिये जो व्यवहार तप व व्यवहार श्रावक व मुनिके व्रत साधन किये जावे तो तो वे मोक्षमार्ग है। परन्तु सम्यक्त रहित केवल पुण्यके हेतुसे व मान प्रतिष्ठाके हेतुसे साधन किये हुए व्रत तप आदि बन्ध हीके कारण हैं। यद्यपि कुछ सातावेदनीयका बन्ध मंद कषायसे होजावे, परन्तु घातीय कर्मोंका बन्ध विशेष पड़ता है। अतएव कर्मका बन्ध धिक होता है जो भविष्यमें दुःखोंका कारण है।

नोकम्मं पिच्छंतो, भाव कम्मं च पिच्छ विरयंतो।
दव्व कम्मं नहु पिच्छदि, ज्ञानंतर अनन्त संसारे ॥ ३८९ ॥

अन्वयार्थ—(नोकम्मं पिच्छतो) जिसकी दृष्टि केवल शरीरके ही ऊपर है (भाव कम्मं च पिच्छ विरयंतो) रागादि भाव कर्मोंकी ओर दृष्टि नहीं है (दव्व कम्मं नहु पिच्छदि) न ज्ञानावरणादि द्रव्योंके बन्धपर दृष्टि है (ज्ञानंतर अनन्त संसारे) वह ज्ञानमें विघ्न डालनेसे अन्तराय कर्मका बन्ध करता है जो अनन्त संसार भ्रमणका कारण है।

भावार्थ—अज्ञानसे अन्तरायका विशेष बन्ध होता है। जो अज्ञानी केवल शरीरको ही आपा मानकर उसीको पहचानता है, उसीके सुखमें तन्मय है उसको यह ज्ञान नहीं है कि मेरे भीतर जो क्रोधादि

कषाय हैं व रागादि विकार हैं व इच्छाएँ हैं, ये भावकर्म हैं, औपाधिक भाव हैं, आत्माके निज स्वभाव नहीं है और न यह श्रद्धा है कि पुण्य व पापकर्मोंका बंध पड़ता है, जो भावोंकी पहचान व परवाह नहीं करता है, कर्मोंके बन्धकी शंका नहीं रखता है। वह मूढ़ अज्ञानी तीव्र अन्तराय कर्मका बन्ध करता है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनं। अनाथदीनकृपणभिक्षादिप्रतिषेधनम् ॥ ५५–४ ॥
वधबन्धनिरोधश्च नासिकाच्छेदकर्तनम्। प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा ॥ ५६ ॥
निरवद्योपकरणपरित्यागो वधोऽङ्गिनाम्। दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा ॥ ५७ ॥
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा। इत्येवमन्तरायस्य भवन्त्यास्रवहेतव ॥ ५८ ॥

भावार्थ—अन्तराय कर्मके बन्धके नीचे लिखे कारण हैं—(१) तपस्वी गुरु चैत्य चैत्यालयकी भक्तिका लोप करना, (२) अनाथ दीन कृपणको भिक्षा व दान देनेको मना करना, (३) किसीको मारना, (४) बन्धनमें डाल देना, (५) अच्छे कामोंसे व जाने आनेसे रोक देना, (६) कषायवश होकर लोभके आधीन होकर देवताके चढ़ाए हुए नैवेद्यको लेलेना, (७) निर्दोष शास्त्रादि धर्मसाधनकी सामग्रीको छोड़ देना, (८) प्राणियोंका वध करना, (९) दानमें अन्तराय करना, (१०) भोजनपानादिमें विघ्न करना, (११) वारवार भोगने योग्य मकान, वस्त्र, भूषण आदिको न भोगने देना, (१२) धार्मिक कार्य करना चाहता हो तो रोकना, (१३) किसीके लाभमें विघ्न करना, (१४) ज्ञानका खण्डन करना व ज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्न करना व आलस्य करना, (१५) धर्मकी उन्नतिमें विघ्न करना आदि।

पज्जायं च अनन्तं, पज्जाय सरूव ज्ञान अनुमोयं।
जदि अन्तरं न दिट्ठं, ज्ञान विमल सहाव सिद्धि संपत्तं ॥३९०॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं च अनंतं) ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञानावरणके मन्द व अधिक क्षयोपशमकी अपेक्षा निगोदसे लेकर बारहवें क्षीण कषाय गुणस्थान पर्यंत अनन्त है (पज्जाय सरूव ज्ञान अनुमोयं) जो पर्याय स्वरूप ज्ञानकी अनुमोदना करता है, एकाकार शुद्ध ज्ञानको नहीं जानता है वह ज्ञानमें अन्तराय डाल रहा है (जदि अंतर न दिट्ठं) यदि यह अन्तराय न देखा जावे और शुद्ध ज्ञानको पहचाना जावे तो (ज्ञान विमल सहाव सिद्धि संपत्तं) वह निर्मल ज्ञान स्वाभाविक आत्माका स्वभाव अवश्य सिद्धि पानेका उपाय है।

भावार्थ—जैसे सूर्यके ऊपर मेघोंके आनेसे जो अल्प प्रकाश होरहा है उसीको कोई सूर्यका असली प्रकाश मानले तो वह अज्ञानी है। ज्ञानी वही है जो मंद प्रकाश होते हुये भी यही जाने कि बादलोंके कारण ऐसा मन्द प्रकाश है। सूर्यका स्वभाव बिलकुल तेजस्वी व धूपको फैलानेका है। इसीतरह ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे नानाप्रकार अल्पज्ञानकी अवस्थाएँ संसारी प्राणियोंमें प्रगट होरही हैं, उन्हींको जीवका स्वभाव मानले और केवलज्ञानमई जीवका स्वभाव न जाने तो वह अज्ञानी है। ज्ञानी वही है जो अल्पज्ञान होते हुए भी यह श्रद्धानमें लावे कि आत्माका स्वभाव शुद्ध सहज निर्मल ज्ञान है, उसीको केवलज्ञान कहते हैं। ऐसा ज्ञाता ज्ञानमें विघ्न नहीं कर रहा है। अतएव वह इसी ज्ञान स्वभावके अनुभव करनेसे एक दिन मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सिद्ध स्वरूप कथन।

इय घाय कम्म मुक्कं, मुक्कं संसार सरनि सल्यं च।
कम्मं तिविहं मुक्कं, विमल सहावेन निव्वुए जंति ॥ ३११ ॥

अन्वयार्थ—(इय घाय कम्म मुक्क) इसतरह जो ऊपर कथित आत्माके स्वभावके चार घातीय कर्मोंसे छूट जाता है (मुक्क संसार सरनि सल्यं च) वह संसारके मार्गसे व सर्व शल्योंसे छूट जाता है (कम्म तिविह मुक्क) फिर वह तीनों प्रकारके कर्मोंसे मुक्त होजाता है (विमल सहावेन निव्वुए जंति) तब वह कर्म रहित स्वभावके प्रगट होनेसे निर्वाणको चला जाता है।

भावार्थ—भेद विज्ञान द्वारा आत्मानुभव करते रहनेसे व पर्यायसे विरक्त होनेसे इस जीवको शुक्लध्यानका लाभ होता है। प्रथम शुक्लध्यानसे मोहनीय कर्मका, दूसरे शुक्लध्यानसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका क्षय होकर यह आत्मा अरहंत होजाता है। आयुके अन्तमें शेष कर्मोंका उन्हींके साथ २ सर्व प्रकारके भाव कर्मोंका और शरीरादि नोकर्मोंका भी छुटकारा होजाता है और वह जीव सीधा निर्वाणपदको पहुँच जाता है।

अज्ञान भाव मुक्कं, मिच्छा विषयं च राग संषिपन ।
षिपियं अनन्त अभावं, ज्ञानं अनुमोय कम्म पिपन च ॥ ३९२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान भाव मुक्क) सिद्ध भगवानमें अज्ञान भावका अभाव है (मिच्छा विषय च राग संषिपन) मिथ्यात्वभाव, इंद्रियोंका विषय राग सर्व क्षय होगया है (अनंत अभावं षिपियं) अनन्त प्रकारके क्षणिक भावोंका होना भी मिट गया है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपन च) उनके ज्ञानानन्द स्वभावसे कर्मोंका पूर्ण क्षय होगया है ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानमें जब स्वभावका प्रकाश है तब जितने भी राग, द्वेष, मोह, अज्ञान आदि कर्मजनित भाव हैं उनका अभाव है ।

परिनामं अज्ञानं, जन रंजन राग सहाव षिपनं च ।
कल रंजन दोष विलयं, मन रंजन गारवं च विलयन्ति ॥ ३९३ ॥

अन्वयार्थ—सिद्धात्माके (अज्ञानं परिनामं जन रंजन राग सहाव षिपन च) अज्ञान भाव मिट गया, जनोंको प्रसन्न करनेका राग स्वभाव जाता रहा (कल रंजन दोष विलयं) शरीरमें राग करनेका दोष भी जाता रहा (मन रंजन गारव च विलय) अपने मनको रंजायमान करनेवाला मद भाव भी जाता रहा ।

भावार्थ—सिद्ध परमात्माके मोहनीयादि आठों कर्म नहीं हैं, इसलिये कर्मजनित सर्वप्रकारके विकार उनमें नहीं हैं, न कोई अज्ञान है, न कोई राग है, न कोई दोष है, न कोई भेद है । वे तो अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य व अनन्त सुख, क्षायिक सम्यक्त, वीतराग चारित्रादि शुद्ध गुणोंके समुद्र हैं ।

एयं अनेय रूवं, रूवातीतं च कम्म मोहंधं ।
उत्पन्नं षिपिऊनं, षिपिओ कम्मा नन्तनन्ताइ ॥ ३९४ ॥

अन्वयार्थ—(एयं अनेय रूवं) सिद्ध परमात्मा एक भी हैं, अनेक रूप भी हैं (रूवातीत च) रूपसे अतीत अमूर्तीक है (कम्म मोहंध उत्पन्न षिपिऊनं) मोहनीय कर्म जो पहले उदय होता रहता था उसे क्षय कर दिया है (षिपिओ कम्मा नन्तनन्ताइ) तथा जो अनन्तानन्त कर्मवर्गणाएँ जीवके साथ थीं सो सब क्षय होगई हैं ।

भावार्थ—सिद्ध भगवान् एक अखण्ड हैं इसलिये एक हैं। वही भिन्न २ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्यादि गुणोंकी अपेक्षा अनेक रूप हैं। वर्णादिसे रहित अमूर्तीक हैं। मोहका सर्वथा अभाव है। वे किसीसे रागद्वेष मोह नहीं करते हैं। तथा उनकी आत्मा बिलकुल शुद्ध होगई है।

षिपिओ नन्त विसेसं, षिपिओ सभाव पुन्न पावं च।
मन सहकारं षिपिनं, मन उववन्न कम्म संषिपनं॥ ३९५॥

अन्वयार्थ—(नन्त विसेस षिपिओ) सिद्ध भगवानमें वे अनन्त भेद नहीं हैं जो कर्मोदयसे संसारी अवस्थामें होते थे (पुन्न पाव च सभाव षिपिओ) उनके न पुण्य पापकर्म हैं न उनके बन्धक शुभ व अशुभ रागादि भाव हैं (मन सहकार षिपिनं) मन भी नहीं है न संकल्प-विकल्प है (मन उववन्न कम्म सषिपन) मनके अनेक विकल्पोंसे व मनकी चिन्ताओंसे जो कर्म बन्धते थे वे भी सब क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके भीतर शुद्ध स्वभाव प्रगट है, वहां सब संसारी पर्यायें नहीं हैं। संपूर्ण कर्मका नाश होगया है, इससे न शुभ न अशुभ उपयोग है। इसलिये नवीन पुण्य व पापका बन्ध नहीं है, जिसके फलसे पुर्नजन्म हो। मन सर्व कल्पनाओंका मूल है वह भी नहीं है, न मन सहकारी कर्म बन्धते वे कुछ नहीं हैं।

षिपिओ समल विसेसं, षिपिओ कषाय विष्य सम्बन्धं।
नन्तानन्त अभावं, षिपिओ पज्जय दिट्ठि अनिस्टं॥ ३९६॥

अन्वयार्थ—(षिपिओ समल विसेस) सब ही प्रकारके मल सिद्धमें नहीं हैं (कषाय विषय सम्बन्धं षिपिओ) वहां वे सम्बन्ध कुछ नहीं हैं जिनके कारण विषयोंकी इच्छा हो व क्रोधादि कषाय पैदा हो (नन्तानन्त अभावं) अनन्तानन्त कर्म वर्गणाओंका संयोग जो पहले था सो अब नहीं रहा (अनिष्ट पज्जय दिट्ठि षिपिओ) अहितकारी पर्यायकी दृष्टि भी क्षय होगई है।

भावार्थ—सिद्धोंमें कोई कर्मका संयोग शेष नहीं रहा जिससे मिथ्या राग हो, विषयोंकी इच्छा हो, कषायका उदय हो। न वहां शरीर है न इंद्रियां हैं जो विषयकषायके उत्पन्न करनेमें बाहरी कारण होती हैं।

षिपिओ ति मूढ भावं, षिपिओ परिनाम अजीव पज्जाया ।
षिपिओ मान निबन्धं, षिपिओ संसार सरनि विलयं च ॥३९७॥

अन्वयार्थ—(ति मूढ भावं षिपिओ) तीन मूढ़ताका भाव सिद्धोंमें नष्ट होगया है (अजीव पज्जाए परिनाम षिपिओ) अजीवकी अपेक्षासे होनेवाले विभाव परिणाम भाव सर्व दूर होगए हैं (मान निबन्धं षिपिओ) मानका सर्व सम्बन्ध नाश होगया है (समार सरनि विलयं च षिपिओ) संसारमार्ग व मोक्षमार्गका विकल्प सब नष्ट होगया है ।

भावार्थ—सिद्धोंमें देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता, पाखण्डमूढ़ता नहीं रही, शरीर सम्बन्धी कोई भी रागादि विकल्पोंकी सम्भावना नहीं है । शरीर ही नहीं है, न किसीसे कोई नाता है, जो अहँकार हो । न वहां संसारका मार्ग, न उसके नाशका उपाय है । वे तो साध्यको सिद्ध कर चुके हैं ।

विमल सहावं दिट्ठं, विमल परिनाम नन्त नन्ताई ।
विमल सहाव सुसमयं, विमलं उत्पन्न मुक्ति गमनं च ॥ ३९८ ॥

अन्वयार्थ—(विमल सहावं दिट्ठं सिद्धोंमें निर्मल स्वभाव दिख गया है (विमल नंत नताई परिनाम) उनमें अनन्त परिणतियां जो समय २ होती हैं वे सब निर्मल होती हैं । (विमल सहव सुसमयं) उनका निर्मल स्वभाव आत्मानुभव रूप है (विमलं उत्पन्न मुक्ति गमनं च) मल रहित भाव झलकनेपर ही सिद्धगति होती है।

भावार्थ—सर्व कर्मोंका संयोग मिटनेपर ही सिद्धगति होती है । वहां आत्माका शुद्ध स्वभाव प्रगट है । अगुरुलघु कारणके आश्रय जो स्वभाव पर्याय षट्गुणी हानि वृद्धिरूप होती हैं वे सब स्वाभाविक सदृश परम निर्मलसे निर्मल होती है । द्रव्यका स्वभाव है कि उसमें उद्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीन भाव हुआ करें । द्रव्य व गुणोंकी अपेक्षा सिद्धोंमें ध्रुवता है, स्वभाव परिणतिके होते रहनेकी अपेक्षा उत्पाद व्ययपना है । जैसे क्षीरसमुद्रका शुद्ध जल है उसमें समय २ कल्लोलें होनेपर भी कोई मलीनता जलमें नहीं होती है न कोई कमी होती है, उसीतरह स्वभाव परिणमन होनेपर भी कोई मलीनता व गुणोंकी कमी नहीं होती है जैसा कि आलापपद्धतिमें कहा है—

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्याया प्रतिक्षणम् । उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

भावार्थ—अनादि अनन्तद्रव्यमें स्वाभाविक पर्याय प्रतिक्षण होती रहती है। जैसे समुद्रमें जलकी तरंगें उठती बैठती हैं। सिद्ध सदा अपने आत्माके स्वादमें मगन है, कोई राग द्वेषका सम्बन्ध नहीं है।

अनुमोय ज्ञान सहियं, ज्ञानं अनुमोय विमल ज्ञानं च।
विमलं च दंसनत्वं, नंत चतुस्टय मुक्ति गमनं च॥ ३९९॥

अन्वयार्थ—(अनुमोय ज्ञान सहियं) सिद्धोंमें आनन्द है तथा ज्ञान है (ज्ञानं अनुमोय विमल ज्ञानं च) ज्ञान-चेतना सम्बन्धी आनन्द होनेसे वह ज्ञान सर्वदा निर्मल है (विमल च दंसनत्व) अनन्तदर्शन गुण भी निर्मल है (नन्त चतुस्टय मुक्ति गमनं च) अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुखकी प्रगटता होनेपर ही मुक्ति होती है।

भावार्थ—सिद्धोंके कर्मचेतना, कर्मफलचेतना नहीं है—एक ज्ञानचेतना ही है, जिससे वे मात्र आत्म-ज्ञानका आनन्द लेते हुए निर्मलज्ञानमें कोई विकार नहीं पाते हैं। वे अनन्तचतुष्टय सहित होनेसे अनन्त बली व अनन्त सुखी हैं।

षिपिओ कम्म सुभावं, मल सुभाव सयल षिपिऊनं।
आवरनं नहु पिच्छइ, विमल सहावेन कम्म संषिपनं॥४००॥

अन्वयार्थ—(कम्म सुभावं षिपिओ) कर्मोंका सर्व स्वभाव सिद्धकी आत्मामें नहीं रहता है (मल सयल सुभाव षिपिऊनं) सर्व ही मलीन भाव क्षय होगए हैं (आवरनं नहु पिच्छइ) कोई आवरण नहीं दिखता है (विमल सहावेन कम्म सषिपनं) निर्मल स्वभावके होनेसे कर्मोंका अभाव होगया है।

भावार्थ—जब सिद्धोंमें कोई कर्मोंका आवरण नहीं है तब उनके उदयसे होनेवाली मलीनता रह ही नहीं सक्ती है। आत्माका स्वभाव रूप होजाना ही सिद्धपना है।

संसार सरनि सहियं, संसारे सरंति परिनाम विरयंति।
ज्ञानावरन न दिट्ठं, ज्ञान सहावेन सरनि मुक्कं च॥ ४०१॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि सहियं संसारे सरन्ति) संसार मार्ग सहित जीव ही संसारमें भ्रमण करते हैं (परिनाम विरयंति) संसार मार्ग सम्बन्धी राग द्वेष मोहके सर्व परिणाम अब सिद्धोंमें नहीं हैं (ज्ञानावरन न

दिट्ठं) न कोई ज्ञानपर ही आवरण देखा जाता है (ज्ञान सहावेन सरनि मुक्कं च) ज्ञान स्वभावके विकाशसे उनके संसार–भ्रमणका मार्ग बन्द होता है, वे अब संसारमें फिर भ्रमण न करेंगे।

भावार्थ—संसारमें भ्रमणका बीज राग द्वेष मोह है। उनहीसे नूतन कर्म बन्धते हैं जिनके उदयसे जीव एक गतिसे दूसरी गतिको जाता है। शुद्ध सिद्ध भगवानमें पूर्ण वीतरागता है, तथा पूर्ण ज्ञान भी है। अज्ञान तथा मोहके अभावसे उनको फिर संसार भ्रमण नहीं करना होगा।

परभावं पर सहियं, पर सहकार नन्त विरयंमि।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन परभाव षिपनं च ॥४०२॥

अन्वयार्थ—(परभावं पर सहियं) जितने भी औपाधिक भाव होते हैं वे पर जो कर्म हैं उनके संयोग सम्बन्ध होनेपर ही होते हैं (पर सहकार नन्त विरयंमि) सो सिद्धोंकी अनन्तानन्त कर्म वर्गणाओंका सर्व संयोग क्षय होगया है (आवरनं नहु पिच्छदि) उनमें कोई भी आवरण नहीं दिखता है (ज्ञान सहावेन परभाव षिपनं च) उनमें शुद्ध ज्ञान स्वभाव प्रगट होगया है। इसलिये अशुद्ध ज्ञानके परिणमन सब क्षय होगये हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें रागद्वेषादि विभाव परिणाम बिलकुल भी नहीं होते हैं। क्योंकि कोई भी कर्मका आवरण शेष नहीं है। जैसे शुद्ध स्फटिकमणिमें जब परका संयोग नहीं है तब लाल पना, हरा पना, पीत पना कैसे झलक सक्ता है, कभी नहीं–स्फटिकका स्वभाव ही झलकेगा। वैसे ही सिद्धोंमें कर्मोंका पटल हट जानेसे कोई भी विभाव भाव नहीं होसक्ता है। वे शुद्ध स्वभावमय अविनाशी हैं। जैसे शुद्ध सुवर्ण कुन्दन होजानेपर फिर वह किट्ट कालिमामई नहीं होता है। वैसे सिद्धात्मा फिर कभी मलीन नहीं होते हैं।

पज्जायं नन्त विसेसं, अनन्त परिनाम पज्जाय विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, दंसन दिट्ठी च कम्म षिपिऊनं ॥४०३॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं नन्त विसेसं) पर्यायोंके अनन्त भेद हैं (अनन्त परिनाम पज्जाय विरयंति) सिद्धोंमें उन सर्व अनन्त पर्यायोंका शून्यपना है जो कर्म संयोगसे होती थीं (आवरनं नहु दिट्ठं) कोई आवरण उनमें नहीं देखा जाता है (दंसन दिट्ठी च कम्म षिपिऊनं) अनन्त दर्शन प्रगट हुआ और कर्मोंका क्षय होगया।

भावार्थ—कर्म संयोग होनेपर ही आत्माको अनन्त शरीर धारण करने पड़े थे तथा भावोंकी अपेक्षा अनन्त प्रकारके अज्ञान भाव होते थे। अब सर्व कर्मोंका आवरण क्षय होगया है इसलिये सिद्धोंमें वे सर्व कर्मजनित पर्यायें अब नहीं होसक्ती हैं। वे अन्य चार गतिमेंसे किसी गतिमें पैदा नहीं होते हैं उनको अनन्त दर्शन स्वभाव प्रकाशमान होगया है, दर्शनावरण कर्म कोई शेष नहीं रहा है।

नोकम्मं उववन्नं, नोकम्म भाव सयल विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं दिट्ठी च कम्म पिपिऊनं ॥ ४०४ ॥

अन्वयार्थ—(नोकम्म उववन्न) संसारी जीवके शरीर पैदा होता है (नोकम्म सयल विरयति) शरीर संबंधी सर्व ही भाव शरीर रहित सिद्ध भगवान्में नहीं हैं (आवरनं नहु दिट्ठ) न कोई वहां आवरण दिखलाई पड़ता है (ज्ञानं दिट्ठी च कम्म पिपिऊनं) जब केवलज्ञानका प्रकाश होगया तब शेष कर्मोंका क्षय होगया।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मामें न शरीर है न कोई शरीर सम्बन्धी क्षुधा, तृपा आदि दोष हैं। वहां कोई कर्मोंका आचरण नहीं है। वे निरावरण निर्मल परमात्मा हैं।

भाव कम्म उववन्नं, भाव परिनाम सयल विरयंति।
आवरनं नहु सहियं, ज्ञान सहावेनं कम्म षिपनं च ॥४०५॥

अन्वयार्थ—(भाव कम्म उववन्न) संसारी जीवोंके मोहकर्मके उदयसे रागादि भाव कर्म उत्पन्न होते हैं (भाव परिनाम सयल विरयति) श्री सिद्ध परमात्मामें वे सर्व ही भावकर्म नहीं हैं (आवरनं नहु सहियं) क्योंकि उनके साथ किसी कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म षिपनं च) ज्ञान स्वभावके प्रकाशसे उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—जैसे सिद्ध भगवानमें कोई स्थूल शरीर नहीं है वैसे ही उनमें मोहजनित रागादि भाव-कर्म भी नहीं हैं, वे सर्व पुद्गलके संयोग रहित शुद्ध आत्मा हैं।

कम्मं सकम्म पिच्छं, कम्म सहावेन सयल विरयंति।
आवरनं न उवन्नं, दंसन दिट्ठी च कम्म विरयंति ॥ ४०६ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म सकम्म पिच्छ) द्रव्यकर्म कर्म सहित संसारी जीवमें देखे जाते हैं (कम्म सहावेन सयल विरयंति) सिद्ध भगवानके सर्व ही कर्मकी प्रकृतियोंका अभाव है (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई आवरण नहीं दिखाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च कम्म विरयंति) उनके अनन्त दर्शनका प्रकाश हुआ फिर सर्व कर्म क्षय होगए।

भावार्थ—जैसे सिद्ध भगवानमें नोकर्म नहीं हैं, भावकर्म नहीं हैं, वैसे उनमें ज्ञानावरणादि कोई भी द्रव्य कर्म नहीं हैं। उनके चौदहवें गुणस्थानके अन्तमें सर्व कर्म क्षय होगये।

आरति रति सहकारं, आरति परिनाम नन्त विरयंति।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च ॥ ४०७॥

अन्वयार्थ—(रति सहकारं आरति) रतिके कारण आर्तध्यानं होजाता है (आरति परिनाम नन्त विरयंति) सिद्ध भगवानके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदरूप आर्तध्यानके परिणामोंमेंसे कोई भी अँश आर्तध्यानका नहीं है (आवरनं नहु पिच्छदि) उनमें कोई आवरण नहीं देखा जाता है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च) उनके ज्ञानानन्द स्वभावके प्रकाश होते ही कर्म क्षय होगये।

भावार्थ—जगतके पदार्थोंमें व शरीरमें रागभाव होनेसे इष्टवियोगके कारण अनिष्ट संयोगके कारण, पीड़ाके कारण व भोगाभिलाषके कारण भावोंमें आर्तध्यान होजाता है। सिद्धोंके जगतके किसी भी पदार्थसे रागद्वेष नहीं है। इससे उनके आर्तध्यानका कोई झलकाव नहीं होसक्ता। वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं। उनके सर्व ही कर्म क्षय होगए हैं।

रौद्रं सहाव जुत्तं, रौद्रं सहकार नन्त विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, दंसन दिट्ठी च कम्म विलयंति ॥ ४०८ ॥

अन्वयार्थ—(रौद्र सहाव जुत्त) संसारी जीव दुष्ट भावोंके साथ होकर रौद्रध्यान करते हैं (रौद्रं सहकार नन्त विरयंति) सिद्ध भगवानमें रौद्रध्यान सम्बन्धी अनन्त प्रकारके विकार नहीं हैं (आवरनं नहु दिट्ठं) कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च कम्म विलयंति) उनके अनन्तदर्शनका प्रकाश होगया है, फिर सर्व कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—संसारी जीवोंके विषय कषाय होते है इसलिये उनमें हिंसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी, परिग्रहानन्दी ये। चार प्रकारके रौद्रध्यान होसक्ते हैं, परन्तु सिद्धोंमें कोई सांसारिक विचार नहीं हैं न उनके उत्पादक कर्मोंका ही सम्बन्ध है।

मिथ्यात भाव सहकारं, मिथ्या परिनाम सत्व विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं अनुमोय कम्म गलियं च ॥ ४०९ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात भाव सहकारं) संसारी जीवोंके मिथ्यात्वभाव होता है (मिथ्या परिनाम सत्व विरयंति) सिद्धोंमें सर्व ही मिथ्यात्व सम्बन्धी भावोंका अभाव है (आवरन नहु दिट्ठं) न कोई आवरण दिखलाई पड़ता है (ज्ञान अनुमोय कम्म गलियं च) ज्ञान स्वभावमें मगन होनेसे उनके सर्व कर्म गल गये हैं।

भावार्थ—संसारी जीवोंके दर्शनमोहका उदय होना है इससे मिथ्यात्वभाव पाया जाता है। सिद्धोंके मोहका सर्वथा अभाव है अतएव क्षायिक सम्यक्त तो है, परन्तु कोई मिथ्याभाव नहीं है। उनके सब ही कर्म नहीं रहें।

अवंभ भाव संजुत्तं, अवंभ परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान महावेन अवंभ विलयं च ॥ ४१० ॥

अन्वयार्थ—(अवंभ भाव संजुत्तं) संसारी जीव अब्रह्म जो कुशीलभाव उसको रखनेवाले हैं (अवंभ परिनाम सयल गलियं च) सिद्धभगवानके सर्व ही अब्रह्मके भाव गल गए हैं (आवरन नहु जुत्तं) वहां कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान महावेन अवंभ विलयं च) उनके ज्ञान स्वभावमई ब्रह्मका प्रकाश होगया है इसलिये अब्रह्मका चिह्न भी नहीं रहा है।

भावार्थ—संसारी जीवोंको वेद नोकषायका उदय पाया जाता है इसलिये कुशील भाव होना संभव है। सिद्धोंके सर्व कषायोंका व अन्य सर्व कर्मोंका अभाव है इसलिये वे अन्तरंग ब्रह्ममें लीन हैं। वहां पूर्ण शीलभाव है। शरीर न होनेसे बाहर कोई कुशीलका विकार नहीं होसक्ता है।

अज्ञानी अनुमोय अज्ञानं, अज्ञान परिनाम नन्त विरयन्ति।
आवरनं नहु उत्तं, ज्ञान अनुमोय कम्म विलयन्ति ॥ ४११ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानी अज्ञान अनुमोय) संसारी अज्ञानी जीव अज्ञानका स्वागत करते हुए अज्ञानी रहते हैं (अज्ञान परिनाम नंत विरयन्ति) सिद्धोंके अनन्त प्रकारके अज्ञानभाव बिलकुल नहीं है। (आ न नहु उत्त) न उनके ज्ञानावरण कर्मका संयोग कहा गया है (ज्ञान अनुमोय कम्म विरयन्ति) ज्ञानानन्द स्वभावमें लय होनेसे उनके कर्म विला गए हैं।

भावार्थ— निगोदसे लेकर केवलज्ञान होनेके पूर्वतक अज्ञानभाव अनन्त प्रकारके होते हैं। जब ज्ञानावरण कर्मका क्षय होगया तब सर्व अज्ञानभाव जाता रहा। सिद्धोंके कोई अज्ञानभाव नहीं है, न कोई कर्मकी सत्ता है।

अनिस्ट सहाव सहियं, अनिस्ट परिनाम नंत गलियं च।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान सहावेन अनिस्ट विलयन्ति ॥ ४१२ ॥

अन्वयार्थ—(अनिस्ट सहाव सहिय) संसारी जीव कर्मबन्धकारक रागद्वेष मोह इन अनिष्ट भावोंको रखनेवाले हैं (अनिस्ट परिनाम नंत गलिय च) सिद्धोंके ऐसे अनन्त परिणाम जो शक्ति अंशकी अपेक्षा होसक्ते हैं सो सर्व गलगये हैं (आवरन नहु जुत्त) न उनके साथ मोहनीय कर्मका आवरण है (ज्ञान सहावेन अनिस्ट विलयन्ति) उनके भीतर ज्ञान स्वभावका-वीतराग भावका प्रकाश है जिससे सर्व ही अनिष्ट भावोंका अभाव है।

भावार्थ— सिद्धोंके भीतर वीतरागता होनेसे व कर्मोंका कोई संयोग न होनेसे कोई भी ऐसे भाव नहीं होसकते हैं जो आत्माके लिये हानिकारक हों। वे कभी भी संसारमें पतन होने योग्य भावोंको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

कम्मस्स कम्म जुत्तं, कम्म सहकार कृत्य नहु पिच्छं।
आवरन भाव तिक्तं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति ॥ ४१३ ॥

अन्वयार्थ—(कम्मस्स कम्म जुत्त) कर्म सहित संसारी आत्माके ही क्रिया पाई जाती है (कम्म सहकार कृत्य नहु पिच्छ) कर्मोंके उदयकी प्रेरणासे कोई भी होनेवाली क्रिया सिद्धोंमें नहीं देखी जाती है (आवरन

भाव तिक्त) वहां कोई भाव ऐसा नहीं होता है जो कर्मोंका आवरण कर सके (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं इसलिये सिद्धोंके सर्व क्रियाएँ विला होगई हैं।

भावार्थ—मन, वचन, काय योगोंका हलन चलन ही क्रिया है। सो यह योगका परिणमन तेरहवें सयोग केवली गुणस्थान तक पाया जाता है। सिद्धोंके न मन है, न वचन है, न काय है, न किसी कर्मका उदय है जिससे आत्माके प्रदेश सकम्प हों, इसलिये कोई भी वैभाविक क्रिया सिद्धोंके नहीं है। वे अशरीर हैं, वे ज्ञानान्दमें मगन हैं, वहां किसी क्रियाकी कल्पना हो ही नहीं सक्ती है। वास्तवमें आत्माका स्वभाव सर्व पर कर्तृव्य व पर भोक्तव्यसे रहित है। जैसे समयसार कलशमें कहा है—

कर्तृ वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत् । अज्ञानादेव कर्ताऽय तदभावादकारक ॥ २–१० ॥

भावार्थ—इस आत्माका स्वभाव न कर्तापनेका है, न भोक्तापनेका है, अज्ञानसे ही यह जीव अपनेको कर्ता मान लेता है। ज्ञानके अभावसे यह कर्ता नहीं रहता है। यह ज्ञानीको अकर्ता ही प्रतिभासता है।

रागं च रागजुत्तं, राग परिनाम नन्त गलियंति ।
आवरनं नहु दिट्ठं, दंसन दिट्ठी च राग गलियं च ॥ ४१४ ॥

अन्वयार्थ—(रागं च रागजुत्तं) रागी संसारी जीवके भीतर ही रागभाव पाया जाता है (राग परिनाम नन्त गलियंति) सिद्धोंके सर्व ही रागके भाव गल गये हैं (आवरन नहु दिट्ठ) उनमें कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च राग गलियं च) वीतरागभाव पूर्ण सम्यग्दर्शनका प्रकाश होनेपर सर्व राग गल गया है।

भावार्थ—सिद्धोंमें मोहकर्म नहीं हैं जिनसे रागभाव पैदा हो। वे पूर्ण वीतराग हैं। क्षायिक सम्यक्तके प्रभावसे उनका मोहकर्म क्षय होगया।

दोषं च भाव युतं, दोषं सहकार नन्त गलियं च ।
आवरन न उपपत्ती, ज्ञान बलेन दोष विलयंति ॥ ४१५ ॥

अन्वयार्थ—(दोषं च भाव युत) द्वेषभाव भी संसारी जीवमें पाया जाता है (दोषं सहकार नन्त गलियं च) सिद्धोंके द्वेषको पैदा करनेवाली अनन्त कर्मवर्गणाएँ गल गई है (आवरन न उपपत्ती) उनके रागी द्वेषी न

होनेके कारण नूतन कर्मका आवरण नहीं होता है (ज्ञान बलेन दोष विलयति) उन सिद्धोंमें ज्ञान स्वभाव प्रगट है इसलिये कोई द्वेषभाव हो नहीं सक्ता।

भावार्थ—सिद्धोंको न क्रोध है, न मान है। ये ही द्वेषभावके उत्पन्न करनेवाले हैं। वे अपने ज्ञानमई वीतराग स्वभावमें लीन हैं। यदि कोई कितनी भी निन्दा करे तौभी सिद्धभगवानमें कोई द्वेषभाव व क्रोधभाव पैदा नहीं होसक्ता है, क्योंकि वे सर्व कर्मरहित शुद्ध हैं।

मनं सुभाव संयुत्तं, मन सहकार परिनयं गलियं।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयन्ति ॥ ४१६ ॥

अन्वयार्थ—(मन सुभाव संयुत्त) संसारी जीवोंके आठ पांखड़ीका कमलाकार मन हृदय-स्थानमें होता है। उसकी सहायतासे संकल्प विकल्प रूप भाव मन काम करता है। सिद्धोंके न शरीर है न मनोवर्गणाका आगमन है जिससे मन बनता है। न मतिज्ञान न श्रुतज्ञान है, जो मन द्वारा जानते हैं। जिनके ज्ञानावरणका उदय है उनको मनकी सहायताकी जरूरत है। सिद्धोंके कोई ज्ञानावरण नहीं है-प्रत्यक्ष ज्ञान है, मनकी जरूरत नहीं (मन सहकार परिनमं गलिय) इसलिये उनके मन सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (आवरनं नहु पिच्छं) उनके ज्ञानपर कोई आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म विलयति) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं, इसलिये उनके सर्व कर्म गल गए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके मात्र शुद्ध आत्मा ही है। आत्माका स्वभाव संकल्प विकल्पसे रहित है, इसलिये सिद्धोंके कोई तर्कवितर्क व मनके विचार नहीं हैं। उनके भाव मन व द्रव्य मनके कारणभूत कोई कर्मका उदय व संयोग नहीं है। मन, वचन, काय जहांतक है वहांतक संसारी है। समयसारकलशमें कहा है—

आत्मस्वभाव परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं। विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥ १०-१ ॥

भावार्थ—आत्माका स्वभाव परभावोंसे भिन्न है, अपने गुणोंसे पूर्ण है, आदि व अन्त रहित है। उसमें कोई संकल्प-विकल्पके जाल नहीं हैं। शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा ऐसा ही प्रगट होता है।

वचनं असुह सहावं, वचनं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु मुत्तं, ज्ञान सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४१७ ॥

अन्वयार्थ—(वचन असुह सहाव) वचन भी वहीं तक निकलते हैं जहांतक आत्मा कर्मोंके संयोगके साथ अशुद्ध है (वचनं परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके वचनोंका परिणमन व वचनोंके कहनेका कारण सब गल गया है (आवरन नह युत्त) कोई आवरण भी नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म गलिय च) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं इससे सर्व कर्म गल गए हैं।

भावार्थ—संसारी जीवोंके ही वचनोंकी प्रवृत्ति पाई जाती है। अरहन्त केवली शरीर सहित हैं, चार अघाति कर्म सहित हैं इससे उनके शरीर नामकर्म, स्वर नामकर्मके उदयसे वचन निकलते हैं। सिद्धोंके कोई भी कर्मोंका संयोग नहीं है, न कोई शरीर है, न भाषा वर्गणाओंको आकर्षण करनेका कारण योग परिस्पंद है, न उनके यह विकल्प ही होता है कि मैं कुछ बोलूं। इसलिये सिद्धोंके द्वारा कोई धर्मोपदेश नहीं होसक्ता है। अमूर्तीक परमात्माके मूर्तीक पुद्गलकी अवस्थारूप वचन कैसे निकल सक्ते हैं? नहीं निकल सक्ते हैं, इसलिये सिद्धोंके भीतर वचनोंका काम नहीं हैं।

क्रुतं च भाव संयुत्तं, क्रुतं च कम्म गलिय सुह असुहं।
आवरन संग तिक्तं, ज्ञान परिनाम कम्म गलियं च ॥४१८॥

अन्वयार्थ—(क्रुत च भाव सयुत्तं) शरीरके द्वारा क्रिया करनेके भावोंको रखनेवाले संसारी जीव होते हैं (क्रुत च कम्म सुह असुहं गलिय) सिद्धोंके क्रिया करानेमें प्रेरक सर्व ही शुभ कर्म व अशुभ कर्म गल गए हैं (आवरन संग तिक्त) सर्व कर्मोंके आवरणका संयोग छूट गया है (ज्ञान परिनाम कम्म गलियं च) वे ज्ञानभावमें मगन हैं इसीसे सर्व कर्म गलगए हैं।

भावार्थ—क्रिया शरीर द्वारा होती है, काय योग द्वारा होती है, मयोग केवलीतक काय योग है, तब ही तक उनका विहार है। सिद्ध भगवानके न शरीर है न आत्माके प्रदेशोंको कम्पित करनेवाला नामकर्मका उदय है। वे निरन्तर ज्ञान स्वभावमें मगन होते हुए आत्मानन्दका स्वाद लेते हैं। उनके कोई भी क्रिया नहीं है, वे निष्क्रिय हैं। यही आत्माका सच्चा स्वभाव है।

कारित सहाव युत्तं, कारित सहाव दोष गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कारितं विलयं ॥ ४१९ ॥

अन्वयार्थ—(कारित सहाव युत्तं) संसारी जीवोंमें मोह व रागद्वेष हैं इससे वे दूसरोंको प्रेरणा करके काम कराया करते हैं (कारित सहाव दोष गलिय च) सिद्धोंमें वे कर्मके दोष ही नहीं हैं जिनसे वे किसीके द्वारा कोई काम कराएँ (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं देखा जाता है (ज्ञान सहावेन कारितं विलयं) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं। जैसे उनके स्वयं क्रिया नहीं है वैसे करानेका भी कोई संबंध नहीं है।

भावार्थ—कोई २ परमात्माको ऐसा मानते हैं कि वही सर्व काम कराता है, उसकी प्रेरणा विना पत्ता तक नहीं हिलता है। यहां सिद्धोंका स्वरूप ऐसा है कि वे अमूर्तीक परमात्मा होनेपर भी किसीसे कुछ करानेका विकल्प नहीं करते हैं, न उनके शरीर है, न मन है, न वचन है, आज्ञा कैसे देवेंगे? न मोह है न रागद्वेष है। वे परम उदासीन हैं। उनको कोई सम्बन्ध जगतके जीवोंके साथ नहीं है।

अनुमय सहाव महियं, अनुमय सहकार भाव गलियं च।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान सहावेन कम्म संगलियं ॥४२०॥

अन्वयार्थ—(अनुमय सहाव सहियं) संसारी जीवोंमें अनुमोदना करनेका स्वभाव होता है (अनुमय सहकार भाव गलिय च) सिद्धोंमें वह भाव ही सब गल गया है जिससे उनके भीतर किसीके अच्छे कार्यकी अनुमोदना हो (आवरन नहु जुत्त) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म संगलियं) उन्होंने अपने ज्ञान स्वभावसे सर्व कर्मोंको गला डाला है।

भावार्थ—किसीकी कार्यकी सराहना वहींतक होती है जहांतक रागभाव है व मन चञ्चल है। यह अनुमोदनाका कार्य प्रमत्तविरत छठे गुणस्थान तक ही होसक्ता है। सातवेंसे लेकर सर्व ही गुणस्थान ध्यानमय हैं, तब शरीर रहित, राग रहित, मन रहित शुद्ध परमात्माके यह अनुमोदनाका भाव कैसे हो सक्ता है? कोई ऐसा मानते हैं कि परमात्मा भक्तोंपर प्रसन्न होता है, सिद्धोंका ऐसा स्वभाव नहीं है। उनमें मोहका संबंध ही नहीं है। न वे प्रसन्न होते है न निन्दा करनेवाले पर असंतुष्ट होते हैं। वे राग द्वेषसे रहित निर्विकार समदर्शी परमात्मा हैं। वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं। इसीसे सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भोगं सहाव सहियं, भोगं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छइ, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४२१ ॥

अन्वयार्थ—(भोगं सहाव सहियं) संसारी जीव भोगनेके स्वभावको रखते हैं भोगं परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके सर्व ही भोगोंके करने योग्य भाव गल गए हैं (आवरनं नहु पिच्छइ) उनमें कोई आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म संषिपन) उनके ज्ञान स्वभाव प्रगट होनेसे कर्म क्षय होगए है।

भावार्थ—भोग पांच इंद्रियोंसे मन द्वारा होते हैं। भोग भोगनेमें रागभावकी, मतिज्ञानकी, श्रुतज्ञानकी आवश्यक्ता है। ये सब संसारी जीवोंमें सम्भव हैं। सिद्धोंके न इंद्रिय है, न मन है, न राग है, न मतिश्रुतज्ञान है। वे आत्मानन्दका स्वाधीनतासे भोग करते हैं। वे पर पदार्थका भोग नहीं करते हैं। कोई २ परमात्माको जगतके सुखोंका भोक्ता मानते हैं। सिद्ध भगवानको इन बातोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। वे भोजनपान नहीं करते हैं, न करनेका सुख ही भोगते हैं।

उवभोग भाव जुत्तं, उवभोग परिनाम सव्व गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४२२ ॥

अन्वयार्थ— उवभोग भाव जुत्त) संसारी जीव उपभोग करनेका भाव रखते हैं (उवभोग परिनाम सव्व गलियं च) सिद्धोंमेंसे उपभोग करनेका सर्व भाव गल गया है (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई आवरन दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म संषिपन) वे ज्ञान स्वभावमें मगन होनेसे कर्मोंका क्षय कर चुके हैं।

भावार्थ—जो एकवार भोगा जासके उसको भोग कहते हैं। जो वारवार भोगा जावे उसे उपभोग कहते हैं। जैसे वस्त्र आभूषण पात्र आदि। ये सर्व उपभोग शरीर सहित संसारी जीवोंमें पाए जाते हैं। सिद्धोंमें न शरीर है न इंद्रियां हैं न मोह कर्म है। इससे वे पर पदार्थका उपभोग नहीं करते हैं। वे निरन्तर अपने ज्ञानानन्दका ही उपभोग करते हैं। उनके सर्व ही कर्म गल गए हैं।

परिनाम असत्य सहियं, असत्य भाव सयल गलियं च।
आवरनं नहु सहियं, ज्ञान सहावेन परिनाम गलियं च ॥ ४२३ ॥

अन्वयार्थ—(परिनाम असत्य सहिय) संसारी जीवोंके अज्ञान व राग द्वेष होनेसे असत्य भाव होते हैं (असत्य भाव सयल गलिय च) सिद्धोंमें पूर्ण ज्ञान वीतरागता होनेसे सर्व ही असत्य भाव नहीं रहे (आवरनं

नहु सहिय) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन परिनम गलियं च) वे अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें लीन हैं, उनके असत्य भाव सब गल गए हैं।

भावार्थ—सिद्ध परमात्माके भीतर असत्य ज्ञानके कारण कोई आवरण नहीं है इसलिये वे सदा सत्य स्वरूपमें लीन हैं। वे पूर्ण सम्यग्ज्ञानी हैं, सर्वदर्शी हैं, परम वीतराग हैं। अल्पज्ञानी व सरागी ही असत्य कह सक्ता है। सिद्धोंमें असत्यका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

मय सहाव संजुत्तं, मय सहकार नन्त गलियं च।
आवरन भाव तिक्तं, ज्ञान सहावेन मद्य विलयंति॥ ४२४॥

अन्वयार्थ—(मय सहाव संजुत्तं) मद स्वभावको रखनेवाले संसारी जीव है (मय सहकार नन्त गलियं च) सिद्धोंके मदको उत्पन्न करनेवाले सर्व कर्म गल गए हैं (आवरन भाव तिक्तं) इनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन मद्य विलयंति) वे ज्ञान स्वभावमें लीन हैं। उनके मदका होना असम्भव है।

भावार्थ—जाति कुल धनादिके आठ प्रकारके मद संसारी जीवोंमें पाए जाते हैं जिनके कषायमई कर्मोंका सम्बन्ध है। सिद्धोंके सर्व कर्म ही गल गए हैं। इसलिये वहां कोई प्रकारका मद या अहंकार नहीं होसक्ता है।

कषायं संयुत्तं, कषाय भाव नन्त गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति॥ ४२५॥

अन्वयार्थ—(कषायं संयुत्तं) संसारी जीव क्रोधादि कषायोंको रखते हैं (कषाय भाव नन्त गलिय च) सिद्धोंके कषाय भावको उत्पन्न करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरनं नहु पिच्छ) उनमें कोई कर्मका आवरन नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) उनके ज्ञान स्वभावमें थिर होनेसे सर्व ही कर्म छूट गए हैं।

भावार्थ—सोलह कषाय और हास्यादि नौ नोकषाय चारित्र मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां हैं। उनहीके उदयसे कषाय भाव होते हैं। सिद्धोंमें आठों ही कर्म नहीं हैं इसलिये न उनमें क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न हास्य है, न रति है, न अरति है, न शोक है, न भय है, न जुगुप्सा है, न स्त्रीवेद है, न पुंवेद है, न नपुंसक वेद है। वे पूर्ण वीतरागी निर्विकारी हैं।

पज्जाय भाव संजुत्तं, पज्जय सहकार नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठी, दंसन दिट्ठी च पज्जाय विलयंति ॥ ४२६ ॥

अन्वयार्थ—(पज्जाय भाव सजुत्तं) संसारी जीव जिस शरीररूपी पर्यायमें होते हैं उसीके रागमें होजाते हैं (पज्जय सहकार नंत गलिय च) सिद्धोंके कोई शरीर नहीं है तथा शरीर सम्बन्धी ममत्वके कारण अनन्त कर्म क्षय होगये हैं (आवरनं नहु दिट्ठी) यहां कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च पज्जाय विलयंति) सिद्धोंके अनन्त दर्शन प्रगट होगया है, वे मुक्त होगये हैं, उनके सर्व ही सांसारिक पर्याय विला गई हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके शुद्ध आत्माका स्वभाव प्रकाशमान है। उनके न तो कोई कर्म है, न शरीर है, न कोई पर्यायका अहंकार ही होसक्ता है।

सल्यं च भाव सहियं, सल्यं परिनाम सयल गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञान सहावेन सल्य तिक्तं च ॥ ४२७ ॥

अन्वयार्थ—(सल्यं च भाव सहियं) संसारी जीव माया मिथ्या निदान इन तीन शल्य सहित पाए जाते हैं। (सल्य परिनाम सयल गलियं च) सिद्धोंके सर्व ही शल्य होने योग्य परिणाम क्षय होगए हैं। (आवरनं नहु दिट्ठ) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है। (ज्ञान सहावेन सल्य तिक्त च) उनका शुद्ध ज्ञान-स्वभाव प्रकाशित है, उसमें सर्व ही शल्योंका त्याग है।

भावार्थ—सिद्धोंमें कोई ऐसे कर्म भी नहीं हैं, न कोई सांसारिक मोह है, जिससे उनमें शल्य पाई जावें। वे सदा शल्य रहित शुद्ध भावमें ही रमण करते हैं।

लोभं सहाव युत्तं, लोभं सहकार परिनाम गलिय च ।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४२८ ॥

अन्वयार्थ—(लोभं सहाव युत्त) संसारी जीव लोभ कषाय सहित पाए जाते हैं (लोभं सहकार परिनाम गलिय च) सिद्धोंके लोभ उत्पन्न करनेवाली सर्व अवस्थाएं गल गई हैं। (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म गलिय च) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं, उनके सर्व कर्म गल गए हैं।

भावार्थ—शरीर व इन्द्रियोंके सम्बन्धसे ही भोग्य पदार्थोंमें लोभ होता है सिद्धोंके न शरीर है न इंद्रियां हैं न वे कर्म हैं जिनके उदयसे लोभ कषाय पैदा हो। वे परम वीतराग हैं, परम कृतकृत्य हैं, परम संतोषी हैं।

कोहं सहाव जुत्तं, कोहं परिनाम नन्त विरयति।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कोह विलयंति ॥ ४२९ ॥

अन्वयार्थ—(कोह सहाव जुत्त) संसारी जीव क्रोध स्वभावको रखनेवाले हैं (कोह परिनाम नन्त विरयति) सिद्धोंके क्रोध भावके कारण अनन्त कर्म छूट गए हैं (आवरन नहु पिच्छ) उनमें कोई कर्मका आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कोह विलयंति) ज्ञान स्वभावमें थिर होनेसे शुक्लध्यानके प्रतापसे क्रोध कषायका नाश होचुका है।

भावार्थ—सिद्धोंके मोहकर्मका सर्वथा अभाव है। इसलिये क्रोधका उदय नहीं होसक्ता है। वे अपनी निन्दा करनेवाले पर कभी क्रोध नहीं करते हैं। वे सदा समताभावमें लीन रहते हैं।

मानं सहाव जुत्तं, मानं सहकार नन्त विरयंतो।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान संयुत्त कम्म विलयंति ॥ ४३० ॥

अन्वयार्थ—(मान सहाव जुत्त) संसारी जीवोंके मानका विभाव पाया जाता है (मान सहकार नन्त विरयतो) सिद्धोंके मान कषायके कारण अनन्त कर्मवर्गणाएं छूट गई हैं (आवरन नहु जुत्त) उनके कोई आवरण नहीं है (ज्ञान सयुत्त कम्म विलयंति) जिससमय आत्मज्ञानकी पूर्णताको प्राप्त किया तब ही सब कर्म क्षय होगए थे।

भावार्थ—मोहनीयकर्मका सर्वथा क्षय होनेसे सिद्ध परमात्माके कोई मान भाव नहीं दिखता है। वे पूर्ण उत्तम मार्दवगुणके धारी आत्मस्थ रहते हैं।

माया सहाव सहियं, माया परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं अनुमोय कम्म पिपनं च ॥४३१॥

अन्वयार्थ—(माया सहाव सहिय) संसारी जीवोंके माया भाव पाया जाता है (माया परिनाम सयल गलिय च)

सिद्धोंके मायाका बिलकुल अभाव है (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च) वे ज्ञानानन्द स्वभावमें तल्लीन हैं । उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं ।

भावार्थ—सिद्धोंके भीतर कोई मायाभाव नहीं होसक्ता। वे पूर्ण आर्जव धर्म जो आत्माका स्वभाव है उनमें लीन हैं ।

मोहं सहाव उत्तं, मोहं परिनाम सयल गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च ॥ ४३२ ॥

अन्वयार्थ—(मोहं सहाव उत्तं) संसारी जीवोंमें मोहका विभाव कहा गया है (मोह परिनाम सयल गलियं च) सिद्धोंके मोह सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च) ज्ञानानन्दमई स्वभावमें लीन होनेसे सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान सर्व कर्म रहित हैं । उनमें न तो मोहनीय कर्म हैं जिनसे मोह उत्पन्न हो, न यह जगतके प्राणियोंके साथ मोह रखते हैं । वे बिलकुल निर्मोह उदासीन हैं । उनकी भक्ति करता है उसके परिणाम स्वयं ही सुधर जाते हैं। सिद्ध भगवान उस भक्तपर मोह करके उसके परिणाम नहीं सुधारते।

वसनं सहाव युत्तं, वसनं सहकार कम्म गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयन्ति ॥ ४३३ ॥

अन्वयार्थ—(वसनं सहाव युत्तं) संसारी जीव जूआखेलन आदि सात व्यसनकी आदतोंमें पाए जाते हैं (वसनं सहकार कम्म गलियं च) सिद्धोंके व्यसनभावके उत्पन्न करनेवाले कर्म गल चुके हैं (आवरन नहु दिट्ठं) उनमें कोई आवरन नहीं दिखलाई पडता है (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति) उनके आत्माके शुद्ध ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्म सब विला गए हैं ।

भावार्थ—तीव्र कषायोंके उदयसे संसारी जीवोंको जूआ खेलने, मांस खाने, मद्य पीने, चोरी करने, शिकार खेलने, वेश्या सेवने व परस्त्री सेवनेकी व ऐसी और भी अनेक बुरी आदतें पड जाया करती हैं। सिद्धोंमें कोई कषाय नहीं है, न इंद्रिये हैं, न शरीर है । उनके इन व्यसनोंके भावोंका होना ही संभव नहीं है ।

विकहा सहाव सहियं, विकहा सभाव दोम विरयंति ।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञानं संयुत्त विकह विलयंति ॥ ४३४ ॥

अन्वयार्थ—(विकहा सहाव सहियं) संसारी प्राणियोंका ऐसा स्वभाव है कि स्त्री, भोजन, देश व राजा तथा अन्य रागद्वेष वर्द्धक विकथाओंमें लीन होजाते हैं (विकहा सभाव दोस विरयति) परंतु सिद्धोंमें इन विकथाओंके कहनेका कोई दोष नहीं होसक्ता (आवरन नहु पिच्छदि) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञानं संयुत्त विकह विलयंति) वे शुद्ध ज्ञान सहित हैं। उनके विकथाओंका सर्व प्रकारसे अभाव है ।

भावार्थ—राग द्वेषके वशीभूत हो अपने व दूसरोंके मनको रंजायमान करनेके लिये विकथाएं कही जाती हैं। सिद्ध भगवान परम वीतराग हैं व सर्व कर्ममल रहित हैं। उनके विकथाओंकी कोई सम्भावना नहीं है ।

इंदि सहाव सहियं, इंदि परिनाम दोस विरयन्ति ।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४३५ ॥

अन्वयाथ—(इंदी सहाव सहिय) संसारी जीवोंके इंद्रियोंके भोगोंकी चाह पाई जाती है (इदी परिनाम दोस विरयंति) सिद्धोंके इंद्रिय संबन्धी परिणामोंके कोई विकार नहीं है। (आवरन नहु पिच्छदि) उनमें कोई कर्मका आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म सषिान) अपने ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे उनके कर्म क्षय होगए हैं ।

भावार्थ—संसारी जीवोंके इंद्रियां भी हैं व कर्मके उदयसे उनके भोगकी इच्छा भी है परन्तु सिद्ध भगवानके न शरीर है, न इंद्रियाँ हैं, न रागभाव है जिनसे उनको किसी इंद्रियके भोगकी इच्छा हो। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मग्न हैं ।

रसन भाव संजुत्तं, रसना परिनाम सयल विरयन्ति ।
आवरनं नहु दिट्ठं, अतिंदी ज्ञान कम्म विरयन्ति ॥ ४३६ ॥

अन्वयार्थ—(रसन भाव सजुत्तं) संसारी जीव रसनाकी चाहकी दाहमें जलते हैं (रसना परिनाम सयल विरयति) सिद्धोंके रसना सम्बन्धी सर्व चाहनाएं विलय होगई हैं (आवरनं नहु दिट्ठ) सिद्धोंके कोई कर्मका

आवरण नहीं है (अतिंदी ज्ञान कम्म विगंयंति) सिद्धोंके अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष केवलज्ञान है, क्षयोपशम ज्ञान सम्बन्धी कर्म नहीं रहे हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके न रसना इंद्रिय है, न मोहकर्म है, न मतिज्ञान है जिससे रसना द्वारा स्वादका ज्ञान हो। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दके भोगसें परम तृप्त हैं। उनके कोई लालसा या चाह नहीं है।

स्पर्सन सहाव सहियं, स्पर्सन परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु युत्तं, अतिंदी ज्ञान कम्म गलियं॥ ४३७॥

अन्वयार्थ—(स्पर्सन सहाव सहियं) संसारी प्राणियोंके स्पर्शन इंद्रियकी चाह पाई जाती है (स्पर्सन परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके स्पर्शन इंद्रियकी चाह सम्बन्धी सर्व विकार गल गए हैं (आवरनं नहु युत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं है (अतिंदी ज्ञान कम्म गलियं च) इंद्रियातीत प्रत्यक्ष केवलज्ञानका प्रकाश है। क्षयोपशम ज्ञान सम्बन्धी कम गल गए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान ब्रह्म स्वरूप निजात्मामें लीन हैं, पूर्ण शीलव्रतके स्वामी हैं। उनके कुशील-सेवन सम्बन्धी कोई भाव नहीं होसक्ते, न वहां स्पर्शन इंद्रिय है, न मोहनीयकर्म है, न मतिज्ञान है।

घ्रानं सुभाव युत्तं, घ्रानं परिनाम नन्त गलियं च।
आवरनं न उवन्नं, अतिंदी परिनाम घ्रान विलयंति॥ ४३८॥

अन्वयार्थ—(घ्रानं सुभाव युत्त) संसारी जीवोंके नाशिकाका विषय पाया जाता है (घ्रानं परिनाम नन्त गलियं च) सिद्धोंके नाशिका इंद्रिय सम्बन्धी चाहको उत्पन्न करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरन न उवन्नं) उनमें कोई कर्मका आवरण न पिछला है न नया उत्पन्न होता है (अतिंदी परिनाम घ्रान विलयति) वे अतिंद्री ज्ञान व आनन्दकी परिणतिको रखनेवाला है। उनके घ्राण द्वारा ज्ञान ही विलय होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके न शरीर है, न घ्राण इंद्रिय है, न मतिज्ञान है, न मोहनीयकर्म है। इसलिये किसी वस्तुके सूंघनेकी चाह पैदा नहीं होसक्ती है। वे तो वीतराग अतीन्द्रिय ज्ञान आनन्दमें मगन हैं।

चष्यं सहाव सहियं, चष्यं परिनाम सयल विरयन्ति।
आवरनं नहु पिच्छं, अतिन्दी सभाव चप विरयन्ति॥ ४३९॥

अन्वयार्थ—(चष्यं सहाव सहियं) संसारी जीवोंके आंख होती है व देखनेकी चाह भी होती है (चष्यं परिनाम सयल विरयंति) सिद्धोंके चक्षु नहीं हैं, चक्षु सम्बन्धी सर्व देखनेके राग नहीं हैं (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई कर्मका आवरण भी नहीं है (अतिन्दी सभाव चष विरयन्ति) उनके अतीन्द्रिय स्वाभाविक देखनेकी शक्ति है। चक्षुद्वारा देखनेकी पराधीनता नहीं रही है।

भावार्थ—सिद्धोंके न चक्षुइंद्रिय है, न मतिज्ञान है, न मोहनीय कर्म है जिसके उदयसे देखनेकी चाह पैदा हो। वे अतीन्द्रिय, अनन्तदर्शन व अनन्तज्ञानसे सर्व देखते जानते हैं। वे परम स्वाधीन हैं, परम कृतकृत्य हैं।

सोत्रं सहाव सहियं, सोत्रं सहकार परिनयं विरयं।
आवरनं नहु उत्तं, अतिंदी परिनाम सोत्र विरयन्ति ॥ ४४० ॥

अन्वयार्थ—(सोत्रं सहाव सहियं) संसारी जीवोंके कान हैं व सुननेकी चाह भी पाई जाती है (सोत्र सहकार परिनय विरयं) सिद्धोंके कर्णद्वारा सुननेका स्वभाव मिट गया है (आवरन नहु उत्तं) उनके कोई आवरण नहीं कहा गया है (अतिंदी परिनाम सोत्र विरयति) उनके अतीन्द्रिय ज्ञानकी परिणति है इससे कर्णइंद्रिय द्वारा ज्ञान सब विला गया है।

भावार्थ—कर्म सहित संसारी जीवोंके ज्ञानावरणके उदयसे प्रत्यक्ष केवलज्ञान नहीं होता है अतएव वे मतिज्ञानके धारी होकर कर्णद्वारा सुनते हैं व उनके सुननेकी चाह भी पाई जाती है। सिद्ध भगवानके शरीर नहीं है तथा अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट है जिससे वे सब कुछ जान रहे हैं। उनके मोहनीय कर्म भी नहीं हैं जिनसे कोई चाह पैदा हो। वे परम कृतकृत्य हैं।

सरीर भाव सहियं, सरीर परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४४१ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर भाव सहियं) संसारी जीवोंके शरीर है व शरीर सम्बन्धी मोह भाव है (सरीर परिनाम सयल गलियं च) सिद्धोंके शरीर नहीं है। उनके शरीर सम्बन्धी राग, भाव सब गल गए हैं (आवरन

नहु पिच्छं) न उनके कोई कर्मका आवरण दिखलाई पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म संपिपनं) ज्ञान स्वभावके प्रकाशमें मग्न होनेसे उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध अशरीर हैं व मोह रहित हैं इससे उनके शरीर सम्बन्धी कोई भी विकारी भाव नहीं पाए जाते हैं। उनके अमूर्तिक ज्ञान स्वभावका प्रकाश होगया है।

संज्ञा सहाव सहिओ संज्ञा परिनाम नंत गलियं च।
आवरनं नहु उत्तं सुद्ध सहावेन कम्म विलयंति ॥ ४४२ ॥

अन्वयार्थ—(सज्ञा सहाव सहिओ) संसारी जीव संज्ञा भावको रखते हैं। उनके आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञाएं पाई जाती हैं। (संज्ञा परिनाम नंत गलियं च) सिद्धोंके वे अनंत कर्म ही गल गए हैं जिनके उदयसे संज्ञा सम्बन्धी परिणाम हों। (आवरनं नहु उत्त) उनके कोई भी कर्मका आवरण नहीं कहा गया है। (सुद्ध सहावेन कम्म विलयंति) उनका शुद्ध स्वभाव प्रगट होगया है। सब विभावकारक कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके उदयसे व शरीरके सम्बन्धसे संसारी जीवोंके आहारकी चाह, भय मैथुनकी चाह व परिग्रहका मोह पाया जाता है, परन्तु सिद्धोंके न मोहनीय कर्म है न शरीर है। तब फिर इन संज्ञाओंका होना कैसे संभव हो सक्ता है? वे परम कृतकृत्य, निर्भय, ममता रहित, समभावमें लीन आत्मानन्दके भोगी हैं।

आहार भाव सहियं आहार परिनाम सयल विरयंति।
आवरनं न उपत्ती समभावेन कम्म गलियं च ॥ ४४३ ॥

अन्वयार्थ—(आहार भाव सहिय) संसारी जीव आहार करनेकी इच्छा रखते हैं (आहार परिनाम सयल विरयति) सिद्धोंके वे सर्व भाव छूट गए हैं जिनसे आहारकी चाह हो। (आवरन न उपत्ती) उनके न पिछला आवरण है न नया आवरण उत्पन्न होता है (समभावेन कम्म गलियं च) उनके समताभाव प्रगट हो गया है जिससे सर्व कर्म क्षय हो गये हैं।

भावार्थ—भोजनकी इच्छा उसीके होती है जो शरीर सहित हो व निर्बल हो सिद्धोंके न शरीर है

न रागभाव है, न कोई निर्बलता है क्योंकि वे अनन्त बलके धनी हैं। वे आत्मानन्दका आहार नित्य करते रहते हैं।

पादं विसेस जुत्तं, पादं, परिनाम नंत गलियं च।
आवरन भाव तिक्तं, अप्प सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४४४ ॥

अन्वयार्थ—(पादं विसेस जुत्तं) संसारी जीव आहारका एक भेद खाद्य पदार्थोंका सेवन उसमें रागी रहते हैं (पादं परिनाम नत गलियं च) सिद्धोंके खाद्यके आहार करनेके राग सम्बन्धी सर्व अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरन भाव तिक्तं) कर्मोंके आवरण भी नहीं है न कम आवरणके भाव हैं (अप्प सहावेन कम्म संषिपनं) वे अपने आत्माके स्वभावमें थिर होगए इसलिये सर्व कर्म क्षय होगए।

भावार्थ—आहार चार प्रकारका है–खाद्य-जिससे पेट भरे जैसे दाल, चावलादि रोटी। स्वाद्य–स्वादको सुधारे जैसे लोंग, इलायची, पान आदि। पेय–पानेयोग्य पानी, दूध आदि। लेह्य–चाटने योग्य चटनी आदि। संसारी जीवोंके शरीर है, इन्द्रिय है, राग भाव है इससे खाद्यके खानेकी इच्छा होती है। परन्तु सिद्धोंके न शरीर है, न इन्द्रिय है, न राग भाव उत्पादक कर्म है। उन निष्कर्म सिद्ध परमात्माके एक आत्मानन्दका ही भोग है।

स्वादं सहाव सहियं, स्वादं अनिस्ट सुभाव विरयन्ति।
आवरनं नहु युत्तं, विमल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४४५ ॥

अन्वयार्थ—(स्वादं सहाव सहिय) संसारी प्राणी स्वाद्य आहारके राग सहित पाए जाते हैं (स्वादं अनिस्ट सुभाव विरयति) सिद्ध भगवान आत्माको अहितकारी स्वाद्य भोजनके रागभावसे विरक्त होचुके हैं (आवरनं नहु युत्त) उनके साथ किसी कर्मका आवरन नहीं है (विमल सहावेन कम्म संषिपनं) उन्होंने निर्मल स्वभावका प्रकाश कर दिया है। उनके इसी कारण कर्मोंका क्षय होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके स्वाद्य भोजनका भी कभी राग भाव नहीं होसक्ता। वे संसारके विषय भोगोंसे सर्वथा विरागी हैं। उनकी आत्मामें रागोत्पादक कर्म नहीं हैं।

पेयं सहावं जुत्तं, पेय अनिस्ट परिनाम निरयन्ति ।
आवरन भाव तिक्तं, पेय सहकार कम्म संपिपनं ॥ ४४६ ॥

अन्वयार्थ—(पेयं सहाव जुत्त) संसारी जीव पीने योग्य पदार्थोंके रागी हैं (पेय अनिष्ट परिनाम विरयति) सिद्ध भगवान पेय पदार्थोंके अनिष्ट रागभावसे विरक्त होचुके हैं (आवरन भाव तिक्त) उनके कर्मोंके बन्धकारक भाव नहीं हैं (पेय सहकार कम्म संपिपन) उनके पेय राग पैदा करनेवाले कर्म क्षय होगये हैं ।

भावार्थ—सिद्धोंके संसार सम्बन्धी रागभाव पैदा करनेवाले सर्व कर्म गल गए हैं । वे पूर्ण वीतराग हैं । उनके पेयका राग असम्भव है ।

लेयं सहकार सहियं, लेयं परिनाम नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४४७ ॥

अन्वयार्थ—(लेय सहकार सहियं) संसारी जीव लेह्य आहारके रागी पाए जाते हैं (लेयं परिनाम नन्त गलिय च) सिद्धोंके लेह्य आहार सम्बन्धी रागको पैदा करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरनं नहु उत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं कहा गया है (सुद्ध सहावेन कम्म गलियं च) इन्होंने अपने शुद्ध स्वभावके प्रकाशसे कर्मोंका क्षय कर डाला है ।

भावार्थ—सिद्धोंके लेह्याहार सम्बन्धी भी रागभाव नहीं होसक्ता है । वे आत्मानन्दके भोगमें तृप्त हैं । सर्व कर्मोंसे रहित हैं । कर्म सहित संसारी जीवोंके ही आहार करनेका रागभाव सम्भव है, सिद्धोंके नहीं ।

निद्रा सहाव युत्तं, निद्रा परिनाम नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, अप्प सहावेन कम्म नहु पिच्छदि ॥४४८॥

अन्वयार्थ—(निद्रा सहाव युत्त) संसारी जीवोंके निद्रा आती है (निद्रा परिनाम नन्त गलिय च) सिद्धोंके निद्रा लानेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरन नहु दिट्ठं) उनमें कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (अप्प सहावेन कम्म नहु पिच्छदि) आत्माके स्वभावमें लीन होनेके कारण वहां कर्मोंकी स्थिति देख नहीं पड़ती है ।

भावार्थ—लौकिकमें निद्रा भी एक संज्ञा मानी जाती है। शरीर व कर्म सहित संसारी जीवोंके ही वह सम्भव है। कर्म रहित व शरीर रहित सिद्धोंके निद्राकी सम्भवता नहीं है। वे सदा अपने आत्म-स्वरूपमें जागृत रहते हैं।

भयं च भय संजुत्तं, भय सुभाव अनिस्ट गलिय च।
आवरनं न उपत्ती, ज्ञान सहावेन कम्म संगलिय ॥ ४४९ ॥

अन्वयार्थ—(भय संजुत्त च भयं) भयभीत संसारी प्राणियोंके ही भय पाया जाता है (भय सुभाव अनिस्ट गलिय च) सिद्धोंके भयरूपी अनिष्टके उत्पन्न करनेवाले सर्व कर्म गल गए हैं (आवरनं न उपत्ती) न उनके पिछला आवरण है न कोई नया आवरण उत्पन्न होता है (ज्ञान सहावेन कम्म संगलिय) वे ज्ञान स्वभावमें स्थिर हैं, उनके सर्व कर्म गलगए हैं।

भावार्थ—भय भय नाम नो कषायके उदयसे बाहरी सबल कारणके होनेपर होता है। सशरीर सकर्मक संसारी जीवोंके तो यह संभव है परन्तु सर्व कर्मरहित व शरीर रहित सिद्ध परमात्माके कोई भय होनेका कारण नहीं है। वे सदा निर्भय अपने स्वरूपमें मगन हैं।

मैथुन सहाव जुत्तं, मैथुन परिनाम सयल गलिय च।
आवरनं न उपत्ती, विमल सहावेन कम्म विलयन्ति ॥ ४५० ॥

अन्वयार्थ—(मैथुन सहाव जुत्तं) संसारी प्राणियोंके मैथुनभाव-कामभाव पाया जासक्ता है (मैथुन परिनाम सयल गलिय च) परंतु सिद्धोंके मैथुन सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (आवरन न उपत्ती) उनके कोई नया आवरण भी नहीं होता है (विमल सहावेन कम्म विलयन्ति) उनका स्वभाव निर्मल प्रगट होगया है, इससे वहां सब कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—शरीर व वेद नोकषायके होते हुए व कामविकारका बाहरी निमित्त होते हुए ही संसारी प्राणियोंके कामभाव पाया जाता है। सिद्धोंके न शरीर है, न वेद नोकषाय कर्म है, न बाहरी कोई निमित्त है। वे सदा स्व ब्रह्मचर्यमें लीन हैं। उनके कामभाव कभी नहीं होसक्ता है।

आसा अनृत सहियं, आसा परिनाम नंत गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, अप्प सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४५१ ॥

अन्वयार्थ—(आसा अनृत सहिय) जो नाशवन्त असत्य पदार्थोंमें मगन हैं ऐसे संसारी प्राणियोंके ही विषयोंकी तृष्णा पाई जाती है (आसा परिनाम नत गलियं च) सिद्धोंके आशा-तृष्णाके उत्पन्न करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई कर्मका आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (अप्प सहावेन कम्म गलियं च) आत्माके स्वभावमें लीन होनेसे उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं ।

भावार्थ—जिनको न अनन्त ज्ञान है, न अनन्त बल है, न मोहका उदय है । ऐसे संसारी प्राणियोंके आशा, तृष्णा पाई जासक्ती है, परन्तु सिद्ध भगवान अनन्त बली व अनन्त ज्ञानी हैं । अतींद्रिय सुखमें मग्न हैं । उनके पर पदार्थकी आशा कभी पाई नहीं जासक्ती है । वे परम कृतकृत्य व स्वभावमें लीन हैं ।

स्नेहं असत्य सहियं, स्नेहं परिनाम सयल मुक्कं च ।
आवरनं न उपत्ती, विमल सहावेन स्नेह विलयंति ॥ ४५२ ॥

अन्वयार्थ—(स्नेहं असत्य सहिय) संसारी जीव क्षणभंगुर असत्य पदार्थोंमें स्नेह करते रहते हैं (स्नेहं परिनाम सयल मुक्क च) सिद्धोंके सर्व ही स्नेह सम्बन्धी परिणतियां छूट गई हैं (आवरनं न उपत्ती) उनके कोई नया आवरण कर्मका भी नहीं है (विमल सहावेन स्नेहं विलयंति) निर्मल स्वभाव शुद्धोपयोगरूप प्रगट होगया है इससे स्नेहका सम्बन्ध सब क्षय होगया है ।

भावार्थ—जिनको कोई सांसारिक प्रयोजन होता है या कोई काम धार्मिक व लौकिक करना होता है वे उसके साधकोंसे स्नेह करते हैं । सिद्धोंके इन सब बातोंका कोई प्रयोजन नहीं है । वे परम कृतकृत्य हैं । वे साध्यको सिद्ध कर चुके हैं । इस कारण उनके स्नेहका कोई निमित्त नहीं है ।

लाजं अनृत दिट्ठं, अनृत सहकार लाज गलियं च ।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन लाज विलयंति ॥ ४५३ ॥

अन्वयार्थ—(लाज अनृत दिट्ठं) संसारी जीवोंके मिथ्या पदार्थोंके सम्बन्धमें लाज देखी जाती है कि

यदि ऐसा न करेंगे तो लाज जायगी (अनृत सहकार लाज गलियं च) सिद्धोंके इस मिथ्या पदार्थ सम्बन्धी लाजका भाव सब गल गया है (आवरनं नहु उत्तं) उनके कोई आवरण नहीं कहा गया है (सुद्ध सहावेन लाज विलयंति) शुद्ध स्वभावके प्रकाशसे उनके लाज भाव सम्बन्धी विकल्प ही मिट गए हैं।

भावार्थ—मान कषायके होनेपर लाजका भाव होता है। सिद्धोंके कोई कपाय नहीं है। वे स्वरूपानन्दमें मग्न हैं। जगतके जनोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर लाज क्या हो।

लोभं अनृत भावं, लोभं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु उत्तं, लोभं गलियं च ज्ञान सहकारं ॥ ४५४ ॥

अन्वयार्थ—(लोभ अनृत भावं) मिथ्या पदार्थोंके सम्बन्धमें लोभ भाव सम्पूर्ण संसारी जीवोंके पाया जाता है। (लोभ परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके सर्व ही लोभके परिणाम गल गए हैं (आवरन नहु उत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं है (लोभ गलिय च ज्ञान सहकार) आत्मज्ञानकी सहायतासे उनका लोभ भाव सर्व गल गया है।

भावार्थ—संसारी प्राणी शरीरासक्त हैं इसलिये उनमें लोभ भाव पाया जाता है। सिद्धोंके शरीर नहीं है, न लोभ कपाय रूपी कर्म है, वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं, परम कृतकृत्य हैं।

भयं च अनृत सहियं, भय परिनाम अनिस्ट विलयंति।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४५५ ॥

अन्वयार्थ—(भय च अनृत सहिय) संसारी जीवोंके शरीरादि मिथ्या पदार्थोंसे भय बना रहता है (भय परिनाम अनिस्ट विलयति) सिद्धोंके भय सम्बन्धी अनिष्ट परिणामोंकी कोई सम्भवना नहीं है (आवरनं नहु उत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं कहा गया है (सुद्ध सहावेन कम्म गलिय च) शुद्ध स्वभावके प्रकाशमान होनेसे उनके सर्व कर्म नष्ट होचुके हैं।

भावार्थ—जिनके जगतके क्षणभंगुर पदार्थोंसे मोह होता है उनहीके भय होसक्ता है। सिद्धोंके न मोह है, न भय है, न कर्मोंका उदय है जिससे कोई भय हो।

मनरंजन गारव उत्तं, गारव परिनाम अनिस्ट गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञान सहावेन कम्म संपिपनं ॥ ४५६ ॥

अन्वयार्थ—(मनरंजन गारव उत्त) संसारी जीवोंके अपने मनको रंजायमान करनेवाला मदभाव कहा गया है (गारव परिनाम अनिस्ट गलिय च) सिद्धोंके गारवभाव सम्बन्धी समस्त अनिष्ट भाव गल गए हैं। (आवरनं नहु दिट्ठ) उनमें कोई आवरण नहीं देखा जाता है (ज्ञान सहावेन कम्म सपिपन) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे सर्व कर्मोंका क्षय होचुका है।

भावार्थ—धन गारव, प्रतिष्ठा गारव, रस बनानेका गारव ऐसे कोई प्रकारका मदभाव अज्ञानी संसारी जीवोंके पाया जाता है। वे अपनेको बड़ा मानके मनमें प्रसन्न हुआ करते हैं। सिद्धोंके किन्हीं पर पदार्थोंका सम्बन्ध ही नहीं है न ऐसे कर्मोंका उदय है जिससे गारवभाव हो। वे परम मार्दवभाव सहित आत्माके स्वभावमें तल्लीन हैं।

आलस अनिस्ट रूवं, आलस परिनाम अनृतं तिक्तं ।
आवरनं नहु पिच्छं, विमल सहावेन कम्म संपिपनं ॥ ४५७ ॥

अन्वयार्थ—(आलस अनिस्ट रूवं) यह आलस्य अहितकारी भाव है सो संसारी जीवोंके पाया जाता है (आलस परिनाम अनृतं तिक्तं) सिद्ध भगवानके कोई यह मिथ्या प्रमाद भाव नहीं है (आवरनं नहु पिच्छं) न उनके कोई आवरण दिखलाई पड़ता है (विमल सहावेन कम्म सपिपनं) वे निर्मल स्वभावमें मग्न हैं इसीसे उनके सर्व कर्म क्षय होगये हैं।

भावार्थ—शुभ कार्योंमें प्रमादभावको आलस्य कहते हैं। शरीरासक्त संसारी प्राणियोंके इस प्रमादभावका होना सम्भव है, परन्तु सिद्धोंको न कोई शरीर है, न शरीरका राग है, न कोई कर्मका उदय है जिससे प्रमाद हो। वे नित्य अप्रमत्त रहते हुए अपने स्वभावके विलासमें तल्लीन हैं।

परपंचं पर पिच्छं, पर पज्जाय परिनाम मुक्कं च ।
आवरनं नहु पिच्छं, विमल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४५८ ॥

अन्वयार्थ—(परपंचं पर पिच्छं) प्रपंच या माया भाव पर पदार्थके सम्बन्धमें संसारी जीवोंके देखा

जाता है (पर पज्जाय परिनाम मुक्क च) सिद्ध भगवान उन भावोंसे ही मुक्त हैं जिनके उदयसे शरीरादि पर पर्याय होती हैं (आवरनं नहु पिच्छं) उनके कोई कर्मका आवरण देखा नहीं जाता है (विमल सहावेन कम्म संषिपनं) उन्होंने अपने शुद्ध स्वभावके प्रकाशसे कर्मोंका क्षय कर दिया है।

भावार्थ—जिसको धनादिकी ममता होगी विषयोंकी वांछा होगी, वही उनकी प्राप्तिके लिये मायाचार या प्रपंच करेगा। सिद्धोंके कोई पर पदार्थकी वांछा नहीं है। वे परम वीतराग हैं, परम कृतकृत्य हैं, अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें मग्न हैं। उनके मायाका कोई काम नहीं है।

विभ्रम विप्रिय भावं, विभ्रम परिनाम अनिस्ट गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४५९ ॥

अन्वयार्थ—(विभ्रम विप्रिय भावं) विभ्रम या संशय भाव एक अनिष्ट भाव है सो संसारी आत्मज्ञानिनियोंके पाया जाता है (विभ्रम परिनाम अनिस्ट गलियं च) सिद्धोंके कोई भी यह अहितकारी विभ्रम भाव नहीं है। वे पूर्ण निःशंक हैं (आवरन नहु पिच्छं) उनके कोई कर्मका आवरण देखा नहींजाता है (ज्ञान सहावेन कम्म सषिपनं) उन्होंने ज्ञान स्वभावके प्रकाशसे कर्मोंका क्षय कर डाला है।

भावार्थ—अल्पज्ञानी छद्मस्थोंके भ्रम या संशय होसक्ता है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी सिद्ध भगवानके कोई संशय नहीं होसक्ता। वहां संशय व उत्पादक कर्मका उदय भी नहीं है।

दह पाना पजत्ती, सुद्धं स सहाव हुंति चौ दसमो।
विमल सहावं दिट्ठं, चौ दस प्राण भाव उप्पत्ती ॥ ४६० ॥

अन्वयार्थ—(दह पाना पज्जत्ती) संसारी जीवोंके दश प्राण व छः पर्याप्ति होती हैं (सुद्धं स सहाव हुंति चौ दसमो) शुद्ध स्वभावके रमणकर्ता अरहन्तके चार या दश प्राण होते हैं (विमल सहावं दिट्ठ) तौभी वे अपने शुद्ध स्वभावको ही देखते हैं (चौ दस प्राण भाव उप्पत्ती) उनके कर्मोंके उदयसे चार या दश प्राणोंकी उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—पांच इंद्रिय, मन वचन काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास ये दश प्राण हैं जो कार्यशील हैं।

आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा तथा मन ये छः पर्याप्तियें होती हैं। अर्थात् वे शक्तियें होती हैं जिनसे शरीरादि बन सकें। तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहंतके दशों प्राण बने रहते हैं, परन्तु काम चार ही प्राण करते हैं। अर्थात् वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण कर्मोंके उदयसे वर्तते हैं। अरहन्त भगवान तो अपने शुद्धोपयोगमें लीन रहते हैं।

सिद्धोंके चार निश्चय प्राण।

दह संयुत्तं सहियं, अतिंदी सहकार सहाव संजुत्तं।
ज्ञान सहाव स उत्तं, सुप सत्ता बोध चेतना रूवं ॥ ४६१ ॥

अन्वयार्थ—(दह सजुत्त सहिय) यद्यपि अर्हंत भगवान दश प्राणोंको रचनाकी अपेक्षा रखनेवाले हैं तौभी (अतिंदी सहकार सहाव सयुत्त) इंद्रियोंसे अतीत अतीन्द्रिय स्वभावके धारी हैं (ज्ञान सहाव स उत्त) इसीसे उनके एक ज्ञान स्वभाव कहा गया है (सुप सत्ता बोध चेतना रूवं) वह ज्ञानका स्वभाव भाव सुख, सत्ता, बोध, चेतनरूप है।

भावार्थ—अर्हंतोंके यद्यपि रचनाकी अपेक्षा दश व कर्मोदयसे कार्यकी अपेक्षा चार प्राण हैं तौभी वे अपने अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन आदि स्वभावमें लीन हैं। वे ज्ञान चेतनामय हैं। उनके अन्तरंगके चार प्राण होते हैं। सुख, सत्ता, चैतन्य, बोध। आत्माके आनन्दको सुख कहते हैं। वस्तुके अस्तित्वको सत्ता कहते हैं। अनुभव भावको चैतन्य कहते हैं। ज्ञान भावको बोध कहते हैं। ये आत्माके स्वाभाविक प्राण हैं, सो अर्हंत भगवानके पाए जाते हैं।

सुखं च भाव उपत्ती, सुख षिपनक भाव परिनाम संयुत्तं।
कम्म मल सुयं च षिपनं, सुख पानं सहाव उवनं च ॥ ४६२ ॥

अन्वयार्थ—(सुख च भाव उपत्ती) अर्हंत परमात्माके आत्मिक सुख भावकी प्राप्ति है (सुख षिपनक भाव परिनाम सयुत्तं) वे क्षायिक भावके परिणमन सहित अनन्त सुखरूप हैं (कम्म मल सुयं च षिपनं) उनके

सुखका घातक चार घातीय कर्ममल स्वयं क्षय होगया है (सुख पानं सहाव उवनं च) इसीसे सुख नामका स्वाभाविक प्राण प्रकाश होगया है।

भावार्थ—अतीन्द्रिय निराकुल स्वाभाविक सुख आत्माका एक गुण है। इसका पूर्ण प्रकाश अनन्त सुखरूप तब ही होता है जब चारों घातीय कर्मोंका क्षय होजावे। सुख प्राणका प्रकाश अर्हत व सिद्ध परमात्माके सदा रहता है।

सत्तानन्त विसेसं, सहकारे ज्ञान विमल सहकारं।
सहकार कम्म षिपनं, सत्ता पान विमल दिट्ठीओ ॥ ४६३ ॥

अन्वयार्थ—(सत्तानन्त विसेस) सत्ता वह प्राणका भेद है जिससे आत्मा अनन्तकाल तक बना रहता है (सहकारे ज्ञान विमल सहकार) इसी सत्ताके सहारे ही शुद्ध ज्ञानका सहयोग सदा रहता है (सहकार कम्म षिपनं) संसारीके अनादिकालसे जिनका सहयोग था वे कर्म जब क्षय होजाते हैं (सत्ता पान विमल दिट्ठीओ) तब सत्ता प्राण शुद्ध झलक जाता है।

भावार्थ—सत्ता प्राण सर्व ही जीवोंके पाया जाता है इसीसे यह जीव अनादिसे अनन्तकाल तक सदा बना रहता है। संसारावस्थामें इस जीवकी सत्तामें अनादिसे आठ कर्मोंका संयोग है, जिससे आत्माकी सत्ता मलीन होरही है। जब आत्माके घातक चार घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है तब सत्ता गुण शुद्ध होजाता है, सिद्धोंके आठ कर्मोंके क्षयसे बिलकुल शुद्ध होजाता है।

बोधं ज्ञान सहावं, ज्ञान विज्ञान विमल ज्ञानस्य।
परिनाम ज्ञान समयं, पानं बोधं च विमल मल रहियं ॥ ४६४ ॥

अन्वयार्थ—(बोध ज्ञान सहाव) ज्ञान स्वभावको बोध प्राण कहते हैं (ज्ञान विज्ञान विमल ज्ञानस्य) भेद-विज्ञानसे यह ज्ञान स्वभाव शुद्ध होजाता है (परिनाम ज्ञान-समयं)-तब आत्मा ज्ञानमें ही परिणमन करता है (बोधं पान च विमल मल रहिय) ज्ञानावरणके मलके चले जानेपर यह बोधप्राण शुद्ध होजाता है।

भावार्थ—आत्माका तीसरा स्वाभाविक प्राण बोध है या ज्ञान है। जहांतक ज्ञानावरणका उदय है वहांतक यह ज्ञान प्राण मलीन रहता है। जब ज्ञानावरणका सर्वथा क्षय होजाता है तब अनन्तज्ञान स्वभाव अरहन्त व सिद्धके प्रगट रहता है।

चेतन अनन्त रूवं, चेतन नंदस्य कम्म सुइ षिपनं ।
चिदानन्द आनन्दं, परमं आनन्द सुद्ध दिट्ठीओ ॥ ४६५ ॥

अन्वयार्थ—(चेतन अनन्त रूवं) अनन्त काल तक रहनेवाला चैतन्य प्राण आत्माका स्वभाव है (चेतन नंदस्य कम्म सुइ षिपनं) इस स्वानुभवमई चैतन्य प्राणमें आनन्दके लाभसे कर्म क्षय होजाते हैं (चिदानन्द आनन्दं) तब चिदानन्द आत्मा आनन्दमई रहता है (परम आनन्द सुद्ध दिट्ठीओ) शुद्ध दृष्टिमें परमानंदका स्वाद आता है।

भावार्थ—आत्मामें आत्माका स्वाद दिलानेवाला चैतन्य प्राण है। जब यह आत्मा स्थिर होजाता है तब यह प्राण प्रकाशित रहता है और तब ही आत्मानन्दका स्वाद आता है। आत्मानन्दके स्वादके समय सच्ची वीतरागता होती है। इसीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। श्री अरहन्त भगवान व सिद्ध भगवानके यह प्राण सदा शुद्ध रूपमें प्रगट रहता है, इसीसे वे सदा स्वानुभवरूप रहते हुए परमानन्दका लाभ लेते हैं।

चौदस प्रान सुभावं, सुद्धं सहकार सुद्ध दिट्ठीओ ।
विमल सुभाव संयुत्तं, अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य ॥ ४६६ ॥

अन्वयार्थ—(चौदस प्रान सुभावं) श्री अर्हंत भगवान् निश्चयसे सुख सत्ता बोध चेतन्य इन चार प्राणके धारी हैं व व्यवहारसे दस प्राणके धारी हैं (सुद्धं सहकार सुद्ध दिट्ठीओ) वे शुद्ध होने कारण शुद्ध दृष्टिके रखनेवाले हैं (विमल सुभाव संयुत्त) वे शुद्ध स्वभावके धारी हैं (अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य) उनका आत्मा परमात्मारूप निर्मल ज्ञानमय है।

भावार्थ—यहां अरहंत परमात्माका स्वरूप है, जो शीघ्र ही सिद्ध होनेवाले हैं।

षिपिओ कम्मं तिविहं, षिपिओ परिनाम असुद्ध बंधानं ।
सुद्ध सहावं पिच्छदि, विमल सहावेन विमल ज्ञानस्य ॥ ४६७ ॥

अन्वयार्थ—(तिविहं कम्मं षिपिओ) सिद्ध भगवानके तीनों ही प्रकारके कर्म क्षय होगए हैं (बधान असुद्ध परिनाम षिपिओ) बन्धका कारण अशुद्ध भाव सब दूर होगया है (सुद्ध सहावं पिच्छदि) वे शुद्ध स्वभावको अनुभव कर रहे हैं (विमल सहावेन विमल ज्ञानस्य) उनका स्वभाव भी शुद्ध है व ज्ञान भी शुद्ध है।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म सहित हैं, परम शुद्ध परमात्मा हैं। बन्ध योग्य मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय व योग कोई भी वहां नहीं है।

ए अतीचार कम्मानं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयति।
विमलं विमल सहावं, ज्ञान विज्ञान मुक्ति गमनं च ॥ ४६८ ॥

अन्वयार्थ—(ए अतीचार कम्मानं) ऊपर जो राग द्वेष भय आलस्यादि दोष बहुतसी गाथाओंमें कहे गए हैं सो कर्मोंके उदयका दोष हैं (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंते) श्री सिद्ध ज्ञान स्वभाव हैं, उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं (विमल च विमल सहावं) इससे उनका शुद्ध स्वभाव ऊपर लिखित सर्व दोषोंसे शून्य है (ज्ञान विज्ञान मुक्ति गमन च) वे केवलज्ञान सहित मोक्षको प्राप्त होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें कर्मोंका उदय न होनेसे कोई भी वे दोष नहीं पाए जाते हैं जो संसारी जीवोंके होते हैं।

सम्यक्तके आठ अंग सिद्धोंमें।

दंसन अंग स उत्तं, सम्यक दंसनस्य सुद्ध सद्भावं।
अनंत दंसन दिस्टं, सुद्ध सहावेन विमल दिष्टीओ ॥ ४६९ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन अंग स उत्तं) अब सम्यग्दर्शनके अंगोंको कहते हैं (सम्यक दंसनस्य सुद्ध सद्भाव) सिद्धोंमें सम्यक्दर्शन शुद्ध होता है (अनंत दंसन दिस्टं) उनमें अनंत दर्शन भी देखा जाता है (सुद्ध सहावेन विमल दिष्टीओ) उनका स्वभाव शुद्ध है इससे उनकी दृष्टि निर्मल है।

भावार्थ—सिद्धोंमें क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है, उनके स्वभावमें कोई मल नहीं है।

निसंकिय निकंपिय, निविदिगिंच्छा अमूढ दिष्टीओ।
उपगूहन ठिदिकरनं, वाच्छल पहावना अट्ठ अंगानि ॥ ४७० ॥

भावार्थ—इस गाथामें सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंके नाम हैं। (१) निःशंकित अंग, (२) निःकांक्षित

अंग, (३) निर्विचिकित्सा अंग, (४) अमूढ़ दृष्टि अंग, (५) उपगूहन अंग, (६) स्थितिकरण अंग, (७) वात्सल्य अंग, (८) प्रभावना अंग।

निःशंकित अङ्ग।

निसंक संक रहिओ, नव सभाव रहिय संक विरयंति।
निसंक ज्ञान अनुमोयं, पज्जय अज्ञान संक विलयंति ॥ ४७१ ॥

अन्वयार्थ—(निसंक सक रहिओ) सिद्ध भगवान निःशंक हैं। उनमें कोई शंका नहीं होसक्ती (नव सभाव रहिय संक विरयंति) उनमें कोई नूतन स्वभावका प्रकाश नहीं है, प्राचीन स्वाभाविक भाव है इससे शंका हो नहीं सक्ती (निसंक ज्ञान अनमोय) वे शंकारहित शुद्ध ज्ञानमें आनन्दित हैं (पज्जय अज्ञान संक विलयंति) शरीर सम्बन्धी अज्ञान व संशय सब विला गये हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें यथार्थ निःशंकित भाव है। वहां शंकाका कोई स्थान नहीं है। न शरीर है न ज्ञानावरण कर्मका उदय है न अल्प ज्ञान है। वहां परम निःशंक केवलज्ञान व क्षायिक सम्यक्त प्रगट है। वे अपने स्वभावके भीतर विना किसी शंकाके व विना किसी भयके मगन हैं। कोई उनका विगाड़ नहीं कर सक्ता है इससे भी निःशंक हैं।

अज्ञानं नहु पिच्छदि, अज्ञान भाव सयल तिक्तं च।
ज्ञान सहाव अनुमोयं, विमल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४७२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानं नहु पिच्छदि) सिद्धोंमें कोई अज्ञान नहीं देखा जाता है (अज्ञान भाव सयल तिक्तं च) ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे सर्व अज्ञान भावका त्याग होगया है (ज्ञान सहाव अनुमोय) वे अपने ज्ञान स्वभावमें आनन्दरूप हैं (विमल सहावेन कम्म संपिपनं) उन्होंने अपने विमल स्वभावसे कर्मोंका क्षय कर दिया है।

भावार्थ—सिद्धोंके अनन्त ज्ञान है-शुद्ध भावका प्रकाश है। वहां शङ्काका कोई काम नहीं हैं।

पर पज्जाय न पिच्छं, पज्जय परिनाम सयल गलियं च।
ज्ञान सहाव सुसमयं, निसंक भाव कम्म विलयंति ॥ ४७३ ॥

अन्वयार्थ—(पर पज्जाय न पिच्छ) सिद्धोंमें कोई कर्मजनित पर पर्याय नहीं देखी जाती है (पज्जय परिनाम सयल गलियं च) शरीर व कर्मोदय सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (ज्ञान सहाव सुसमयं) वहां ज्ञान स्वभावी अपना आत्मा ही प्रगट है (निसंक भाव कम्म विलयंति) शुद्ध शंका रहित दृढ़ निश्चय रत्नत्रयमई भावोंके द्वारा उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें शुद्ध क्षायिक भाव है। किसी भी कर्मका उदय नहीं है जिससे शंका हो, वे ही शुद्ध निःशंकित अङ्गके धारी हैं। समयसारमें इस अङ्गका स्वरूप यह है—

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्मोहबाधकरे। सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४४ ॥

भावार्थ—जो कोई कर्म बन्धक, मोह उत्पादक व बाधा करनेवाले मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग इन चारों बन्ध कारणोंको छेद डालता है, वह शङ्का रहित आत्मा सम्यग्दृष्टी मानना योग्य है। सिद्धोंके ये चारों ही नहीं हैं इसीलिये वे पूर्ण निःशंक हैं।

निःकांक्षित अङ्ग।

कंषा रहित सुभावं, इन्द धरनिंद पज्जाव नहु पिच्छं।
चक्क पज्जाव विमुक्कं, पज्जायं अज्ञान सुयं पिपनं च ॥ ४७४ ॥

अन्वयार्थ—(कंषा रहित सुभावं) सिद्धोंका स्वभाव सर्व प्रकारकी वांछासे रहित है (इन्द धरनिंद पज्जाव नहु पिच्छं) न वहां इंद्र तथा धरणेन्द्रकी पर्यायकी तरफ दृष्टि है (चक्क पज्जाव विमुक्क) न वहां चक्रवर्तीकी पर्यायकी तरफ कोई सम्बन्ध है (पज्जाय अज्ञान सुय पिपन च) पर्याय सम्बन्धी सर्व अज्ञानका नाश होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके शरीर सम्बधी कोई कांक्षा नहीं हो सक्ती है, वे कर्म जनित सर्व पदोंसे उदास हैं। न वहां इन्द्रपदकी न धरणेन्द्रपदकी न चक्रवर्तीपदकी वांछा है। वहां तो कांक्षारूपी अज्ञान है ही नहीं। वे यथार्थ निःकांक्षित अङ्गके पालक हैं।

पज्जाय अनिस्ट रूवं, कंषा रहित विमल स सरूवं ।

पज्जाय कंप विलयं, ज्ञानं अनुमोय कंष रहिएन ॥ ४७५ ॥

अन्वयार्थ—(पज्जाय अनिस्ट रूव) सर्व ही शरीररूपी पर्यायें अनिस्ट हैं, आत्माके लिये हितकारी नहीं हैं (कंषरहित निर्मल स सरूव) सिद्धोंके सर्व कांक्षा रहित निर्मल अपने आत्माका स्वरूप प्रकाशित है (पज्ज य कष विलयं) किसी भी कर्मजनित पर्यायकी कांक्षा वहां नहीं है। (ज्ञान अनुमोय कष रहिएन) जो आत्मज्ञानमें आनन्द मानते हैं उनके कांक्षा होती ही नहीं।

भावार्थ—सिद्ध अपनी शुद्ध आत्मीक पर्यायमें है जो स्वाभाविक है, अविनाशी है तथा सर्वोत्कृष्ट है ऐसी शुद्ध पर्यायमें रहते हुए वे किसी अशुद्ध सशरीर पर्यायकी कैसे वांछा कर सक्ते हैं। वे अपने ज्ञानानन्द भावमें परम संतुष्ट हैं। समयसारमें कहा है—

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफले तहय सव्वधम्मेसु। सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४५ ॥

भावार्थ—जो कोई कर्मोंके फलोंमें व सर्व अस्वाभाविक धर्मोंमें कांक्षा नहीं करता है वह सम्यग्दृष्टी आत्मा निःकांक्षित जानना चाहिये। सिद्धोंमें यह स्वभाव भले प्रकार घटता है।

निर्विचिकित्सित अङ्ग ।

विचि संसार सुभावं, विचं न पिच्छेइ परिनाम विरयंति ।

विचि च अनंत अनिस्टं, विचं न पिच्छेइ कम्म विलयंति ॥ ४७६ ॥

अन्वयार्थ—(विचि ससार सुभावं) घृणा करना यह संसारी प्राणियोंका स्वभाव है (विचं न पिच्छेइ परिनाम विरयंति) सिद्धोंके घृणाभाव नहीं देखा जाता है, उनके भाव विरक्त हैं। (विचि च अनन्त अनिस्टं) घृणाके सर्व ही भाव हानिकारक हैं (विच न पिच्छेइ कम्म विलयंति) सिद्धोंके घृणा नहीं देखी जाती है क्योंकि कर्मोंका क्षय हो गया है।

भावार्थ—मान कषायके उदयसे संसारी प्राणियोंके घृणा भाव होता है। सिद्धोंके मान कषाय नहीं

हैं। उनके कोई कर्म ही शेष नहीं रहे हैं, वे पूर्ण वीतराग हैं, अतएव विचिकित्सा दोषसे रहित हैं।

विचिं न अप्प सहावं, दंसन ज्ञानं च अनुमोय विमलं च ।
अज्ञान विचि नहु पिच्छं, सुद्धं सहकार निव्विचं पिच्छं ॥४७७॥

अन्वयार्थ—(विचि न अप्प सहावं) घृणाका भाव आत्माका स्वभाव नहीं है, विभाव है (दंसन ज्ञानं च अनुमोय विमल च) सिद्धोंके दर्शन, ज्ञान व आनन्द निर्मल प्रगट हैं (अज्ञान विचि नहु पिच्छं) इसलिये अज्ञानमई विचिकित्सा भाव सिद्धोंमें नहीं देखा जाता है (सुद्धं सहकार निव्विच पिच्छ) शुद्ध स्वभावके होनेसे वहां विचिकित्सा रहित भाव ही देखा जाता है।

भावार्थ—सिद्धका आत्मा शुद्ध स्वभावमें है इसलिये विभाव भावका अभाव है। वे यथार्थ निर्विचिकित्सित अङ्गके धारी हैं। समयसारमें कहा है—

जो ण करेदि दु गुछ चेदा सव्वेसिमेव धम्माण। सो खलु णिव्विदिगिंच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४६ ॥

भावार्थ—जो कोई सर्वही वस्तुके स्वभावोंमें घृणा नहीं करता है, उनको जैसा उनका स्वभाव है वैसा जानता है वही सम्यग्दृष्टी आत्मा निर्विचिकित्सित अङ्गका धारी मानना चाहिये।

अमूढदृष्टि अंग।

मूढ सहावं तिक्तं, मूढं लोयं च पज्जाय संदिट्ठं ।
पर सुभाव पज्जायं, मूढं दिट्ठी च गलिय परिनामं ॥ ४७८ ॥

अन्वयार्थ—(मूढ सहावं तिक्त) सिद्धोंमें मूढ़ स्वभावका त्याग है। (मूढं लोय च पज्जाय सदिट्ठं) मूढ लोगोंकी दृष्टि पर्जाय पर देखी जाती है (पर सभाव पज्जाय) वे पर्याय आत्माके स्वभावसे भिन्न परस्वभावरूप हैं (मूढं दिट्ठी च गलियं परिनामं) सिद्धोंके मूढदृष्टि मई सव परिणाम गल गए हैं।

भावार्थ—लौकिक प्राणी किसी कामनाको लेकर कुधर्मको धर्म मानकर सेवते हैं। सिद्धोंके न शरीर है न कोई इच्छा है न कोई पर पर्याय पर दृष्टि है। वे अपनी स्वाभाविक सिद्ध पर्यायमें मगन हैं। उनके वे सर्व कर्म ही गल गए हैं जिनके उदयसे मूढ़ताका भाव होसके।

अमूढ अरूव रूवं, दिट्ठं विमलं च ज्ञान विज्ञानं ।
अमूढ दिट्ठि भनियं, दंसन अंगं च कम्म विलयंति ॥४७९॥

अन्वयार्थ—(अमूढ अरू। रूवं) आत्माका स्वभाव मूढ़ता रहित तथा अमूर्तीक है (दिट्ठं विमलं च ज्ञान विज्ञानं) सिद्धोंने उस निर्मल ज्ञान स्वभावको देखा लिया है (अमूढ दिट्ठि भनियं) इसीसे उनके भीतर अमूढ़ दृष्टि कही गई है (दंसन अंग च कम्म विलयंति) इसी क्षायिक सम्यग्दर्शनके अंगसे उनके कर्मोंका नाश हुआ है।

भावार्थ—सिद्ध भगवान शुद्ध ज्ञान श्रद्धान चारित्रमई है इसलिये शुद्ध स्वभावमें शुद्धताके साथ मगन है। उनके पूर्ण यथार्थ अमूढ़ दृष्टि अंग है। समयसारमें कहा है—

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु। सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४७ ॥

भावार्थ—जो सर्व ही कर्मोंके उदयरूप भावोंको उनही स्वरूप यथार्थ जानता है तथा आत्माको आत्मारूप शुद्ध यथार्थ जानता है वही सम्यग्दृष्टी आत्मा अमूढ़ दृष्टिका धारी जानना योग्य है!

उपगूहन अंग।

उवगूहन सुभावं, ज्ञानी दोसं न दृस्यते भावं ।
पज्जायं पर विलयं, ज्ञानी अनुमोय कम्म विलयंति ॥ ४८० ॥

अन्वयार्थ—(उवगूहन सुभावं) सिद्ध भगवान उपगूहन स्वभावके धारी हैं (ज्ञानी दोसं भावं न दृस्यते) वे आत्मामें लीन ज्ञानी परके दोषोंपर दृष्टि नहीं देते हैं (पज्जायं पर विलयं) उनके कषाय जनित पर पर्याय सर्व विला गई है (ज्ञानी अनुमोय कम्म विलयंति) ज्ञानी आत्मानन्दमें मगन हैं इसीसे सर्व कर्मोंका क्षय है।

भावार्थ—परके दोषोंको ग्रहण करके परकी निन्दा करना अनुपगूहन नामका दोष है। सम्यग्दृष्टी समभावके धारी होते हुए परके औगुण नहीं ग्रहण करते हैं। सिद्ध भगवान तो परम ज्ञानी व परम सम्यक्ती व परम चारित्रवान हैं। वे वस्तु स्वभावके ज्ञाता इस दोषसे सर्वथा मुक्त हैं। वे ज्ञानानन्दमें मगन होकर अपने स्वरूपमें तन्मय हो परम उपगूहन अङ्गके पालक हैं।

गुन रूवं उवएसं, ज्ञानी सभाव कम्म षिपनं च ।
दोसं नन्त न पिच्छं, गुन अनुमोय ज्ञान विमलं च ॥४८१॥

अन्वयार्थ—(गुन रूवं उवएस) सिद्ध भगवान आत्मीक गुणोंके स्वभावका उपदेश अपने स्वभावके प्रकाशसे देरहे हैं। दोषका प्रकाश तो है ही नहीं (ज्ञानी सभाव कम्म षिपनं च) ज्ञानी सिद्ध भगवानके स्वभावका प्रकाश है इसीसे कर्मोंका क्षय है (दोस नन्त न पिच्छ) उनमें अनन्त दोषोंमेंसे एक भी दोष नहीं देखा जाता है (गुन अनुमोय ज्ञान विमलं च) उनमें आनन्द गुण व निर्मल ज्ञान है।

भावार्थ—सिद्धोंमें स्वयं न कोई दोष है न वे परके दोषके ग्रहण करनेवाले हैं। वे अपने स्वरूपसे आत्मीक गुणोंके ही प्रकाशक हैं। उनके पूर्ण उपगूहन अंग है। समयसारमें कहा है—

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उपगूहणगो दु सव्वधम्माणं। सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४८ ॥

भावार्थ—जो आत्माको सिद्ध सम जानके उसीकी भक्तिमें लीन हैं तथा सर्व विभावरूपी दोषोंको दूर करनेवाले हैं उन्हें उपगूहन अंग धारी सम्यग्दृष्टी जानना योग्य है।

स्थितीकरण अंग।

स्थितिकरन स उत्तं, ज्ञानी ज्ञानं च अनुमोय समयं च ।
पजायं नहु पिच्छं, स्थिति अंगं च कम्म विलयंति ॥ ४८२ ॥

अन्वयार्थ—(स्थितिकरन स उत्त) उसे स्थितिकरण अङ्ग कहा जाता है जहां (ज्ञानी ज्ञानं च अनुमोय समयं च) ज्ञानी सिद्ध भगवान अपने ज्ञान व आनन्दमय आत्मामें स्थित हैं (पज्जायं नहु पिच्छं) किसी भी कर्मजनित अशुद्ध पर्यायपर उनकी दृष्टि नहीं है (स्थिति अंगं च कम्म विलयंति) इस स्थितिकरण अङ्गके द्वारा उनके सब कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें सदा तल्लीन हैं। कभी भी उस स्वभावसे चलायमान नहीं होते हैं। इसी स्वचारित्र रूप स्थितिकरण अङ्गसे वे कर्मोंसे सदा मुक्त रहते हैं।

समयसारमें कहा है—

उम्मग्गं गच्छतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाण । सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४९ ॥

भावार्थ—जो कुमार्गमें जाते हुए आत्माको रोककर मोक्षमार्गमें स्थापित करता है वह स्थितिकरण अङ्गका धारी सम्यग्दृष्टी मानना योग्य है ।

वात्सल्य अग ।

विज्ञानं वाच्छलं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं ।
दंसण ज्ञान सुसमयं, विमल सहावेन चरन संयुत्तं ॥ ४८३ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं वाच्छलं) ज्ञान रूप रहना ही वात्सल्य भाव है। अपने स्वभावसे प्रेम है (ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं) ज्ञान रूप रहना ही सहज केवलज्ञानका सहायक है (दंसन ज्ञान सुसमयं) वहां अपना आत्मा ही सम्यग्दर्शन है, अपना आत्मा ही सम्यग्ज्ञान है (विमल सहावेन चरन संयुत्तं) तथा अपने ही निर्मल स्वभावमें तिष्ठना ही सम्यक्चारित्र है ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानका परम प्रेम अपने निश्चय रत्नत्रय स्वभावसे है। वे आप आपमें परम गाढ़ भावसे तल्लीन हैं ।

चरनं पि सुद्ध चरनं, संयम चरनस्य सुद्ध स सहावं ।
विलयंति कम्म मलयं, वाच्छलंगं ज्ञान विज्ञान अनुमोयं ॥ ४८४ ॥

अन्वयार्थ—(चरन पि सुद्ध चरनं) सिद्ध भगवानमें चारित्र भी शुद्ध आत्मामें चर्यारूप है (सुद्ध स सहाव संयम चरनस्य) शुद्ध अपने स्वभावमें तिष्ठना ही संयमाचरण है (कम्म मलयं विलयंति) जिससे कर्मरूपी मल दूर होगए हैं (ज्ञान विज्ञान अनुमोय वाच्छलग) वे सिद्ध भगवान अपने ज्ञान स्वभावमें आनन्दरूप हैं। यही वात्सल्य अङ्ग है ।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान अपने स्वभावमें परम प्रेमालु हैं, लीन हैं व परमानन्दका विलास ले रहे हैं, वात्सल्य अङ्ग पाल रहे हैं। समयसारमें कहा है—

जो कुणदि वच्छलत्तं तिण्हे साधूण मोक्खमग्गम्मि । सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २५० ॥

भावार्थ—जो मोक्षमार्गके साधक रत्नत्रय धर्ममें परम प्रेम करता है वही वात्सल्य अङ्गका धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिये।

प्रभावना अंग।

प्रभावना सहाव उत्तं, परमं तत्वं च भाव विमलं च।
अप्पा परमप्पानं, विमल सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ४८५ ॥

अन्वयार्थ—(प्रभावना सहाव उत्तं) सिद्धोंका प्रभावना स्वभाव यह कहा गया है कि (परमं तत्वं च भाव विमल च) उनके भीतर परम आत्म-तत्व व शुद्ध भाव प्रकाश होरहा है (अप्पा परमप्पानं) उनका आत्मा परमात्मारूप है (विमल सहावेन मुक्ति गमनं च) वे शुद्ध स्वभावमें होकर मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं।

भावार्थ—सच्ची प्रभावना आत्म प्रभावना है। सिद्धोंकी आत्मामें पूर्ण प्रभाव रत्नत्रय धर्मका प्राप्त है। वे सिद्ध गतिमें हैं। जो करना था उसको कर चुके हैं। समयसारमें कहा है—

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा। सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २५१ ॥

भावार्थ—जो कोई आत्मज्ञानरूपी विद्याके रथपर आरूढ़ होकर मनरूपी रथके वेगोंको नाश करता है, सो जिनेन्द्रके ज्ञानका प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टी जानना योग्य है।

अङ्गं अस्ट स उत्तं, निसंक भाव सयल विज्ञानं।
संक सहावं तिक्तं, निसंक अङ्ग सयल संजुत्तं ॥ ४८६ ॥

अन्वयार्थ—(अस्ट अग स उत्त) इसतरह आठ अंग कहे गये हैं (निसक भाव सयल विज्ञान) सिद्ध भगवान शङ्का रहित सर्व ज्ञानके धारी हैं (सक सहावं तिक्त) शङ्कामई भाव वहां बिलकुल नहीं है (निसंक अग सयल संजुत्तं) सिद्धोंके पूर्ण निःशङ्कित अंग है।

भावार्थ—सिद्धोंके निश्चल केवलज्ञान है। यही निःशङ्कित भाव है।

निसंक संक विलयं, अंगं अस्टं च निम्मलं विमलं।
इस्टं संजोय सुद्धं, कम्मं पिपिऊन मुक्ति गमनं च ॥ ४८७ ॥

अन्वयार्थ—(निसंक सक विलयं) सिद्ध भगवान पूर्ण निःशंक हैं, उनकी शंका सब विला गई है (अस्टं अगं च विम्मल विमलं) इसी तरह उनमें आठों ही अंग परम निर्मलसे निर्मल हैं (सुद्धं इस्टं संजोय) उनको परम हितकारी शुद्ध स्वभावका लाभ है (कम्म पिपिऊन मुक्ति गमन च) वे कर्मोंको क्षय करके मोक्ष पधारे हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है इसलिये आठ अङ्ग भी आत्माके स्वभाव हैं। सिद्धोंके सर्व कर्मोंके क्षयसे इन अंगोंका पूर्ण प्रकाश है।

सिद्धं सहाव उत्तं, सिद्धं मुक्ति भाव सुद्ध सुपएसं।
विज्ञान सहाव उत्तं, ज्ञानं सभाव जान विमलं च ॥ ४८८ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्ध सहाव उत्त) सिद्ध भगवानका स्वभाव कहा गया (सिद्ध मुक्ति भाव सुद्ध सुपएसं) सिद्धोंने मोक्षके स्वभावको सिद्ध कर लिया है। उनके आत्माके सब प्रदेश शुद्ध हैं (विज्ञान महान उत्तं) उनको ज्ञान स्वभाव भी कहते हैं (ज्ञान सभाव जान विमलं च) उनका ज्ञान स्वभाव परम शुद्ध है।

भावार्थ—जो साध्यको सिद्ध कर सके उसे सिद्ध कहते हैं। मोक्षभाव साध्य था, उसे सिद्धोंने सिद्ध कर लिया है। उनकी आत्मामें कोई कर्म पुद्गल शेप नहीं रहा। वह आकाशके समान स्वच्छ है। तथा पूर्ण ज्ञानमई होनेसे उन्हें विज्ञान स्वभाव भी कहते हैं।

एक स्वभावी सिद्ध।

एयं भाव स उत्तं, अप्पं परिनाम मुक्ति सहकारं।
सुयं सुभावं दिट्ठं, सूषम परिनाम कम्म संपिपनं ॥ ४८९ ॥

अन्वयार्थ—(एवं भाव स उत्त) सिद्ध परमात्मा एक भावधारी हैं ऐसा कहते हैं (अप्पं परिनाम मुक्ति सहकारं) वे एक आत्माके अखण्ड अभेद भावके धारी हैं। इसी भावसे मुक्ति होती है (सुय सुभावं दिट्ठं) वे स्वयं

एक स्वभावमें ही प्रगट हैं (सूषम परिनाम कम्म संषिपनं) जो आत्माका एक अतीन्द्रिय सूक्ष्मभाव है वही कर्मोंका क्षय करनेवाला है।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रयकी एकतारूप आत्माका अनुभव गम्य अभेद निर्विकल्प शुद्धोपयोग एक ऐसा भाव है जो अति सूक्ष्म है। मन वचन कायसे ही कर्मोंका क्षय होता है। तब यही भाव कारण समयसाररूप हैं। व यही भाव सिद्धगतिमें सदा बना रहता है। यही भाव कार्य समयसाररूप है। ऐसे एक ही स्वभावके धारी सिद्ध हैं। उनका अनुभव करना योग्य है।

ज्ञान सहावं अप्पं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान संयुत्तं।
दंसन दर्स अनन्तं, अवगाहनं अप्प सुद्ध परमप्पं ॥ ४१० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं अप्प) आत्मा ज्ञान स्वभावी है (ज्ञान विज्ञान ज्ञान संयुत्तं) वही आत्मा भेदविज्ञान तथा आत्मानुभव रूप ज्ञान सहित है (दसन दर्स अनन्त) वही आत्मा अनन्तदर्शनसे देखनेवाली है (अवगाहनं अप्प सुद्ध परमप्प) वह अपने ही शुद्ध परमात्म स्वभावमें मगन है, एक रूप है।

भावार्थ—सिद्ध भगवानकी आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन गुणोंको रखती हुई भी अपने शुद्ध परमात्ममई अखण्ड स्वभावमें तल्लीन है, इसलिये एक स्वभाव रूप है।

अप्पं च वेदियत्वं, अप्पं च चेतन सहाव ज्ञानं च।
आनन्दं परमानन्दं, अप्प सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ४११ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प च वेदियत्व) सिद्ध भगवानके एक आत्मा ही अनुभव करने योग्य है (अप्प च चेतन सहाव ज्ञान च) आत्मा ही अनुभव करनेवाला चेतन स्वभावधारी है व जाननेवाला ज्ञान स्वभावधारी है (आनन्दं परमानन्दं) वही आत्मा परमानन्दमें मगन है (अप्प सहावेन मुक्ति गमन च) सिद्ध भगवान इसी ही आत्मीक स्वभावसे मोक्ष गये हैं।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा यद्यपि व्यवहारनयसे आप आपको जानते हैं व आप आपको अनुभव करते हैं व आप आपके आनन्दको लेते हैं, ऐसा कहा जाता है। तथापि वह एक अखण्ड आत्मीक स्वभाव हीमें लीन हैं व सदा रहेंगे इसलिये वह एक स्वभाव हैं।

मोक्षमार्ग ।

अप्पं च अप्प तारं, नाव विसेसं च पार गच्छंति ।
अप्पं विमल सरूवं, कम्मं पिपिऊन तिविह जोएन ॥४९२॥

अन्वयार्थ—(अप्पं च अप्प तारं) यह आत्मा आप ही अपनेको तारनेवाला है (नाव विसेसं च पार गच्छंति) जैसे कोई नौका विशेष आपसे आप ही समुद्रके पार जाती है (अप्प विमल सरूवं) आत्मा एक शुद्धोपयोग स्वभावधारी है (कम्मं पिपिऊन तिविह जोएन) मन वचन काय तीनों योगोंकी गुप्तिसे इसी शुद्धोपयोग द्वारा कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—आत्मा एक शुद्धोपयोग भावधारी है । यही एक भाव जहाज समान है । जैसे जहाज आप ही चलकर समुद्र पार होजाता है वैसे ही शुद्धोपयोग भावधारी आत्मा आप ही संसारसे पार होता है । यही एक भाव कर्म क्षयकारक है । यही एक भाव सदा बना रहता है, इससे सिद्ध एक स्वभाव हैं ।

इक्कं जिन सरूवं, सुयं षिपनं च कम्म बंधानं ।
अनन्त चतुस्टय सहियं, विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥४९३॥

अन्वयार्थ—(इक्कं जिन सरूवं) सिद्धोंका एक ही तरहका जिन स्वभाव है, वे जीतनेवाले हैं (सुयं षिपनं च कम्म बंधानं) उन्होंने स्वयं ही कर्म बन्धनोंको काट डाला है (अनन्त चतुस्टय सहियं) वे अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय सहित हैं (विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं) उन्होंने अपने शुद्धोपयोग स्वभावसे ही सिद्धि प्राप्त की है ।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा ही यथार्थ जिन हैं, जिन्होंने सर्व कर्मसेनाका संहार कर डाला है व आप परम शुद्ध होगये हैं । अब कभी भी कर्ममल उनको नहीं सताएँगे ।

वीर्यं च सिद्ध सिद्धं, तारन तरनस्य अनुमोय सहकारं ।
हितमित परिनय युत्तं, कोमल सभाव ज्ञान सहकारं ॥ ४९४ ॥

अन्वयार्थ—(वीर्यं च सिद्ध सिद्धं) सिद्ध भगवानने अपने वीर्यसे सिद्धि पाई है (तारन तरनस्य अनुमोय सहकारं) वह वीर्य तारनतरन है । आप ही अपनेको तारनेवाला है । तथा निजानन्दका सहकारी है (हितमित

परिनय युत्त) वह वीर्य हितकारी है, अनन्त है तथा अपनें परिणमनमें लीन है (कोमल सभाव ज्ञान सहकार) वह वीर्य अत्यन्त कोमल स्वभावरूप है । तथा अनन्त ज्ञानका सहकारी है ।

भावार्थ—आत्मामें वीर्य एक गुण है। इसी वीर्यके प्रयोगसे आत्मा अपनेको भवसागरसे तार लेता है । इसलिये वही वीर्य तारनतरन है। इसी वीर्यकी सहायतासे आनन्द सदा बना रहता है व ज्ञान सदा जाना करता है। यह वीर्य अनन्त है, कभी अपने स्वभावके परिणमनसे थकता नहीं। सिद्धोंमें अनन्तवीर्य है।

सिद्धं च सव्व सिद्धं, सिद्धं अंगं च दिगन्तरं सिद्धं ।
सिद्धं अर्थति अर्थ, सामर्थ्य समय दृष्टि अनुमोयं ॥ ४९५ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं च सव्व सिद्ध) सिद्ध परमेष्ठी वह हैं जिन्होंने सर्व सिद्धि प्राप्त करली है (सिद्ध अंग च दिगतरं सिद्ध) जिन्होंने द्वादशांगवाणीका ध्येय सिद्ध कर लिया है व जिन्होंने सर्व लोकालोकको ज्ञान-द्वारा जान लिया है (सिद्ध अर्थति अर्थ) सिद्ध भगवानने आत्मा पदार्थको प्राप्त कर लिया है (सामर्थ्य समय दृष्टि अनुमोयं) उनकी आत्मामें ऐसा वीर्य प्रगट है कि वे आनन्दमई दृष्टिके रखनेवाले हैं ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानने रत्नत्रय धर्मका सार प्राप्त कर लिया है, आत्मासे परमात्मा हुए हैं, नित्य परमानन्दमें मग्न हैं व अनन्तवीर्यके धारी हैं ।

तारनतरन सुभावं, उवइट्ठं इस्ट दिस्टि सुद्धं च ।
अनुमोयं सहकारं, उवएसं विमल कम्म विलयन्ति ॥ ४९६ ॥

अन्वयार्थ—(तारनतरन सुभाव) सिद्ध भगवानका स्वभाव तारणतरण है। वे अपने जिस शुद्ध भावोंके द्वारा संसारसे पार हुए हैं वही स्वभाव दूसरोंको भी तारनेमें समर्थ है। दूसरे उसी स्वभावको पाकर संसारसे पार होजाते हैं (इस्ट सुद्ध दिस्टि च उवइट्ठ) वे अपने शुद्ध स्वभावसे इसका उपदेश देरहे हैं कि शुद्धोपयोगकी दृष्टि ही हितकारी है (अनुमोय सहकारं) इसी दृष्टिमें परमानन्दका सहयोग है (उवएसं विमल कम्म विलयंति) इस शुद्धोपयोग रूपी निर्मल उपदेशको जो अपनेमें अङ्कित करते हैं उनके कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान जिस शुद्धोपयोगसे मुक्त हुए हैं वही शुद्धोपयोग मोक्षके इच्छुकोंको प्राप्त करना चाहिये, यही उनका सम्यक् उपदेश है ।

दर्संति सव्व दर्स, दर्सायंति सुद्ध विमल मल मुक्कं ।
अनुमोयं ज्ञान सहावं, उवएसं विमल कम्म गलियं च ॥ ४९७ ॥

अन्वयार्थ—(सव्व दर्स दर्मंति) सिद्ध भगवान सर्व पदार्थोंको देखनेवाले हैं (सुद्ध विमल मल मुक्कं अनुमोयं ज्ञान सहावं दर्सायंति) तथा वे अपने स्वरूपसे ही शुद्ध रागादि मल रहित आनन्दमय ज्ञान स्वभावरूपी मोक्ष-मार्गको दिखला रहे हैं (उवएसं विमल कम्म गलियं च) जो इस शुद्धोपदेशको ग्रहण करते हैं उनके कर्म गल जाते हैं ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानकी भक्तिका यही फल लेना चाहिये कि हम परमानन्दमई शुद्धोपयोगमें रमण करें जिससे हमारे कर्म गलें ।

इच्छंति मुक्ति पंथं, इच्छा यारेन सुद्ध पंथ दर्संति ।
षिपिऊन तिविह कम्मं, षिपिनक सहकार कम्म विलयन्ति ॥४९८॥

अन्वयार्थ—(इच्छंति मुक्ति पंथं) भव्यजीव मोक्षमार्गकी इच्छा करते हैं (इच्छा यारेन सुद्ध पन्थ दर्संति) वे सिद्ध भगवान उनकी इच्छानुकूल अपने गुण व स्वभावसे ही शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्गको दिखला रहे हैं (षिपिऊन तिविह कम्मं) जिससे तीनों प्रकार कर्म भाव, द्रव्य व नोकर्म क्षय होजावे (षिपिनक सहकार कम्म विलयंति) क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्रके प्रभावसे सर्व कर्म गल जाते हैं ।

भावार्थ—जो मोक्षमार्गपर चलना चाहते हों उनका कर्तव्य है कि शुद्धोपयोगपर चलें इससे कर्म क्षय होंगे ।

चेतन्ति चित्त सुद्धं, सुद्धं स सहाव चेत उवएसं ।
रुचितं विमल सहावं, रुचियन्तो ज्ञान निम्मलं विमलं ॥४९९॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं चित्त चेतंति) सिद्ध भगवान शुद्ध आत्माका ही अनुभव करते हैं (सुद्धं स सहावं चेत उवएसं) उनका यह ही उपदेश है कि शुद्ध आत्मीक स्वभावका ही अनुभव करो (विमल सहावं रुचितं) उसी आत्माके स्वभावकी ही रुचि करो (रुचियन्तो ज्ञान निम्मलं विमलं) उसी रुचिसे ही ज्ञान आवरण रहित और वीतराग होजाता है ।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान शुद्ध आत्मानुभवमें तल्लीन हैं। वे अपने इस स्वभावसे ही दिखला रहे हैं कि शुद्ध आत्मस्वभावकी रुचि व इसीमें चर्या करना मोक्षमार्ग है। इसीसे वीतराग चारित्र व केवलज्ञान होता है।

उत्तं सुद्ध सुद्धं, उत्तायन्तु विमल कम्म विलयं च।
परषे परम सुभावं, परषंतो धुव सुद्ध कम्म गलियं च॥ ५०० ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सुद्धं उत्तं) सिद्धका स्वभाव शुद्ध वीतराग कहा गया है (उत्तायंतु विमल कम्म गलिय च) इस कहे हुए निर्मल स्वभावको प्राप्त करनेसे कर्म विला जाते हैं (परम सुभावं परषे) सिद्ध भगवान उत्कृष्ट स्वभावको देख रहे हैं (सुद्ध धुव परषंतो कम्म गलियं च) उसी शुद्ध अविनाशी स्वभावको देखनेसे या अनुभवनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—जिस मार्गसे चलकर आत्माने सिद्धगति पाई है उसी मार्गपर चलना भव्यजीवोंका कर्तव्य है। शुद्धोपयोग ही शुद्धिका उपाय है।

वोलन्ति वयन जिनियं, वोलन्तो सुद्ध कम्म विलयन्ति।
धरयन्ति धम्म सुक्कं, धरयन्तो सूक्ष्म कम्म षिपनं च॥ ५०१ ॥

अन्वयार्थ—(वोलन्ति वयन जिनियं) श्री जिनेन्द्र अरहन्तने जो वाणी कही है (सुद्ध धलन्तो कम्म विलयन्ति) उसी वाणीको शुद्ध रूपसे यथार्थ कहते हुए व उसपर मनन करते हुए कर्म विला जाते हैं (धम्म सुक्कं धरयन्ति) जो भव्यजीव धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान धारण करते हैं (धरयन्तो सूक्ष्म कम्म षिपनं च) उस शुद्ध ध्यानके धरनेसे सूक्ष्म कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—जिनवाणीका मनन भी कर्मकी निर्जराका कारण है तथा ध्यान तो अवश्य ही सर्व कर्मको क्षय कर डालता है।

पीओसि परम सिद्धं, पीवन्तो विमल ज्ञान सुद्धं च।
रहिओ संसार सुभावं, रहियो सरनि कम्म गलियं च॥ ५०२ ॥

अन्वयार्थ—(परम सिद्धं पीओसि) श्री सिद्ध भगवानने परम सिद्धत्वरूपी अमृतका पान किया है (पीवन्तो विमल ज्ञान सुद्धं च) जो कोई भी आत्मानन्दरूपी अमृतको पीते हैं उनके निर्मल शुद्ध ध्यानकी सिद्धि होती है (रहिओ संसार सुभाव) तथा सांसारिक विभाव मिट जाते हैं (रहियो सरनि कम्म गलियं च) संसार-मार्गसे वह छूटता जाता है और कर्म गलते जाते हैं।

भावार्थ—आत्मानन्दरूपी अमृतका पान करते हुए सिद्धपद प्राप्त हुआ है। अब भी वे सिद्ध उसी अमृतको पीरहे हैं। जो भव्य जीव सिद्धिको पाना चाहें उन्हें इसीतरह आत्मानन्दके अमृतको पीते हुए ध्यानमें एकतान होजाना चाहिये। इसीसे कर्मोंका क्षय होता है।

दिस्टंति तिहुवनग्रं, देषंतो विमल कम्म मुक्कं च।
जिनियं च तिविह कम्मं, जिनयंतो अनिस्ट कम्म बन्धानं ॥५०३॥

अन्वयार्थ—(तिहुवनग्रं दिस्टंति) जो भव्यजीव तीन लोकके अग्रभागमें विराजित सिद्ध भगवानका स्वरूप मनन करते हैं (देषतो विमल कम्म मुक्कं च) उसी शुद्ध स्वरूपको देखनेसे कर्म छूट जाते हैं (जिनिय च तिविह कम्मं) तथा द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्मको जीता जाता है (जिनयतो अनिस्ट कम्म बन्धान) तथा अनिष्ट कर्मका बन्ध नहीं होता है।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवानके ध्यान करनेसे संवर भी होता है व निर्जरा भी होती है। मोक्षका मार्ग शुद्ध स्वरूपका रमण है।

लेतं सुद्ध सहावं, लेयंतो विमल कम्म गलियं च।
कलितं अप्प सहावं, कलयंतो सुद्ध कम्म गलियं च ॥ ५०४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं लेतं) शुद्ध स्वभाव ग्रहण करने योग्य है (विमल लेयंतो कम्म गलियं च) इसी शुद्ध स्वभावका ध्यान करनेसे कर्म गल जाते हैं (अप्प सहावं कलितं) आत्माका स्वभाव ही मनन करना चाहिये। (कलयतो सुद्ध कम्म गलियं च) शुद्ध स्वभावका मनन करनेसे कर्म्म गल जाते हैं।

भावार्थ—सर्वमें सार शुद्धोपयोग है, यही कर्मक्षयका कारण है।

लष्यंतु अलप लषियं, लपयंतो लोयलोय विमलं च ।
अनुमोय विज्ञान ज्ञानं, अनुमोय विसुद्ध कम्म गलियं च ॥ ५०५ ॥

अन्वयार्थ—(अलप लषिय लष्यंतु) मन वचन कायसे न जाननेयोग्य ऐसा जो अलक्ष्य अपना शुद्धात्मा है उसका अनुभव करना योग्य है (लषयतो लोय लोय विमलं च) उसीका अनुभव करनेसे निर्मल केवलज्ञान होजाता है जो लोकालोकको देखनेवाला है (विज्ञान ज्ञानं अनुमोय) भेद विज्ञानपूर्वक आत्मज्ञानमें आनन्द मानना चाहिये (विसुद्ध अनुमोय कम्म गलियं च) शुद्ध आनन्दके लाभसे कर्म्म गल जाते हैं ।

भावार्थ—शुद्ध आत्मीक ध्यान ही मोक्षका उपाय है ।

जानंति ज्ञान विमलं, जानंतो अप्प परमप्प कम्म गलियं च ।
कहंतु विमल ज्ञानं, कहयंतो ज्ञान विज्ञान स सहावं ॥ ५०६ ॥

अन्वयार्थ—(विमल ज्ञान जानति) शुद्ध आत्मज्ञानको जानना चाहिये (जानंतो अप्प परमप्प कम्म गलियं च) आत्माको परमात्माके समान जाननेसे कर्म्म गल जाते हैं (कहंतु विमल ज्ञान) शुद्ध आत्मध्यानको अभ्यासमें लाना चाहिये (कहयंतो ज्ञान विज्ञान स सहावं) अभ्यास करनेसे अपना स्वभाव ज्ञानमय प्रगट होजाता है ।

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनय द्वारा अपनेको शुद्ध वीतरागमय निश्चय करके उसीका ध्यान करना योग्य है । इसीसे केवलज्ञान प्रगट होता है ।

अमरो विमुक्ति पंथं, अमराए मुक्ति ज्ञान सहकारं ।
साहंति ज्ञान अवयासं, साहंति विमल कम्म विलयंति ॥ ५०७ ॥

अन्वयार्थ—(विमुक्ति पथं अमरो) मोक्षका मार्ग अमर अविनाशी आत्माका स्वभाव है (अमराए मुक्ति ज्ञान सहकारं) यही अविनाशी मुक्तिके शुद्ध ज्ञानके प्रकाशका सहकारी है । (ज्ञान अवयास साहंति) यही शुद्ध ज्ञानका साधन है (विमल साहंति कम्म विलयंति) इस विमल साधनसे कर्म विला जाते हैं ।

भावार्थ—मोक्ष भी अविनाशी है व मोक्षमार्ग भी अविनाशी है । आत्माका स्वभाव ही साधन है, वही साध्य है ।

पोषंतु ज्ञान विज्ञानं, पोषंति विज्ञान कम्म षिपनं च ।
सिद्धंतु कम्म षिपनं, सिद्धंति कम्म तिविह मुक्कं च ॥ ५०८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान विज्ञानं पोषतु) भेद विज्ञानका पालन करना चाहिये (पोषति विज्ञान कम्म षिपन च) भेद विज्ञानके सेवनसे ही कर्म गलते हैं। (कम्म षिपनं सिद्धंतु) कर्मका क्षय हो ऐसा साधन करो (सिद्धति कम्म तिविह मुक्कं च) ऐसे साधनसे तीनों ही प्रकार कर्म छूट जाते हैं।

भावार्थ—आत्मा भिन्न है, कर्मादि भिन्न हैं ऐसा मनन करनेसे व ऐसा ध्यान करनेसे ही आत्मा कर्म रहित होता है व मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

गमस्य अगमं दिस्टं, गमयं च अनंतनंत स सरूवं ।
सुनियं च मुक्ति मग्गं, सुनियं ज्ञान सहाव कम्म गलियं च ॥ ५०९ ॥

अन्वयार्थ—(अगमं गमस्य दिष्टं) अगम जो मन, वचन, कायसे न जानने योग्य आत्मा है उसीका ज्ञान स्वरूप देखना चाहिये (गमय च अनतनंत स सरूवं) उसी आत्माका अनंत स्वभाव अनुभव करने योग्य है (मुक्ति मग्गं च सुनियं) मोक्षके मार्गको सुनना चाहिये (सुनियं ज्ञान सहाव कम्म गलियं च) सुन करके आत्माके ज्ञान स्वभावमें लय होनेसे ही कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—मोक्षका उपाय एक आत्मानुभव है, उसीको श्री गुरुके प्रसादसे सुनना चाहिये, जानना चाहिये, धारणा चाहिये व भले प्रकार मनन करना चाहिये। आत्मानुभव हीसे कर्म गलते हैं।

अनुभवं अरूवरूवं, अनुभावंति संसार सरनि विगतं च ।
लीनं च परम तत्वं, लीनायंति मुक्ति कम्म तिक्तं च ॥ ५१० ॥

अन्वयार्थ—(अरूवरूवं अनुभवं) आत्माके अमूर्तिक स्वभावका अनुभव करना चाहिये (अनुभावंति संसार-सरनि विगतं च) आत्माका अनुभव करते करते संसारका भ्रमण मिट जाता है (परम तत्वं च लीनं) उत्कृष्ट आत्माके स्वभावमें लीन होना चाहिये (लीनायंति मुक्ति कम्म तिक्त च) स्व स्वरूपमें लीन होनेहीसे मुक्ति होती है व कर्मोंसे छूटना होता है।

भावार्थ—एक अमूर्तिक शुद्ध आत्माका अनुभव करना व उसीमें लीन होना ही मोक्षका मार्ग है।

गहियं च सुद्ध सुद्धं, गहयंतो विमल सुद्ध सद्भावं ।
जोयंतो जोग युक्तं, जोयंतो ज्ञान दंसन समग्गं ॥ ५११ ॥

अन्वयार्थ—(गहियं च सुद्ध सुद्धं) परम शुद्ध आत्माको ही ग्रहण करना चाहिये (गहयंतो विमल सुद्ध सद्भाव) आत्माके ही ध्यानसे निर्मल शुद्ध स्वभावका प्रकाश होता है (जोयंतो जोग युक्त) उचित धर्म ध्यान शुक्ल ध्यानको ही ध्याना चाहिये (जोयतो ज्ञान दमन समग्ग) इसी ध्यानसे ज्ञान दर्शनकी पूर्णता होजाती है।

भावार्थ—एक शुद्धात्मानुभव ही कर्तव्य है, इसीसे केवलज्ञान होगा।

मानंतु अप्पमानं, मानंतो सुद्धप्प कम्म षिपनं च ।
रचयंति विगत रूवं, रचयंतो अविगत कम्म गलियं च ॥ ५१२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पमान मानतु) आत्माके ज्ञान स्वभावको ही मानना चाहिये (सुद्धप्प मानतो कम्म षिपन च) शुद्धात्माको माननेसे ही कर्मोंका क्षय होता है (विगतरूवं रचयति) अमूर्तीक आत्मामें ही रचना या जमना चाहिये (अविगत रचयंतो कम्म गलियं च) नहीं मिटनेवाले अविनाशी स्वभावमें जमनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—अपने आत्माको निश्चयसे परम शुद्ध जानके श्रद्धान करके उसीका ध्यान करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

परिनय परिनय सुद्धं, परिनाए सुद्ध विमल परिनामं ।
पूरंति कम्म षिपनं, पूराय तिविह कम्म षिपनं च ॥ ५१३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं परिनय परिनय) शुद्ध आत्माकी परिणतिमें परिणमन करना चाहिये (परिनाए सुद्ध विमल परिनामं) निज आत्माके शुद्ध स्वरूपमें रमण करनेसे परम शुद्ध भाव होता जाता है। (पूरंति कम्म षिपनं) अपने स्वरूपमें पूर्ण रूपसे लय होनेसे कर्म क्षय होते हैं (पूराय तिविह कम्म षिपनं च) जो पूर्ण रूपसे परम शुद्ध शुक्लध्यानको प्राप्त होजाते हैं उनके तीनों ही प्रकारके कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग है। इसीकी पूर्णता जब होती है तब द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे छूटकर यह जीव परमात्मा होजाता है।

साधंतु अर्थ सुद्धं, साधयंति पंच दित्ति परमेस्टी ।
ऋतन्तु ऋत्यरूवं, ऋतायन्ति विमल कम्म गलियं च ॥ ५१४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध अर्थ साधंतु) शुद्ध पदार्थका साधन करना चाहिये (साधयति पंच दित्ति परमेस्टी) साधन करनेसे पांच दीप्ति या पांच जोतिरूप पांच परमेष्टी पद सिद्ध होता है। (ऋत्यरूवं ऋतंतु) सत्यार्थ आत्मा स्वरूपमें सत्यतासे जमना चाहिये (ऋतायंति विमल कम्म गलिय च) शुद्ध सत्य स्वरूपमें जमनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—शुद्धात्माके ही ध्यानसे साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहंत व सिद्ध परमात्मा होता है। ये ही पांच चमकते हुए उत्कृष्ट पद जगतमें हैं। सत्यात्माके ही अनुभवसे कर्मोंका क्षय होता है।

सोधं च परम सुद्धं, सोधयं पर्म भाव विमलं च ।
अवयास नंतनंतं, अवयास संसार सरनि मुक्तं च ॥ ५१५ ॥

अन्वयार्थ—(सोधं च परम सुद्धं) परम शुद्धभावकी खोज करनी चाहिये (सोधयं पर्म भाव विमलं च) खोज करनेसे उत्कृष्ट शुद्ध भाव प्राप्त होजाता है (अवयास नंतनंतं) ज्ञानमें अनन्तानंत लोकके जाननेकी शक्ति है (अवयास ससार सरनि मुक्तं च) उस ज्ञानके प्रकाश होते ही संसारका भ्रमण छूट जाता है।

भावार्थ—शुद्ध भावका ध्यान करनेसे भाव शुद्ध होजाता है और केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है।

इस्टं संजोय इस्टं, इस्टाए नंत इस्ट दिस्टं च ।
गंजंतु कम्म तिविहं, गंजायंतु कम्म भाव उववन्नं ॥५१६॥

अन्वयार्थ—(इस्ट सजोय इस्ट) हितकारी संयोगकी ही इच्छा करनी चाहिये (इस्टाए नंत इस्ट दिस्टं च) ऐसी इच्छासे ही अनन्त परम प्रिय आत्माका स्वभाव दीख जाता है (गंजंतु कम्म तिविहं) द्रव्यकर्मादि तीनों प्रकार कर्मोंको जीतना चाहिये (गंजायंतु कम्म भाव उववन्नं) तथा कर्मोंके बन्धकारक भावोंको भी जीतना चाहिये।

भावार्थ—आत्माका हित आत्माका ध्यान है, इसीसे मोक्ष होता है। इसका अभ्यास करना जरूरी है।

दमनं कम्म सहावं, दमनाए नोकम्म दव्व कम्मं च ।
गलंतु परिनाम अभावं, गलयंति मिच्छ कम्म विलयंति ॥५१७ ॥

अन्वयार्थ—(दमनं कम्म सहावं) भावकर्मोंको दमन करना चाहिये (दमनाए नोकम्म दव्व कम्मं च) रागादि भाव कर्मोंको दमन करनेसे ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म न होंगे न शरीरादि नोकर्म होंगे (गलंतु परिनाम अभावं) क्षणभंगुर मिथ्या भावोंको हटाना चाहिये (गलयति मिच्छ कम्म विलयंति) मिथ्यात्वके गलनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—रागादि भाव कर्म ही संसारके बीज हैं। इन हीसे आठों कर्मका बंध होता है। कर्मके उदयसे नया शरीर मिलता है। बीजको जलानेसे कर्म व शरीर दोनों न रहेंगे, परमें अहंबुद्धि यह क्षणभंगुर मिथ्या भाव है। इसी मिथ्यात्वके दूर होनेपर व सम्यक्तके प्रगट होनेपर सर्व कर्म अवश्य क्षय हो जांयगे।

विरयं संसार सुभावं, विरयंतो कम्म तिविह जोएन ।
तिक्तंतु कम्म तिविहं, तिक्तंतो असुह कम्म विलयंति ॥५१८॥

अन्वयार्थ—(विरय ससार सुभावं) संसारके अथिर स्वभावसे विरक्त रहना चाहिये (विरयंतो कम्म तिविह जोएन) तब मन वचन काय तीनों योगोंकी गुप्तिसे कर्म्म क्षय होजाते हैं (तिविहं कम्म तिक्तंतु) द्रव्य कर्मादि तीनों प्रकार कर्मोंसे त्याग भाव करना चाहिये (तिक्तंतो असुह कम्म विलयंति) त्याग भाव करनेसे पापकर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—जब संसारसे वैराग्य होता है व द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे त्यागभाव जागृत होता है तब ही कर्मका बंध रुकता है व पुरातन कर्म्म झड़ते हैं।

विज्ञान ज्ञान युत्तं, विज्ञान ज्ञान कम्म षिपनं च ।
अनन्त चतुस्टय सहियं, अनन्ताए नन्तदिस्टि विमलं च ॥५१९॥

अन्वयार्थ—(विज्ञान ज्ञान युत्त) जब यह जीव भेदविज्ञानको प्राप्त कर लेता है तब (विज्ञान ज्ञान कम्म षिपनं च) तब आत्मज्ञानके अनुभवसे कर्मोंका क्षय होता है (अनन्त चतुस्टय सहियं) जब अनन्तज्ञानादि चतुस्टय प्रगट

हो जाते हैं (अनन्ताए नन्त दिस्टि विमलं च) तब शुद्ध भाव जग जाता है जो अनंतशक्तिका धारी है।

भावार्थ—भेदविज्ञान आत्मानुभवका कारण है। आत्मानुभव कर्मोंके क्षयका कारण है व अनन्तज्ञानादिका प्रकाशक है। जब अनन्तज्ञानादि प्रगट होजाते हैं तब शुद्धोपयोग अनन्तशक्तियुक्त प्रकाशित रहता है।

सिद्धस्वरूप मनन।

एयं अनेय भावं, तरंति तारयंति सुद्ध सद्भावं।
सिद्धं च सर्व सिद्धं, अनुमोयं परिनाम सुद्ध विमलं च ॥५२०॥

अन्वयार्थ—(एयं अनेय भावं) एक भाव व अनेक भावके धारी सिद्ध भगवान (सुद्ध सद्भावं) शुद्धोपयोगके धनी (तरंति तारयन्ति) आप तर चुके हैं व दूसरोंके तारनेके कारण हैं (सिद्धं च सर्व सिद्धं) सर्व सिद्ध भगवान अपने आत्माके कार्यको सिद्ध कर चुके हैं (अनुमोयं परिनाम सुद्ध विमलं च) वे आनन्दमय भाव व परम शुद्ध भावके धारी हैं।

भावार्थ—अभेदकी दृष्टिसे सिद्ध भगवान एक अखण्ड स्वभावके धारी हैं भेद अपेक्षा ज्ञान दर्शन सम्यक्त आदि भावोंके धारी हैं। सर्व ही सिद्ध अपना काम कर चुके हैं। कृतकृत्य हैं। वे परमानन्दमय व शुद्ध भावमें तल्लीन हैं।

सिद्धं अनंत रूवं, रूवातीतं च विगत रूवं च।
विमलं च विमलरूवं, कम्म षिपिऊन मुक्तिगमनं च ॥ ५२१ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं अनंत रूवं) सिद्ध भगवान अनंतगुणोंके धारी हैं (रूवातीतं च विगतरूपं च) उनका स्वरूप अतीन्द्रिय गम्य है, वे शरीर रहित हैं, अमूर्तीक हैं। (विमलं च विमलरूवं) वे सर्व भावकर्म मलरहित शुद्धोपयोगी हैं (कम्म षिपिऊन मुक्ति गमनं च) वे कर्म्मोंको क्षय करके मोक्षको गए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान अमूर्तीक होनेपर भी ज्ञानानंद आदि अनंतगुणोंके धारी एक अतीन्द्रियगोचर परम शुद्ध पदार्थ हैं। वे सर्व कर्म क्षय करके मुक्त हुए हैं।

सिद्धं सुद्धो सुद्धं, विमल सहावेन कम्म विलयं च ।
अप्पा परमानंदं, परमप्पा मुक्ति सिद्धि संयत्तं ॥ ५२२ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं सुद्धो सुद्धं) सिद्ध भगवान द्रव्यकर्मसे भी रहित है व भावकर्मसे भी रहित हैं अतएव परम शुद्ध हैं (विमल सहावेन कम्म विलयं च) उन्होंने अपने निर्मल स्वभावसे कर्मोंका क्षय कर डाला है (अप्पा परमानंदं) उनका आतमा परमानंदमय है (परमप्पा मुक्ति सिद्धि संयत्त) वे ही परमात्मा हैं, मुक्त हैं व सिद्धिको पाचुके हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान सर्व रागादि मल व ज्ञानावरणादि कर्मसे रहित हैं, नित्य परमानंदमें लीन हैं।

परम भाव दरसीए, परमं परमप्प अप्प विमलं च ।
ज्ञानं च ज्ञान अनुमोयं, सिद्धं सुद्धं च सिद्धि संपत्तं ॥ ५२३ ॥

अन्वयार्थ—(परम भाव दरसीए) सिद्ध भगवान उत्कृष्ट भावको देखनेवाले हैं (परमं परमप्प अप्प विमलं च) वे ही श्रेष्ठ हैं, परमात्मा हैं, निर्मल आत्मा हैं, (ज्ञानं च ज्ञान अनुमोय) वे ही ज्ञानमय हैं, वे ही ज्ञानानंदमय हैं, (सिद्ध शुद्धं च सिद्धि संपत्तं) वे ही सिद्ध हैं, शुद्ध हैं वे सर्व सिद्धिको प्राप्त कर चुके हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके अनेक नाम मनन करनेकेलिये लिये जासक्ते हैं। वास्तवमें वे नामसे रहित शुद्ध पदार्थ अनुभवगम्य हैं।

तारनतरन उवन्नो, नंतं अनुमोय ज्ञान सहकारं ।
जिनियं जिनयतिरूवं, जिनियं कम्मान सिद्धि संपत्तं ॥५२४॥

अन्वयार्थ— तारनतरन उवन्नो) वे तारनतरन रूपसे प्रगट हैं। आप तर चुके हैं व दूसरोंको तरनेके निमित्त हैं (नंतं अनुमोय ज्ञान सहकार) अनन्त आनन्द व अनन्तज्ञान सहित हैं (जिनिय जिनयतिरूवं) वे ही जिन हैं। वे ही जिनेन्द्र स्वरूप हैं (जिनियं कम्मान सिद्धि संपत्तं) वे ही कर्मोंको जीत चुके हैं। वे ही सिद्धिको पा चुके हैं।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान ही जिनेन्द्र हैं, कर्मविजयी हैं, वे ही तारनतरन जहाज हैं। जो उनको ध्याते हैं वे अवश्य संसार-सागरसे पार होजाते हैं।

जिनं सहाव उवन्नं, अनुमोयं सहकार ज्ञान स सरूवं ।

ज्ञान सहाव अनुमोयं, समयं संजुत्त सिद्धि संयत्तं ॥५२५॥

अन्वयार्थ—(जिन सहाव उवन्नं) सिद्धमें सत्य जिन स्वभाव उत्पन्न होगया है (अनुमोयं सहकार ज्ञान स सरूवं) आनन्दमय ज्ञानमय अपना स्वरूप प्रगट है (ज्ञान सहाव अनुमोय) ज्ञान स्वभावमें ही आनन्दका वहां अनुभव है (समयं संजुत्त सिद्धि सयत्तं) वे ही स्वात्मरमण चारित्र सहित हैं व सिद्धिको पाचुके हैं।

भावार्थ—आठों कर्मोंको जीतनेवाले सिद्ध भगवान हैं। वे साक्षात् स्वात्मरमण कर्ता आत्मा हैं।

अट्ठ गुन संजुत्तो, अट्ठइ पुहमी च वास समयं च ।

कम्मं तिविह विमुक्को, विमल सहावेन सिद्धिसंपत्तो ॥ ५२६ ॥

अन्वयार्थ—(अट्ठ गुन सजुत्तो) सिद्ध भगवान आठ गुण सहित हैं (अट्ठइ पुहमी च वास समय च) आठमी पृथ्वीके ऊपर उनका निवास सदाकाल रहता है (कम्मं तिविह विमुक्को) तीनों प्रकार कर्मोंसे रहित हैं। (विमल सहावेन सिद्धिसंपत्तो) वे शुद्ध स्वभावसे सिद्धिको पाचुके है।

भावार्थ—सिद्ध परमात्माके ज्ञानावरणादि आठो कर्मोंके क्षयसे मुख्य आठ गुण प्रगट हैं- सम्यक्त, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरुलघुत्व तथा अव्याबाधत्व। वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, वीतरागसम्यक्त व अनंतवीर्यके धारी हैं, इंद्रिय अगोचर होनेसे सूक्ष्म हैं, अमूर्तीक होनेसे जहां एक सिद्ध है वहां बहु अनंत सिद्ध स्थान पासक्ते हैं। उनमें गोत्रकर्मके क्षयसे छोटे बड़ेकी कल्पना नहीं है। उनके सुख भोगमें कोई बाधा नहीं है। न उनके आठ द्रव्यकर्म हैं, न भावकर्म रागादि हैं, न शरीरादि नोकर्म हैं। वे परम शुद्ध स्वभावमें लीन पुरुषाकार आठमी पृथ्वीके ऊपर सिद्धशिलाकी सीधमें तनुवातवलयके अन्त-तक विराजित हैं। उनको पूर्ण सिद्धि प्राप्त होचुकी है, इसीसे परम कृतकृत्य हैं।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

गमणागमणविहीणो फंदणचलणेहि विरहिओ सिद्धो। अव्वाबाहसुहत्थो परमट्ठगुणेहि सजुत्तो ॥ ६८ ॥

लोयालोयं सव्व जाणइ पिच्छेइ करणकमरहियं। मुत्तामुत्ते दव्वे अणंतपज्जायगुणकलिए ॥ ६९ ॥

धम्माभावे परदो गमणं णत्थित्ति तस्स सिद्धस्स । अत्थई अणंतकालं लोयग्गणिवासिउ होउं ॥ ७० ॥

असरीरा जीवघणा चरमसरीरा हवंति किंचूणा । जम्मणमरणविमुक्का णमामि सव्वे पुणो सिद्धा ॥ ७२ ॥

भावार्थ—सिद्ध भगवान गमन आगमन रहित हैं, हलन चलन रहित हैं, बाधा रहित सुखमें लीन हैं, परम शुद्ध आठ गुण सहित हैं, विना इंद्रिय व मनकी सहायताके काम रहित सर्व लोकालोकको व अनन्त गुण पर्याय सहित मूर्तीक अमूर्तीक द्रव्योंको जानते देखते हैं। धर्मद्रव्य लोकके बाहर नहीं है इससे सिद्ध भगवानका गमन लोकके बाहर नहीं है। वे लोकके अग्रभागमें अनन्त काल तक निवास करते रहते हैं। सर्व ही सिद्ध शरीर रहित हैं। तथापि जीवके स्वरूपके घनाकार है, अन्तिम शरीरके आकारसे कुछ कम आत्माका आकार रखनेवाले हैं, जन्म मरण रहित हैं, ऐसे सिद्धोंको वारवार नमन करता हूं। अन्तिम शरीरमें जहां२ आत्माके प्रदेश नहीं हैं जैसे—नखाग्र व केशादि उतना ही आकार सिद्धावस्थामें कम रहता है। वास्तवमें जैसे ध्यानाकार वे शरीरको छोड़ते हैं वैसे ही वहां भी ध्यानाकार आसनसे विराजित रहते हैं।

उवएस सुद्ध सारं, उवइट्ठं परम जिनवर भएन।
विलयं च कम्म मलयं, ज्ञान सहावेन उवएसनं तं पि ॥५२७॥

अन्वयार्थ—(परम जिनवर उवइट्ठं भएन उवएस सुद्ध सारं) श्री अर्हंत परमेष्ठी जिनेन्द्रने जैसा उपदेश किया है उसी प्रमाण मैंने इस उपदेशशुद्धसार ग्रन्थमें उपदेश किया है (ज्ञान सहावेन कम्म मलय च विलय त पि उवएसनं) जिस आत्मीक ज्ञानके स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंका क्षय होता है उसी मार्गका ही मैंने उपदेश किया है।

भावार्थ—श्री तारणस्वामी कहते हैं कि इस ग्रन्थमें मैंने वही आत्मानुभवका मार्ग बताया है। जिससे कर्मोंकी निर्जरा हो। तथा यह उपदेश कोई कल्पित नहीं है, किन्तु वैसा ही है जैसा पूर्वके तीर्थंकरोंने उपदेश किया है।

खडी स्वभाव मनन।

षिपनक भाव संजुत्तं, डण्ड कपाटेन ईर्यपथ सु समयं।
विज्ञान ज्ञान सुद्धं, सेसं संसार सरनि विलयं च ॥ ५२८ ॥

अन्वयार्थ—(षिपनक भाव संजुत्तं) श्री अरहन्त भगवान नौ क्षायिक भाव सहित होते हैं (डंड कपाटेन ईर्यपथ सु समय) जब केवली समुद्घात करते हैं तब दण्ड कपाट प्रतर लोक पूर्ण रूपसे आत्माके प्रदेश सर्व लोकाकाशमें फैल जाते हैं, फिर संकोचित होजाते हैं (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) इससे शुद्ध ज्ञानमई आत्माके प्रदेश शुद्ध होजाते हैं (सेसं संसार सरनि विलयं च) पश्चात् शेष संसारके भ्रमणके कारण चार अघातीय कर्म भी क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—जिस किसी अरहन्त केवलीके आयुकर्मकी स्थिति कम हो व शेष कर्मोंकी अधिक हो तब आयुके बराबर सर्वकी स्थिति करनेके लिये आठ समयमें केवली समुद्घात करते हैं। फिर चौदहवें गुणस्थानमें जाकर सर्व शेष कर्मोंका क्षय करके सिद्ध होजाते हैं।

षिपिऊन कम्म तिविहं, षडी सुभावेन ज्ञान उववन्नं।
सुद्ध सहावं पिच्छदि, कम्मानं बन्ध नंत विलयन्ति ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ—(षडी सुभावेन ज्ञान उववन्नं) खड़ियाके समान श्वेत व शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है (तिविहं कम्म षिपिऊन) तब द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनों ही क्षय होजाते हैं। (सुद्ध सहावं पिच्छदि) तब यह अपने शुद्ध स्वभावको देख लेता है (कम्मान बन्ध नन्त विलयंति) ये सर्व ही अनन्तानन्त कर्मके बन्ध टूट जाते हैं।

भावार्थ—जैसे खड़िया बिलकुल श्वेत होती है वैसे आत्माका निज भाव बिलकुल शुद्ध वीतराग है, कषायोंके रंगसे रंजित नहीं है। इसी शुद्धोपयोग भावमें रमण करनेसे अर्हंत व सिद्धपद होता है।

कमल स्वभाव मनन।

कमल सुभाव संयुत्तं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन।
गगनं तु नन्त दिट्ठं, गगनन्त दिट्ठि कम्म विलयंति ॥ ५३० ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभाव सयुत्त) जब कमल स्वभाव परम आनन्दमय आत्माका परिणाम होता है तब उस शुद्ध प्रफुल्लित आनन्दमय भावके प्रतापसे (तिविह जोएन कम्मान षिपिओ) व मन वचन कायकी गुप्तिसे कर्मोंका क्षय होजाता है (गगन तु नन्त दिट्ठ) तब अनन्त आकाश देखनेमें आजाता है (गगनत दिट्ठि कम्म विलयंति) इस अनन्त केवलज्ञानके प्रकाशसे सर्व ही कर्म विला जाते हैं।

भावार्थ—जैसे फूला हुआ कमल शोभता है, बन्द कमल शोभता नहीं वैसे रागादिसे मलीन भाव शोभता नहीं किन्तु वीतराग विज्ञानमय आत्मानन्दको झलकाता हुआ जो भाव है सो कमलके समान शोभता है। इसी भावमें रमण करनेसे घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान पैदा होजाता है। फिर सर्व ही कर्म गलकर सिद्धपद प्राप्त होजाता है।

नन्त प्रकारं जाने, चरनं चरंति सुद्ध दंसनं विमलं।
नन्दं परमानन्दं, ज्ञाता उत्पन्न कम्म षिपनं च ॥ ५३१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञाता उत्पन्न परमानन्दं नन्दं) ज्ञाता आत्माके जब परमानन्द पैदा होता है तब उसमें वह मगन रहता है (नन्त प्रकार जाने) वह पदार्थोंके अनन्त भेद जानता है (सुद्ध दसन विमल चरनं चरन्ति) वह शुद्ध सम्यग्दर्शन व निर्मल चारित्रमें आचरण करता है (कम्म षिपन च) तथा उसके सर्व कर्मोंका क्षय हो जाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग रत्नत्रय गर्भित व परमानन्दको परिपूर्ण प्रफुल्लित कमल समान है। इसके भीतर शुद्धात्मा कर्मोंका क्षय करके सदा विराजित रहता है।

ज्ञानारूढ सु समयं, नानाप्रकार नन्त परिनामं।
टूटंति मिच्छ भावं, टंकारं मुक्ति कम्म षिपनं च ॥ ५३२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानारूढ़ सु समय) जब अपना आत्मा ध्यानारूढ़ होता है तब (मिच्छभावं नानाप्रकार नंत परिनामं टूटति) मिथ्याभाव और नानाप्रकार अनन्त विभाव परिणाम टूट जाते हैं। (टंकारं मुक्ति) और मुक्ति पानेकी टंकार या तीव्र ध्वनि होती है (कम्म षिपनं च) सर्व कर्म भाग जाते हैं।

भावार्थ—शुद्धोपयोगमें लीन होनेसे सर्व ही रागादि भाव व अज्ञानमई भाव नष्ट होजाते हैं तथा केवलज्ञानका प्रकाश होता है तब ही यह टंकार होती है कि आत्मा मुक्त होगा। तब शीघ्र ही शेष कर्म क्षय होजाते हैं। यह आत्मा मुक्त होजाता है।

ममात्मा सुकिय सुभावं, ममात्मा शुद्धात्म राग षिपनं च।
निम्मल विमल सहावं, कम्म षिपिऊन निव्वुए जंति ॥ ५३३ ॥

अन्वयार्थ— ममात्मा सुकिय सुभावं) मेरा आत्मा निश्चयसे अपने ही स्वभावमें रहता है (ममात्मा शुद्धात्म) मेरा आत्मा ही परमात्मा रूप है (राग षिपन च) इसी भावसे रागका क्षय होजाता है (निम्मल विमल सहावं) तथा वीतराग शुद्ध केवलज्ञानमय स्वभाव झलक जाता है (कम्म षिपिऊन निव्वुए जंति) फिर शेष कर्मोंको क्षय करके यह निर्वाण चला जाता है।

भावार्थ—आत्माको स्वभावमय अनुभव करनेसे ही आत्मा शुद्ध होता है।

कमल सुभाव स उत्तं, कम्मं षिपिऊन सरनि संसारे।
नेक प्रकार सुदिट्ठी, कललंकृत कम राग षिपनं च ॥ ५३४ ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभाव स उत्तं) कमल स्वभाव उसे ही कहते हैं जिससे (संसारे सरनि कम्म षिपिऊन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्म क्षय होजावे (नेक प्रकार सुदिट्ठी) अनेक प्रकारकी शुद्ध दृष्टि अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन आदि प्रगट होजावें (कललकृत कर्म राग षिपनं च) शरीर सम्बन्धी सर्व कर्म व सर्व राग क्षय हो जावे।

भावार्थ—प्रफुल्लित आनन्दमय निश्चय रत्नत्रय स्वरूप शुद्धोपयोग ही आत्माका कमल स्वभाव है जिसके प्रतापसे सर्व विभाव भाव व सर्व कर्म गल जाते हैं और यह आत्मा परमात्मा होजाता है।

कारन कार्य उपत्ती, नन्तानन्त दिट्ठि सम दिट्ठी ।
ज्ञान विज्ञान सु समयं, उववन्नं इस्ट अनिस्ट विलयं च ॥५३५॥

अन्वयार्थ—(कारन कार्य उपत्ती) जैसा कारण होता है वैसे कार्यकी उत्पत्ति होती है (नंतानंत दिट्ठि सम दिट्ठी) सम्यग्दृष्टि ही अपने शुद्धोपयोगके अभ्याससे अनन्त दर्शनको प्रकाश कर सक्ता है (ज्ञान विज्ञान सु समय इस्ट उववन्नं) शुद्धात्माके अनुभवसे ही अपना इष्ट केवलज्ञान स्वरूप आत्मा होजाता है (अनिस्ट विलयं) व आत्माके अहितकारी कर्मोंका क्षय होजाता है ।

भावार्थ—शुद्धोपयोगकी पूर्णता कार्य है, वही मोक्ष है तथा शुद्धोपयोगकी अपूर्णताका कारण है वही मोक्षमार्ग है ।

दीर्घ समयं सु समयं, दीघ सुभाव राग विलयं च ।
नेयं च ज्ञान रूवं, षादं स्वादं च कम्म षिपनं च ॥ ५३६ ॥

अन्वयार्थ—(दीर्घ समयं सु समयं) श्रेष्ठ आत्माका स्वभाव ही अपने आत्माका स्वभाव है (दीर्घ सुभाव राग विलय च) श्रेष्ठ शुद्धोपयोग रूपी आत्माके स्वभावके प्रकाशसे राग विला जाता है । (ज्ञान रूवं च नेयं) तथा ज्ञानका स्वभाव प्रगट होजाता है (षाद स्वादं च कम्म षिपनं च) खाने स्वादनेकी इच्छा उत्पन्न करनेवाला सर्व कर्म क्षय होजाता है अथवा षादं स्वादंके स्थानमें सादासादं शब्द लेवें तो अर्थ होगा कि साता व असाता वेदनीय कर्म क्षय होजाता है ।

भावार्थ—परमात्मा और आत्मा एक सदृश स्वभावधारी हैं, ऐसा ही अनुभव ही अरहन्त व सिद्ध-पदका साधन है ।

माया सरनि अनन्तं, माया कम्मान अनन्त मोहंधं ।
छीनंति ज्ञान रूवं, छीनंति अनिस्ट सरनि संसारे ॥ ५३७ ॥

अन्वयार्थ—(माया अनंतं सरनि) माया कषाय अनन्त संसारका कारण है (माया कम्मान अनंत मोहंधं) यह मायाभाव अनन्तानुबन्धी कषाय और दर्शनमोहको बांधनेवाला है (ज्ञान रूवं छीनंति) इन सर्व कर्मोंको

ज्ञान स्वभावका प्रकाश क्षय कर देता है (संसारे अनिस्ट सरनि छीनंति) संसारमें जो अहितकारी भोग है वह भी क्षय होजाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेसे ज्ञान स्वभाव झलक जाता है तव ही अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता है व संसारमें भ्रमण करानेवाले सर्व विभाव बन्द होजाते हैं।

नो लष्य लष्य लष्यं, नो कम्मान पज्जाय गलियं च।
रतियं आद सहावे, ज्ञान उववन्नं नन्त विमलं च॥ ५३८॥

अन्वयार्थ—(नो लष्य लष्य लष्यं) मन वचन कायसे न जानने योग्य आत्मा जव अनुभवमें आजाता है अर्थात् जव शुद्धात्मानुभव पैदा होजाता है (नो कम्मान पज्जाय गलियं च) तव शरीररूपी पर्यायको लानेवाला कर्म गलने लगता है (आद सहावे रतिय) और जव आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण होजाता है (नन्त विमलं च ज्ञान उववन्नं) तव अनन्त निर्मल केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

भावार्थ—संसारका नाशक एक शुद्धात्मानुभव है।

गगन स्वभाव मनन।

गगन सुभाव उवन्नं, गलंति परभाव पज्जाय अनिस्टं।
हलवंति कम्म भारं, डण्ड कपाटेन नन्त दंसनं चरनं॥५३९॥

अन्वयार्थ—(गगन सुभाव उवन्नं) जव ज्ञानीके अन्तरंगमें आकाशके समान निर्लेप शुद्धात्माका स्वभाव प्रगट होजाता है (अनिस्टं परभाव पज्जाय गलंति) तव सर्व अशुद्ध रागादि भावोंकी परिणतिएं गल जाती हैं (कम्मभार हलवंति) कर्मोंका बोझा घटते घटते हलका होजाता है (डण्ड कपाटेन नन्त दंसनं चरनं) मन वचन कायके निरोधरूप भावसे अर्थात् शुक्लध्यानसे अनन्त दर्शन व यथाख्यात चारित्र प्रगट होजाता है।

भावार्थ—आत्मा स्वभावसे आकाशके समान निर्मल व निर्लेप है। जव ज्ञानीका उपयोग इसी श्रद्धामें, ज्ञानमें व चारित्रमें जम जाता है तव भावकर्म नहीं रहते हैं व घातीय कर्म नष्ट होजाते हैं और केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

मोक्षमार्ग कथन ।

उत्पन्न ऊर्ध सुद्धं, उवलष्यं अद सहाव पर विरयं ।
रिजु विपुलं च सहावं, इस्टं संजुत्त अनिस्ट नहु दिट्ठं ॥५४०॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्न ऊर्ध सुद्ध) जब श्रेष्ठ व शुद्ध ज्ञानोपयोग झलक जाता है (अद सहाव उवलष्यं पर विरय) तब आत्माका स्वभाव अनुभवमें प्रत्यक्ष आजाता है तथा पर भावसे मुक्ति होजाती है (रिजु विपुलं च सहावं) आत्माका स्वभाव सरल व विशाल है (इस्टं सजुत्त अनिस्ट नहु दिट्ठं) उसी प्रिय स्वभावका प्रकाश होजाता है । अज्ञान व कषाय भाव जो आत्माके अनिष्ट हैं वे कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ते हैं ।

भावार्थ—वीतराग विज्ञानमई स्वभावसे ही पूर्ण ज्ञानमय व अनन्त आत्माका स्वभाव झलकता है।

लब्धं विमल सहावं, लंकृत सदव्व पर दव्व नहु पिच्छं ।
ह्रींकार सुध उवनं, हुत परभाव षिपिय मोहंधं ॥५४१॥

अन्वयार्थ— विमल सहावं लब्धं) जब निर्मल आत्माका स्वभाव प्राप्त होजाता है (लंकृत सदव्व) तब अपना आत्मीक द्रव्य शोभायमान होजाता है (पर दव्व नहु पिच्छ) पर द्रव्यका कोई राग नहीं रहता है (ह्रींकारं सुध उवनं) ह्रीं मन्त्रके द्वारा ध्यान करनेसे शुद्ध भाव पैदा होजाता है (हुत परभाव) तब रागादि परभाव नष्ट होजाता है (मोहंध षिपिय) मोह कर्मका क्षय होजाता है ।

भावार्थ—शुद्ध आत्मीक स्वभावका ध्यान ही आत्माकी शुद्धिका कारण है ।

डण्ड कपाटं विमलं, तासंति तिविह कम्मान नेय बन्धानं ।
रोहंति इस्ट रूवं, नू उत्पन्न ज्ञान नट्ठ कम्मानं ॥५४२॥

अन्वयार्थ—(डण्ड कपाटं विमलं) जब निर्मल भाव गुप्तिरूप प्रगट होजाता है (तासंति तिविह कम्मान नेय बधानं) तब द्रव्य कर्मादि तीनों प्रकारके कर्मोंके उत्पन्न करनेवाले अनेक कर्मके बन्धन ढीले पड़ जाते हैं (इस्ट रूवं रोहंति) अपना इष्ट स्वभाव उचतासे झलक जाता है (कम्मानं नट्ठ नू ज्ञान उत्पन्न) तथा घातीय कर्मोंके नष्ट होनेसे उत्कृष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है ।

भावार्थ—जैसे ही शुद्धोपयोगका प्रकाश होता है वैसे ही सर्व कर्मोंके बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। कर्मोंके उदयसे ही भावकर्म होते हैं, शरीरादि नोकर्म होते हैं व नवीन द्रव्यकर्म भी औदयिक भावोंसे बन्धते हैं। जब वीतराग भाव क्षीण कषाय बारहवें गुणस्थानके योग्य होजाता है तब चार घातीय कर्मोंका नाश होकर केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

वरं च आद सहावं, वर दंसन ज्ञान चरन विमलं च।
दुट्ठ नट्ठ कम्मं, डेभं परभाव परमुहो जोगी ॥ ५४३ ॥

अन्वयार्थ—(जोगी परमुहो परभाव डेभ) ध्यान करनेवाला जब पुद्गलकी ओर लेजानेवाले सर्व रागादि पर भावोंको उड़ा डालता है तब (वरं च आद सहावं) श्रेष्ठ आत्माका स्वभाव तथा (वर दसन ज्ञान चरन विमल च) अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व शुद्ध चारित्र प्रगट होजाता है (दुट्ठ नट्ठ कम्मं) तथा दुष्ट आठों कर्म नष्ट होजाते हैं।

भावार्थ—आत्माके ध्यानसे ही सिद्धावस्था प्राप्त होती है।

हंतून कम्म दोसं, अनन्त विसेसेन आद सहकारं।
चेयन अनन्त रूवं, उत्पन्नं परदव्व भाव विलयं च ॥ ५४४ ॥

अन्वयार्थ— कम्म दोस हंतून) रागादि भावकर्मके दोष जब नष्ट होजाते हैं (अनन्त विसेसेन आद सहकारं अनन्त रूवं चेयन उत्पन्न) तब अनन्त गुणोंके साथ आत्माका अनन्त स्वभाव चैतन्यमय झलक जाता है (परदव्व भाव विलयं च) तथा परद्रव्य सम्बन्धी सर्व भाव विलय होजाते हैं।

भावार्थ—वीतरागता ही कर्मोंको जलानेके लिये अग्नि है। इसीके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होजाता है तब आत्मा अपने अनन्त गुणोंके साथ प्रकाशमान होजाता है।

इस्ट सरूव संजोयं, इस्टं परिनाम अनिस्ट विरयंति।
कमलस्य सहजनन्दं, कल लंकृत कर्म कृत्य विरयन्ति ॥ ५४५ ॥

अन्वयार्थ—(इस्ट सरूव संजोयं) जब शुद्धोपयोगरूप हितकारी आत्मस्वभावका संयोग होता है तब

(इस्टं परिनाम अनिस्ट विरयंति) उन उपादेय शुद्ध भावोंके सामने सर्व रागादि अनिष्ट भाव छूट जाते हैं (कमलस्य सहजनंदं) कमलके समान प्रफुल्लित आत्मामें स्वाभाविक आनन्दभाव झलक आता है (चल लकन कर्म क्रय विरयंति) शरीर सम्बन्धी सर्व क्रियाकांड व हलनचलन बन्द होजाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोगके साधनसे ही अरहन्त व सिद्ध पद होता है। सिद्ध सदा निश्चल अपने स्वभावमें आनन्दरूप रहते हैं।

मन विलयं सहकारं, ममात्मा सुद्ध सहाव विमलं च।
तत्काल कम्म गलियं, छेयं परदव्व परमुहो तंपि॥ ५४६॥

अन्वयार्थ—(सहकारं मन विलयं) कर्मोंके वन्धमें सहकारी संकल्प विकल्प रूप मन जहां विलय होगया है (ममात्मा सुद्ध सहाव विमलं च) तब मेरे आत्माका शुद्ध वीतराग स्वभाव प्रगट होजाता है (तत्काल कम्म गलिय) उसी समय कर्मोंका भी क्षय होजाता है। (परदव्व परमुहो तपि छेय) परद्रव्यका भी नाश होजाता है जो पर पर्यायमें लेजाने वाला है।

भावार्थ—मनके मरनेसे ही स्वसंवेदन ज्ञान व स्वानुभव प्रकाश होता है। स्वानुभवमें ही शुद्धात्माका प्रकाश है, इसीको शुक्लध्यान कहते हैं। इसीसे मोहनीय कर्मका व अन्य तीन घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। फिर शरीरोंका सर्व सम्बन्ध छूट जाता है व आत्मा अकेला ही निज स्वरूपमें रह जाता है।

दुबुहि उवन्नं विरयं, दुक्रत परदव्व भाव गलियं च।
मानापमान सुद्धं, ममात्मा ज्ञान सहाव समयं च॥ ५४७॥

अन्वयार्थ—(दुबुहि उवन्न विरयं) शुद्धोपयोगके होनेपर कुबुद्धिका उत्पन्न होना बन्द होगया (दुक्रत परदव्व भाव गलियं च) सर्व दुष्कर्म तथा परद्रव्य सम्बन्धी भाव गल गया (मानापमान सुद्ध) मान तथा अपमानके भावोंसे रहित होगया (ममात्मा ज्ञान सहाव समय च) मेरा आत्मा ज्ञान स्वभावी पदार्थ रह गया।

भावार्थ—जहांतक स्वरूपमें लयता रूप स्वानुभव नहीं है वहांतक रागादि भाव होते हैं व राग-

सहित वचन व कायकी प्रवृत्ति होती है। स्वानुभवके होते ही मन, वचन, कायका पर पदार्थमें परिणमन बिलकुल रह गया। तथा आत्मा अपने स्वभावमें ही प्रकाशित होगया।

तत्वं च तत्व रूवं, तत्वं च परम तत्व परमेस्टी।
जिन वयनं जयवंतं, जयवंतं लोयलोय विमलं च॥ ५४८॥

अन्वयार्थ—(तत्वं च तत्व रूवं) तत्वोंमें मुख्य तत्व आत्माका स्वभाव है (तत्व च परम तत्व परमेस्टी) अथवा तत्वोंमें श्रेष्ठ तत्व अरहन्त परमेष्ठी है (जिन वयनं जयवन्तं) यह जिनवाणी जयवन्त रहो जिसके प्रतापसे परम तत्वका पता लगता है (जयवन्तं लोयलोय विमलं च) निर्मल ज्ञान जयवन्त हो जो लोकालोकको जानता है।

भावार्थ—जिनवाणीका भले प्रकार मनन करनेसे मालूम पड़ता है कि सात तत्वोंमें मुख्य तत्व आत्मा है जो स्वपर ज्ञायक है। आत्मामें भी सार तत्व अरहन्त सिद्ध परमात्मा हैं। इनहीका ध्यान करनेसे व इन समान अपने आत्माको ध्यानेसे केवलज्ञानका लाभ होता है। यह जिनवाणी सदा ही मेरे घटमें प्रगट हो। श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

एवं सगय तच्च अण्णं तहपरगयं पुणो भणिय। सगय णियअप्पाणं इयरं पंचावि परमेट्ठी॥ ३॥

जं पुणु सगय तच्चं सवियप्पं हवइ तह य अवियप्पं। सवियप्प सासवयं णिरासवं विगयसंकप्पं॥ ५॥

जं अवियप्पं तच्चं तं सारं मोक्खकारणं तं च। तं णाऊण विसुद्धं झायह होऊण णिग्गंथो॥ ९॥

भावार्थ—इसतरह तत्व दो प्रकारका कहा गया है—स्वतत्व तथा परतत्व। अपना आत्मा स्वतत्व है। पांच परमेष्ठी परतत्व है। स्वतत्व भी दो प्रकार हैं—एक सविकल्प, दूसरा निर्विकल्प। सविकल्प तत्वसे कर्मोंका आस्रव होता है, निर्विकल्प तत्वसे आस्रव नहीं होता है। जो निर्विकल्प तत्व है, वही सार है, वही मोक्षका कारण है, वही स्वानुभवरूप है, वही शुद्धोपयोगरूप है। ऐसा जानकर सर्व ममता त्यागकर उस शुद्ध निर्विकल्प आत्म-तत्वका ध्यान करो। जहां यह मनन है कि मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ, वीतराग हूँ आदि वह सविकल्प तत्व है, चञ्चल है। जहां कोई विचार नहीं है, भावना नहीं है, केवल स्वरूपमें रमणता है वही निर्विकल्प तत्व निश्चय रत्नत्रय स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग है।

कारण कज्ज उपत्ती, कलुसभाव अनिस्ट नहु दिट्ठं ।
नेयं निरुपम सुद्धं, नेयं परदव्व सहाव गलियं च ॥ ५४९ ॥

अन्वयार्थ—(कारण कज्ज उपत्ती) कारण जैसा होता है वैसा कार्य बनता है (कलुसभाव अनिस्ट नहु दिट्ठं) कारणरूप शुद्धोपयोगमें सर्व अहितकारी मलीन भाव या कलुषभाव नहीं दिखलाई पड़ते हैं, इसीसे यह भाव (नेयं निरुपम सुद्धं) अनुपम शुद्ध भावकी तरफ ले जाता है (नेयं परदव्व सहाव गलियं च) तथा इसीके कारण अनेक परद्रव्य सम्बन्धी भाव गल जाते हैं।

भावार्थ—शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण करना ही आत्माकी शुद्धिका उपाय है।

ममात्मा अमल सरूवं, मल मुक्कं नन्त दंसनं विमलं ।
नेयं च तिक्त असुहं, नेयं च अप्प परमप्प संदरसं ॥ ५५० ॥

अन्वयार्थ—(ममात्मा अमल सरूवं) मेरे आत्माका निर्मल स्वभाव है (मल मुक्कं नन्त दंसनं विमलं) वह सर्व कर्म मल रहित तथा निर्मल अनन्त दर्शनका रखनेवाला है (नेयं च तिक्त असुहं) ऐसी वारवार भावना करनेसे अशुभ कर्मोंका क्षय होजाता है (नेयं च अप्प परमप्प संदरसं) तथा आत्मा परमात्माके दर्शनपर पहुँच जाता है। अर्थात् आत्मा परमात्मा होजाता है।

भावार्थ—अपने आत्माका स्वभाव निश्चयसे परम शुद्ध है, परमात्माके समान ज्ञानानन्दमय है। ऐसी भावना ही आत्माको परमात्माके पदपर पहुँचा देती है।

दुर्लष्य लष्य रूवं, दुबुहि सहकार कम्म विलयन्ति ।
वयनं च सुद्ध वयनं, चेतन संजुत्त कम्म पिपनं च ॥ ५५१ ॥

अन्वयार्थ—(दुर्लष्य लष्य रूवं) जब मन वचन कायसे न जानने योग्य ऐसे अपने ही आत्माका स्वभाव लक्ष्यमें आजाता है तब (दुबुहि सहकार कम्म विलयंति) आत्मज्ञानसे विचलित करनेवाले सर्व कर्म क्षय होजाते हैं (वयनं च सुद्ध वयनं) तब इस आत्मज्ञानीके वचन भी सब शुद्ध निकलते हैं। उनमें संसारवर्द्धक वासना नहीं होती है (चेतन संजुत्त कम्म पिपनं च) आत्माके चैतन्य स्वभावमें रमण करनेहीसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—एक शुद्धात्मानुभव ही मोक्षमार्ग है।

कलं सुभाव न दिट्ठं, ज्ञान विज्ञान सम्म संजुत्तं।
नन्तानन्त सुभावं, उववन्नं परम सुद्ध ज्ञानं च ॥ ५५२ ॥

अन्वयार्थ—(कल सुभाव न दिट्ठं) शुद्धोपयोगमें शरीर सम्बन्धी कोई राग भाव नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञान विज्ञान सम्म संजुत्तं) वहां सम्यग्दर्शन सहित भेदविज्ञान है (नंतानंत सुभावं परम सुद्ध ज्ञानं च उववन्नं) इसी शुद्धोपयोगके अनुभवसे व अभ्याससे आत्माका अनन्त गुणोंका समुदाय रूप स्वभाव श्रेष्ठ शुद्ध केवलज्ञान सहित प्रगट होजाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग वीतराग परिणतिको लिये हुए केवलज्ञानका कारण है।

विमलं दंसन दिट्ठी, मलं न पिच्छेइ पज्जाय अनिस्टी।
सहकारं ज्ञान उवन्नं, नेयं परदव्व भाव गलियं च ॥ ५५३ ॥

अन्वयार्थ—(विमल दंसन दिट्ठी) सम्यग्दर्शनकी निर्मल दृष्टि जब प्रकाशित होती है तब (अनिस्टी पज्जाय मलं न पिच्छेइ) अहितकारी पर्याय सम्बन्धी राग द्वेषादि मल दिखलाई नहीं देते हैं (सहकारं ज्ञान उवन्नं) इसीकी सहायतासे ही केवलज्ञान पैदा होता है (नेयं परदव्व भाव गलियं च) इसके अभ्यासको चलानेसे परद्रव्यके निमित्तसे होनेवाले भाव दूर होजाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनका अनुभव सोही आत्माका अनुभव है। वहां रागादिका झलकाव नहीं दीखता है। इसी वीतराग परिणतिके द्वारा मोहका क्षय होता है तथा केवलज्ञानका प्रकाश होता है।

विज्ञान ज्ञान रूवं, दुबुहि परभाव दोस विलयंति।
ज्ञानं अनाइ सुद्धं, टंकोत्कीर्ण नन्त दंसनं सुद्धं ॥ ५५४ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञान ज्ञान रूवं) भेदज्ञानके द्वारा जो ज्ञानस्वभावी आत्माका अनुभव होता है उससे (दुबुहि परभाव दोस विलयंति) कुबुद्धि व परभाव सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं (अनाइ ज्ञानं सुद्धं) अनादिकालका ज्ञान गुण शुद्ध होजाता है (टंकोत्कीर्ण नन्त दसनं सुद्धं) आत्मामें टांकी द्वारा उकेरी मूर्तिके समान सदा रहनेवाला अनन्त दर्शन भी शुद्ध प्रगट होजाता है।

भावार्थ—आत्मानुभवके अभ्याससे ही सर्व रागादि मल व अज्ञान दूर होकर अनन्तज्ञान व अनन्त दर्शन प्रगट होजाते हैं, जो अनादिसे आत्माके साथ अपने स्वभावमें थे ही। केवल कर्मोंका आवरण था सो दूर होजाता है।

द्वादस तप आयरनं, दुसुभाव दुवुहि परभाव गलियं च।
सहकार सुद्ध आचरनं, सल्यं मुकं च परदव्व विरयंति॥ ५५५॥

अन्वयार्थ—(द्वादस तप आयरनं) बारह प्रकार तपका आचरण करना चाहिये (दुसुभाव दुवुहि परभाव गलियं च) जिससे विभाव भाव व कुज्ञान आदि सर्व परभाव दूर होजावे (सहकार सुद्ध आचरनं) ये तप शुद्ध चारित्रके लिये सहकारी हैं (सल्यं मुकं च) माया, मिथ्या, निदान तीन शल्योंको छोड़ देना चाहिये (परदव्व विरयंति) तथा पर द्रव्योंसे राग भाव दूर करना चाहिये।

भावार्थ—भावोंकी शुद्धिके लिये व ध्यानकी शुद्धिके लिये, इंद्रियोंको जीतनेके लिये शल्यको त्यागकर व संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव धारकर बारह तप साधुको अवश्य करना चाहिये। वे इसप्रकार हैं—

१—अनशन—चार प्रकार आहार त्यागके उपवास करना व धर्मध्यानमें उपयुक्त रहना।

२—ऊनोदर—उदरभर न खाना, कम खाना।

३—वृत्तिपरिसंख्यान—भिक्षाको जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेना, विना कहे पूरी होजानेपर आहार करना, नहींतो उपवास करना।

४—रस परित्याग—दूध, दही, घी, मीठा, लवण, तेल इन छः रसोंमेंसे एक व अनेक त्यागना।

५—विविक्त शय्यासन—एकांतमें शयन व आसन रखना।

६—कायक्लेश—कायको कठिन २ तरहसे रखकर व आसन लगाकर तप करना।

७—प्रायश्चित्त—दोष लगनेपर दण्ड लेकर दोष मेटना।

८—विनय—रत्नत्रय धर्म व धर्मात्माओंका आदर करना।

९—वैय्यावृत्य—रोगी, वृद्ध, निर्बल, थके हुए धर्मात्माओंकी सेवा करना।

१०—स्वाध्याय—शास्त्रोंको पढ़ना व मनन करना।

११—व्युत्सर्ग—शरीरादिसे ममत्व त्यागना।

१२—ध्यान—धर्मध्यानका अभ्यास करना।

विषयं च रायदोषं, दुबुहि षिपनं च सुद्ध सहकारं।
दुर्लष्य लष्य रूवं, वारापारं च नन्त कम्म षिपनं च ॥५५६॥

अन्वयार्थ—(विषयं च रायदोसं दुबुहि षिपनं) पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी इच्छा, राग, द्वेष, अज्ञान इन सबको दूर करना चाहिये (सहकारं सुद्ध दुर्लष्य लष्य रूवं) इसीकी मददसे शुद्ध आत्माका अनुभव होसकेगा जो मन द्वारा दुर्गम्य है और (वारापारं च नन्त कम्म षिपनं च) संसार-समुद्रके भ्रमण करानेवाले अनन्त कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—रागद्वेप मोहको विजय करने व इंद्रियोंको वश करनेसे ही आत्माका ध्यान होसकेगा। इसी ध्यानसे ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

टंकारं सिद्ध रूवं, टंकारं ज्ञान रूढ विमलं च।
कमलं केवल सहियं, कम्म षिपिऊन मुक्ति गमनं च ॥ ५५७ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्ध रूवं टंकारं) सिद्धका स्वरूप ही एक प्रकारकी ध्वनि है जिससे कर्म भाग जाते हैं (टंकारं ज्ञान रूढ़ विमलं च) जो कोई इस टंकार स्वरूप सिद्धके निर्मल ध्यानमें आरूढ़ होजाता है (कमलं केवल सहियं) तब प्रफुल्लित आत्मामें केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (कम्म षिपिऊन मुक्ति गमनं च) और सर्व कर्मका क्षय होकर आत्मा मोक्षमें चला जाता है।

भावार्थ—सिद्ध समान अपने आत्माको ध्यानेसे ऐसी वीतरागता प्रकाशित होती है जिससे अरहंत-पदके पश्चात् सिद्धपद प्राप्त होजाता है।

कमलं अनन्त दिट्ठी, छेयं कम्मान दव्व बंधानं।
छेयं यदि चेयनयं, कमल सुभावेन केवलं ज्ञानं ॥ ५५८ ॥

अन्वयार्थ—(कमलं अनंत दिट्ठी) जब प्रफुल्लित कमलके समान आत्माका उपयोग अनन्त गुणस्वरूपी

आत्मापर दृष्टि रखता है तब (दव्व बंधानं कम्मान छेयं) द्रव्य कर्मोंके बन्धन क्षय होजाते हैं (यदि चेयनयं छेयं) जब चैतन्यका अनुभव रूप छेदनेका शस्त्र होता है तब घातीय कर्मोंका क्षय होकर (वमल सुभावेन केवलं ज्ञानं) प्रफुल्लित शुद्धोपयोगके रमणसे केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

भावार्थ—शुद्धात्माके ध्यानसे जो आत्मानुभूति रूपी छेनी बनती है वही वह शस्त्र है जो घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानको उत्पन्न कर देती है।

षादं षिपनिक रूवं, जैवन्तो परदव्व परमुहो तंपि।
जइ जइवंत सहावं, षादं षिपिऊन पज्जाय गलियं च ॥ ५५९ ॥

अन्वयार्थ—(षिपनिक रूवं षादं) क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिका निर्ग्रंथ रूप कर्मोंके क्षयमें सहकारी है। (परदव्व परमुहो तंपि जैवन्तो) यद्यपि वह परद्रव्य है, शरीरका रूप है व आत्माके स्वभावसे परांगमुख है तौपि जैवन्त रहो (जइ जइवत सहाव) इसका स्वभाव सदा जैवन्त रहो क्योंकि (षादं षिपिऊन पज्जाय गलिय च) इस मुनिलिंगके होते हुए क्षपण योग्य कर्म क्षय होजाते हैं। सर्व कर्मोंके क्षयके पीछे यह क्षपणक शरीर भी गल जाता है।

भावार्थ—इस गाथासे यह दिखलाया है कि केवलज्ञानकी प्राप्तिके लिये निर्ग्रंथ दिगम्बर परिग्रह रहित साधुपद आवश्यक है। यद्यपि शरीरका नग्न होना पुद्गल पर्याय है आत्मासे भिन्न है तथापि इस रूपके होते हुए पूर्ण अहिंसा व पूर्ण परिग्रह त्याग बन सक्ता है व प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें जिसप्रकार ध्यानकी सिद्धि होनी चाहिये वह सिद्धि होती है। इसका बाहरी भेष होते हुए जब साधु भावापेक्षा भी सर्व राग द्वेष मोहका त्यागी होकर ध्यान करता है तब क्षपकश्रेणीपर आरूढ होकर चार घातीय कर्म क्षय कर केवली अरहन्त होजाता है, फिर आयु कर्मके उदय तक वह शरीर जिसकी सहायतासे सिद्धपद होता है, रहता है फिर स्वयं ही छूट जाता है। पुद्गल यद्यपि त्यागने योग्य है परंतु जहांतक साध्यकी सिद्धि न हो वहांतक इसकी सहायता आवश्यक है। श्री नागसेनाचार्यने तत्वानुशासनमें कहा है—

तत्रासन्नीभवेन्मुक्तिः किंचिदासाद्य कारणं। विरक्तः कामभोगेभ्यस्त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥ ४१ ॥
अभ्येत्य सम्यगाचार्यं दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः। तपःसंयमसम्पन्नः प्रमादरहिताशयः ॥ ४२ ॥

सम्यग्निर्णीतजीवादिध्येयवस्तुव्यवस्थितिः । आर्तरौद्रपरित्यागाल्लब्धचित्तप्रसत्तिकः ॥ ४३ ॥

मुक्तलोकद्वयापेक्ष षोढाशेषपरीषहः । अनुष्ठितक्रियायोगो ध्यानयोगे कृतोद्यमः ॥ ४४ ॥

महासत्वः परित्यक्तदुर्लेश्याशुभभावनः । इतीदृग्लक्षणो ध्याता धर्मध्यानस्य सम्मतः ॥ ४५ ॥

भावार्थ—नीचे लिखे गुणोंका धारी ही धर्मध्यानका योग्य ध्याता कहा गया है–(१) निकट मुक्ति-वाला हो, किसी कारणसे वैराग्यवान होकर काम भोगोंसे विरक्त होकर सर्व परिग्रहका त्याग करे, (३ किसी योग्य आचार्यके पास जाकर जैनेश्वरी निर्ग्रंथ दीक्षा धारण करे, (४) तप व संयम सहित हो, (५) प्रमाद रहित अभिप्राय रक्खे, (६) जीवादि ध्येय पदार्थोंके स्वरूपको भलेप्रकार निर्णय कर चुका हो, (७) आर्तरौद्र ध्यानका त्यागी हो, (८) चित्तमें प्रसन्नता हो, (९) इसलोक व परलोककी उभयलोककी कोई इच्छा न हो, (१०) सर्व क्षुधादि बाईस परीषहोंको सहनेवाला हो, (११) योगाभ्यासी हो, (१२) ध्यानमें बडा उद्यमी हो, (१३) महा उत्साही हो तथा अशुभ लेश्याके अशुभ भावोंका त्यागी हो ।

मानापमान सुद्धं, माया मानं च सरनि विलयं च ।
छिंदंति विविह कम्मं, छिंदंतो परदव्व भाव सद्भावं ॥ ५६० ॥

अन्वयार्थ—(मानापमान सुद्धं) ध्यानका ध्याता साधु मान व अपमानमें समानभाव रखनेवाला हो (माया मानं च सरनि विलयं च) कोई भी काम मायाचारसे मानभावसे न करता हो (विविह कम्म छिंदंति) ऐसा ही साधु नानाप्रकार कर्मोंका क्षय करता है (छिंदंतो परदव्व भाव सद्भावं) तथा परद्रव्य सम्बन्धी सर्व रागादि भावोंको छेद डालता है ।

भावार्थ—समदर्शी क्षपणक सरल भावसे ध्यानका अभ्यासी ही कर्मोंको व रागादिको क्षय कर सक्ता है।

गिन्हं चरन विसेसं, ज्ञानं ठानं च मिच्छ गलियं च ।
ज्ञानं उववन भावं, गिर उववन्न निम्मलं विमल ॥ ५६१ ॥

अन्वयार्थ—(गिन्हं चरन विसेस) ध्याता साधु विशेष साधुके चारित्रको ग्रहण करे (ज्ञानं ठानं च मिच्छ गलियं च) मिथ्या आर्त रौद्र ध्यानको व ध्यानके अयोग्य स्थानको दूर करे (ज्ञानं उववन भावं) अपने भीतर आत्मज्ञानकी भावनाको जागृत करे (गिर उववन्न निम्मल विमल) तथा अपनी वाणीको शुद्ध निर्विकार रक्खे।

भावार्थ—ध्याता क्षपणकको अठाईस मूलगुणोंको या तेरह प्रकार चारित्रको पालना चाहिये। अशुभ ध्यानसे बचनेके लिये निर्जन स्थानोंका सेवन करना चाहिये। वचन गुप्ति पालना चाहिये। यदि बोले तो बहुत ही शुद्ध स्पष्ट प्रिय शास्त्रोक्त वचन बोलने चाहिये। तथा भीतर शुद्ध आत्माकी भावना करनी चाहिये।

घन घाय कम्म मुक्कं, ऊर्ज सभाव मग्ग दिस्टति।
नौ उववन्न सहावं, नौ सभाव दिस्टि इस्टं च ॥ ५६२ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ज सभाव मग्ग दिस्टंति) जो साधु श्रेष्ठ आत्मीक स्वभावके अनुभवरूप मार्गपर आरूढ हैं (घन घाय कम्म मुक्कं) उनके अत्यन्त घन चार घातीय कर्म नष्ट होजाते हैं (नौ सहावं उववन्न) तथा नौ लब्धिरूप स्वभाव प्रगट होजाते हैं (नौ सभाव दिस्टि इस्ट च) नौ स्वभावकी प्रगटता होगी ही। साध्य व प्रिय दृष्टि थी जो प्राप्त होगई।

भावार्थ—क्षपणक साधुका प्रिय ध्येय अरहन्तपदका लाभ है। शुद्धोपयोगमई ध्यानकी उत्तमता होनेसे ही चार घातीय कर्म नष्ट होते हैं व नौ क्षायिक लब्धियां प्रगट होजाती हैं। ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे १–अनन्तज्ञान; दर्शनावरण कर्मके क्षयसे २–अनन्तदर्शन; मोहनीय कर्मके क्षयसे ३–क्षायिक सम्यक्त; ४–क्षायिक चारित्र। पांचों प्रकारके अन्तराय कर्मके क्षयसे, ५–अनन्त दान, ६–अनन्त लाभ, ७–अनन्त भोग, ८–अनन्त उपभोग, ९–अनन्त वीर्य, ये नौ गुण सदा ही बने रहते हैं।

नुक्त उत्पन्न सहावं, टं नन्त अनन्त परिनामं।
जइ टंकोतं सहियं, नो उत्पन्न कम्म विलयन्ति ॥ ५६३ ॥

अन्वयार्थ—(नुक्त उत्पन्न सहावं) जब प्रशंसनीय आत्मस्वभाव प्रगट होजाता है (नंत अनंत परिनामं ट) तब अनन्तानन्त कर्मोंके बन्धन कट जाते हैं (जइ टंकोत सहिय) जब यह आत्मा ध्यानकी खड्गको लेता है (उत्पन्न नो कम्म विलयंति) तब जो प्राप्त नोकर्म अर्थात् शरीर है वह सदाके लिये छूट जाता है।

भावार्थ—आत्मानुभव रूपी खड्गसे कर्मोंका छेद होता है। कर्म नष्ट होनेपर शरीर भी छूट जाता है और यह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है।

चू ऊर्द्ध सुद्ध सहियं, टंकारं मुक्ति ज्ञान विमलं च ।
जइ ज्ञान ढान सहावं, चू संसार सरनि विलयं च ॥ ५६४ ॥

अन्वयार्थ—(चू ऊर्द्ध सुद्ध सहियं) चू से चूलिकाका भाव लेना चाहिये। पूर्व कथनकी चूलिका यह है व ऊपरके कथनका सार यह है कि श्रेष्ठ शुद्ध स्वभावको धारना ही (मुक्ति ज्ञान विमलं च टंकारं) मुक्तिके योग्य ध्यानकी निर्मल टंकार है अर्थात् ऐसा शब्द है जिससे मुक्ति सावधान होजाती है और स्वागतके लिये तैयार रहती है (जइ ज्ञान ढान सहावं) यदि ध्यानका स्वाभाविक स्थान अर्थात् परम शुक्लध्यान प्राप्त होजावे तो (चू संसार सरनि विलय च) कहनेका सार यह है कि कर्मोंका नाश होजावे।

भावार्थ—आत्माके स्वभावमें लीन होना ही मुक्ति साधनका उपाय है। यही एक ध्वनि है जिससे मुक्तिरूपी स्त्री वशमें होजाती है।

चूकं च कम्म चली, छेयं परभाव कम्म गलियं च ।
जदि छेय भाव पिच्छं, चूकं कम्मान मुक्ति गमनं च ॥ ५६५ ॥

अन्वयार्थ—(चूक च कम्म चली) कर्मोंका ढक्कन जब हट जाता है (छेयं परभाव कम्म गलिय च) तब सब रागादि परभाव छिद जाते हैं व कर्म गल जाते हैं (जदि छेय भाव पिच्छ) जब कर्मोंको छेदनेवाले शुद्ध भावका अनुभव होता है (चूक कम्मान मुक्ति गमनं च) तब यह जीव अवश्य सर्व कर्मोंसे रहित हो मोक्ष चला जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनका प्रकाश होना ही कर्मोंकी जड़को उखाड़ डालता है। तब फिर आत्मानुभवके अभ्याससे एक दिन सर्व कर्मोंसे रहित हो यह जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

नुक्रत कम्म षिपनं, जैवन्तो ज्ञान दंसनं चरनं ।
जै जैवन्त उवन्नं, नुक्रत परदव्व भाव गलियं च ॥ ५६६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दंसनं चरन जैवन्तो) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय धर्मकी जय हो जिससे (कम्म षिपनं) कर्मोंका क्षय होजाता है (नुक्रत) यह प्रशंसनीय बात होजाती है (जै जैवन्त

उवन्नं) जब कर्मोंके जीतनेका आत्मानुभवरूपी भाव पैदा होजाता है (नुक्रत परदव्व भाव गलियं च) तब यह प्रशंसाकी बात है कि परद्रव्य सम्बन्धी सर्व रागादि भाव गल जाते हैं ।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय ही परम धर्म है । यही आत्मानुभवरूप है । यह सदा ही बना रहो जिसके प्रतापसे सर्व परभाव छूट जाते हैं व आत्मा कर्मोंसे मुक्त होजाता है ।

धी ऊर्ज पंथ सुद्धं, ज्ञान समत्थेन ऊर्ध सद्भावं ।
जै ज्ञान ठान सुद्धं, धी ऊर्ज सभाव मुक्ति गमनं च ॥ ५६७ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ज धी सुद्धं पन्थ) श्रेष्ठ ज्ञानोपयोगका होना ही शुद्ध मोक्षका मार्ग है (ज्ञान समत्थेन ऊर्द्ध सद्भावं ध्यानकी शक्तिसे ही श्रेष्ठ आत्माका स्वभाव प्रगट होता है (जै ज्ञान ठान सुद्ध) उस शुद्ध ध्यानकी जय हो (धी ऊर्ज) जिससे सर्वोत्तम ज्ञान या केवलज्ञान प्रगट होजाता है (मुक्ति गमनं च) और यह जीव मोक्षमें चला जाता है ।

भावार्थ—शुद्ध आत्माके स्वभावमें लय होना ही ध्यान है । ध्यानसे ही कर्म क्षय होते हैं और केवलज्ञान प्रगट होकर जीव मुक्त होजाता है ।

गिर् उववन्न अनन्तं, नुक्रत कम्म उववन्न विलयन्ति।
जैनं सुभाव सुद्धं, गिन्हं षिपिऊन कम्म बन्धानं ॥ ५६८ ॥

अन्वयार्थ—(गिर् उववन्न अनतं) अरहंतकी वाणीसे अनंत पदार्थोंका प्रकाश होता है (नुक्रत) यह प्रशंसीकी बात है (कम्म उववन्न विलयति) उस वाणीके सुननेसे आते हुए कर्म रुक जाते हैं । (जैनं सुभाव सुद्धं) जब राग द्वेषादिको जीतकर शुद्ध स्वभावको (गिन्ह) ग्रहण किया जाता है (कम्म बंधानं षिपिऊन) तब सर्व कर्मके बन्धन क्षय होजाते हैं ।

भावार्थ—भगवानकी वाणीद्वारा परम शांति प्रदायक मोक्षमार्गका उपदेश होता है उसको सुनकर भावोंमें वैराग्य आनेसे आस्रव रुकते हैं । और जब वाणीके उपदेशके अनुसार सच्चा जेनधर्म, जो एक शुद्ध आत्माका भाव है, ग्रहण किया जाता है तब मुक्ति होजाती है ।

पस्टं इस्टं च सुद्धं, टंकोत्कीर्न भाव उवनं च ।
जै टंकोत सुभावं, षानं षिपनं च कम्म वन्धानं ॥ ५६९ ॥

अन्वयार्थ—(षस्ट इस्ट च सुद्ध) जगतमें छः द्रव्य अपने२ प्रिय शुद्ध स्वभावमें निश्चयसे हैं (टंकोत्कीर्न भाव उवनं च) उनका अमिट टंकोत्कीर्ण स्वभाव है (जै टकोत सुभावं) पड़गके समान आत्माका निज स्वभाव जयवंत रहे (कम्म बधान षान च षिपनं) जिससे कर्मबन्धोंकी खान नाश होजाती है।

भावार्थ—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल ये छः द्रव्य अविनाशी अनन्त अपने२ स्वभावमें सदा रहते हैं। संसारावस्थामें जीवोंमें विभावपना होता है तथा पुद्गलोंके स्कंध बनते हैं, शेष चार द्रव्य उदासीनपने स्वभावमें ही रहते हैं। इनमेंसे आत्माका जो द्रव्य स्वभाव है उसीका अनुभव एक ऐसी खड़ग है जो कर्मोंके वंशको काट डालती है, उसीको ग्रहण करना योग्य है।

कंठल सुभाव सुद्धं, ठंकारे सुभाव मुक्ति सहियं च ।
ठंकार विमल सहियं, कललंकृत कम्म भाव मुकं च ॥ ५७० ॥

अन्वयार्थ—(कठल सुभाव सुद्ध) आत्माका स्वभाव शुद्ध गलेमें पहरनेवाली निर्मल मोतीकी मालाके समान है (ठंकारे सुभाव मुक्ति गमन च) आत्माका स्वभाव जब शुद्ध होजाता है तब वह मोक्षको गमन करता है। यहां ठंकार शब्दका भाव समझमें नहीं आया। (ठकार विमल सहिय) निर्मल स्वभावके होनेपर ही (कललंकृत कम्म भाव मुक्त च) शरीर सम्बन्धी सर्व कर्म व भावकर्म छूट जाते हैं।

भावार्थ—जैसे मोतीकी माला अनेक मोतियोंका एक समुदाय है वैसे यह आत्मा अनेक गुणपर्यायोंका समुदाय है। यह अखंड है, स्वभावसे शुद्ध मोतीकी मालाके समान शोभायमान है। इसको जो कंठमें धारते हैं अर्थात् शुद्ध आत्माका ध्यान करते हैं उनके भावकर्म व द्रव्यकर्म सब छूट जाते हैं।

कमल सुभाव जिनुत्तं, घादं कम्मान वन्ध तिक्तं च ।
गिरू सहाव संजुत्तं, धी ऊर्ज सभाव मिच्छ विलयंति ॥ ५७१ ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभाव जिनुत्तं) अरहन्तका कमलके समान प्रफुल्लित स्वभाव है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है

(घादं कम्मान वंध तिक्तं च) उनके घातीय कर्मोंके वन्ध छूट गए हैं (गिरू सहाव संजुत्तं) उनके दिव्यध्वनिका प्रकाश होता है (धी ऊर्ज सभाव मिच्छ विलयति) उनके श्रेष्ठ ज्ञानका स्वभाव प्रगट है, सर्व मिथ्याज्ञान नष्ट होगया है।

भावार्थ—यहां अरहन्तका स्वरूप है। सत्य स्वाभाविक गुण प्रगट होते हैं। विभाव भाव व अज्ञानका सर्वथा अभाव है।

नु लष्यं उवलष्यं, चूके तह असत्य भाव वहिरप्पं।
छेयन्ति विषय मलयं, जैवन्तो नंत दंसनं सम्मं ॥ ५७२ ॥

अन्वयार्थ—(नु लष्य उवलष्य) यह प्रशंसाकी वात है कि ज्ञानीने अपने लक्ष्यविदु शुद्धात्माका अनुभव कर लिया है (चूके तह असत्य भाव बहिरप्पं) तब सर्व असत्य व वहिरात्मपनेके भाव नष्ट होगए हैं (छेयंति विषय मलयं) विषयोंका सर्व मल छूट गया है (जैवतो नंत दंसन सम्म) यह अनन्त क्षायिक सम्यग्दर्शन जैवंत हो।

भावार्थ—जव क्षायिक सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है तव मिथ्यात्वभाव विलकुल चला जाता है, इंद्रिय विषयोंकी वांछा मिट जाती है, मानो मोक्ष हाथमें ही आजाता है।

ज्ञेयं ज्ञान सहावं, नो उववन्न परभाव विलयन्ति।
टंकोत्कीर्न सहियं, ठिदिकरनं मुक्ति नन्त कालम्मि ॥ ५७३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं ज्ञेयं) आत्माके ज्ञान स्वभावका ध्यान करना चाहिये (नो उववन्न परभाव विलयन्ति) इससे नवीन उत्पन्न होनेवाले रागादि भाव विलय होजाते हैं (टंकोत्कीर्न सहियं) टंकोत्कीर्णके समान अपने अमिट मूल स्वभावको लिये हुए (ठिदिकरनं मुक्ति नन्त कालम्मि) मुक्तिमें अनन्त काल तक आत्माकी स्थिति रहती है।

भावार्थ—आत्माके ध्यानसे भावकर्म व द्रव्यकर्म व नोकर्म सव छूट जाते हैं और आत्मा अनन्तकाल तक मोक्षावस्थामें विराजमान रहता है।

टंकार भाव सुद्धं, ठ नंतनंत दिस्टि दिस्टंतो।
नो कम्म कम्म विलयं, धी ऊर्ध सहाव कम्म षिपनं च ॥ ५७४ ॥

अन्वयार्थ—(टंकार भाव शुद्ध) शुद्ध भाव ही मुक्ति स्त्रीके चितानेके लिये टंकार है या शब्द है (ठ नंत-नंत दिस्टि दिस्टतो) उसी ठं ठं के शब्दसे मानो शुद्ध स्वभावने अनंतानंत दर्शन स्वभावको देख लिया है (नो कम्म कम्म विलय) इस शुद्धोपयोगरूप परिणमनसे नो कर्म शरीर तथा द्रव्यकर्म सब छूट जाते हैं (धी ऊर्ध सहाव कम्म षिपनं च) श्रेष्ठ ज्ञान स्वभावके होनेसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—शुद्धोपयोग ही मोक्षका कारण है।

जैवंतो टंकारं, छेयं परभाव पर्जाय गलियं च ।
चूरंति विषयरागं, नु कृत उववन्न दंसनं चरनं ॥ ५७५ ॥

अन्वयार्थ—(टकारं जैवतो) शुद्ध आत्मस्वभावके प्रकाशकी टंकार जयवंत हो (छेयं परभाव पर्जाय गलिय च) जिससे रागादि परभाव छिद जाते हैं और शरीर भी गल जाता है (विषयराग चूरंति) विषयोंका राग चूर्ण होजाता है (नु कृत दसनं चरन उववन्न) प्रशंसनीय क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा क्षायिकचारित्र प्रगट होजाता है।

भावार्थ—शुद्ध स्वभावके अनुभवसे ही आत्माके शुद्ध गुण प्रगट होते हैं।

धी ऊर्ज भाव संजुत्तं, गिर उववन्न भाव लष्य अलष्यं ।
षलु निश्चै च सहावं, कम्मं गलियंति केवलं सुद्धं ॥ ५७६ ॥

अन्वयार्थ—(धी ऊर्ज भाव संजुत्तं) श्रेष्ठ ज्ञानके स्वभावको आत्मा जब प्रकाश करता है (गिर उववन्न भाव लष्य अलष्यं) तब अरहंत होकर दिव्यवाणीका प्रकाश होता है व मन, वचन, कायसे अगोचर आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजाता है (षलु निश्चै च सहावं) यही वास्तवमें आत्माका निश्चय स्वभाव है (कम्मं गलियंति केवलं सुद्धं) फिर शेष कर्म भी गल जाते हैं और आत्मा केवल शुद्ध सिद्ध होजाता है।

भावार्थ—आत्माके ध्यानसे ही अरहंत तथा सिद्धपद होता है!

षडी विसेसं उत्तं, लषिज्जइ लष्य नेह संजुत्तं ।
सूपम सुभाव सुद्धं, कम्मं पिपिऊन सरनि संसारे ॥ ५७७ ॥

अन्वयार्थ—(पडी विसेस उत्त) खडीयाके समान निर्मल श्वेत स्वभावका वर्णन किया जाता है (नेह

संजुत्तं लष्य लषिज्जइ) जब शुद्धात्माकी तरफ स्नेह होता है तब अनुभव करने योग्य आत्माका अनुभव हो-जाता है (संसारे सरनि कम्मं पिपिऊन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंका क्षय करके (सूषम सुभाव सुद्धं) अतीन्द्रिय शुद्ध स्वभाव प्रकाशमान होजाता है।

भावार्थ—रागादि रहित शुद्ध आत्माका अनुभव करनेसे आत्मा कर्म रहित शुद्ध स्वभावका धारी सिद्ध होजाता है।

अप्प सहावं दिट्ठं, पर पज्जाय विषय विरयन्तो।
मिच्छात राग षिपनं, सूषम सभाव मुक्ति गमनं च॥ ५७८ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं दिट्ठं) आत्माका स्वभाव जब दिख जाता है (पर पज्जाय विषय विरयन्तो) तब पर पर्यायसे व इंद्रियविषयसे विरक्तता आजाती है (मिच्छात राग षिपनं) मिथ्यात्व कारण क्षय होजाता है (सूषम सभाव मुक्ति गमनं च) तब अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभाव प्रगट होजाता है। शुद्ध होनेपर वे मुक्तिको जाते हैं।

भावार्थ—आत्माके स्वभावका जब अनुभव होता है तब ही उन्नति करते २ आत्मा केवलज्ञानको प्राप्त होजाता है।

अज्ञान संसारमार्ग है व सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग है।

अज्ञान भाव सहियं, कम्मं उववन्न नन्त नन्ताइं।
अनेय काल भमनं, ज्ञान सभाव कम्म षिपनं च ॥ ५७९ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान भाव सहिय) जहांतक अज्ञानका विभाव भाव रहता है (कम्मं उववन्न नन्त नन्ताइं) वहांतक अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओंका वन्ध होता रहेगा (अनेय काल भमनं) और यह जीव दीर्घकाल भ्रमण करता रहेगा (ज्ञान सभाव कम्म षिपनं च) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंका क्षय होजाता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व भाव सहित जीव सदा कर्मको बांधकर संसारमें भ्रमण करता रहता है। सम्यक्त भाव सहित जीव ही मोक्षका उत्सुक होकर आचरण करता है और वह कर्मोंको काटकर अवश्य एक दिन शुद्ध होजाता है।

अज्ञान पज्जायं, सहियं उववन्न कम्म विविहं च ।
ज्ञान सहावं दिट्ठी, कम्म गलियं च अंतर्मुहूर्तस्य ॥ ५८० ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान पज्जाय सहिय) जबतक अज्ञानभाव या मिथ्यादर्शन सहित भाव रहता है तबतक (कम्म विविह च उववन्न) नाना प्रकार कर्मोंका बंध होता रहता है (ज्ञान सहावं दिट्ठी) जब ज्ञान स्वभावरूप दृष्टि होजाती है अर्थात् आत्माका अनुभव होजाता है (अंतर्मुहूर्तस्य कम्म गलिय च) तब यदि एक अंतर्मुहूर्त तक ध्यानमें स्थिरता होजावे तो घातीयकर्म क्षय होकर केवलज्ञान पैदा होजाता है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन संसारका कारण है, जब सम्यग्दर्शन मोक्षका साधक है, इसीकी प्राप्ति करनी चाहिये ।

अज्ञान जुत्त उत्तं, कम्मं तह सहावनेकं च ।
ज्ञान बलेन हि मुनिवर, षिनदि विलय कम्मं तिविहं च ॥ ५८१ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान जुत्त उत्तं) मिथ्याज्ञानका संयोग जबतक कहा जाता है (कम्मं तह सहावनेकं च) तबतक अनेक प्रकार कर्मोंका बध होता रहता है । (ज्ञान बलेन हि मुनिवर षिनदि) सम्यग्ज्ञानके बलसे मुनिमहाराज कर्मोंका क्षय करते हैं (तिविहं कम्म च विलय) फिर तीन प्रकार कर्म्म—भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म बिलकुल विला जाते हैं ।

भावार्थ—अज्ञान भाव बंधकारक है तब सम्यग्ज्ञानका भाव मोक्षकारक है ।

अज्ञान परिनय सहियं, परिनवइ कम्मान अनंत भावे हि ।
ज्ञान दिस्टि उववन्नं, जं सूरं तिमिरनासनं सहसा ॥ ५८२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान परिनय सहियं) जबतक यह जीव अज्ञानकी परिणतिमें परिणमन कर रहा है (अनंत भावे हि कम्मान परिनवई) तबतक अनंत प्रकारके भावोंसे कर्मोंका बन्ध होता है (ज्ञान दिस्टि उववन्न) जब सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि पैदा होजाती है (जं सूर तिमिरनासनं सहसा) तब जैसे सूर्यके प्रकाशसे अंधेरा यकायक नष्ट होजाता है, वैसे सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे मिथ्याज्ञान नष्ट होजाता है ।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानका प्रकाश और अंधकारका सा स्वभाव है, एक दूसरेका विरोधी है। जैसे सूर्यके प्रकाश प्रगट होते ही रात्रिका अंधकार सब दूर होजाता है वैसे ही सम्यग्ज्ञानके उदय होते ही मिथ्याज्ञानका अंधेरा मिट जाता है।

अज्ञान समयेन, कम्मं उप्पत्ति नन्त जन्मानं।
ज्ञान समय उववन्नं, गलियं कम्मान तिविह जोएन ॥ ५८३ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान समयेन) मिथ्याज्ञान सहित आत्माके द्वारा (कम्म उप्पत्ति नन्त जन्मान) ऐसा कर्मोंका बन्ध होता है कि एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें अनन्त जन्म धारण करना पड़ता है (ज्ञान समय उववन्न परन्तु जब सम्यग्ज्ञानमई आत्मा होजाता है तब (तिविह जोएन कम्मान गलिय) मन वचन कायकी गुप्तिके उत्तम लाभसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—मिथ्याज्ञान संसारमें भ्रमण करानेवाला है तब सम्यग्ज्ञान-संसारसे उद्धार करनेवाला है।

ज्ञान दंसन समं, चरनं दुविहं पि सहाव तव जुत्तं।
रयनत्तय भत्तीओ, नन्त चतुष्टं च मुक्ति गमनं च ॥ ५८४ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दंसन समं) सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान हो (दुविहं पि चरनं) व्यवहार तथा निश्चय चारित्र हो (सहाव तव जुन) स्वभावमें रमणरूप तप हो (रयनत्तय भत्तीओ, रत्नत्रय धर्मकी आराधनासे (नन्त चतुष्टं च) अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होते हैं (मुक्ति गमनं च) फिर यह जीव मोक्ष लाभ करता है।

भावार्थ—आत्माकी दृढ़ श्रद्धा होनेपर सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानका एक साथ प्रकाश होता है फिर व्यवहार चारित्रके आलम्बनसे जब स्वरूपाचरण चारित्र तथा स्वभावमें तपन रूप तप पाला जाता है अर्थात् निश्चय रत्नत्रयमई स्वात्मानुभव किया जाता है तब ही क्षपकश्रेणी चढ़कर साधु मोहादि चारों घातीयका नाशकर अरहंत होजाता है, फिर शरीर छूटनेपर सिद्ध होजाता है। अतएव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र, तप इन चार आराधनाओंको सदा करते रहना चाहिये। चारित्रमें तप गर्भित है।

ऐसा ही तत्वसारमें देवसेनाचार्य कहते हैं—

दंसणणाणचरित्तं जोई तस्सेह णिच्छयं भणियं । जो वेयइ अप्पाणं सचेयणं सुद्ध भावट्ठ ॥ ४५ ॥

ससहावं वेदंतो णिच्चलचित्तो विमुक्कपरभावो । सो जीवो णायव्वो दंसणणाणं चरित्त च ॥ ५६ ॥

जो अप्पा त णाणं जं णाण तं च दंसणं चरणं । सा सुद्धचेयणाविय णिच्छयणयमस्सिएए जीवे ॥ ५७ ॥

भावार्थ—उसी योगीके निश्चय दर्शन ज्ञान चारित्र कहे गये हैं, जो शुद्ध भावमें स्थिर चैतन्यमई आत्माका अनुभव करता है। जो जीव निश्चल चित्त होकर व परभावोंको त्यागकर अपने स्वभावका स्वाद लेता है वही जीव दर्शन ज्ञान चारित्रमई है ऐसा जानना चाहिये। निश्चयनयसे विचारते हुए जीवमें जो आत्मा है वही ज्ञान है। जो ज्ञान है वही दर्शन है, वही चारित्र है, वही शुद्ध ज्ञानचेतना है व शुद्धात्मानुभव है, यही साक्षात् मोक्षमार्ग है।

उपदेश शुद्धसारका प्रयोजन।

उवएस सुद्ध सहियं, सुद्धं अवयास विमल ज्ञानस्य।
कम्ममल सुयं च षिपनं, उवएसं सुद्ध मुक्ति गमनं च ॥ ५८५ ॥

अन्वयार्थ—(उवएस सुद्ध सहिय) जब शुद्ध तत्वका उपदेश मिलता है तब (सुद्धं अवयास विमल ज्ञानस्य) निर्मल ज्ञानका शुद्ध प्रकाश होता है (कम्मल सुयं च पिपनं) आत्मज्ञानमें स्थिर होनेसे कर्ममल स्वयं छूटता जाता है (सुद्ध उवएसं मुक्ति गमनं च) इसलिये शुद्ध तत्वका उपदेश मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—जबतक निश्चयनयसे शुद्ध आत्माका उपदेश न किया जावे तबतक व्यवहारी लोग अपने आत्माको कर्म सहित मलीन व रागी द्वेषी ही अनुभव करते रहेंगे, उनका कर्म बन्ध न छूटेगा, वे कदापि संसारसे पार न होंगे। इसलिये शुद्ध आत्माके उपदेशकी जरूरत है। जब भव्य जीव अपने ही आत्माका परमात्माके समान शुद्ध श्रद्धान ज्ञानमें लेकर अनुभव करता है तब वीतरागता पैदा होती है इसीसे कर्म क्षय होते हैं, बन्धका अभाव होता है और यह आत्मा शीघ्र ही संसारसे मुक्त होजाता है।

उवएसं जिन उत्तं, सम्मत्तं सुद्ध सहाव संजुत्तं ।
कम्मं तिविहं मुक्कं, उवइट्टं परम जिनवरिं देहि ॥ ५८६ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त उवएसं सम्मत्तं) जिनेन्द्रके उपदेशको मानना चाहिये (सुद्ध सहाव संजुत्तं तिविहं कम्मं मुक्कं) शुद्ध आत्मीक स्वभावमें तन्मय होनेसे भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म सब छूट जाते हैं (परम जिनवरिं देहि उवइट्टं) ऐसा तीर्थंकरोंने उपदेश किया है ।

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रके परम्परा उपदेशानुसार आत्मतत्वका निश्चय करके आत्माके शुद्ध स्वभावमें रत होनेसे ही धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान होता है जिससे सर्व कर्म छूटकर जीव मुक्त होजाता है ।

उवएसं जिन वयनं, जिन सहकारेन ज्ञानमय सुद्धं ।
आनन्दं परमानन्दं, परमप्पा विमल निव्वुए जंति ॥ ५८७ ॥

अन्वयार्थ—(उवएस जिन वयन) जैसे जिनवाणीका उपदेश है उसके अनुसार (जिन सहकारेन ज्ञानमय सुद्धं) जिनेन्द्रके स्वरूपकी सहायतासे अपने आत्माको ज्ञानमई शुद्ध अनुभव करे (आनन्दं परमानंदं) और परमानन्दमें मगन होजावे (विमल परमप्पा निव्वुए जंति) इसी साधनसे मल रहित होकर आत्मा परमात्मा होजायगा और निर्वाणका लाभ कर लेगा ।

भावार्थ—मुमुक्षु जीवको उचित है कि जिनवाणीका भलेप्रकार अभ्यास करे, व्यवहार व निश्चयनय दोनोंसे तत्वको समझे । तथा परमात्मा जिनेन्द्रकी आत्माका सच्चा स्वरूप पहिचाने । उसी समान अपने आत्माको ध्यावे । आत्म-ध्यानसे ही अरहंत होकर सिद्ध होजायगा ।

भव्वजन वोहनत्थं, अत्थ परमत्थ परम बुद्धं च ।
जिन उत्तं स दिट्ठं, किंचित् उवएस कहिय भावेन ॥ ५८८ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त) जिनेन्द्रने जैसा कहा है (अत्थ परम परमत्थ बुद्ध च) पदार्थोंका स्वरूप व परम पदार्थ शुद्ध आत्माका स्वरूप वैसा ही जान करके (स दिट्ठ) वही स्वरूप दिखलाया गया है (भावेन किंचित् उवएस भव्वजन वोहनत्थ कहिय) भावपूर्वक भव्यजनोंके समझानेके लिये कुछ उपदेश कहा गया है ।

भावार्थ—यहां श्री तारणस्वामीने बताया है कि मैंने श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंको जिनवाणीके अनुसार जान करके इस ग्रन्थमें कुछ उपदेश केवल परोपकार भावसे भव्यजीवोंको ज्ञान लाभ हो इसी हेतुसे किया है। कुछ मेरा और अभिप्राय ख्याति लाभ पूजाका नहीं है। तथा जो कुछ मैंने कहा है वह अपनी मनो कल्पनासे नहीं कहा है। परस्परा तीर्थंकरोंके उपदेशके अनुसार कहा है। भव्यजीव इस ग्रन्थको ध्यानसे पढ़ें व शुद्ध आत्माके तत्वका मनन करें जिससे मोक्षमार्गपर चलकर सदा सुखी रहें।

जिन उत्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन उवएसनं तंपि।
यं जिन तारन रइ यं, कम्मषय मुक्ति कारनं सुद्धं ॥५८९॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं जिन वयनं) जिनेन्द्र कथित जिनवाणी है जिन (सहकारेन तंपि उवएसनं) श्री जिनेन्द्रके प्रसादसे ही उसीका उपदेश किया गया है (यं जिन तारन रइ यं) इस उपदेश शुद्धसार ग्रन्थको तारणजिनने रचा है (कम्मषय मुक्ति कारनं सुद्ध) जिससे अपना व दूसरोंका कर्म क्षय हो, मोक्षका मार्ग मिले व आत्मा शुद्ध भावको प्राप्त करे।

भावार्थ—श्री तारणतरण स्वामी अपनेको तारन जिन नामसे प्रगट करके यह दिखाते हैं कि मैं जैन धर्मके अनुसार ही चलनेवाला हूँ। मेरा नाम तारण है तथा मैंने अपने व परको शुद्ध भावका लाभ हो व कर्मका क्षय होकर मुक्ति प्राप्त हो इसी हेतुसे इस ग्रन्थमें वही उपदेश किया है जो श्री जिनवाणीसे मैंने जाना है। इस ग्रन्थके पूर्ण होनेमें भी श्री जिनेन्द्रकी भक्तिका ही प्रसाद है, मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है।



चारित्र कथन ।

चरनं पि दुविह भेयं, सहकारेन तवंपि विमलं च ।
दंसन चौविहि उत्तं, ज्ञानं अवयास तजंति अज्ञानं ॥ १५० ॥

अन्वयार्थ—(चरनं पि दुविह भेय) **चारित्र दो प्रकारका है** (सहकारेन तवंपि विमलं च) **उस चारित्रके साथ २ निर्मल तप भी करना योग्य है** (चौविहि दंसन उत्तं) **जिससे चार प्रकारका दर्शन होता है ऐसा कहा गया है** (ज्ञान अवयास तजंति अज्ञान) **तथा पूर्ण ज्ञान होता है और अज्ञान मिट जाता है ।**

भावार्थ—**सम्यग्दर्शनके प्राप्त होजानेपर रागद्वेषके दूर करनेके लिये चारित्र पालना चाहिये। वह चारित्र सकल और निकल दो प्रकारका है । जैसा रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है—**

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसज्ञान । रागद्वेषनिवृत्यै चरण प्रतिपद्यते साधु ॥ ४७ ॥
हिसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्या च । पापप्रणालिकाभ्यो विरति संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥
सकलं विकल चरण तत्सकल सर्वसगविरतानाम् । अनगाराणा विकल सागाराणा ससंगानाम् ॥ ५० ॥
गृहिणा त्रेधा तिष्ठत्यणुगुणशिक्षाव्रतात्मक चरणम् । पचत्रिचतुर्भेद त्रय यथासंख्यमाख्यातम् ॥ ५१ ॥

भावार्थ—**दर्शनमोहरूपी अन्धकारके मिट जानेपर सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका लाभ होता है । फिर भी राग द्वेषोंको दूर करनेके लिये साधु चारित्रको पालते हैं ।**

हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह ये पांच पाप आनेकी मोरी हैं, इनसे विरक्त होना सो सम्यग्ज्ञानीका चारित्र है ।

चारित्र दो प्रकारका है–सर्व परिग्रहसे विरक्त गृह रहित साधुओंका सकल चारित्र है तथा परिग्रहधारी गृहस्थी श्रावकोंका विकल चारित्र है।

साधुको १३ प्रकार चारित्र पालना चाहिये—

१–अहिंसा महाव्रत—स्थावर व त्रस प्राणियोंकी रक्षा । मन, वचन, कायसे हिंसाका व द्वेषका भाव न रखना ।

२–सत्य महाव्रत—शास्त्रोक्त सत्य वचन कहना ।

३–अचौर्य महाव्रत—विना दी हुई किसी वस्तुको न लेना।

४–ब्रह्मचर्य महाव्रत—मन, वचन, काय, कृत कारित अनुमोदनासे पूर्ण शीलव्रतको पालना।

५–परिग्रह त्याग—धन धान्य, वस्त्रादि परिग्रहको त्यागकर कषायोंसे विरक्त रहना।

पांच समिति—

१–ईर्या समिति—चार हाथ भूमि आगे देखकर दिनमें जंतुरहित भूमिपर चलना।

२–भाषासमिति—शुद्ध मधुर हितकारी भाषा कहना।

३–एषणासमिति—शुद्ध भोजन जो गृहस्थीने अपने कुटुम्बके लिये बनाया हो उसे भिक्षापूर्वक लेना।

४–आदाननिक्षेपण समिति—पीछी कमण्डल शास्त्र व देहको देखकर रखना उठाना।

५–उत्सर्ग समिति—मल सूत्र निर्जन्तु भूमिपर करना।

तीन गुप्ति—मनको वश रखना, वचनको वश रखना, कायको वश रखना।

इन तेरह प्रकारके चारित्रको पूर्ण रूपसे पालना साधुओंका सकल चारित्र है।

गृहस्थियोंका चारित्र पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकारका है।

पांच अणुव्रत—

१–अहिसा अणुव्रत—संकल्पी त्रस हिंसा न करना, आरम्भीका त्याग नहीं जो गृहारंभ व उद्यममें व विरोधियोंके साथ होती है।

२–सत्य अणुव्रत—राज्य दण्ड व पंच दण्ड योग्य असत्य न कहना।

३–अचौर्य अणुव्रत—गिरी पड़ी भूली भटकी किसीकी वस्तु न उठाना न ठगना न लूटना।

४–ब्रह्मचर्य अणुव्रत—अपनी विवाहिता स्त्रीमें सन्तोष रखना।

५–परिग्रह प्रमाण अणुव्रत—रुपया, मकान, वस्त्रादि परिग्रहका जन्मभरके लिये प्रमाण कर लेना।

तीन गुणव्रत–जो अणुव्रतोंका मूल्य बढ़ा देते हैं—

१–दिग्व्रत—जन्मभरके लिये दसों दिशाओंमें लौकिक कामके लिये जानेकी मर्यादा बांध लेना।

२–अनर्थदण्ड त्याग व्रत—पांच प्रकार अनर्थके पाप न करना।

१–पापोपदेश, २ अपध्यान, ३ हिंसा दान, ४ दुःश्रुति, ५ प्रमादचर्या।

३–भोगोपभोग परिमाण व्रत—दिन भरके लिये भोग्य उपभोग्य पदार्थोंका प्रमाण कर लेना।

चार शिक्षाव्रत—

१–देशव्रत—नित्यप्रति दसों दिशाओंमें जानेका प्रमाण करना।

२–सामायिक—शांतिसे एकांतमें बैठ एक, दो व तीन दफे सबेरे दोपहर शामको ध्यान करना।

३–प्रोषधोपवास—अष्टमी चौदसको उपवास व एकासन करना, धर्मध्यानमें समय विताना।

४–वैय्यावृत्य—साधु या अन्य पात्रोंको दान देकर भोजन करना, सकल व विकल चारित्रको पालते हुए यथाशक्ति बारह प्रकार तप भी पालना चाहिये।

छः बाह्य—१ अनशन। खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहार त्याग उपवास करना।

२–ऊनोदर—भूखसे कम खाना।

३–वृत्तिपरिसंख्यान—कोई प्रतिज्ञा लेकर भोजनको जाना, पूरी होनेपर लेना।

४–रस परित्याग—दूध, दही, घी, मीठा, तेल, निमक इन छःमेंसे एक दो तीन चारको छोड़ना।

५–विविक्त शयनासन—एकांतमें शयन करना व बैठना।

६–कायक्लेश—कठिन २ स्थानोंपर जाकर ध्यान करना।

छ अन्तरंग—

१–प्रायश्चित्त—दोष होनेपर दण्ड ले शुद्धि करना।

२–विनय—धर्म व धर्मात्माओंका आदर करना।

३–वैय्यावृत्य—रोगी दुखी धर्मात्माओंकी सेवा करना।

४–स्वाध्याथ—शास्त्रको ध्यानसे पढ़ना।

५–व्युत्सर्ग—ममत्वका त्याग करना।

६–ध्यान—आत्मध्यान करना।

इसतरह तप सहित पूर्ण चारित्र पालनेसे अवधि दर्शन, केवलज्ञान, केवल दर्शन आदि गुण प्रगट होते हैं, अज्ञान मिटता है।

शुद्ध स्वभाव दृष्टि ।

सुद्ध सहावं पिच्छदि, अप्पा सुद्धप्प विमल झानत्थं ।
विन्नान ज्ञान सुद्धं, ज्ञान सहावेन सयल तं भनियं ॥ १५१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं पिच्छदि) सम्यग्दृष्टी शुद्ध आत्मीक स्वभावका श्रद्धान रखता है (झानत्थं अप्पा सुद्धप्प विमल) ध्यानके लिये आत्माको शुद्ध निर्मल परमात्मारूप विचारता है (विन्नान ज्ञान सुद्ध) इसीसे उसका भेदज्ञान तथा ज्ञान शुद्ध होता जाता है (ज्ञान सहावेन सयल तं भनियं) ज्ञान स्वभावमें रमन करनेसे उसको पूर्ण केवलज्ञानपना प्राप्त होता है ऐसा कहा गया है ।

भावार्थ—सम्यक्ती जीव शुद्ध स्वरूपका श्रद्धानी आत्मध्यानका अभ्यास करता रहता है । परमात्मारूप मैं हूं ऐसा ध्यानेसे उसका भेदविज्ञान–आत्मा और अनात्माका विवेक निर्मल होता जाता है । ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे ज्ञान बढ़ जाता है । तथा इस ज्ञान भावनाकी श्रेष्ठता प्राप्त कर लेनेपर उसको केवलज्ञानका लाभ होजाता है । वास्तवमें आत्माकी मुक्तिका उपाय निज आत्मानुभव है । जिसके लिये सम्यक्तीका सहज ही पुरुषार्थ होता है ।

अज्ञानं नहु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन रूव रूवं च ।
दुबुहि रूव नहि दिट्ठं, सुद्धं ज्ञानं च रूव मिलियं च ॥ १५२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानं नहु पिच्छदि) सम्यग्दृष्टीके मिथ्याज्ञान नहीं देखा जाता है (ज्ञान सहावेन रूव रूवं च) ज्ञान स्वभावसे आत्माके स्वभावको जानता है (दुबुहि रूव नहि दिट्ठं) उसके कुमति कुश्रुत ज्ञान रूप दुर्बुद्धि नहीं देखी जाती है (सुद्ध ज्ञानं च रूव मिलियं च) उसका ज्ञानोपयोग शुद्ध ज्ञान स्वभावमें मिल जाता है ।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीके कुमति, कुश्रुति व कुअवधि ज्ञान कभी नहीं होता है । उसके पर अहितकारिणी बुद्धि नहीं पैदा होती है । वह शुद्ध आत्माका ध्यान करके अपने उपयोगको उसमें जोड़ता है । वह आत्मानुभवका बड़ा ही रसिक होता है ।

सम्यक्त प्राप्तिमें जाति कुल विचार न हो।

जायि कुलं नहु पिच्छदि, सुद्ध सम्मत दंसनं पिच्छइ।
ज्ञान सहाव अनुमोयं, अज्ञानं सल्य मिच्छ मुंचेइ ॥ १५३ ॥

अन्वयार्थ—(जायि कुलं नहु पिच्छदि) **सम्यक्तीके जाति व कुलकी अपेक्षा नहीं है** (सुद्ध सम्मत्त दंसनं पिच्छइ) **वहां तो शुद्ध सम्यग्दर्शन होनेकी आवश्यक्ता है** (ज्ञान सहाव अनुमोयं) **वहां ज्ञान स्वभावी आत्मामें प्रसन्नता है** (अज्ञानं सल्य मिच्छ मुचेइ) **उस सम्यक्तीके भावोंमें न मिथ्या ज्ञान है न मिथ्या शल्य है।**

भावार्थ—**यह नियम नहीं है कि सम्यक्त अमुक जाति व कुलको पैदा होगा व अमुक जाति व कुलको न पैदा होगा। सम्यग्दर्शनको हरएक जाति व कुलका बुद्धिमान मनुष्य, हरएक नारकी, हरएक देव व हरएक सैनी पंचेन्द्रिय पशु प्राप्त कर सक्ता है। इसका सम्बन्ध आत्मासे है। जहां शुद्ध सम्यक्त है वहां शुद्ध ज्ञान स्वभावी आत्माके मननमें प्रसन्नता रहती है। न वहां कोई शरीरासक्ति रूपी मिथ्या ज्ञान है न कोई मिथ्या शल्य है। उसके परमाणु मात्र भी राग भाव, आत्माके सिवाय पर वस्तुमें नहीं है। सम्यक्तीको एक चांडाल भी प्राप्त करके पूज्यनीय होजाता है। श्री रत्नकरंडश्रावकाचारमें कहा है—**

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्। देवादेवं विदुर्भस्मगूढागारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—**सम्यग्दर्शन सहित चाण्डाल देहधारीको गणधर देवोंने देव कहा है। वह भस्मसे दबे हुए अग्नि कुलिंगसे समान है।**

ज्ञानस्य ज्ञान रूवं, दंसन दंसेइ ज्ञान चरनानं।
अज्ञान मिच्छ त्यक्तं, ज्ञानं अनुमोय रूव रूवं च ॥ १५४ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञानस्य ज्ञान रूवं ज्ञान चरनानं दंसेइ) **सम्यग्दर्शन ज्ञानका यथार्थ ज्ञान स्वभाव तथा ज्ञानमें थिरतारूप चारित्रको चरण देखता है** (अज्ञान मिच्छ त्यक्त) **उस सम्यक्तीने मिथ्या ज्ञान व मिथ्या श्रद्धानको त्याग दिया है** (ज्ञानं अनुमोय रूव रूव च) **उसके ज्ञानमें आत्मस्वभावके मनन द्वारा प्रसन्नता रहती है।**

भावार्थ—सम्यक्ती रत्नत्रयके यथार्थ स्वभावको जानता है। मैं शुद्धात्मा हूं इस प्रतीतिको निश्चय सम्यग्दर्शन, मैं शुद्धात्मा निःसंदेह हूं इस ज्ञानको सम्यग्ज्ञान, मैं शुद्धात्मा हूं इस ज्ञान श्रद्धानमें थिरताको सम्यक्चारित्र जानता है। उसकी दृष्टि निर्मल होगई है। वह आप व परको ठीक २ जानता है व श्रद्धता है इसलिये उसके न मिथ्या ज्ञान है न मिथ्या चारित्र है। वे अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें मगन रहकर अतीन्द्रिय आनंद भोगता है।

सम्यक्त भावमें लघु दीर्घ विचार नहीं।

लहु दीरघ नहु पिच्छइ, ज्ञान सहावेन अनुमोय संजुत्तं।
हितमित परिनइ सुद्धं, कोमल परिनाम अनुमोय संजुत्तं ॥ १५५ ॥

अन्वयार्थ—(लहु दीरघ नहु पिच्छइ) निश्चय नयसे जब देखता है तब किसीको छोटा व किसीको बड़ा नहीं देखता है—सब आत्माओंको एक समान परमात्मारूप देखता है (ज्ञान सहावेन अनुमोय सजुत्त) वह ज्ञान स्वभावके साथ अपनी प्रसन्नता रखता है (हितमित परिनइ सद्ध) वह जगतके जीवोंके साथ हितमित शुद्ध वचन बोलता है व सबके साथ हितरूप व्यवहार करता है (कोमल परिनाम अनुमोय संजुत्त) उसके परिणाम कोमल व प्रसन्न रहते हैं।

भावार्थ—सम्यक्ती जीवको समताभाव रखनेकी आदतसी पड़ जाती है। समताभाव तब ही होता है जब सब जीवोंको एक समान शुद्ध देखा जावे। उसे ज्ञान स्वभावके ही मननमें आनन्द आता है। व्यवहारमें वर्तते हुए वह सर्व प्राणी मात्रसे प्रेम रखता है, उनका हित चाहता है, उनकी तरफ कठोर भाव नहीं रखता है, कोमल परिणाम रखता है। दुःखी, रोगी, दलिद्रीको देखकर कर्मोदय विचार कर करुणाभाव रखता है। वह यथाशक्ति जगतके प्राणियोंका हित करता है। ऐसा स्वभाव सम्यक्तके प्रभावसे होजाता है।

सम्मत्त सहित दंसन, ज्ञान सहित चरन तव यरनं।
विमलं विमल सहावं, अनुमोयं ज्ञान सुग्गए जंति ॥ १५६ ॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्त सहित दृसन) सम्यग्दर्शनके साथ जहां श्रद्धान है (ज्ञान सहित चरन तव यरनं) तथा सम्यग्ज्ञान सहित जहां चारित्र व तपश्चरण है (विमल विमल सहावं) वहां परम निर्मल स्वभाव है (ज्ञान अनुमोय सुगए जंति) सम्यग्ज्ञानकी अनुमोदनासे प्राणी पुण्य बांधकर स्वर्ग जाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका एक अपूर्व गुण है। उसके साथ श्रद्धान सम्यक् श्रद्धान है, ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व सम्यक्त व सम्यग्ज्ञान सहित जो चारित्र व तप है वही सम्यक्चारित्र व सम्यक् तप है। जहां इन चारोंकी एकता है वहां परम निर्मल भाव रहता है। इस दशाको स्वात्म-लीनता व स्वात्मानुभव कहते हैं। जो इस ज्ञान स्वभावकी अनुमोदना करते हैं उनके ऐसा पुण्य-बन्ध होता है जिससे वे सुगतिमें जाते हैं।

गारव दोष कथन।

मनरंजन गारव उत्तं, मन सहकारेन सहाव संयुत्तं ।
मन उववन्न सहावं, मन आनन्द गारवं भनियं ॥ १५७ ॥

अन्वयार्थ—(मनरंजन गारव उत्त) जहां मन परिग्रहादिकी वृद्धि होते हुए प्रसन्न हो उसको गारव कहते हैं (मन सहकारेन सहाव संयुत्त) जब आत्माके स्वभावके साथ ऐसा मनका सहकार होजाता है (मन उववन्न सहाव) उस समय मनका ही स्वभाव पैदा होजाता है (मन आनन्द गारव भनियं) इसी मनके आनन्दको गारव कहते हैं।

भावार्थ—मनका स्वभाव चंचल व संकल्प विकल्परूप है। वास्तवमें जब ज्ञानोपयोग द्रव्य मन द्वारा विचार करने लगजाता है तब उसको मन कहते हैं। मन धन, धान्य, कुटुम्ब, परिवार आदि परिग्रहको देखकर मद करता है, बड़ा प्रसन्न रहता है। इसतरहके भावको गारव कहते हैं। यह भाव त्यागने योग्य है।

गारव मन संयुत्तं, गारव संसार सरनि मोहंधं ।
मन विषयं च सहावं, मन सहकारेन गारवं दिट्ठं ॥ १५८ ॥

अन्वयार्थ—(गारव मन संयुतं) जब मनमें मद भावका संयोग होता है (गारव संसार सरनि मोहंध) तब यह गारव भाव मोहमें अन्धपनेसे होता है और यह संसारका मार्ग है (मन विषयं च सहाव) जब मन पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें तल्लीन होता है तब (मन सहकारेन गारवं दिट्ठं) मनकी सहायतासे यह गारव देखा जाता है।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें तीव्र राग होनेसे जब इंद्रियोंकी विषय–सामग्री मनके अनुकूल होती है तब गारवभाव या मदभाव पैदा होता है। यह भाव सम्यक्तीके नहीं होता है क्योंकि वह विषयोंमें अन्ध मोह नहीं रखता है, मिथ्यात्वीके ही होता है क्योंकि वह पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें अन्धा है। ऐसा गारवभाव तीव्र कर्मको बांधता है जिससे प्राणी संसारमें भ्रमण करता है।

तव वय गहन उववन्नं, छाया कुज्ञान संयुक्त वय गहनं।
कुज्ञानं च उवन्नं, गारव अनुमोय नरय वासम्मि ॥१५९॥

अन्वयार्थ—(तव वय गहन उववन्नं) कोई गारव या मद तप तथा व्रतके ग्रहणसे उत्पन्न होता है (छाया कुज्ञान संयुक्त वय गहनं) क्योंकि वहां मिथ्याज्ञानकी छायासहित व्रत व तपका ग्रहण है। (कुज्ञानं च उवन्न) वहां मिथ्याज्ञानका प्रकाश है। इसलिये (गारव अनुमोय नरय वासम्मि) इस गारवभावमें प्रसन्नता रखनेसे नरकवास प्राप्त होता है।

भावार्थ—कोई २ मिथ्यादृष्टी मुनि या श्रावकके व्रतोंको धार करके व नाना प्रकार तप करके सम्यग्ज्ञानके न होनेपर मिथ्या ज्ञानके प्रभावसे बड़ा भारी घमंड करते हैं। हम व्रती, हम तपस्वी ऐसा तीव्र मान रखके अपनी प्रतिष्ठा कराना चाहते हैं। यदि प्रतिष्ठामें कमी हो तो क्रोध करते हैं। उनके भीतर बाहरी चारित्र व तप पालते हुए भी मायाचार बढ़ जाता है व लोभ कषायकी तीव्रता होजाती है, खानपानादि इच्छानुकूल चाहते हैं। यदि नहीं मिलता है तो भक्तोंको बुरा भला कहते हैं। वे मिथ्यात्व योगसे नरक जाने लायक पाप बांधकर नरक चले जाते हैं। उनके भीतर तीव्र गारव भाव अनन्तानुबन्धी कषाय व कृष्ण लेश्यारूप होजाता है।

संयम सम्मत्त सुभावं, छाया मिच्छत्त सल्य दुर्बुद्धी।
मिच्छा मय स सहावं, गारव उववन्न दुक्ख वीयम्मि॥ १६० ॥

अन्वयार्थ—(संयम सम्मत्त सुभावं) संयम उसे कहते हैं जहां सम्यग्दर्शनके साथ आत्म-स्वभावमें थिरता हो (छाया मिच्छत्त सल्य दुर्बुद्धी) यदि व्रत नियम प्रतिज्ञाके साथ मिथ्यात्व शल्यकी छाया पड़ जाती है तव मिथ्या बुद्धि पैदा होजाती है। यथार्थ कपाय विपय निग्रहरूप संयम परिणति नहीं रहती है (मिच्छा मय स सहावं) तव उसका स्वभाव मिथ्यात्वमय होजाता है (गारव उववन्न दुक्ख वीयम्मि) और गारव या मद पैदा होजाता है जो कि दुःखका वीज है।

भावार्थ—आत्म-स्वभावमें रमणके उद्देश्यसे जहां संयम धारण किया जाता है वहां सम्यग्दर्शनके भाव सहित संयम होता है। यही संयम कपायोंको मन्द करनेवाला होता है। यदि कोई वाहरी नियम या प्रतिज्ञा धारण की जावे, परन्तु उद्देश्य विपयोंकी भोग प्राप्तिका हो या मान-प्रतिष्ठा पानेका हो व किसी लाभकी सिद्धि करनेका हो तौ वह मिथ्यात्व सहित संयम होजाता है। तव वाहरी संयम पालके अपनेको दूसरोंसे ऊँचा समझके आप मद करता है, दूसरोंको नीचा देखता है। इस तीव्र मानके भावसे पापकर्म वांधता है और दुःखोंका पात्र भविष्य कालमें होजाता है।

सुतं च अनेय भेयं, अंग पुव्वाइ मिच्छ संजुत्तं।
रागं मएहि रइयं, मनरंजन राग नरय वासम्मि ॥ १६१ ॥

अन्वयार्थ—(अनेय भेय च सुत) कोई अनेक प्रकार शास्त्रोंको जानता है (अग पुव्वाइ मिच्छ सजुत्त) यहां-तक कि ग्यारह अंग ९ पूर्व तकका ज्ञान रखता है। परन्तु मिथ्यात्व सहित है तो (राग मएहि रइयं) उसका भाव राग व मदसे रचा हुआ होता है (मनरंजन राग नरय वासम्मि) इस मनरंजन रागका फल नरकवास होजाता है।

भावार्थ—कोई साधु ग्यारह अङ्ग नौ पूर्व तकका ज्ञान रखता है, परन्तु उसको सम्यग्दर्शनका लाभ नहीं है, तौ उसके भीतर न शुद्धात्माकी रुचि होती है न मोक्ष तत्वकी पहचान होती है, न उसकी रुचि होती है। किंतु भीतर कषाय वासना भरी होती है जिससे उसे अपने शास्त्रज्ञानका बड़ा राग व बड़ा घमंड होता है। उस श्रुतज्ञानसे कपायोंके घटानेका काम नहीं होकरके कपायोंके बढ़ानेका काम होता है। वह शास्त्रज्ञानसे मनको रंजायमान करके उन्मत्त रहता है। तीव्र कपायसे कभीर ऐसा ज्ञानी नरक जाने-लायक कर्म बांधकर नरक चला जाता है।

तवं च तीव्र सहियं, सम्मत्तं, सुद्ध मिच्छ सद्भावं ।
पर पेच्छंतो गारव, पर पज्जाय दुक्ख वीयम्मि ॥ १६२ ॥

अन्वयार्थ—(तव च तीव्र सहिय) जो तीव्र तपको किया जावे (सम्मत्त सुद्ध) तो वह तप सम्यग्दर्शन सहित शुद्ध कहलायगा (मिच्छ सद्भाव) परन्तु यदि मिथ्यात्व सहित है तो वह तप अशुद्ध कहा जायगा (पर पेच्छंतो गारव) क्योंकि वह आत्माकी तरफ दृष्टि न रखता हुआ पर पुद्गलकी ओर दृष्टि लगाए रहता है इससे मद होजाता है (पर पज्जाय दुक्ख वीयम्मि) पर पुद्गलीक पर्यायमें रत होनेसे दुःखका बीज ही बोता है।

भावार्थ—कठिन २ तपस्या करते हुए यदि सम्यक्तभाव है और आत्मध्यानमें जमनेका व कर्मोंकी निर्जराका उद्देश्य है तब तो वह शुद्ध तप है, परंतु यदि मिथ्यात्व सहित तप है तो वहां किसी लोभ या मान या माया या क्रोध कषायकी पुष्टिका उद्देश्य है। इसलिये वह तप मिथ्या तप है। मिथ्या तपको करते हुए दृष्टि शरीरपर व कषायकी पुष्टिपर रहती है इससे जों जों वह अपनेको तपस्वी देखता है उसको गारव या मद बढ़ता जाता है। यह तप मद भी पुद्गलीक कर्मोदयकी पर्याय है। इसमें रत होनेसे भी वह पाप-कर्मको ही बांधता है जो दुःखरूपी फलको देता है। आत्मानुशासनमें श्री गुणभद्राचार्य कहते हैं–

शम बोध वृत्त तपसा पाषाणस्यैव गौरव पुंस । पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम् ॥ १५ ॥

भावार्थ—शांत भाव हो, ज्ञान हो, चारित्र हो अथवा तप हो परंतु जो वह सम्यग्दर्शन सहित हो तो उसका मूल्य महान् रत्नके समान है और यदि सम्यक्त रहित हो तो उनकी कीमत कङ्कड पत्थरके समान तुच्छ है।

मन उववन्न सहावं, मन स सहावं च सहनि उवसग्गं ।
अज्ञानं पिच्छन्तो, तव षंडं नरय दुक्ख वीयम्मि ॥ १६३ ॥

अन्वयार्थ—(मन उववन्न सहावं) जहां मनका संकल्प विकल्प स्वभाव प्रगट होता है (मन स सहावं च सहनि उवसग्गं) वहां उस मनके स्वभाव सहित जो क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश मशक आदि परीषहोंको व मनुष्यकृत, देवकृत, पशुकृत व अचेतनकृत उपसर्गोंको सहन किया जाता है वहां भी (अज्ञानं पिच्छन्तो)

मिथ्याज्ञानकी दृष्टि होती है। इससे वह (तव पंडं) खंडित तप है या मिथ्या तप है (नरय दु ख वीयम्मि) सो नरकके दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—कोई मिथ्यादृष्टी आत्मज्ञान रहित तप करते हुए परीषह व उपसर्गोंको सहन करते हैं, उस उपसर्ग सहनमें उनका अभिप्राय वीतरागभाव व आत्मानुभव नहीं होता है किन्तु अज्ञानभाव ही होता है। हम उपसर्ग सह लेंगे तो हमारा बहुत मान होगा व हमको बहुत पुण्यकर्मका बंध होगा जिससे हम विषय भोग भविष्यमें पावेंगे। कषायोंकी वासना सहित यह उपसर्ग सहनरूपी तप भी मिथ्या तप ही है। परिणामोंमें कषाय भाव होनेसे पापकर्मका ही बन्ध होता है जिससे नरक तकके दुःख प्राप्त होसक्ते हैं।

मन रंजन सुभावं, सोमा सहकार जलस्य सुचि चित्तं।
अज्ञानं मिच्छत्तं, जलं सहावेन थावरं पत्तं ॥ १६४ ॥

अन्वयार्थ—(मन रजन सुभाव) मनको रंजायमान करनेका एक प्रकारका स्वभाव ऐसा होता है (सोमा सहकार जलस्य सुचि चित्तं) जिससे शोभा बढ़ानेके लिये जलका व्यवहार करके मनको पवित्र मानता है (अज्ञानं मिच्छत्तं) यह अज्ञान तथा मिथ्यात्व है (जल सहावेन थावर पत्तं) ऐसे जलके स्वभावमें रंजायमान होनेसे स्थावर योनिकी प्राप्ति होती है।

भावार्थ—कोई कोई अज्ञानी मिथ्यादृष्टी नदी या सरोवरके जलमें खूब क्रीड़ा करते हैं। शरीरको मल मल कर धोते हैं और मानते ऐसा है कि इस नदीके स्नानसे मन पवित्र होता है। इस अज्ञान तथा मिथ्याभावसे वह मरकर स्थावर काय पैदा होते हैं। ऐसे लोगोंमें मिथ्यात्व तो यह होता है कि जिस नदीके स्नानसे प्राणीहिंसा होती है उसको धर्म मान लेते हैं। तथा अज्ञान यह होता है कि मनकी पवित्रता अहिंसा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शील, परमात्म-भक्ति आदिसे होती है। इन बातोंपर लक्ष्य न देकर केवल जलके स्नानसे मन पवित्र होजायगा ऐसा मान लेते हैं। इसतरह बढ़ाते तो हैं शरीरका राग व मनका रंजायमानपना परंतु मानते हैं धर्म। इस कारण ऐसे भावोंसे तिर्यंच आयुका बंध पड़ जाता है।

सचित्त सहावं धरनं, चित्त सहावेन अज्ञान पर पिच्छं।
पज्जायस्य उवन्नं, पज्जयरत्तो तिरिय दुःख वीयम्मि ॥ १६५ ॥

अन्वयार्थ—(सचित्त सहावं धरनं) जो मनके रंजायमान पनेके स्वभावको धरते हैं (चित्त सहावेन अज्ञान पर पिच्छं) वे ऐसे चित्तके मलीन स्वभावसे अज्ञान द्वारा परमें ही दृष्टि रखते हैं (पज्जायस्य उवन्नं) पर्याय भाव ही को पैदा करते हैं (पज्जयरत्तो तिरिय दु.ख वीयम्मि) इस पर्यायमें रत होते हुए तिर्यंचगतिके दुःखका बीज बोते हैं।

भावार्थ—सचित्त जलसे क्रीड़ा करते हुए मनको रंजायमान करनेवाले घोर अज्ञानी हैं। उनकी दृष्टि शरीर ही पर रहती है कि यह शरीर बहुत साफ सुथरा श्रृंगार युक्त दीखे। शरीरमें तल्लीनताके भावको उत्पन्न करके व अपने आत्मीक धर्मको बिलकुल भूलकरके वे तिर्यंच आयु व गति बांध लेते हैं।

मन मूल चंचल उत्तं, चंचल सुभाव सरनि संसारे।
जिन उत्तं नहु पिच्छं, जन उत्तं सहाव गारवं भनियं ॥१६६॥

अन्वयार्थ—(मन मूल चचल उत्तं) जिसके मनकी जड़में चंचलता होती है—शांति नहीं होती है (चंचल सुभाव सरनि ससारे) इस चंचल स्वभावसे वह संसारमें ही भ्रमता है (जिन उत्तं नहु पिच्छं) वह जिनेन्द्र कथित तत्वपर श्रद्धान नहीं लाता है (जन उत्त सहाव गारवं भनियं) लोगोंकी कही हुई बातोंपर श्रद्धान करके उनमें रंजायमान होकर मद करता है, यह मनका गारव कहा गया है।

भावार्थ—जिसका मन इंद्रियोंके विषयोंका लोभी होता है, मान-प्रतिष्ठाका लोभी होता है, धनकी तृष्णामें आतुर रहता है, दूसरोंसे ईर्षाभाव रखता है, कभी इच्छित पदार्थोंके न मिलनेपर खेदित होता है, वह अपने मनमें सदा चंचलता व आकुलता रखता हुआ संसारका मार्ग बढ़ाता है। उसको जिनेन्द्रका तत्व उपदेश कुछ भी सुहाता नहीं है। वह लोगोंकी कही हुई बातोंपर विश्वास करके उन्हींपर चलता है। धन-सम्पत्ति, प्रतिष्ठा अपनी प्रशंसा बढ़ते हुए व विषयोंकी पुष्टिमें धन खरचते हुए बड़ा भारी मद करता है। इस गारव भावसे पापको ही बांधता है।

मनरंजन स सहावं, सचित्त चित्तस्य भाव संजदो होति।
मन सुभाव पर पिच्छं, पज्जय रत्तो सु दुग्गए सहियं ॥१६७॥

अन्वयार्थ—(मनरंजन स सहावं) मनको रंजायमान करनेका स्वभाव रखता हुआ (सचित्त चित्तस्य भाव संजदो होति) इसी प्रकारके मन सहित वह संयमी होता है (मन सुभाव पर पिच्छ) परन्तु मनका स्वभाव पर पदार्थमें लगा रहता है (पज्जय रत्तो सु दुगए सहियं) पर्यायमें रत होनेसे दुर्गति ही होती है।

भावार्थ—कोई मनको प्रसन्न करनेके लिये अर्थात् अपना मान बढ़ानेके लिये मुनिपद या श्रावकपदको धारके संयमी होजाता है। उसका मन कषायकी पुष्टिमें व वर्तमान पर्यायके मोहमें फंसा रहता है। अतएव आत्मामें रत न होनेसे यथार्थ संयममें नहीं रहता है किन्तु पर पदार्थमें रत होनेसे उसके मिथ्यात्व सहित असंयम भाव होता है। ऊपरसे द्रव्य चारित्र पालते हुए भी उस जीवका गमन दुर्गतिमें होता है।

तव वय किरिय स उत्तं, सुत सुभाव सयल विज्ञानं ।
अनेय कस्ट अनिस्टं, गारव भावेन निगोय वासम्मि ॥ १६८ ॥

अन्वयार्थ—(तव वय किरिय स उत्त) तप, व्रत, क्रिया जहां देखी जाती है (सुत सुभाव सयल विज्ञानं) तथा शास्त्रोंका भी पूर्ण ज्ञान है (अनेय अनिस्ट कस्ट) और वह अनेक अप्रिय कष्ट भी सहता है (गारव भावेन निगोय वासम्मि) परंतु यदि गारवपना भावोंमें है तो उसका वास निगोदमें होता है।

भावार्थ—यदि कोई शास्त्रोंका बहुत ज्ञाता भी हो तथा बहुत भारी कष्ट सह करके तप व्रत क्रिया-काण्ड पालता हो, परन्तु मनमें अहंकार हो—मैं तपस्वी, मैं व्रती, मैं क्रिया-काण्डी। कषायके नाश करनेके लिये व्रत व तप व ज्ञानका प्रकाश होना चाहिये था। यह अज्ञानी उन सबको करते हुए भी भावोंमें अपनी कषायको ही पुष्ट करता है। मान व प्रतिष्ठाका ही इच्छुक है। अतएव भावानुसार वह एकेन्द्री निगोद पर्यायके योग्य कर्म बांध लेता है।

गलिय सुभाव न दिट्ठं, चेतन आनन्द चित्त नहु पिच्छं ।
सूपम सुभाव रहियं, गारव सहकार दुक्ख वीयम्मि ॥ १६९ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय सुभाव न दिट्ठ) जिसने यह नहीं देखा है या विचारा है कि इस शरीरका स्वभाव गलनेका है, नाश होनेका है (चेतन आनन्द चित्त नहु पिच्छ) न जिसने यह श्रद्धान किया है कि मैं चेतना गुणमय तथा आनन्द भावका धारी एक शुद्ध आत्म द्रव्य हूं (सूपम सुभाव रहिय) जिसको अपने अतीन्द्रिय

सूक्ष्म स्वभावका पता नहीं है वह (गारव सहकार दुक्ख वीयम्मि) धर्म क्रियाओंको पालते हुए भी शरीर व पर्यायके अहंकारसे व मदसे दुःखोंका ही बीज बोता है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन सहित सर्व ज्ञान व सर्व क्रिया कुज्ञान तथा कुचारित्र है। सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान सुज्ञान व चारित्र सुचारित्र होता है। जिसने शरीरको पुद्गल रचित एक दिन छूटनेवाला नहीं समझा है तथा शरीरसे भिन्न व कर्मसे भिन्न मैं एक आत्म द्रव्य ज्ञाताहष्टा आनन्दमय वीतराग स्वभावधारी हूं ऐसा नहीं अनुभव किया है। इंद्रियोंसे अतीत मैं स्वानुभव गम्य हूं ऐसा भाव जिसके भीतर नहीं झलका है वह अवश्य कर्मके उदयमें व कषायोंमें रत रहता है। वह कषायोंकी पुष्टिके लिये ही सब कुछ करता है। अतएव गारव भावके होनेसे वह संसारमें दुःखोंका ही पात्र होता है।

पर पंच वृत्ति पेच्छन्तो, विभ्रम सुभाव सयल उपपत्ती।
विज्ञान ज्ञान नहु पिच्छं, गारव सहकार निगोय वीयम्मि ॥ १७० ॥

अन्वयार्थ—(पर पंच वृत्ति पेच्छनो) मायाचारके स्वभावको जो अनुभव करता है (विभ्रम सुभाव सयल उपपत्ती) व जिसके भीतर पूर्णपने भ्रामक स्वभाव भरा हुआ है (विज्ञान ज्ञान नहु पिच्छं) जिसने भेद ज्ञान-पूर्वक आत्मज्ञानको नहीं जाना है (गारव सहकार निगोय वीयम्मि) वह मदभावके कारण निगोदका बीज बोता है।

भावार्थ—जो क्रिया तो बाहरी ऐसी पाले जिससे प्रगट हो कि यह मोक्षमार्गपर चल रहे हैं परन्तु अन्तरंगमें मोक्षमार्गका श्रद्धान न हो, वैराग्य भाव न हो, किंतु ख्याति लाभ पूजादिकी चाह हो। उसका सर्व कार्य मायाचाररूप व मिथ्याभाव रूप ही है, वह कषाय-पुष्टिके भ्रममें फँसा रहता है जिससे वह अहंकार व मान करनेसे नीच गोत्रका बँध करता है और सैनी पंचेन्द्रियसे एकेन्द्री साधारण वनस्पति होजाता है। तात्पर्य यह है कि भव्य जीवको मात्र कषाय निग्रह व आत्माके अनुभवके हेतुसे ही तप व्रतादि पालने चाहिये। भावोंकी शुद्धि ही पर ध्यान देना चाहिये तब ही मोक्षमार्ग रूप आत्मानुभवमें वे तप व्रतादि सहकारी होंगे। कषाय भाव ही संसार मार्ग है, वीतराग भाव मोक्षमार्ग है। जो संसारके दुःखोंसे बचना चाहे उसे उचित है कि कषायोंको वश करे, मानका भाव कभी न लावे। विनय व मार्दव भावको पाले जिससे गारव भाव नहीं आसके।

दर्शन मोह दोष कथन ।

दंसन मोहंध उत्तं, दर्सइ अन्नं च मोहए अंधं ।
दंसन मोहंध कहियं, अज्ञानं नरय दुःख वीयम्मि ॥ १७१ ॥

अन्वयार्थ—(दंसन मोहंध उत्त) अब अंधा करनेवाले दर्शन मोह कर्मका स्वभाव कहते हैं । (दर्सइ अन्न च मोहए अंध) दर्शन मोहके उदयसे यह प्राणी आत्माको छोड़कर अन्य शरीरादिमें आपापनेका श्रद्धान रखता है तथा अंध होकर संसारके विषयोंमें मूर्छावान होजाता है (दंसन मोहंध कहियं) ऐसी परिणतिको दर्शन मोहका अंधपना कहते हैं (अज्ञानं नरय दुःख वीयम्मि) इसीसे मिथ्याज्ञान रहता है जो नरकके दुःखों-का बीज है ।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके दो भेद हैं-एक दर्शन मोह, दूसरा चारित्र मोह । दर्शन मोह सम्यग्दर्शनको प्रगट नहीं होने देता है, चारित्र मोह चारित्र नहीं होने देता है, कषायोंको उत्पन्न करता है । दर्शन मोह जीवका सबसे बड़ा वैरी है यही अन्धा करनेवाला है । इसके तीव्र उदयसे इसको आत्मप्रतीति विलकुल नहीं होती है । यह शरीरमें व इंद्रियोंके विषयोंमें ही रागी बना रहता है । उसे संसारका झगड़ा ही सुहाता है । राग रंग, खेल तमाशा ही अच्छा लगता है । धन परिवार परिग्रहकी वृद्धि ही उसके मनको रंजायमान करती है । जैसे कोई मदिरा पीकर उन्मत्त होजावे व अपने घरको ही भूल जावे व अन्ध हो अपनी स्त्रीको माता व माताको स्त्री मानले उसीतरह दर्शन मोहके नशेमें यह बावला होकर अपने स्वरूपको भूले रहता है । जिस संसारको त्यागने योग्य समझना चाहिये उसको ग्रहण योग्य समझता है । धर्मकी चर्चाको विलकुल भी सुनता नहीं है ।

दर्सइ दंसन उत्तं, अदर्स सहकार रूव सहियानं ।
उत्तं जिन उत्त परं, मोहंधं दिस्टि रूव बलिदानं ॥ १७२ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सइ दसन उत्तं) जो देखे उसको दर्शन कहते हैं या जो श्रद्धान करे उसको दर्शन कहते हैं (अदर्स सहकार रूव सहियानं) सो दर्शन मोहधारी आत्माकी श्रद्धासे रहित ऐसे अदर्शन या मिथ्यादर्श-

नको सहकारी स्वभावोंमें श्रद्धान रखता है (जिन उत्त परं उत्तं) जैसा श्री जिनेन्द्रने कहा है उससे विरुद्ध मानता है (मो:धं दिस्टि रूव बलिदान) मोहके अन्धपनेसे आत्मदर्शनका बलिदान कर देता है।

भावार्थ—दर्शन मोहके तीव्र उदयसे यह प्राणी आत्माके सच्चे स्वभावकी श्रद्धा नहीं पाता है किन्तु शरीररूप ही अपनेको माना करता है। श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंपर बिलकुल श्रद्धान नहीं लाता है। यह आत्मदर्शनरूप सम्यग्दर्शनका घात कर रहा है।

देवं देवाधिदेवं, देवं वर ज्ञान दंसन समग्गं।
चरनं अनन्तवीर्य, दर्सन मोहंध अदेव देवं च ॥ १७३ ॥

अन्वयार्थ—(देव देवाधिदेवं) जो चार प्रकारके देवोंके अधिपति परम देव हैं (देवं वर ज्ञान दंसन समग्ग) जो देव अनन्तज्ञान व अनन्तदर्शनके धारी हैं (चरनं अनन्तवीर्य) जो यथाख्यात वीतराग चारित्रवान हैं व अनन्त वीर्यके धारी हैं (दर्सन मोहध अदेव देवं च) दर्शनमोहसे अन्धा प्राणी ऐसे देवको देव न मानकर अदेवको या कुदेवको देव मानता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीवको दर्शन मोहके उदयसे सच्चे पूज्यनीय देवकी श्रद्धा नहीं होती है। सच्चे देव श्री अर्हंत भगवान हैं। जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्यधारी व परम वीतराग हैं, उनको देव न मानकर यह रागीद्वेषी देवोंको या जिनमें देवपना बिलकुल नहीं ऐसे अदेवोंको देव मान लेता है। जो भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी व स्वर्गवासी देव हैं उनको सच्चा देव मानना कुदेवका श्रद्धान है। तथा जो देव गतिमें नहीं हैं ऐसे गाय, गरुड़, अग्नि, जल, आदिको देवता मानना अदेवको देव मानना है। वास्तवमें अदेव या कुदेवमें दोनों ही गर्भित हैं। यदि दोनों शब्दोंका भिन्नर अर्थ करें तो ऐसा होसकता है। अमितगति महाराजने श्रावकाचारमें अदेवका स्वरूप बताया है—

मुशलं देहली चुल्ली पिप्पलश्चंपकोजलम्। देवा यैरभिधीयन्ते वर्ज्यन्ते ते परेऽत्र के ॥ ९६ ॥

भावार्थ—मूसल, देहली, चूल्हा, पीपल, चम्पावृक्ष, जल आदिको जो देव मानते हैं वे इस लोक परलोकमें निषेधने योग्य हैं। प्रयोजन यहां यह है कि श्री अर्हंत सिद्ध भगवानको ही देव मानना योग्य है क्योंकि वे आत्मीक शुद्ध गुणोंके धारी हैं। जिनमें ये आत्मीक शुद्ध गुण न पाये जावें वे सर्व कुदेव या अदेव हैं।

देवं अरूव रूवं, रूवातीतं च विगत रूवेन ।
ज्ञानमई स सहावं, दर्सन मोहंध रूव देवं च ॥ १७४ ॥

अन्वयार्थ—(देवं अरूव रूवं) देव वह है जिसका स्वभाव अमूर्तीक है (रूवातीतं च विगत रूवेन) जो रूपातीत हैं वर्णादि रहित हैं (ज्ञानमई स सहाव) जिनका स्वभाव ज्ञानमई है (दर्सन मोहंध रूव देवं च) दर्शन-मोहसे जो अन्धा है वह शरीरको देव मानता है ।

भावार्थ—आत्माको देव कहते हैं जो कर्म रहित शुद्ध है, ज्ञाताद्दष्टा है व अमूर्तीक है । शरीर पौद्गलीक है उसको देव मान लेना मिथ्यात्व है । यद्यपि अर्हंत भगवान शरीर सहित देव हैं तथापि सम्यग्दृष्टी शरीरको मात्र अर्हंतके रहनेका आधार मानता है । अर्हंत तो शरीरमें तिष्ठनेवाला सर्वज्ञ वीतराग आत्मा है । ऐसा ही श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्तीने द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

णट्ठचदुघाइकम्मो दसनसुहणाणवीरियमईओ । सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरुहो विचिंतिज्जो ॥ ५० ॥

भावार्थ—जिसने चार घातीय कर्म नाश कर दिये हैं, जो अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान व अनन्त वीर्यमई है, जो शुभ देहमें तिष्ठता है, जो शुद्ध आत्मा है, वह अर्हंत है ऐसा विचारना चाहिये ।

देवं ऊर्ध सहावं, देवं तिलोय मंत सुपएसं ।
देव अनन्तानन्तं, दर्सन मोहंध अनृतं देवं ॥ १७५ ॥

अन्वयार्थ—(देव ऊर्ध सहावं) श्रेष्ठ स्वभावधारी आत्माको देव कहते हैं (देवं तिलोय मत सुपएस) देवके ज्ञानमें तीन लोकके पदार्थ अपने प्रदेशोंके साथ झलकते हैं (देव अनतानत) देव अनन्तानन्त गुणोंके धारी हैं (दर्सन मोहंध अनृत देव) जो मिथ्यात्वसे अन्धा है वह इससे विपरीत रागी द्वेषी व अज्ञानीको व असत्यको देव मानता है ।

भावार्थ—अनन्त गुणोंका धारी वीतराग शुद्ध आत्मा ही सच्चा देव है, जो लोकालोकका ज्ञाता है। इससे विपरीतको जो देव मानता है वह मिथ्यादृष्टी है ।

देवं अनन्त दिस्टी, इस्टी संयुत्त सहाव परमेस्टी ।
आनन्दं परमानन्दं, दर्सन मोहंध असत्य देवं च ॥ १७६ ॥

अन्वयार्थ—(देवं अनत दिम्टी) देव वह है जो अनन्त दर्शनके धारी हैं (इस्टी संयुक्त सहाव परमेस्टी) जिनका स्वभाव सर्व प्राणी मात्रको हितकारी है तथा जो परम पदमें तिष्ठनेवाले हैं (आनंद परमानंदं) और जो परमानन्दमें मग्न हैं (दर्सन मोहंध असत्य देवं च) मिथ्यादृष्टी इससे विपरीत असत्य देवको मानता है।

भावार्थ—देव वही है जो परमात्मपदमें तिष्ठता है। जो अनन्तदर्शन व अनन्त सुखका धारी है व जो सर्व प्राणी मात्रको अभयदान व ज्ञानदान देता है।

अनन्त चतुस्टय सहियं, आचरनं चरन सयल सुइ रूवी।
सहजानन्द सुभावं, दर्सन मोहंध कुदेव देवं च ॥ १७७ ॥

अन्वयार्थ—(अनन्त चतुस्टय सहिय) देव वही है जो अनन्त ज्ञानादि चतुस्टय सहित है (आचरनं चरन सयल सुइ रूवी) जो स्वरूपाचरण चारित्रमें आचरण कर रहा है व जिससे सर्व श्रुतज्ञान प्रगट हुआ है (सहजानन्द सुभावं) जो स्वाभाविक आनन्दमई स्वभावका धारी है (दर्सन मोहंध कुदेव देव च) मिथ्यादृष्टी कुदेवोंको देव मानता है।

भावार्थ—अनन्त चतुष्टय सहित, अपने स्वसमयमें मग्न, सहजानन्दरूप परमात्माको देव कहते हैं। मिथ्यादृष्टी रागीद्वेषी आत्माको देव मानता है।

देवं च सल्य रहियं, देवं परिनाम सयल सुइ रूवी।
देवं च परम देवं, दर्सन मोहंध अनिस्ट देवं च ॥ १७८ ॥

अन्वयार्थ—(देवं च सल्य रहियं) देव वह है जिसमें कोई मायाचार, मिथ्यात्वभाव व भोग निदानरूपी शल्यें न हों (देवं परिनाम सयल सुइ रूवी) देवका भाव सदा ही शुद्ध व पवित्र रहता है (देवं च परम देवं) जो देवोंका देव है वही परमात्मा देव है (दर्सन मोहंध अनिस्ट देव च) परन्तु मिथ्यादृष्टी अहितकारी अनिष्टकारी रागद्वेष वर्द्धक देवको देव मान लेता है।

भावार्थ—देव वही होसक्ता है जिसके भावोंमें कोई विकार न हो। जो परम पवित्र] शुद्धोपयोगका धारी हो। जिसमें न भोगाकांक्षा हो, न कोई मायाचार हो, न कोई मिथ्यात्वभाव हो। ऐसे देवाधिदेवको ही देव मानना चाहिये। मिथ्याती जगतके प्रपंचमें ग्रसित देवको देव मान लेता है।

देवं अलष्य लष्यै, देवं संसार सरनि विगतो यं ।
मिथ्या राग विमुक्तं, दर्सन मोहंध मिथ्य देवं च ॥ १७९ ॥

अन्वयार्थ—(देवं अलष्य लष्यै) देव वह है जो परम सूक्ष्म इंद्रियोंसे व मनसे न लखने योग्य आत्माको अनुभव करता है प्रत्यक्ष देखता है (देवं संसार सरनि विगतो य) देव वह है जो संसारके मार्गसे व प्रपंचसे दूर होगया है (मिथ्या राग विमुक्त) जिसमें कोई भी संसारका मिथ्या राग नहीं है (दर्सन मोहंध मिथ्य देवं च) मिथ्याती जीव इससे विपरीत मिथ्या देवको देव मान लेता है ।

भावार्थ—आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन केवलज्ञानी अर्हंत ही कर सकते हैं, वे ही सच्चे देव हैं । जो संसारके सर्व प्रकारके आरम्भ व परिग्रहके भावसे विरक्त हैं, जिनमें कोई भी सांसारिक मिथ्या राग नहीं है, वे निरन्तर आत्मानन्दमें मग्न परम वीतराग हैं । ऐसे सत्यदेवको मिथ्यादृष्टी नहीं समझकर इससे विपरीत मिथ्यादेवको देव मानता है ।

दर्सन मोहंध सुभावं, अनृत असत्य देव उत्तं च ।
असरन संसार मइओ, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ १८० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सुभाव) दर्शन मोहका ऐसा अन्ध स्वभाव है (अनृत असत्य देव उत्तं च) जिससे मिथ्यादृष्टी नाशवन्त मिथ्या रागी द्वेषी देवको देव कहता है (असरन) जो स्वयं अशरन हैं, जो स्वयं काल मरणके वश हैं, जो स्वयं कर्मोंके उदयसे अपनी रक्षा नहीं कर सक्ते (संसार मइओ) जो संसारमई हैं, जन्म-मरण शील हैं व चार गतियोंमें भ्रमण करनेवाले हैं (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्त) ऐसे देवको देव माननेवाला मिथ्यादृष्टी दुर्गतिमें जाता है ।

भावार्थ—देवगतिमें रहनेवाले सर्व ही इंद्र धरणेन्द्र क्षेत्रपालादि देव कर्माधीन हैं । जब मरणका समय आता है वे अपनी रक्षा नहीं कर सक्ते, वे स्वयं कर्मोंके उदयके अनुसार अनेक गतियोंमें भ्रमण करते हैं, वे स्वयं भोगोमें लीन हैं, रागी हैं। ऐसे संसारी आत्माओंको देव मानना घोर मिथ्यात्व है। ऐसे मिथ्यात्वी जीव दुर्गतिमें जाते हैं ।

मोहांधं च सुभावं, कुदेवं देव सयल सहकारं ।
अदेवं अनुमोयं, दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि ॥ १८१ ॥

अन्वयार्थ—(मोहांधं च सुभावं) यह दर्शन मोहके उदयका स्वभाव है (कुदेवं देव सयल सहकारं) जिससे यह कुदेवोंको अपना पूर्ण सहकारी देव मानता है (अदेवं अनुमोय) जिनमें देवपना बिलकुल नहीं है ऐसे अग्नि, जल, वृक्ष, गाय आदिकी पूजामें प्रसन्नता मानता है (दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि) जो दर्शन मोहसे अन्धा है वह निगोदमें वास पाता है ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव वीतराग सर्वज्ञ भगवानको देव नहीं मानता है किन्तु सांसारिक प्रयोजनको मनमें रखकर रागी द्वेषी चार प्रकारके देवोंको व जिनमें देवपना बिलकुल नहीं है ऐसे अदेवोंको देव मानके अपना हित चाहता है । ऐसा अज्ञानी एकेन्द्रिय पर्यायमें जाकर निगोद वास पाता है । वास्तवमें देवके माननेका अभिप्राय यह है कि अपने सामने ऐसा एक आदर्श रहे जिसपर हमको पहुचना है इसलिये आदर्श देव अरहन्त व सिद्ध भगवान ही होसक्ते हैं क्योंकि वे सर्वतरह शुद्ध वीतराग ज्ञातादृष्टा आनंदमई हैं । मेरा आत्मा भी परमात्माके समान है, ऐसी भावना ही परमात्मापदमें लेजाती है । जो सच्चे परमात्मादेवकी आत्माको पहचानता है वही परमात्माको भी पहचानता है तथा अपने आत्माको भी पहचानता है । प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जत्तेहिं । सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥ ८६ ॥

भावार्थ—जो अरहंत भगवानको उनके आत्म द्रव्यके द्वारा, उनके ज्ञान सुखादि गुणोंके द्वारा व उनके स्वाभाविक पर्यायके द्वारा जानता है वह अपने आत्माको जानता है, उसीका मोह दूर होता है ।

अरहन्तदेवके आत्मापर लक्ष्य जायगा तब ही सच्चे देवका श्रद्धान होगा । उनके आत्माकी भक्तिसे ही अपने आत्माका विचार होगा । आत्माके विचारसे ही आत्मानुभव जाग्रत होसकेगा । इसलिये सर्वज्ञ वीतराग आत्माको ही देव मानना चाहिये । जो ऐसा मानता है वह सम्यग्दृष्टी है । जो इससे विपरीत किसी भी शरीर सहित रागी द्वेषी देवको व देव वर्जित पदार्थको जिससे कुछ भी देवत्व नहीं झलकता है, देव मानेगा वह दर्शनमोहके उदयसे व्याप्त मिथ्यादृष्टी जीव है ।

गुरुं च गुपितुवदेसं, गुरु अप्पा सुद्ध सहावं च ।
दंसन ज्ञान पहानं, दर्सन मोहंध अगुरु गुरुवं च ॥ १८२ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च गुपितुवदेसं) गुरु वह है जो गुप्त अध्यात्मिक तत्त्वका उपदेश देते हों (गुरु अप्पा सुद्ध सहावं च) गुरु वह है जिनका आत्मा शुद्ध स्वभाव धारी वीतराग है (दसन ज्ञान पहानं) गुरुमें सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानकी प्रधानता है (दर्सन मोहंध अगुरु गुरुवं च) जो दर्शन मोहके उदयसे अन्धा है वह कुगुरुको गुरु मान लेता है ।

भावार्थ—गुरु वही हैं जो सम्यग्दृष्टी व सम्यग्ज्ञानी हैं तथा जिनका आत्मा राग द्वेष विकारोंसे रहित सरल शुद्ध वीतराग है । जो नित्य अध्यात्ममें रत हैं व दूसरोंको भी इसी गुप्त अध्यात्मज्ञानका उपदेश देते हैं, जो दूसरोंको दीक्षा शिक्षा देते हैं, आप भी आचरण पालते हैं व दूसरोंसे भी पलवाते हैं । द्रव्यसंग्रहमें गुरुका स्वरूप कहा है—

दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे । अप्पं परं च जुनइ सो आइरिओ मुणी उझेओ ॥ ५२ ॥

भावार्थ—जिनके सम्मग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानकी मुख्यता है, जो इन दो सहित आत्मवीर्य, चारित्र व उत्तम तप इन पांच प्रकारके आचारमें अपनेको भी लगाते हैं व दूसरोंको भी लगाते हैं वे ही सच्चे आचार्य हैं । उन मुनियोंका ध्यान करना चाहिये ।

गुरु उवदेस स उत्तं, सूक्षम परिणाम कम्म संषिपनं ।
गुरुं च विमल सहावं, दर्सन मोहंध समल गुरुवं च ॥ १८३ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु उवदेस स उत्त) गुरु महाराज ऐसा उपदेश देते हैं (सूक्षम परिणाम कम्म संषिपनं) जिससे सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माकी शुद्धोपयोग परिणतिका ज्ञान होजावे, जिस परिणतिमें रमण करनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है (गुरुं च विमल सहावं) गुरुकी आत्माका स्वभाव मल व दोष रहित है (दर्सन मोहंध समल गुरुवं च) परन्तु जो मिथ्यादृष्टी है वह दोष सहित गुरुको गुरु मानता है ।

भावार्थ—गुरु बड़े दयालु हैं स्वयं वीतराग शुद्ध परिणतिमें रमण करते हुए अपने कर्मोंकी निर्जरा करते हैं तथा अपने शिष्योंको भी ऐसा उपदेश देते हैं जिससे वे भी शुद्धोपयोगकी पहचान करके उसमें

रमण कर सकें। गुरुमें इंद्रिय निग्रह, वीतरागता, समताभाव व उत्तम क्षमा आदि गुण होते हैं। वे परिग्रह व आरम्भसे विरक्त रहते हैं। ऐसे सचे गुरुको छोड़कर मिथ्यादृष्टी अन्धा होकर परिग्रहधारी, आरम्भमें लीन, अध्यात्मज्ञानसे शून्य, इंद्रिय-लम्पटी, प्रतिष्ठा चाहनेवाले, संसारासक्त, मिथ्या प्रपंचमें फंसानेवाले गुरुमन्योंको गुरु मान लेता है और अपना अहित करता है।

गुरुं च मग उवएसं, अमगं सयल भाव गलियं च।
गुरुं च ज्ञान सहावं, दर्सन मोहंध अज्ञान गुरुवं च ॥ १८४ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च मग उवएस) गुरु वे ही हैं जो मोक्षमार्गका उपदेश देते हैं (अमगं सयल भाव गलियं च) जिनके भीतर मोक्षमार्गसे विपरीत सर्व भाव गल गये हैं (गुरु च ज्ञान सहावं) गुरु वे ही हैं जिनका स्वभाव सम्यग्ज्ञानमई है (दर्सन मोहंध अज्ञान गुरुवं च) परन्तु जो मिथ्यात्वसे अन्ध हैं वे आत्मज्ञान रहितको गुरु मान लेते हैं।

भावार्थ—जो स्वयं आत्मानुभवरूप मोक्षमार्गपर चलते हैं व वैसा ही उपदेश करते हैं वे ही गुरु हैं। जिनके परिणामोंमें मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, व मिथ्याचारित्र सम्बन्धी कोई भी विकार नहीं है, उनका स्वभाव आत्मज्ञानमें रमणताका होगया है। मिथ्यादृष्टी इससे विपरीतको गुरु मानते हैं।

गुरुं च लोय पयासं, चेलं स सहाव ग्रन्थ मुक्कं च।
विमल सहावं सुद्धं, दर्सन मोहंध समल गुरुवं च ॥ १८५ ॥

अन्वयार्थ—(गुरुं च लोय पयास) गुरु वे हैं जो लोकका स्वरूप ठीक२ प्रकाश करते हों (चेल स सहाव ग्रन्थ मुक्क च) जो बाहरमें वस्त्र परिग्रहके त्यागी हैं व अन्तरंगमें उस वस्त्र परिच्छादनके रागके त्यागी हैं (विमल सहाव सुद्ध) जिनका स्वभाव निर्मल व कषाय रहित शुद्ध है (दर्सन मोहंध समल गुरुव च) परन्तु मिथ्यादृष्टी दोष सहित सग्रन्थ हीको गुरु मान लेता है।

भावार्थ—गुरु वही है जो वस्त्रादि परिग्रहका त्यागी, शास्त्रोंका ज्ञाता, लोक स्वरूपका जाननेवाला तथा परम शांत स्वभावी हो, जिसके संसारके पदार्थोंसे राग बिलकुल न हो। मूलाचारके अनगार भावना अधिकारमें कहा है—

उपधिरर विए मुक्ता वोसट्टगा णिरवग धीरा। णिक्किंचण परिसुद्धा साधू सिद्धि विमग्गंति ॥ ३० ॥

भावार्थ—साधु सर्व परिग्रहके त्यागी, शरीर ममत्व रहित, वस्त्र रहित, धीर, लोभ रहित, शुद्ध आचरणी होते हैं, जिनका लक्ष्य सिद्धि प्राप्ति रहता है। ऐसे साधुको मिथ्यादृष्टी न मानकर सग्रन्थको गुरु मान लेता है।

गुरुं सहाव स उत्तं, रागं दोसं पि गारव त्यक्तम् ।

ज्ञानमई उवएसं, दर्सन मोहंध राइ मय गुरुवम् ॥ १८६ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु सहाव स उत्त) गुरुका ऐसा स्वभाव कहा गया है (राग दोस पि गारव त्यक्त) जिन्होंने राग, द्वेष तथा मदका त्याग कर दिया है (ज्ञानमई उवएसं) जिनका उपदेश ज्ञानमई होता है (दर्सन मोहंध राइ मय गुरुव) परन्तु मिथ्यात्वसे अंधा है, वह सरागीको ही गुरु मान लेता है।

भावार्थ—जो वीतरागी है तथा आत्मज्ञानका उपदेश देता है वही गुरु होसक्ता है। अज्ञानी विना पहचानके रागद्वेष पूर्णको गुरु मान लेता है।

गुरुं च दर्सन मइओ, गुरुं च ज्ञान चरन सयुत्तो ।

मिथ्या सल्य विमुक्कं, दर्सन मोहंध सल्य गुरुवं च ॥ १८७ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च दर्सन मइओ) गुरु वही है जो सम्यग्दर्शनका धारी है (गुरु च ज्ञान चरन सयुत्तो) गुरु वही है जो सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र सहित है (मिथ्या सल्य विमुक्क) जिसमें कोई मिथ्यात्वकी शल्य नहीं है (दर्सन मोहंध सल्य गुरुवं च) मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्व शल्य धारीको गुरु मान लेता है।

भावार्थ—व्यवहार व निश्चय रत्नत्रय मोक्षमार्ग है। गुरु वही है जो व्यवहार रत्नत्रयके द्वारा निश्चय रत्नत्रयका साधन करता है जिसमें परमाणु मात्र भी राग परद्रव्य व पर भावोंमें नहीं है, पूर्ण प्रकारसे भिन्न आत्माका अनुभवी है। खेद है कि मिथ्यात्वी जीव मिथ्यात्व शल्य धारी संसार–मार्गीको गुरु मान लेता है। मूलाचारकी अनगार भावनामें कहा है—

सुदरयण पुण्ण कण्णा हेउणय विसारदा विउलबुद्धी। णिउणत्थसत्थ कुसला पर० पय वियाणया समणा ॥ ६७ ॥

भावार्थ—जो शास्त्ररूपी रत्नसे अपने कर्णोंको शोभित करते हैं। हेतु व नयोंके ज्ञाता, बड़े बुद्धिमान, शास्त्रके अर्थके ज्ञानमें कुशल परम पदके अनुभव करनेवाले श्रमण होते हैं।

दर्सन मोह अदर्स, गुरु अगुरं च ज्ञान विज्ञानम्।
गुरं च गुनं न हि पिच्छं, अगुरं अनुमोय दुग्गए पत्तम् ॥१८८॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोह अदर्स) दर्शन मोहके उदयसे मिथ्यात्वी नहीं देखता है कि (गुरु अगुरं च ज्ञान विज्ञान) सुगुरु कौन है व कुगुरु कौन है। मिथ्या ज्ञान क्या है व सम्यग्ज्ञान क्या है (गुरं च गुन न हि पिच्छ) वह सद्गुरुके गुणोंको नहीं पहचानता है (अगुर अनुमोय दुग्गए पत्त) कुगुरुकी अनुमोदनासे दुर्गति पाता है।

भावार्थ—मिथ्यात्वीको जैसे सुदेव कुदेवकी पहचान नहीं है वैसे सुगुरु कुगुरुकी व मिथ्या या सम्यग्ज्ञानकी पहचान नहीं है। वह इस बातकी परीक्षा नहीं करता है कि सुगुरुमें क्या क्या गुण होने चाहिये। वह परिग्रहधारी सरागी गुरुकी भक्ति करके वक्र मार्गकी अनुमोदना करके दुर्गति पाता है।

गुरुं च लष्यं अलष्यं, अगुरं संसार सरनि उत्तं च।
गुन दोसं न वि जानइ, दर्सन मोहंध नरय वीयम्मि ॥ १८९ ॥

अन्वयार्थ—(गुरु च लष्य अलष्य) गुरु वे हैं जो अलक्ष्यको भी अनुभव करते हैं (अगुर ससार सरनि उत्त च) कुगुरु संसारके मार्गके अनुभवी कहे गए हैं (दर्सन मोहंध) मिथ्यादृष्टी जीव (गुन दोस न वि जानइ) सुगुरु कुगुरुके गुण दोषोंको नहीं जानता है (नरय वीयम्मि) वह मिथ्याज्ञान व चारित्रसे नरक जानेका बीज बोता है।

भावार्थ—यह आत्मा मन वचन काय द्वारा नहीं जाना जाता है इसलिये अलक्ष्य है। परन्तु आत्मा द्वारा जाना जाता है। सुगुरु ऐसे सूक्ष्म आत्मतत्वके अनुभवी होते हैं। परन्तु कुगुरु कभी भी इस तत्वको न पाकर संसारके विषय कषायोंका ही अनुभव करते रहते हैं। मिथ्यादृष्टी जीव सुगुरु कुगुरुकी पहचान नहीं करके कुगुरुको गुरु मानके नरक जाने योग्य कर्म बांधता है।

गुरुं च षिपनिक रूवं, अगुरं अभाव सयल उत्तं च।
तस्य गुन अनुमोयं, दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि ॥ १९० ॥

अन्वयार्थ—(गुरुं च षिपनिक रूवं) गुरु महाराज नग्न दिगम्बर रूपके धारी तथा कर्मोंके क्षय करनेवाले होते हैं (अगुरं अभाव सयल उत्तं च) कुगुरुमें इस सर्वका अभाव कहा गया है (तस्य गुनं अनुमोयं) जो कोई कुगुरुके गुणोंकी अनुमोदना करता है वह (दर्सन मोहंध निगोय वासम्मि) दर्शन मोहसे अँध प्राणी निगोदमें वास पाता है।

भावार्थ—क्षपणकको नग्न दिगम्बर कहते हैं। वे द्रव्यलिंग व भावलिंग दोनोंके धारी होते हैं। भावोंमें भी पूर्ण ममता रहित है। जिनमें यह गुण नहीं है वे कुगुरु हैं। उनकी अनुमोदना करनेवाला महापाप बांधता है। इसतरह जो कोई सम्यक्तको प्राप्त करना चाहे उसको पहले श्री अर्हंत सिद्ध भगवान परमात्माको देव व परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ आत्म-रमी साधुको गुरु मानना चाहिये। इसके सिवाय अन्य सर्व देव व गुरुको यथार्थ पूज्यनीय देव व गुरु न मानना चाहिये। क्योंकि वे संसारके भीतर स्वयं लीन हैं, न उनकी भक्तिसे संसार ही बढ़ेगा। मूलाचारके समयसार अधिकारमें कहा है—

णिस्सगो णिरारंभो भिक्खा चरियाए सुद्ध भावो य। एगागी झाणरदो सव्व गुणड्ढो हवे समणो ॥ १०० ॥

भावार्थ—श्रमण या जैन साधु वही है जो अंतरंग वहिरंग परिग्रह रहित हो, आरंभ रहित हो। भिक्षा ग्रहणमें लोलुपता रहित शुद्ध भावधारी हो। जो एकाकी ध्यानमें रत हो और साधुके सर्व गुणोंसे पूर्ण हो, ऐसेको ही सुगुरु मानना चाहिये।

सुतं च सुत उववन्नं, सुतं च ज्ञान दंसन समग्गम्।
सुतं च मग उवएसं, दर्शन मोहंध कुसुतं अनुमोयम् ॥ १११ ॥

अन्वयार्थ—(सुतं च सुत उववन्न) शास्त्र वह है जो द्वादशांग वाणीसे उत्पन्न हुआ हो (सुत च ज्ञान दंसन समग्ग) शास्त्र वह है जिसमें सम्यग्ज्ञान व सम्यग्दर्शनका स्वरूप हो (सुत च मग उवएस) शास्त्र वह है जिसमें मोक्षमार्गका उपदेश हो (दर्सन मोहंध कुसुत अनुमोयं) परन्तु मिथ्यादृष्टी कुशास्त्रकी ही अनुमोदना करता है।

भावार्थ—अब सम्यग्दर्शनका विषयभूत सुशास्त्रका स्वरूप कहते हैं। जो शास्त्र परम्परा श्री तीर्थंकरोंके द्वारा रचित द्वादशांग वाणीके आधारसे बना है व जिसमें रत्नत्रयका स्वरूप मोक्षमार्गका उपदेश

हो वही सुशास्त्र है। इससे विपरीत जिसमें एकांत नयसे वस्तु स्वरूप बताया है व संसार–मार्गकी पुष्टि हो वह कुशास्त्र है। मिथ्यादृष्टी ऐसे हीको शास्त्र जानके मानता है।

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें शास्त्रका लक्षण ऐसा कहा है—

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम्। तत्त्वोपदेशकृत् सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

भावार्थ—शास्त्र वह है जो परम्परा अर्हत आप्तका कहा हुआ हो, जो खण्डन न होसके, जो प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे बाधित न हो, जो तत्वोंका उपदेश करनेवाला हो व जो सर्वका हितकारी हो। तथा जो कुमार्गका खण्डन करनेवाला हो।

सुतं च अषर मइओ, सुतं च सुर विंजनस्य पद सहियम्।
सुतं च जिनपति वयनं, दर्सन मोहंध विकह सुतं च ॥ १९२ ॥

अन्वयार्थ—(सुत च अषर मइओ) शास्त्र वह है जो अक्षरोंसे बना हो (सुतं च सुर विंजनस्य पद सहिय) शास्त्र वह है जिसमें स्वर तथा व्यंजनोंसे रचे हुए पद हों (सुत च जिनपति वयन) शास्त्र वह है जो श्रीजिनेन्द्रकी वाणीरूप हो (दर्सन मोहंध विकह सुत च) परन्तु मिथ्यादृष्टी विकथाको ही शास्त्र मान लेता है।

भावार्थ—अक्षरोंसे बने हुए पदोंके संग्रहको शास्त्र कहते हैं, जिनसे वही अर्थका बोध हो जैसा श्री जिनेन्द्रने जैनधर्मका स्वरूप बताया है। अज्ञानी स्त्री, भोजन, देश व नृप कथाओंको बतानेवाले विकथामय शास्त्रोंको ही शास्त्र मान लेता है।

सुतं च षिपनिक रूवं, पिपिओ कम्मान तिविह जोगेन।
विकथा वसन असुतं, दर्सन मोहंध असुत पिच्छई ॥ १९३ ॥

अन्वयार्थ—(सुतं च पिपनिक रूवं) शास्त्र वह है जिसका भाव ध्यानमें लेनेसे कर्मोंका क्षय हो (पिपिओ कम्मान तिविह जोगेन) जिसके कथनसे मन, वचन, काय द्वारा ऐसा वर्ताव किया जावे जो रागादि भावकर्मोंका क्षय हो, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंका क्षय हो व शरीररूप नोकर्मोंकी प्राप्ति न हो (विकहा वसन असुतं) जिस शास्त्रमें चार विकथा व सात व्यसनोंकी पुष्टिका उपदेश हो वह कुशास्त्र है (दर्सन मोहंध असुत पिच्छई) मिथ्यादृष्टी ऐसे कुशास्त्रको ही शास्त्र मान लेता है।

भावार्थ—जिस शास्त्रके वीतराग विज्ञानमय उपदेशके ऊपर ध्यान देनेसे ऐसे परिणाम होजावें जिससे रागद्वेष घटे, कर्मोंकी निर्जरा हो, संसार घटे वही सुशास्त्र है। जबकि विषय कषायवर्द्धक उपदेशके दाता कुशास्त्र हैं।

सास्वत रूवं स सुतं, अनृत असत्य असुतं जानेहि।
सुतं जिन उत्त परं, दर्सन मोहंध असुतं परिनामम्॥ १९४ ॥

अन्वयार्थ—(सास्वत रूवं स सुतं) शास्त्र वह है जो अनादि कालकी परिपाटीसे नित्य चला आया हो (अनृत असत्य असुतं जानेहि) जो मिथ्या है कल्पित है वह कुशास्त्र है ऐसा जानो (सुतं जिन उत्त पर) शास्त्र वही उत्कृष्ट है जो जिनेन्द्रद्वारा कथित है (दर्सन मोहध असुत परिनामं) मिथ्यादृष्टी कुशास्त्रमें ही परिणमन करता है।

भावार्थ—अनादि कालीन जगतमें अनादिसे ही तीर्थंकर होते आए हैं। तीर्थंकरोंका जो उपदेश है वही श्रुत है। इसलिये यह श्रुत सदासे है व सदा ही रहेगा। इसलिये शाश्वत् है व सत्य है। जो अल्पज्ञानियों द्वारा एकांत कथन रूप व कल्पित तत्व कथन रूप व विषय कषाय वर्द्धन रूप हो वह कुशास्त्र है, अज्ञानी उसे ही शास्त्र मान लेता है।

सुतं असुतं न पिच्छदि, गुन दोसं न वि वुज्झए अंधः।
अंधः अंध सहावं, दर्सन मोहंध निगोय वीयम्मि ॥१९५॥

अन्वयार्थ—(अध) अन्ध मिथ्यादृष्टी जीव (सुत असुत न पिच्छदि) शास्त्र कुशास्त्रकी परीक्षा नहीं करता है (गुन दोस न वि वुज्झए) गुण व दोषोंका विचार नहीं करता है (अध. अंध सहावं) अंधेका स्वभाव ही अंधा होता है (दर्सन मोहध निगोय वीयम्मि , दर्शन मोहके उदयसे ग्रहीत ज्ञान अन्ध कुशास्त्रको शास्त्र मानकर निगोदका बीज बोता है।

भावार्थ—जैसे अंधेके आंखें न होनेसे उसे सर्व अन्धकार ही दिखता है, उसको रात दिनका भेद नहीं मालूम होता है, उसीतरह जिसकी बुद्धि मिथ्यात्वसे मलीन है वह परीक्षा न करके जिनशास्त्रोंके उपदेशसे उसके विषय कषाय पुष्ट हों, इच्छित धनादि मिल सके, उन्हीं शास्त्रोंको हितकारी शास्त्र जान लेता है। यदि कहीं लिखा हो कि नदी स्नानसे पुण्य होता है, चन्द्रमा व सूर्यके पूजनसे धन मिलता है,

थैलीके पूजनेसे लक्ष्मी आती है, श्राद्ध करनेसे बड़े प्रसन्न होकर कुटुम्बरक्षाकी आशीष देते हैं, देवीको पूजनेसे खेती फलती है, शीतलाके पूजनसे शीतलाका रोग जाता है, वसंतके पूजनेसे स्त्रीका सौभाग्य रहता है, भैरोंको मदिरा चढ़ानेसे रोग मिटता है, तब यह अज्ञानी ऐसे कथनकी दृढ़ श्रद्धा कर लेता है, उसे आत्मज्ञान सूचक ग्रन्थ अच्छे नहीं लगते हैं।

दर्सन अनंत दर्स, सूपम दर्सेइ कम्म विलयं च।
दर्संति अनंत नंतं, दर्सन मोहंध अदर्सनं दिट्टम् ॥ १९६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अनंत दर्स) सम्यग्दर्शन अनन्त गुणरूपी आत्मापर श्रद्धान लाता है (सूपम दर्सेइ कम्म विलय च) जब सम्यग्दर्शनके प्रतापसे सूक्ष्म अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव होता है तब कर्मोंका क्षय होता है। (दर्संति अनंत नंतं) सम्यग्दर्शन आत्माके अनन्तानन्त पर्यायोंपर विश्वास रखता है। (दर्सन मोहंध अदर्सन दिट्ठ) परन्तु जो दर्शन मोहके उदयसे अन्धा है उसके मिथ्यादर्शन ही देखा जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका एक गुण है जिसके प्रकाश होनेपर यह अपना आत्मा सर्व भाव-कर्म, द्रव्यकर्म व नोकर्मसे भिन्न परमात्मावत् झलकता है। जब ऐसा सम्यक्ती जीव निजात्माका अनुभव करता है तब वीतराग भावोंसे कर्मकी निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टीको इसकी प्राप्ति नहीं होती है।

दर्सन अरूव रूवं, दर्सन दर्सेइ मोष मग्गं च।
दर्सन विमल सहावं, दर्सन मोहंध समल दर्संति ॥ १९७ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अरूव रूव) सम्यग्दर्शन अमूर्तीक आत्माका श्रद्धान रखता है (दर्सन दर्सेइ मोष मग्गं च) सम्यग्दर्शन आत्मानुभवरूप मोक्षमार्ग पर विश्वास रखता है (दर्सन विमल सहाव) सम्यग्दर्शन आत्माका एक निर्मल स्वभाव है (दर्सन मोहंध समल दर्संति) परंतु मिथ्यादृष्टी जीवको अशुद्ध आत्माका ही श्रद्धान होता है।

भावार्थ—मैं सिद्ध समान शुद्ध अमूर्तीक निर्विकार आनन्दमई आत्मा हूं। तथा इस आत्माके ही ध्यानसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। वही आत्मानुभव ही यथार्थ मोक्षमार्ग है, ऐसा सच्चा श्रद्धान सम्यग्दृष्टीको होता है। मिथ्यादृष्टीको निर्मल स्वभावका ही श्रद्धान नहीं होता है। वह अपनेको रागी, द्वेषी ही मानता है।

दर्सन दिट्ठि स दिट्ठं, इस्टं संजोय दर्सए सुद्धम् ।
सुद्धं च विमल सुद्धं, दर्सन मोहंध अनिस्ट दर्संति ॥ १९८॥

अन्वयार्थ—(दर्सन दिट्ठि स दिट्ठं) वही सम्यग्दर्शनकी सच्ची श्रद्धा मानी गई है जहां (सुद्ध इस्ट सजोय दर्सए) शुद्ध इष्ट भावोंके लाभको देखा जावे (सुद्धं च विमल सुद्धं) परम शुद्ध वीतराग आत्माको अनुभव किया जावे (दर्सन मोहंध अनिस्ट दर्संति) मिथ्यादृष्टी इस इष्ट हितकारी आत्मापर श्रद्धान न लाकर अहित-कारी संसार-मार्गपर ही विश्वास लाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीवको दृढ़ श्रद्धान है कि शुद्धोपयोग ही परम हितकारी है, जहां परम शुद्ध आत्मापर ही ध्यान रहता है, परंतु मिथ्यादृष्टी आत्माको और रूप ही मानता है।

दर्सेइ इस्ट दर्स, इस्टं दर्सेइ लोय आलोयम् ।
इस्टं अनन्त नंतं, दर्सन मोहंध मिच्छ दर्संति ॥ १९९ ॥

अन्वयार्थ—(इस्ट दर्स दर्सेइ) सम्यग्दृष्टी परम हितकारी आत्मदर्शन पर श्रद्धान रखता है (इस्टं लोय आलोय दर्सेइ) वह यथार्थ लोक तथा अलोकका स्वरूप जानता है कि यह सब छः द्रव्योंका समुदाय है (इस्टं अनंत नंत) उसको अनंतगुण प्रकाश रूप मोक्ष हितकारी भासता है (दर्सन मोहंध मिच्छ दर्संति) परंतु मिथ्या-दृष्टी मोक्षकी श्रद्धा न करके मिथ्या संसारकी ही श्रद्धा रखता है।

भावार्थ—सम्यक्तीको मोक्ष और मोक्षमार्ग पर दृढ़ श्रद्धान रहता है कि मोक्ष भी आत्मामें ही है व मोक्षमार्ग भी आत्मा ही है। मिथ्यात्वी कुछका कुछ श्रद्धान रखता है।

दर्सन मोहंध सहायं, अनृत अनिस्ट सहाव संयुत्तम् ।
कलं सहावं रसियं, पज्जायं दिस्टि सरनि संसारे ॥ २०० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सहाव) दर्शनमोह नाम मोहकी प्रकृतिके कारण (अनृत अनिस्ट सहाव संयुत्तं) प्राणीका स्वभाव असत्य व क्षणिक संसारके सुखोंमें लीन रहता है (कलं सहाव रसिय) वह शरीरका ही रसिक रहता है (पज्जायं दिस्टि सरनि संसारे) वह पर्यायपर ही श्रद्धा रखता है। इसीसे संसारमें भ्रमण करता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव मिथ्यात्वके उदयसे इस वर्तमान प्राप्त शरीरको ही आप मानके उसीके क्षणिक व मिथ्या सुखमें लीन रहता है। पांचों इंद्रियोंका दासपना किया करता है। इस शरीरमें खूब विषयभोग करूँ ऐसी रातदिन भावना करता है। इससे संसारमें उसका भ्रमण मिटता नहीं है।

दर्सन असुद्ध दर्स, रूव सहावेन सरनि संसारे।
अनृत अचेत सहावं, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २०१ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन असुद्ध दर्स) मिथ्यादृष्टी जीव अशुद्ध भावका ही व अशुद्ध पदार्थका ही श्रद्धावान रहता है (रूव सहावेन सरनि संसारे) मूर्तीक शरीरके स्वभावमें रत होता है। इसीसे संसारमें भ्रमता है (अनृत अचेत सहावं) उसका स्वभाव मिथ्या व अज्ञानमय बना रहता है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं) ऐसा मिथ्यादृष्टी जीव दुर्गतिको ही पाता है।

भावार्थ—मिथ्यादर्शनके उदयसे शुद्ध मोक्षमार्गका श्रद्धान नहीं होपाता है। उसके भावोंमें संसारका राग नहीं मिटता। विषय-लोलुपता कम नहीं होती। शरीरका सुखियापना नहीं जाता। इसीसे वह पर समय रूप होकर अशुभ कर्म बांधता है और नर्क निगोद व पशुगतिमें जाकर पैदा होजाता है। कदाचित् मनुष्य होता है तो दीन हीन होता है, कदाचित् देव होता है तो नीच देव होता है।

दर्सन मोहंध अशुद्धं, कललंकृत कर्म दर्स दर्सेइ।
पज्जायं पेच्छंतो, अज्ञानं अनुमोय निगोय वासम्मि ॥ २०२ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध अशुद्धं) दर्शन मोह कर्म महान अशुद्ध है (कललंकृत कर्म दर्स दर्सेइ) जो शरीर सम्बन्धी क्रियाकांडमें ही श्रद्धान रखता है (पज्जायं पेच्छंतो) जो कर्म जनित पर्यायकी ही तरफ दृष्टि रखता है (अज्ञानं अनुमोय निगोय वासम्मि) मिथ्याज्ञानकी अनुमोदनासे मिथ्यात्वी निगोदवास पाता है।

भावार्थ—दर्शन मोहकी मिथ्यात्व प्रकृतिके तीव्र उदयसे आत्माका श्रद्धान नहीं होता है, न उसे यह श्रद्धान होता है कि शुद्धात्मानुभव मोक्षमार्ग है। कदाचित् धर्मका श्रद्धान भी करता है तो शरीरकी क्रियाको ही, बाहरी तप व्रतको ही धर्म मान लेता है। अन्तरंग परिणामोंपर दृष्टि नहीं देता है। वह शरीरके सुखोंका राग नहीं त्यागता है इसीसे निगोद तकमें चला जाता है।

ज्ञानं च परम ज्ञानं, ज्ञानं सहकार मिच्छ तिक्तं च।
ज्ञानं च विमल सहावं, दर्सन मोहंध पज्जाय आवरनं ॥ २०३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च परम ज्ञानं) सम्यग्ज्ञान आत्माके परम स्वाभाविक ज्ञानको पूर्ण केवलज्ञान जानता है (ज्ञानं सहकार मिच्छ तिक्तं च) यद्यपि सम्यग्दर्शन होनेपर ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है तथापि पदार्थोंके यथार्थ ज्ञान विना, आत्मा व अनात्माके भिन्न बोधके विना मिथ्यात्वका त्याग नहीं होता है। यथार्थ भेदविज्ञान ही मिथ्यात्वको हटाता है (ज्ञानं च विमल सहावं) सहज ज्ञान आत्माका विमल स्वभाव है (दर्सन मोहंध पज्जाय आवरनं) दर्शन मोहके उदयसे जो अंधा है उसको इस पर्यायमें ज्ञानावरणका उदय रहता है व वह ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध भी करता है।

भावार्थ—अब कुछ सम्यग्दर्शनका महात्म्य कहा जाता है। सम्यग्ज्ञान आत्मा व आत्मासे भिन्न पर पदार्थोंको भिन्न २ जानता है। तथा आत्माका स्वभाव केवलज्ञानमय पहचानता है। जिसके तीव्र मिथ्यात्वका उदय होता है उसके ज्ञानावरणका भी ऐसा उदय होता है जिससे उसे आत्मा व अनात्माका यथार्थ ज्ञान नहीं होने पाता। क्योंकि यथार्थ ज्ञान हीसे मिथ्यात्व हटता है और सम्यग्दर्शन प्रकाशित होता है तब ही ज्ञानको सम्यक्त सहित सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

ज्ञानं सुकिय सुभावं, ज्ञानं च षिपिय तिविह कम्मानं।
ज्ञानं अनन्त रूवं, दसन मोहंध ज्ञान आवरनं ॥ २०४ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं सुकिय सुभावं) ज्ञान आत्माका अपना स्वभाव है (ज्ञानं च षिपिय तिविह कम्मानं) सम्यग्ज्ञानमई आत्माका ज्ञान ही तीन प्रकार कर्मोंका क्षय करता है (ज्ञानं च अनन्त रूवं) ज्ञानका स्वभाव अनन्त है, ज्ञानकी कोई मर्यादा नहीं है (दर्सन मोहंध ज्ञान आवरनं) जो मिथ्यात्वसे अन्धा है उसके ज्ञानपर भी तीव्र आवरण होता है।

भावार्थ—ज्ञान आत्माका स्वभाव है, यद्यपि मतिश्रुत ज्ञान इंद्रिय व मनकी सहायतासे होते हैं तथापि आत्मा यदि न हो तो नहीं होसक्ते हैं। ज्ञानावरणके उदय व क्षयोपशमकी विचित्रतासे इन्द्रिय व मनकी सहायता लेनी पड़ती है। अवधि, मनःपर्यय ज्ञानमें स्वतंत्रतासे आत्मा ही जानता है परन्तु

अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यय ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे कम जानता है। केवलज्ञान शुद्ध स्वाभाविक ज्ञान है जो प्रत्यक्ष रूपसे क्रम रहित सर्व द्रव्योंकी सर्व पर्यायोंको जानता है। ऐसा जिसको ज्ञानके स्वरूपका श्रद्धान है वह सम्यक्ती जीव भाव कर्म रागादिको हटाता है। ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्मोंकी भी यथासम्भव निर्जरा करता है। तथा शरीर प्राप्तिके अवसरोंको घटाता जाता है। मिथ्यादृष्टीका जैसा श्रद्धान मैला है वैसा उसका ज्ञान भी मैला है। उसके ज्ञानावरणका भी तीव्र उदय होता है जिससे उसे स्वानुभूतिका प्रकाश नहीं होता है।

ज्ञान सहाव स उत्तं, ज्ञानं दर्सेइ अनन्त सहकारं।
दर्सन मोहंध जीवो, अनुमोय पज्जाय दुग्गए गमनं ॥ २०५॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहाव स उत्तं) ज्ञान स्वभाव उसे कहते हैं (ज्ञानं दर्सेइ अनन्त सहकारं) जो ज्ञान अनंत पदार्थोंको एक साथ जान लेता है (दर्सन मोहंध जीवो) परन्तु जो जीव दर्शन मोहके उदयसे अंधा है वह (पज्जाय अनुमोय दुग्गए गमनं) शरीरकी पर्यायमें ही रत हो प्रसन्नता मानता है इससे दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीको ज्ञानके स्वभावका श्रद्धान नहीं होता है, वह अपनी शारीरिक शक्तिसे ही सब कुछ जानता है, ऐसा अहङ्कार रखता है। शरीरसे भिन्न ज्ञान आत्माका स्वभाव है ऐसा उसको श्रद्धान नहीं होता है। इसलिये शरीरके सुखोंमें रत होनेसे कुगति पाता है।

ज्ञानं वृद्ध अवयासं, लोयालोयं च विमल सद्भावं।
मल मुक्कं ज्ञान अनुमोयं, दर्सन मोहंध अवयास आवरनं ॥ २०६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं वृद्ध अवयासं) ज्ञान बढ़ते २ इतना बढ़ता है कि उसमें सर्वको जाननेकी शक्ति प्रगट होजाती है (लोयालोयं च विमल सदभावं) वह पूर्ण ज्ञान सर्व लोकालोकके स्वभावको यथार्थ रूपसे जानता है (मल मुक्कं ज्ञान अनुमोयं) जो ज्ञानावरणके मलसे रहित ज्ञान है वही प्रशंसनीय है (दर्सन मोहंध अवयास आवरनं) दर्शन मोहके उदयके जो आधीन है उसके ज्ञानका आवरण नहीं हटता है।

भावार्थ—ज्ञान जब सर्व आवरणसे रहित होजाता है तब इसमें ऐसी शक्ति है कि जो कुछ लोकालोक है उसको तो जान ही लेता है। परन्तु यदि ऐसे अनन्त लोक हों तौभी उनको जानले। ज्ञान स्वभा-

वकी महिमा अचिन्त्य है। ऐसा निर्मल ज्ञान ही प्रशंसाके लायक है। खेद है कि मिथ्यादृष्टी इस बातको नहीं समझता, उसके ज्ञानपर तीव्र आवरण रहता है।

ज्ञानानन्त विसेषं, ज्ञानं ज्ञानं च वृद्धि सद्भावं।
अनुमोयं वयन सहावं, दर्सन मोहंध वयन आवरनं ॥२०७॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं वृद्धि सद्भावं च ज्ञानानन्त विशेषं ज्ञानं) यह ज्ञान जब बढ़ते२ पूर्ण होजाता है तब यह ज्ञान अनन्त पदार्थोंके विशेष आकारोंको जान लेता है (अनुमोयं वयन सहावं) सम्यग्दृष्टी अपने वचनोंके स्वभावसे ऐसे निर्मल ज्ञानकी प्रशंसा या स्तुति करता है (दर्सन मोहंध वयन आवरनं) परन्तु मिथ्यादृष्टीके ज्ञानपर ऐसा तीव्र आवरण है कि वह अपने वचनोंसे प्रशंसा भी नहीं करता है।

भावार्थ—सम्यक्तीको केवलज्ञान स्वभावका पूर्ण विश्वास है इससे वह स्तुति करता है व भावना भाता है कि कब वह समय आवे जब ऐसा ज्ञान प्रकाशित होजावे। मिथ्यादृष्टीको इस बातपर विश्वास ही नहीं होता है, इसलिये वचनसे भी प्रशंसा नहीं करता है।

ज्ञानं सहाव उत्तं, सहकारे सहाव ज्ञान आयरनं।
ज्ञान अनन्तानन्तं, दसन मोहंध सहाव आवरनं ॥ २०८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं सहाव उत्तं) ज्ञानका स्वभाव ऊपर कहा गया है (सहकारे सहाव ज्ञान आयरनं) इस निर्मल ज्ञानकी श्रद्धाकी मददसे ज्ञान ज्ञानमें आचरण करना है (ज्ञान अनन्तानन्तं) वह श्रद्धा इसी बातकी कि ज्ञान अनंत है (दर्सन मोहंध सहाव आवरनं) मिथ्यादृष्टीके स्वभाव पर ऐसा ज्ञानावरणका परदा है जिससे वह ज्ञानाचरण नहीं कर सक्ता है।

भावार्थ—जब सम्यक्तीको अपने ज्ञान स्वभावकी यथार्थ श्रद्धा होती है तब ही वह ज्ञान स्वभावमें आचरण करके स्वसंवेदनमई होजाता है अर्थात् ज्ञानका स्वाद लेता है। मिथ्यादृष्टी विचारा इस ज्ञाना-चरकणको करनेसे लाचार है।

ज्ञानं पार न उत्तं, परिनवै ज्ञान लोक अलोकंति।
परिनै प्रमान सुद्धं, दर्सन मोहंध परिनए आवरनं ॥ २०९ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं पार न उत्तं) ज्ञानकी शक्तिका पार नहीं कहा गया है (परिनवै ज्ञान लोक अलोकंति) यह निर्मल लोक व अलोकको सर्व पर्यायोंके जाननेमें परिणमन करता है (परिनै प्रमान सुद्धं) यही ज्ञान शुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण रूप है (दर्सन मोहंध परिनए आवरनं) परन्तु मिथ्यादृष्टी जीव ज्ञानावरणके उदयमें ही—अज्ञानमें ही परिणमन करता है।

भावार्थ—ज्ञान जब शुद्ध होता है तब वह अपार व अनन्त है तथा वही प्रत्यक्ष प्रमाण रूप स्पष्ट है। सकल पारमार्थिक प्रत्यक्ष केवलज्ञान ही है। मिथ्यादृष्टी इस बातको नहीं समझता है।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें ज्ञानकी महिमा बताते हैं—

घाइचउक्के णट्ठे उप्पज्जइ विमलकेवलं णाणं। लोयालोयपयासं कालत्तयजाणगं परमम् ॥ ६६ ॥

लोयालोय सव्वं जाणइ पिच्छेइ करणकमरहियं। मुत्तामुत्ते दव्वे अणंतपज्जायगुणकलिए ॥ ६९ ॥

भावार्थ—चार घातीय कर्मोंके नाश होनेपर निर्मल केवलज्ञान प्रगट होता है, जो उत्कृष्ट है व जो लोक अलोकको तीन काल सम्बन्धी पर्यायोंके साथ जानता है। जो ज्ञान इंद्रिय व मनकी सहायता बिना क्रम रहित सर्व लोकालोकके मूर्तीक व अमूर्तीक द्रव्योंको उनके अनन्त गुण व पर्याय सहित जानता है वही केवलज्ञान है।

ज्ञानं हेय संयुत्तं, हित मित परिनवै अनंतनंताइं।
एयं विमल सहावं, दर्सन मोहंध हेय आवरनं ॥ २१० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं हेय संयुत्तं) सम्यग्ज्ञान त्यागने योग्य भाव या पदार्थोंको जानता है (हित मित परिनवै अनंतनंताइं) जब वह ज्ञान हितकारी आत्मामें मर्यादित होकर परिणमता है तब अनन्तानन्त पदार्थोंका ज्ञाता केवलज्ञान होजाता है (एयं विमल सहावं) तब वह एक अकेले निर्मल स्वभावरूप रहता है (दर्सन मोहंध हेय आवरनं) मिथ्यादृष्टीके ज्ञानपर ऐसा आवरण होता है जो वह हेयको नहीं जानता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानका यह स्वभाव है जो वह यह जाने कि त्यागने योग्य क्या है व ग्रहण करने-योग्य क्या है। निश्चयनयसे एक निज आत्मा ही ग्रहण करनेयोग्य है। शेष सब परद्रव्य, परभाव व कर्मके निमित्तसे होनेवाले रागादि भाव व गुणस्थानादि भाव व मार्गणादि पर्याय त्यागने योग्य हैं। ऐसा भेद-

विज्ञान जिसको होता है वह परम उपादेय निज आत्मामें ही रमण करता है जिससे एक निर्मल केवलज्ञान प्रकाशित होजाता है। मिथ्यादृष्टीको हेय उपादेयका ज्ञान नहीं होता है।

आप्तमीमांसामें श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

उपेक्षा फलमाद्यस्य शेषस्यादानहानधीः। पूर्वं वाऽज्ञाननाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥ १०२ ॥

भावार्थ—केवलज्ञानका फल तो वीतरागता है, परन्तु अल्पज्ञानरूप सम्यग्ज्ञानका फल यह है कि इस बातको जाने कि ग्रहण करने योग्य व त्याग करने योग्य क्या है। यों तो सर्व प्रकारके ज्ञानका फल अपने २ विषयोंमें हित व अहितका ज्ञान तथा अज्ञानका नाश है।

वास्तवमें ज्ञानरूपी दीपक विना हितकारी व अहितकारी बातोंका ज्ञान कैसे होसक्ता है।

ज्ञानं कोमल रूवं, कोमल परिनवै विमल सहकारं।
विमलं विमल सहावं, दर्सन मोहंध कोमल आवरनं ॥ २११ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान कोमल रूवं) सम्यग्ज्ञान कोमल या मार्दव स्वभावरूप होता है (कोमल परिनवै विमलं सहकार) यह कोमल ज्ञान ही निर्मल ज्ञानरूप परिणमता है (विमलं विमल सहावं) यह केवलज्ञान रहित होनेसे निर्मल स्वभाव है (दर्सन मोहंध कोमल आवरनं) मिथ्यादृष्टीके मार्दव भाव ढका रहता है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानीके अनन्तानुवन्धी कषायके उदय न होनेसे व अन्य कषायोंके यथासंभव मन्द उदयसे परिणामोंमें मृदुता व विनय भाव व अनुकम्पा भाव रहता है। इसीसे वह प्रशम अर्थात् शांत भाव, संवेग अर्थात् संसारसे वैराग्य व धर्मसे प्रेम, करुणाभाव तथा आस्तिक्यभाव कि आत्मा परलोकादि है उन भावोंको रखता है। मंद कषायसे ज्ञानकी भावना करता है तव ज्ञान बढ़ते२ केवलज्ञानमें परिणमन कर जाता है। मिथ्यादृष्टीके कषायके तीव्रोदयसे मार्दव भाव या विनय भाव नहीं पाया जाता है। उसके अपने स्वार्थवश परिणामोंमें बड़ी कठोरता रहती है। काम पड़नेपर दीन दुःखियोंको बहुत कष्ट देता है। सम्यक्ती दयाभावसे वर्तता है।

ज्ञानं च दिस्टि विमलं, विमल सहावेन केवलं ज्ञानं।
दिस्टि अनन्त दिस्टं, दर्सन मोहंध दिस्टि आवरनं ॥ २१२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च दिस्टि विमलं) सम्यग्ज्ञानीके निर्मल दृष्टि या श्रद्धा रहती है (विमल सहावेन केवलं ज्ञानं) इसी निर्मल स्वाभाविक श्रद्धासे ही केवलज्ञान होता है (अनन्त दिस्टं दिस्टि) तथा अनन्त दर्शन प्रकाशित होता है (दर्सन मोहंध दिस्टि आवरनं) मिथ्यादृष्टीके सम्यग्दर्शन गुणके ऊपर परदा है।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानीके जो निर्मल आत्मश्रद्धा होती है उसीके अभ्याससे वह गुणस्थानोंपर चढ़ते २ तेरहवे सयोगकेवली गुणस्थानपर चढ़ जाता है, जहां केवलज्ञान व केवलदर्शनका प्रकाश होजाता है। मिथ्यादृष्टी सम्यग्दर्शनके अभावमें अपने दर्शन गुणको ढका हुआ ही रखता है।

दर्सन मोहंध सहावं, ज्ञानं आवरनं सुकिय सुभावं।
दुकिय कम्म उववन्नं, दुग्गइ गइ भावना होई ॥ २१३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोइंध सहावं) दर्शन मोहके उदयका ऐसा स्वभाव है कि (सुकिय सुभावं ज्ञानं आवरन) अपने स्वाभाविक ज्ञानके प्रकाश पर आवरण रहता है (दुकिय कम्म उववन्नं) मिथ्यादृष्टी अशुभ कर्मोंको उत्पन्न करता रहता है (दुग्गइ गइ भावना होई) जिससे उसके ऐसी भावना रहती है जिसका फल दुर्गति गमन है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीवके ज्ञानपर ऐसा आवरण रहता है जिससे उसके भाव आत्मधर्म पर बिलकुल नहीं जाते हैं। वह शरीरके सुखमें मोही रहता है। इसलिये अपनी अशुद्ध भावनासे दुर्गति जाने-योग्य कर्म बांधता है।

दर्सन मोहंध विसेषं, पज्जाय रतो पज्जाय संयुत्तो ॥
आवरनं ज्ञान सहावं, पज्जय आवरन इंदिया पत्तं ॥ २१४ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोइंध विसेषं) दर्शन मोहके उदयसे ऐसी विशेषता मिथ्यादृष्टीके रहती है कि वह (पज्जाय संयुत्तो पज्जाय रतो) जिस पर्यायका धारी होता है उसी पर्यायमें रत रहता है (ज्ञान सहावं आवरनं) उसका ज्ञान स्वभाव ढका रहता है, उसको ज्ञान स्वभावी आत्माकी पहचान नहीं होती है (पज्जय आवरन इंदिया पत्तं) उस पर्यायमें वह इंद्रियोंके आधीन रहता हुआ अपने ज्ञानावरणके उदयको भोगता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी शरीरासक्त होता है। जितनी इंद्रियाँ होती हैं उनकी इच्छाओंके वश रहता है।

उनकी पूर्तिमें रात दिन लवलीन रहता है। इसी कारण अपने ज्ञान स्वभावको नहीं समझते हुए अपने ज्ञानावरण कर्मका ऐसा क्षयोपशम नहीं कर पाता है जिससे सम्यग्ज्ञान होसके।

दर्सन मोहंध स उत्तं, अवयासं ज्ञान आवरन सहकारं।
अवयासं नहु पिच्छइ, थावर उप्पत्ति अनेय कालम्मि ॥ २१५ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध स उत्तं) दर्शन मोहका उदय ऐसा कहा गया है जिससे (अवयासं ज्ञान आवरन सहकारं) उसका निर्मल ज्ञान ज्ञानावरणसे ढका रहता है (अवयासं नहु पिच्छइ) उसको स्वाभाविक पूर्ण ज्ञानका विश्वास नहीं होता है (थावर उप्पत्ति अनेय कालम्मि) वह ज्ञानावरण कर्मका ऐसा बन्ध करता है जिससे उसे एकेन्द्रिय स्थावरके योग्य बहुत अल्प ज्ञानमें बहुत काल विताना पड़ता है।

भावार्थ—दर्शन मोहके उदयसे अंध प्राणी आत्मज्ञानको न पाकर विषयोंकी तृष्णामें फँसा रहता है। मिथ्याज्ञानके वश अनेक तरह दूसरोंके ज्ञानोपयोगको कष्ट देता है। इस कारण वह तीव्र ज्ञानावरण कर्मोंका बन्ध करके एकेंद्रिय पर्यायमें जाकर बहुत काल विताता है।

दर्सन मोहंध सु समयं, ज्ञानं आवरन वयन सभावं।
सो वयनं विन पिच्छइ, नरये एइंदि अनेय कालम्मि ॥ २१६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सु समयं ज्ञानं आवरन वयन सभावं) दर्शन मोहके उदयसे स्वसमय सम्बन्धी ज्ञान ढका रहता है तथा उसके आत्मा सम्बन्धी वचनोंका प्रकाश भी नहीं होता है (सो वयनं विन पिच्छइ) वह उन वाक्योंको भी श्रद्धानमें नहीं लाता है (नरये एइंदि अनेय कालम्मि) वह मानवसे एकेन्द्रिय होकर अनेक काल वचन विनाके रहता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव जैसे अपने आत्माका ज्ञान नहीं पाता है वैसे वह आत्मज्ञान सम्बन्धी उपदेश पर भी ध्यान नहीं देता है, किन्तु उस उपदेशका निरादर करता है तथा स्वयं भी कभी आत्मज्ञान सम्बन्धी बात नहीं करता है, निरन्तर शरीरके राग वढ़ानेवाली वार्तालापमें फंसा रहता है, बहुत बकवाद करता है, विकथाओंमें व परनिन्दामें रंजायमान रहता है, जिसके फलसे ऐसा कर्म बांधता है कि वह वचन विनाके दीर्घकाल एकेन्द्रिय पर्यायमें विताता है।

दर्सन मोहंध अंधं, ज्ञानं आवरन देइ सहकारं ।
असहावं उववन्नं, विकलत्तय नंत नंतकालम्मि ॥ २१७ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध अंधं) मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वके नशेमें ऐसा अंधा रहता है (ज्ञान आवरन देइ सहकारं) कि वह ज्ञानको आवरण करनेवाला अज्ञानमय उपदेश देता है (असहावं उववन्नं) वह स्वभावसे विपरीत भावोंको अपनेमें व दूसरोंमें उत्पन्न करता है (विकलत्तय नत नंतकालम्मि) जिससे वह अनन्तकालमें अनन्तवार विकलत्रय होता है ।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी मिथ्यात्वके उदयसे ऐसा बावला होता है कि जैसे वह शरीराशक्त विषयासक्त धर्मके ज्ञानसे शून्य होता है वैसे वह दूसरोंको भी उपदेश देकर स्वाभाविक आत्मज्ञानसे दूर रखता है। विषयोंमें फंसाता रहता है जिससे वह ऐसा कर्म बांधता है कि अनन्तकालके भीतर बहुतवार द्वेन्द्रिय, तेन्द्रिय व चौन्द्रिय पशु होता है। बीच २ में स्थावरकायमें जन्मता रहता है ।

दर्सन मोहंध सुभावं, परिनै आवरन ज्ञान सहकारं ।
परिनै सहाव न दिट्ठं, तिरिय गए कुदेव जोनीहि ॥ २१८ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोइंध सुभावं) मिथ्यात्वके उदयका ऐसा अंध स्वभाव है (सहकारं ज्ञान आवरन परिनै) जिसकी सहायतासे ज्ञानावरण कर्मका विशेष बन्ध होता है (सहाव दिट्ठं न परिनै) उसका परिणमन स्वाभाविक आत्म-श्रद्धापर नहीं होता है (तिरिय गए कुदेव जोनीहि) जिससे वह ऐसा कर्म बांधता है कि या तो वह तिर्यंच गतिमें पशु होता है या देवगतिमें कुदेव-नीच देव होता है ।

भावार्थ—मिथ्यात्वके परिणामोंसे जो अज्ञानमय भाव होता है उससे वह ज्ञानावरण कमका तीव्र बन्ध करता है तथा अन्य भी कर्म ऐसा बांधता है कि मरकर या तो पशु होजाता है व देव योनिमें अभियोग व किलविष जातिका नीच देव होजाता है, जिन देवोंको वहां स्वयं पशु बनना पड़ता है या जो निरादरसे देखे जाते हैं ।

दर्सन मोहंध सुभावं, हितकारस्य ज्ञान आवरनं ।
हेयं कहपि न दिट्ठं, विकलत्तय अनेय कालम्मि ॥ २१९ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सुभावं) दर्शन मोह कर्मका ऐसा स्वभाव है (हितकारस्य ज्ञान आवरन) कि जिस ज्ञानसे आत्महित हो उसपर आवरण रहता है (हेयं कहपि न दिट्ठं) उसको त्यागने योग्य क्या है यह कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता है (विकलत्रय अनेय कालम्मि) वह अनेक काल तक विकलत्रय जन्मता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीके ज्ञानावरणका ऐसा उदय होता है जिससे उसे भेदविज्ञान सम्बन्धी ज्ञान नहीं होपाता है। रागद्वेष मोह व विषय कषाय त्यागने योग्य हैं, ऐसा ज्ञान नहीं होता है। वह मिथ्या ज्ञानसे ऐसा आचरण करता है जिससे कर्म बांधकर अनेक काल द्वेन्द्रियसे चौंद्रिय पशु पर्यायमें जन्म धारना पड़ता है।

दर्सन मोहंध अन्धं, कोमल परिनाम ज्ञान आवरनं।
कोमल सहाव न दिट्ठं, निगोय वास अनेय कालम्मि ॥ २२० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध अन्धं) मिथ्यादृष्टी ऐसा अन्धा होता है (कोमल परिनाम ज्ञान आवरनं) कि उसके कोमल भावपर तथा ज्ञानपर परदा पड़ा रहता है (कोमल सहाव न दिट्ठ) उसको कोमलस्वभावी आत्माकी प्रतीति नहीं होती है (निगोय वास अनेय कालम्मि) उसको दीर्घकाल तक निगोदमें रहना पडता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीके कषायका ऐसा उदय रहता है जिससे उसके परिणामोंसे कठोरता नहीं जाती। वह अपने स्वार्थ सिद्ध करनेको हिंसक भावका धारी होता है तथा उसके ज्ञानपर भी ऐसा परदा रहता है जिससे उसको आत्माकी व उसके मार्दव गुणकी प्रतीति नहीं होने पाती। वह पर्यायमें रत रहता है, इससे एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिमें दीर्घकाल जन्म लेकर विताता है।

दर्सन मोहध सहियं, ज्ञानं आवरन देइ दिस्टं च।
दिस्टि सहाव न युत्तं, थावर गइ अनेय कालम्मि ॥ २२१ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहन्ध सहियं) जो मिथ्यादृष्टी दर्शन मोहके उदय सहित होता है (ज्ञानं आवरन देइ दिस्ट च) उसके ज्ञानपर आवरन रहता है तथा वह मिथ्या बुद्धिको दूसरोंको देता है (दिस्टि सहाव न युत्तं) उसको आत्माके स्वभाव सम्यग्दर्शनका सम्बन्ध नहीं होता है (थावर गइ अनेय कालम्मि) जिससे वह दीर्घ-काल तक स्थावर कायोंमें जन्मता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी सम्यग्दर्शनको न पाकर स्वयं अज्ञानी होता है व अज्ञानका प्रचार भी करता है। इससे तीव्र ज्ञानावरण कर्मको बांधता है और असत्य ज्ञानधारी स्थावर कायमें बहुत काल बिताता है।

ज्ञानं आवरन स उत्तं, दर्सन मोहंध सहकारं ।
संसार सरनि बूडं, चौगइ संसार भावना होई ॥ २२२ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध सहकारं) दर्शन मोह कर्मकी सहायतासे (ज्ञानं आवरन स उत्तं) उसका ज्ञान ऐसा ढका रहता है जैसा ऊपर कहा गया है (संसार सरनि बूडं) वह संसार-समुद्रके बीचमें डूबता है (चौगइ संसार भावना होई) उसके भावोंकी परिणति चारों गतिमय संसारमें जानेकी होती है।

भावार्थ—जबतक मिथ्यात्वका तीव्र उदय रहता है तबतक स्वपरका यथार्थ ज्ञान भी नहीं होने पाता है। वह पर्यायमें अहंकार करके रात दिन शरीरके सुखमें मग्न रहता है। कभी कुछ पुण्य बांध लेता है तो देवगति व मनुष्य गतिमें जन्मता है। यदि पाप बांधता है तो पशु गतिमें जाता है और वहां तीव्र पाप होता है तो नर्कमें चला जाता है। सम्यग्ज्ञान मोक्षका कारण है सो सम्यग्दर्शनके साथ साथ रहता है। जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है तब ही ऐसा ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता है कि अपने आत्माका यथार्थ ज्ञान होजाता है। भेदज्ञान पूर्वक ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। समयसार कलशमें कहा है:—

ज्ञानादेव ज्वलनपयसोरौष्ण्यशैत्यव्यवस्था–ज्ञानादेवोल्लसति लवणस्वादभेदव्युदास. ।
ज्ञानादेव स्वरसविकसन्नित्यचैतन्यधातो–क्रोधादेश्च प्रभवति भिदा भिन्दती कर्तृभावं ॥ १५–३ ॥

भावार्थ—ज्ञानके ही प्रतापसे गर्म जलमें उष्णपना अग्निका स्वभाव व शीतलपना जलका स्वभाव भासता है, ज्ञानसे ही किसी सागमें सागका स्वभाव भिन्न और लवणका स्वाद भिन्न मालूम होता है, ज्ञानसे ही आत्मा चैतन्य धातुमय मूर्ति नित्य आत्मीक रससें प्रकाशमान दीखता है। तथा क्रोधादि भावोंका वह निश्चयसे कर्ता नहीं है। ऐसा भेदविज्ञान पैदा होता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

अज्ञानी क्षिपयेत्कर्म यज्जन्मशतकोटिभि । तज्ज्ञानी तु त्रिगुप्तात्मा निहन्त्यन्तर्मुहूर्तत. ॥ १८८ ॥

भावार्थ—अज्ञानी जिन कर्मोंको करोड़ों जन्मोंमें क्षय करता है, ज्ञानी मन, वचन, कायकी गुप्तिसे उन कर्मोंको अन्तर्मुहूर्तमें क्षय कर डालता है। सम्यग्ज्ञानकी अपूर्व महिमा है।

दर्सन सम्यग्दर्स, सम्यग्ज्ञानं च दर्सये सुद्धं ।
ज्ञानं दंसन चरनं, दर्सन मोहंध चरन आवरनं ॥ २२३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन सम्यग्दर्स) सम्यग्दर्शन यथार्थ आत्माका श्रद्धान रखता है। तैसे ही (सम्यग्ज्ञानं च दर्सये सुद्धं) सम्यग्ज्ञान शुद्ध आत्माको वैसा ही जानता है (ज्ञानं दंसन चरनं) सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके साथ सम्यक्चारित्र भी होता है (दर्सन मोहंध चरन आवरनं) परन्तु दर्शन मोहनीयके उदयसे चारित्रपर आवरण रहता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तीनोंकी एकता मोक्षमार्ग है। जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश होता है तब जैसे ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है वैसे ही अनन्तानुबन्धी कषायके उदय न होनेसे स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होजाता है। परन्तु जिसके दर्शन मोहका उदय होता है उसके अनन्तानुबन्धीका भी उदय रहता है, यदि उसका विसंयोजन न किया हो—इसलिये दर्शन मोहको ही चारित्रको रोकनेवाला उपचारसे कहा गया है।

अब यहां चारित्र सम्बन्धी विचारका कथन है—

दर्सन ज्ञान संजुत्तो, चरनं दुविहंपि संजदो होई ।
दर्सन मोहंध असत्यं, चरनं आवरन सरनि संसारे ॥ २२४ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन ज्ञान संजुत्तो) सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे संयुक्त होकर भव्य जीव (दुविहंपि चरनं संजदो होई) दो प्रकारके चारित्रको धारके संयमी होता है (दर्सन मोहन्ध असत्यं चरनं) परन्तु मिथ्यात्वके उदयसे सर्व चारित्र भी मिथ्या होता है (आवरन सरनि ससारे) जिसके चारित्रका प्रकाश नहीं होता है वह संसारमें भ्रमण करता है।

भावार्थ—यद्यपि सम्यक्तके साथ सम्यग्ज्ञान व स्वरूपाचरण चारित्रका प्रकाश होजाता है तथापि अभी पूर्ण सम्यग्ज्ञान तथा पूर्ण चारित्रका होना शेष रह जाता है क्योंकि चौथे गुणस्थानवर्तीके अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन ऐसे बारह कषाय और हास्यादि नौ नोकषायका उदय रहता है इनको दूर करनेके लिये बहिरंग साधु व श्रावकका चारित्र व अन्तरङ्ग आत्मध्यानरूप चारित्रको धारना

पडता है। विना आत्मध्यानके कर्मोंकी निर्जरा नहीं होती है और संसारका भ्रमण दूर नहीं होता है। यदि कदाचित् कोई मिथ्यादृष्टी अंतरंगमें आत्म प्रतीति न रखता हुआ श्रावक या मुनिका बाहरी चारित्र पाले तौ वह सब मिथ्याचारित्र होता है। क्योंकि साथमें मिथ्यात्वका उदय है। मिथ्यात्वीके कदापि भी मोक्षका मार्गरूप सम्यक्चारित्र नहीं होता है।

रत्नत्रयकी एकता मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यक्चारित्रकी भी बहुत आवश्यक्ता है। चारित्रकी आवश्यक्तापर श्री प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं:—

चारित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो समोत्तिणिद्दिट्ठो। मोहक्खोह विहीणो, परिणामो अप्पणो हि समो ॥ ७ ॥

भावार्थ—निश्चयसे चारित्र ही धर्म है। धर्म है सो समभावको कहा गया है। मोह व रागद्वेषमई क्षोभसे रहित जो आत्माका परिणाम है वही समभाव है।

दर्सन ज्ञान अनन्तं, अनन्त वीरी अनन्त चरनानि।
दर्सन मोहंध पज्जावं, चरनं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ २२५ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन ज्ञान अनन्तं अनन्त वीरी अनन्त चरनानि) रत्नत्रयमई धर्मके पालनेसे ही उसमें मुख्यता चारित्रकी है। चारित्रके प्रतापसे ही चार घातीय कर्मोंका क्षय होता है और अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, क्षायिक चारित्रादि गुणोंका प्रकाश होता है (दर्स मोहंध पज्जायं चरनं आवरन दुग्गए पत्तं) परन्तु मिथ्यादृष्टी शरीरमें रत रहता है, वह आत्माका ध्यानरूप चारित्र कषायके उदयसे नहीं कर सक्ता, वह मिथ्याचारित्री होता हुआ दुर्गतिमें चला जाता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी जीव जब सम्यक्चारित्रमें उन्नति करता है और शुक्लध्यानको जागृत करता है तब ही चार घाती कर्मोंका क्षय करके अर्हत परमात्मा होता है। मिथ्यादृष्टी कषायके उदयसे चारित्रको न पालता हुआ व विषय कषायोंमें रंजायमान रहता हुआ कुगतिमें चला जाता है।

दर्सन अरूव रूवं, ज्ञानं अरूव चरन चारित्तं।
सम्मत्त चरन चरनं, संजम चरनानि सुद्ध संजुत्तं ॥ २२६ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अरूव रूवं) सम्यग्दर्शन अमूर्तीक आत्माके स्वभावमें श्रद्धा रखता है (ज्ञानं अरूव

चरन चारित्तं) सम्यग्ज्ञान अरूपी आत्माको यथार्थ जानता है, सम्यक्चारित्र अरूपी आत्मामें रमण करता है (सम्मत्त चरन चरनं संजम चरनानि सुद्ध संजुत्तं) जहां सम्यग्दर्शनका आचरण है वहीं संयमका आचरण है, वहीं शुद्धोपयोग है ।

भावार्थ—निश्चयनयसे निज आत्माका द्रव्यदृष्टिसे यथावत् श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । उसीका यथावत् ध्यान सम्यग्ज्ञान है व उसीका यथावत् ध्यान सम्यक्चारित्र है, इन तीनोंकी एकताको आत्मध्यान, आत्मानुभव, सम्यक्त आचरन व निश्चय संयम आचरन व शुद्धोपयोग कहते हैं, यही मोक्षमार्ग कर्म क्षयकारक है व परमानन्दका दाता है ।

तस्य दिस्टि आवरनं, आवरनं मुक्ति विमल मग्गस्य ।
व्रत किरियं च अनिस्टं, चरन आवरन थावरं पत्तं ॥ २२७ ॥

अन्वयार्थ—(तस्य दिस्टि आवरन) जिसकी सम्यग्दृष्टी ढकी है अर्थात् जो मिथ्यादृष्टी है (मुक्ति विमल मग्गस्य आवरनं) उसके परिणामोंमें निर्मल मोक्षमार्गका प्रकाश नहीं है (व्रतं किरियं च अनिस्टं) वह यदि व्रत करे व क्रिया पाले तौभी वे संसारमें भ्रमण करानेवाली हैं–मोक्षमार्ग नहीं हैं (चरन आवरन थावरं पत्तं) जिसके आत्मध्यानरूपी चारित्रका प्रकाश नहीं है, जो संसारमें रत है वह स्थावर योनिमें जाकर जन्म पाता है ।

भावार्थ—मिथ्यात्व सहित व्रत व क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है, किन्तु संसारका ही मार्ग है । यदि ऐसे व्रतोंसे कोई दूसरे स्वर्ग तक देव भी होजावे तो वहांसे आकर स्थावर पैदा होजाता है । विना सम्यक्तके प्रकाशके निर्मल मोक्षमार्गका लाभ नहीं होसक्ता है । वीतरागता विना कर्मका क्षय नहीं होसक्ता है ।

चरनं चरित्त वंतं, चरनं संसार सरनि मुक्तस्य ।
दर्सन मोहंध अभावं, अनृत चरनं नरय वासम्मि ॥ २२८ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं चरित्त वंतं) जो सम्यक्चारित्रको आचरण करता है (चरनं ससार सरनि मुक्तस्य) उसका चारित्र संसारमार्गसे छुड़ानेवाला होता है (दर्सन मोहंध अभावं) क्योंकि उस चारित्रमें दर्शन मोहका उदय नहीं है (अनृत चरनं नरय वासम्मि) मिथ्या चारित्र नरकवासको देता है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित जो धर्मध्यान व शुक्लध्यानरूपी चारित्र है वह मोक्षका मार्ग है । वह

कर्मोंको काटके संसारसे छुड़ानेवाला है। जहां मिथ्याचारित्र है, कुतप है, कुध्यान है, परिणामोंमें रौद्र ध्यान है; हिंसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी व परिग्रहानन्दी भाव है वहां नरक आयुका बन्ध होजाता है।

चरनं पि सुद्ध चरनं, पषिक चरन पषि मोहंधं ।

पषि प्रवेस उवन्नं, चरनं आवरन पषि उववन्नं ॥ २२९ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं पि सुद्ध चरनं) चारित्र वही है जो शुद्ध चारित्र हो (पषिक चरन पषि मोहंधं) जो कोई किसी पक्षको लेकर चारित्र है वह पक्षके मोहसे अन्ध चारित्र है (पषि प्रवेम उवन्नं) वहां पक्ष भावका प्रवेश उत्पन्न होजाता है (चरनं आवरन पषि उववन्नं) जहां शुद्ध चारित्र पर आवरण है वहां ही पाक्षिक चारित्र उत्पन्न होता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीका जो चारित्र है वह शुद्ध चारित्र है। वह अपनी शक्तिको देखकर वाहरमें श्रावक या मुनिका चारित्र पालते हुए शुद्धोपयोगमें रमणका उत्साह रखता है। तथा वह आत्मानुभवका ही चारित्र जानता है। मैं मुनि हूं, श्रावक हूं, इस अहंकारको वह मिथ्यात्व समझता है।

मिथ्यादृष्टी इस शुद्ध वीतराग चारित्रको कषायोंके उदयसे न समझकर किसी मतका पक्ष रखता हुआ तपसीका, दण्डीका व कदाचित् जैन मतका श्रावक व मुनिका चारित्र पालना है। वाहरसे पक्ष रखकर चारित्र पालता है, भीतर परिणामोंकी पहचान नहीं रखता है। वह अहंकारमें भर जाता है कि मैं दण्डी हूं, तापसी हूं, श्रावक हूं, मैं मुनि हूं। ऐसे चारित्रको मिथ्या चारित्र ही कहते हैं।

दर्सन मोहंध उत्तं, चरनं आवरन अनृतं दिस्टं ।

अनाचार अज्ञानं, चरनं आवरन निगोय वासम्मि ॥ २३० ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध उत्तं) यह दर्शनमोहका उदय कहा गया है जहां (चरनं आवरन अनृतं दिस्टं) चारित्र मोहका उदय होते हुए मिथ्या चारित्र पाला जावे (अनाचार अज्ञानं) वहां मिथ्या ज्ञानसे अनाचार ही मिलता है। वह रागद्वेष पूर्वक मिथ्या आचरनमें लगा रहता है (चरनं आवरन निगोय वासम्मि) चारित्रको न पालता हुआ वह दुःखोंका बीज बोता है और निगोदमें पहुंच जाता है।

भावार्थ—जहां मिथ्याज्ञान व मिथ्या दर्शन है, वहां आत्माके परिणामोंकी पहचान नहीं होती है, ऐसा प्राणी शरीरासक्त रहता हुआ हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहकी वृद्धि इन पांच पापोंको करता हुआ संसारमें दुःख पाने योग्य कर्मोंका बंध करता है तथा एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिमें जाकर जन्म पाता है।

चरनं पि विमल चरनं, चरनं संयुत्त मुक्ति गमनं च।
दर्सन मोहंध अभावं, चरनं आवरन दुक्ख वीयम्मि ॥ २३१ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं पि विमल चरनं) निर्मल आचारको चारित्र कहते हैं (चरनं संयुत्त मुक्ति गमनं च) जो शुद्ध चारित्रको पालनेवाला है वही मोक्षको जाता है (दर्सन मोहंध अभावं) वहां दर्शन मोहके उदयका अभाव होता है (चरनं आवरन दुक्ख वीयम्मि) परन्तु जो कषायके उदयसे सम्यक्चारित्र नहीं पालता है वह दुःखोंका बीज बोता है।

भावार्थ—आत्मश्रद्धापूर्वक जो श्रावक या मुनिका निर्दोष चारित्र पाला जावे तथा आत्मध्यानकी उन्नतिपर ध्यान रक्खा जावे तो वह सम्यक्चारित्र सम्यग्दर्शन पूर्वक मोक्षका कारण होता है, परन्तु जहां मिथ्यात्व है वहां मिथ्याचारित्र है वह तो पांच पापोंमें प्रवृत्तिरूप है। अतएव पाप बन्धका कारण व दुःखोंका हेतु है।

चरनं सुद्ध सहावं, सुद्धं सहकार कम्म षिपनं च।
दर्सन मोहंध असुद्धं, चरनं आवरन सरनि संसारे ॥ २३२ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं सुद्ध सहावं) निश्चयसे चारित्र शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण रूप है (सुद्ध सहकार कम्म षिपनं च) शुद्ध वीतराग चारित्रकी सहायतासे ही कर्मोंका क्षय होता है (दर्सन मोहंध असुद्धं) जो कोई मिथ्या-दृष्टी है उसका चारित्र सब अशुद्ध है, मिथ्या है (चरनं आवरन सरनि संसारे) सम्यक्चारित्रको न पालके मिथ्यात्वी संसारमें ही भ्रमण करता है।

भावार्थ—व्यवहार मुनि या श्रावकके आचारमें केवल निमित्त कारण है, आलम्बन है। इसके होते हुए जब वीतराग चारित्र शुद्धात्मामें रमणरूप प्रगट होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टी

आत्मज्ञान रहित है, उसका शुभ या अशुभ कोई भी चारित्र सम्यक् नहीं है। वह नौ ग्रैवेयिक जाकर भी संसारमें ही भ्रमण करेगा। सम्यक्त विना सम्यक्चारित्र नहीं होसक्ता है।

चरनं इस्ट संजोयं, इस्टं संजोइ अनन्त दरसेई।
दर्सन मोहंध अनिस्टं, चरनं आवरन नरय वीयम्मि ॥ २३३ ॥

अन्वयार्थ—(चरनं इस्ट संजोय) ध्यानमें हितकारी संयोगका प्राप्त करना व्यवहार चारित्र है (इस्टं सजोइ अनंत दरसेई) हितकारी व्यवहारके संयोग होनेपर अन्तरंग अनन्त गुणरूपी आत्माका अनुभव करना निश्चय चारित्र है। (दर्सन मोहंध अनिस्टं) दर्शन मोहके उदयसे अन्धा अहितकारी संयोग मिलाता है। (चरनं आवरन नरय वीयम्मि) सम्यक्चारित्रको न पाकर संसारवर्द्धक चारित्रको पालकर नर्क जानेका वीज वोता है।

भावार्थ—श्रावक व साधुका व्यवहार चारित्र मन वचन कायको रोकनेके लिये व आकुलता हटानेके लिये साधक है। इनके होते हुए आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लय होना निश्चय चारित्र है। यही मोक्षका मार्ग है। ऐसा ही श्री तत्वसारमें कहा है:—

जं अवियप्पं तच्च तं सारं मोक्खकारणं त च। तं णाऊण विसुद्धं झायह होऊण णिग्गथो ॥ ९ ॥
वहिरब्भतरगंथा मुक्का जेणेह तेविहजोएण। सो णिग्गंथो भणिओ जिणलिंगसमासिओ सवणो ॥ १० ॥
लाहालाहे सरिसो सुहदुक्खे तह य जीविए मरणे। बंधो अरयसमाणो झाणसमत्थो हु सो जोई ॥ ११ ॥

भावार्थ—जो निर्विकल्प आत्मतत्व है वही सार है, वही मोक्षका कारण है। निर्ग्रन्थ होकर उस निर्मल तत्वका ध्यान करो। जिसने मन वचन कायसे वाहरी भीतरी परिग्रह त्याग दिया है सो निर्ग्रंथ कहा गया है। जिस मुनिका भेष तीर्थंकरके समान नग्न है, जो लाभ अलाभमें सुख दुःखमें जीवन मरणमें वंधु व शत्रुमें समान भाव रखता है वही योगी ध्यान करने योग्य है।

श्री समयसारमें श्री कुंदकुंदाचार्य महाराज कहते हैं—

अप्पाणमप्पणोरुभिदुण दोसु पुण्णपावजोगेसु। दंसणणाणह्मिठिदो इच्छाविरदो य अण्णह्मि ॥ १७७ ॥
जो सव्वसंगमुक्को झायदि अप्पाणमप्पणो अप्पा। णवि कम्मं णोकम्मं चेदा चिंतेदि एयत्तं ॥ १७८ ॥

भावार्थ—अपने आत्माको आत्माके द्वारा पुण्य व पाप दोनों उपयोगोंसे रोककर, अन्य पदार्थकी

इच्छा छोड़कर एक दर्शन ज्ञानमई आत्मामें ठहरे। यह आत्मा सर्व परिग्रह त्यागकर अपने आत्माकेद्वारा आत्माको ही ध्याता है, द्रव्य कर्म व नोकर्मको नहीं ध्याता है। तथा वह अनुभव करनेवाला एक अपने स्वरूपको ही अनुभवमें लाता है।

इसतरह चारित्रको कर्मक्षयके लिये उपयोगी जानकर पालना चाहिये। मिथ्यादृष्टी जीव अहितकारी रागद्वेषवर्द्धक विषयपोषक साधनोंमें रहकर हिंसादि पापोंमें प्रवृत्ति करता है, इससे वह नरकके दुःखोंके पानेका बीज बोता है।

तवं पि अप्प सहावं, ज्ञान सहावेन चरन सहकारं।
दर्सन मोहंध असत्यं, तव आवरन सरनि संसारे ॥ २३४ ॥

अन्वयार्थ—(तव पि अप्प सहावं) तप भी निश्चयसे आत्माका स्वभाव है (ज्ञान सहावेन चरन सहकारं) ज्ञान स्वभावसे आत्मामें तपना स्वचारित्रको सहकारी है (दर्सन मोहंध असत्य) मिथ्यादृष्टि मिथ्या तप करता है (तव आवरन सरनि संसारे) उसके सम्यक् तपके ऊपर परदा है, वह संसारमें ही भ्रमण करता है।

भावार्थ—यद्यपि तप भी चारित्रमें गर्भित है तथापि विशेष खुलाशा करनेके लिये तपको अलग कहा है। बारह प्रकार तप है जो कहा जाचुका है। यह व्यवहार तप इच्छाओंके रोकनेमें सहकारी है व निश्चय तपका साधक है। निश्चय तप आत्माका अपने आत्मामें ही तपना है। तपकी सहायतासे सामायिक आदि चारित्रकी वृद्धि होती है। साधकको शक्तिके अनुसार उपवास आदि तप भी करने चाहिये। मिथ्यादृष्टीके ऊपर ऐसा कर्मोंका आवरण है जिससे वह मिथ्या हिंसाकारक तप करता है। अहिंसात्मक आत्मज्ञानवर्द्धक तपको नहीं करता है। इससे कर्मोंकी निर्जरा न करके कर्मोंका बन्ध करता है और संसारमें भ्रमता है। सारसमुच्चयमें कहा है—

यावत् स्वास्थ्यं शरीरस्य यावच्चेंद्रियसम्पदः। तावद्युक्तं तपः कर्तुं वार्द्धक्ये केवलं श्रमः ॥ १७ ॥

भावार्थ—जबतक शरीर तन्दुरुस्त हो, इन्द्रियोंमें शक्ति हो, तबतक तपका साधन कर लेना चाहिये, वृद्धावस्थामें तप न होसकेगा, केवल श्रम होगा। मूलाचारकी अनगार भावनामें कहा है—

णिच्चं च अप्पमत्ता संजमसमिदीसु झाणजोगेसु। तवचरणकरणजुत्ता हवंति सवणा समिदपावा ॥ ९६ ॥

वादं सीदं उण्हं तण्ह च क्षुधं च दंसमसयं च । सन्ति सहंति धीरा कम्माण खयं करंमाणा ॥ २०० ॥

दुज्जणवयण चडयण सहंति अच्छोड सत्थपहरं च । ण य कुप्पंति महर्षी खमगुणवियाणया साहु ॥ २०१ ॥

भावार्थ—जो नित्य प्रमाद रहित होते हुए-संयम-पांच समिति व ध्यानके योगमें लगे हुए-तपश्चरण करते हैं, चारित्र पालते हैं, वे मुनि पापोका क्षय करते हैं। हवा, ठंडी, गरमी, प्यास, भूख, डांस, मच्छर आदि परीषहोंको वे धीर वीर मुनि सहते हैं तब ही कर्मोंका क्षय करते हैं। साधुगण महानर्षि क्षमा-गुणके ज्ञाता दुर्जनोंके वचन, गर्म लोहेके फुलिंगे, अपनी असत्य निन्दा, शस्त्रप्रहारादिको विना किसी तरह क्रोध किये सहते हैं। यही तप है।

तव पुन इस्ट सजोयं, इस्टं सहकार कम्म विलयंति ।

दर्सन मोहंध अनिस्टं, तव आवरन विषय नरयम्मि ॥ २३५ ॥

अन्वयार्थ—(तव पुन इस्ट सजोयं) तब भी उसके सहकारी संयोगोंके होनेपर होता है। (इस्टं सहकार कम्म विलयंति) योग्य सहकारी कारणोंके मिलनेपर तप द्वारा कर्मोंकी निर्जरा होती है (दर्सन मोहंध अनिस्टं) मिथ्यादृष्टी अहितकारी निमित्त मिलाता है (तव आवरन विषय नरयम्मि) वह तपको न करता हुआ विषयोंमें रत रहता है इससे नरक जाता है।

भावार्थ—उपवास, ऊनोदर, रसत्याग, एकान्तवास आदि बाहरी तप योग्य निमित्त हैं, उनके होनेपर इच्छाएं मिटती हैं, मनकी चंचलता हटती है तब आत्मामें लीनरूप निश्चय तप कर्म निर्जराका कारण होता है। सम्यग्दृष्टी ही ऐसा सार तप कर सक्ता है। मिथ्यादृष्टी विषय भोगोंमें रत रहकर नर्क जाता है।

अप्प सहावे निलयं, पर सहकार विमुक्त तव उत्तं ।

कस्टं अनिस्ट रूवं, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २३६ ॥

अन्वयार्थ—(पर सहकार विमुक्त) पर पदार्थकी तरफ भावना त्यागके (अप्प सहावे निलयं तव उत्तं) आत्माके स्वरूपमें तल्लीन होना तप कहा गया है (अनिस्ट रूव कस्टं) जो इसके विरुद्ध बाहरी कष्ट देने रूप तप है वह हितकारी नहीं है। क्योंकि वहां आत्माका लक्ष्य नहीं है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं) मिथ्यादृष्टी कुतप करके दुर्गति जाता है।

भावार्थ—आत्माके सिवाय जितने पुद्गलादि पर पदार्थ हैं व रागादि अशुद्ध भाव हैं उनको चित्तसे हटा करके एक शुद्ध आत्माके स्वभावमें मग्न होना ही तप है। यदि ऐसा तप न हो और बाहरी कायको कष्ट दे व आर्तध्यान करे तो वह मिथ्यातप है। मिथ्यादृष्टी ऐसा कुतप करके दुर्गति पाता है।

तवं च लषन अलष्यं, लपन्तो सुहाव सुद्ध विमलं च।
संसार सरनि विरयं, दसन मोहंध सरनि संजुत्तं ॥ २३७ ॥

अन्वयार्थ—(तवं च अरुष्यं लपन) तव वही है जहां अलक्ष्यका अनुभव किया जावे (सुद्ध विमल च लपंतो सुहाव) जहां आत्माका शुद्ध निर्मल स्वभाव ध्याया जावे (संसार सरनि विरयं) तथा संसारके कारण सर्व मार्गोंसे विरक्त रहा जावे (दर्सन मोहंध सरनि सजुत्त) मिथ्यादृष्टी तो संसारके मार्गमें ही चलता है।

भावार्थ—मन, वचन, काय तीनोंके द्वारा आत्मा अनुभवमें नहीं आता है इसलिये अलक्ष्य है। ऐसे सूक्ष्म आत्मासे शुद्ध स्वभावको जहां पर पदार्थोंसे विलकुल विरक्त होकर ध्यानमें लिया जावे वही सच्चा तप है। यही तप संसार नाशक है। सम्यग्दृष्टी ही ऐसा तप कर सक्ता है। मिथ्यादृष्टी संसारका मोही है वह संसारमें ही भ्रमता है। उसका लक्ष्य सूक्ष्म आत्मतत्वपर नहीं जाता। समाधिशतकमें कहा है—

सोहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः। तत्रैव दृढसंस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥ २८ ॥

भावार्थ—में ही परमात्मा हूं ऐसा संस्कार जव जम जाता है तथा इसीकी भावना की जाती है। इस भावनाका भी जव दृढ़ संस्कार होजाता है तब ही आत्मा आत्मामें ठहर जाता है यही आत्मध्यान-रूपी यथार्थ तप है।

संसारे विरयंतो, ससारे सरनि सरंति नहु पिच्छ।
ज्ञानी ससंक मुक्कं, दर्सन मोहंध ससंक स सरूवं ॥ २३८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानी) तत्वज्ञानी (संसारे विरयतो) संसारसे वैराग्यभाव रखता हुआ (संसारे सरनी सरंति नहु पिच्छ) संसारके मार्गमें भ्रमणकी ओर लक्ष्य नहीं रखता है (ससक मुक्क) उसकी संसारकी शंका छूट गई है (दर्सन मोहंध ससक स सरुवं) किंतु मिथ्यादृष्टि स्वरूपमें शंकावान होता हुआ संसारके भ्रमणकी शंका रखता है।

भावार्थ—यहां सम्यग्दृष्टिके निर्भय भावको कहते हैं। सम्यग्दृष्टिका भाव संसारसे व संसारके मार्गसे बिलकुल विरक्त है, उसको अपने आत्माकी ऐसी दृढ़ श्रद्धा है कि उसको इस बातका निश्चय है कि मैं अवश्य संसारसे मुक्त होजाऊँगा। जबतक मुक्त नहीं हूंगा तबतक वीर सिपाहीके समान कर्मोंके उदयको भोग लूंगा। मिथ्यादृष्टिको शंका रहती है कि कहीं यहां आपत्ति या दुःख न आजावें व मरकर कहीं दुर्गतिमें जाकर दुःख न उठाऊँ। ऐसी शंका रखता हुआ भयभीत रहता है। परंतु जन्म मरणसे छूटनेका यत्न नहीं करता है क्योंकि वह विषयोंमें तीव्र रागी है।

संसारं सरति अनृतं, हिंडति संसार पषिनो भावं।
ज्ञानी ससंक विरयं, दर्सन मोहंध संक उपपत्ती ॥ २३९ ॥

अन्वयार्थ—(अनृतं संसारं सरति) मिथ्यादृष्टि इस मिथ्या संसारमें भ्रमता है (ससार पषिनो भावं हिंडति) उसके संसारमें घुमनेका कारण उसका संसारके पक्षका दृढ़ भाव है। (ज्ञानी ससंक विरयं) तत्वज्ञानीको कोई शंका नहीं रहती है (दर्सन मोहंध संक उपपत्ती) परन्तु मिथ्यादृष्टिको शंकाकी उत्पत्ति रहा करती है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीको संसार सुहाता है। विषयोंसे व मोह मायासे बहुत राग है। इसलिये वह इस क्षणभंगुर संसारकी पर्यायोंमें भ्रमण करता रहता है। उसको शंका भी रहती है कि कहीं आपत्ति न आजावे व मरकर कहीं कुगतिमें न चला जाऊं। तत्वज्ञानी बिलकुल निर्भय रहता है क्योंकि उसका दृढ़ विश्वास अजर अमर आत्माके स्वभावपर है।

सरनि भाव उवलष्यं, व्रत तप किरियं च अज्ञान सहकारं।
ज्ञानी तं विरयंतो, अप्प सहावेन निसंक रूवेन ॥ २४० ॥

अन्वयार्थ—(सरनि भाव उवलष्यं) मिथ्यादृष्टीका लक्ष्य संसारके कारणीभूत भावोंपर ही रहता है। उसके भावोंसे विषयानुराग नहीं जाता (व्रत तप किरियं च अज्ञान सहकार) वह मिथ्याज्ञानके ही द्वारा व्रत, तप व क्रिया पालता है (ज्ञानी तं विरयते) ज्ञानी संसारके कारणीभूत भावोंसे–शुभ अशुभ दोनोंसे विरक्त है (अप्प सहावेन निसंक रूवेन) वह निःशंकभावसे आत्माके स्वभावपर श्रद्धान रखता हुआ उसीमें रत होता है।

भावार्थ—अज्ञानी मिथ्यादृष्टी अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे इंद्रिय सुखकी श्रद्धाको नहीं त्यागता

हुआ उसी सुखकी प्राप्ति पर लक्ष्य रखके व्रत करता है, तपश्चरण करता है व बाहरी क्रिया पालता है। इससे उसका संसार कटता नहीं–उलटा बढता है। परन्तु तत्वज्ञानी सर्व संसारकी वासनाओंसे इंद्र व अहमिन्द्र पद्से व चक्रवर्ती पद्से विरक्त रहता है। अपने आत्माके स्वभावकी शंका रहित दृढ श्रद्धा रखता है व उसे संसारकी कोई शंका नहीं रहती है। वह समझता है कि मेरा आत्मविश्वास मुझे शीघ्र ही निर्वाणका लाभ करा देगा।

सरनस्य अनेक भावा, दानं किरियं च विकह रूवेन।
ज्ञानी तं विरयन्तो, विमल सहावेन निसंक सहकारं ॥ २४१ ॥

अन्वयार्थ—(सरनस्य अनेक भावा) संसारमें भ्रमणके अनेक भाव होते हैं (दानं किरियं च विकह रूवेन) विकथारूपसे दान और क्रियाएं पालना (ज्ञानी तं विरयन्तो) ज्ञानी इन वातोंसे विरक्त रहता है (विमल सहावेन निसक सहकारं) निर्मल स्वभावकी सहायतासे निःशंक रहता है।

भावार्थ—जो कोई दान वहुत करे व अनेक क्रियाएं पालें परंतु अपनी बड़ाई करे–महिमा गावे व दान क्रिया करके स्त्री, भोजन, नगरकी सुन्दरता व राज्यपद आदि चाहै सो विकथारूपसे दान व क्रियाओंका पालन यह सव संसारके मार्गको वढ़ानेवाला है। सम्यग्दृष्टी ज्ञानी दान व चारित्र पालके अपनी बड़ाई नहीं चाहता है और न उनसे सांसारिक विभूतिके पानेकी कोई आशा करता है। क्योंकि उसका स्वभाव निर्मल है, वह निःशङ्क हो आत्माकी भावना करता है।

संसार मन्त तं तं, टोटक समाउ टेक अनन्ताइं।
ज्ञानी विमुक्त भावं, ज्ञान सहावेन संक रहितस्य ॥ २४२ ॥

अन्वयार्थ—(संसार मन्त तं तं) संसारके प्राणी मंत्र तंत्रमें फँसे रहते हैं (टोटक समाउ टेक अनन्ताइं) अनेक टोटके करते हैं, अनेक प्रकारके आग्रह या टेक रखते हैं (ज्ञानी विमुक्त भावं) ज्ञानी इन भावोंसे अलग रहता है (ज्ञान सहावेन संक रहितस्य) वह ज्ञान स्वभावसे निःशङ्क रहता है।

भावार्थ—अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीव अनेक प्रकारकी शङ्काएँ मनमें रखते हैं कि कहीं पुत्रका मरण न हो, स्त्रीका मरण न हो, व्यापारमें हानि न हो, शरीरमें रोग न हो इत्यादि शङ्काएँ रखके उनके दूर

हैं। उनको यह विश्वास होता है कि ऐसा टोटका करनेके लिये नानाप्रकार मंत्र तंत्र टोटके करते कराते करेंगे, यह मंत्र जपेंगे, यह तंत्र करेंगे तो अमुक काम सिद्ध होजायगा। सम्यग्दृष्टी ज्ञानीको इन बातोंकी शङ्का व चाह नहीं रहती है, वह अपने कर्मके उदयपर शंका रहित होता है। वह जैन शास्त्रानुसार सम्य-क्त्में बाधा नहीं आवे ऐसे योग्य उपाय औषधि उपचार व योग्य जैन मंत्रादि आदिका प्रयोग करता है तौभी वह यह जानता है कि मणि मंत्र औषधि ये मात्र बाहरी उपचार हैं, जबतक पाप क्षय व पुण्य उदय न होगा तबतक कार्य सिद्ध न होगा। वह किसी सांसारिक आपत्तिपर घबड़ाता नहीं, योग्य उपाय करनेपर कर्मोदयपर निर्भर रहता है।

दर्सन मोहंध भावं, संसार सरनि धरंति स सुभावं।
जिन वयनं नहु दिट्ठं, अनन्त संसार दुक्ख वीयम्मि ॥ २४३ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन मोहंध भावं) मिथ्यादृष्टीका ऐसा भाव होता है (संसार सरनि स सुभावं धरन्ति) कि वह संसारमें भ्रमणकारी अपने स्वभावको धरता है (जिन वयनं नहु दिट्ठं) वह जिन वचनोंको प्रतीतिमें नहीं लाता है (अनन्त संसार दुक्ख वीयम्मि) वह इस अनन्त संसारमें दुःखोंका बीज बोता है।

भावार्थ—बहिरात्मा अज्ञानी संसारमें लिप्त रहनेसे शरीर, कुटुम्ब, धन, परिग्रह, मान प्रतिष्ठा आदिकी चाहकी दाहमें जला करते हैं। इनके घटनेकी व वियोगकी शंकामें फँसे रहते हैं। इस शंकाके रोक-नेके लिये चित्तको समाधान करनेके लिये नाना प्रकार मिथ्यात्व पूर्ण उपाय मंत्रतंत्र आदि पूजा पाठादि करते कराते रहते हैं। वे सांसारिक भावोंको ही दिनरात धारण करते हैं। उनको जिनवाणी सुहाती नहीं। एक तो वे सुनते पढ़ते नहीं-यदि सुनते पढ़ते भी हैं तो धारणामें नहीं लेते हैं, वे घोर कर्म बांधके संसा-रमें कष्ट उठाते हुए भ्रमते हैं। तत्वज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीवके परिणाम सदा निशंक रहते हैं। वह सात प्रकारका भय नहीं रखता है।

(१) इस लोकभय—लौकिक जन असन्तुष्ट होंगे तो मेरा बुरा करेंगे, कहीं कोई मेरा हास्य न करे आदि। वह लौकिक जनोंके कहने सुननेकी शंका रखके धर्ममार्गसे कभी नहीं हटता, सत्यपर आरूढ़ रहता है।

(२) परलोक भय—परलोकमें नर्कगति होगी तो क्या होगा, पशु हुआ तो बहुत दुःख उठाऊँगा ऐसा भय न रखके योग्य आचरण पालता है और कर्मोदयपर भरोसा रखता है। जैसी गति मिलेगी मैं शांतिसे भोग लूंगा, ऐसी वीरता रखता है।

(३) वेदना भय—शरीरमें रोग होनेकी शङ्का नहीं रखता है। यद्यपि रोग न होने पावे इसका पूरा २ यत्न रखता है। वेदनीके उदयसे यदि रोग होजावे तो सहनेको वीरता नहीं छोड़ता है।

(४) अनरक्षा भय—मेरा कोई रक्षक नहीं, माता नहीं, पिता नहीं, भाई नहीं, मेरी रक्षा कौन करेगा, यह शङ्का सम्यक्ती नहीं रखता है। वह अपने पुण्य कर्मपर भरोसा रखता है।

(५) अगुप्त भय—मेरा धन माल असवाव कोई चुरा लेजायगा तो क्या होगा, ऐसी शङ्का न रखके पुण्य कर्मपर भरोसा रखके निःशङ्क रहता है। धनादिकी रक्षाका योग्य यत्न करता है।

(६) मरण भय—मरनेका भय सम्यक्तीको नहीं होता। वह समझता है कि आत्माका तो मरण नहीं, शरीर वदलनेको ही मरण कहते हैं। आयु कर्मकी निर्जराको कोई रोक नहीं सक्ता।

(७) अकस्मात् भय—सम्यक्तीको ऐसा भय नहीं रहता है कि छत गिर पड़ेगी तो क्या होगा, गाड़ी टूट जायगी तो क्या होगा। वह यथासम्भव यत्न तो करता है परन्तु निर्भय रहता है।

व्यवहाररूप तथा निश्चयनयसे विचार कर सम्यक्ती सदा निःशंक रहता है। समयसार कलशमें मरणभयके निरोधमें ऐसा कहा है:—

प्राणोच्छेदमुदाहरन्ति मरण प्र.णा किलस्यात्मनो। ज्ञानं तत्स्वयमेव शाश्वततया नोच्छिद्यते जातुचित्।

तस्यातो मरणं न किंचन भवेत्तद्भी कुतो ज्ञानिनो। निःशक सततं स्वय स सहजं ज्ञानं सदा विंदति ॥ २६–७ ॥

भावार्थ—प्राणोंके नाशको मरण कहते है। आत्माके प्राण तो ज्ञान है। वह स्वयं अविनाशी है। वह कदापि भी नाश नहीं होसक्ता है। इसलिये उस ज्ञानका कभी मरण नहीं है। तब फिर ज्ञानीको मरनेसे क्या भय? वह सदा निःशंक रहता हुआ अपने सहज ज्ञानका अनुभव करता रहता है। सम्यक्तीका जीवन निर्भय और वीरताका है जब कि मिथ्यात्वीका जीवन शंकाशील व कायरताका है।

संसार भाव उवलष्यं, लाज भय गारवेन सद्भावं।
जिन उत्तं नहु लष्यं, संसारे सरनि भावना होई ॥ २४४ ॥

अन्वयार्थ—(संसार भाव उवलष्यं) मिथ्यादृष्टिका लक्ष्य बिंदु संसार भाव ही होता है (लाज भय गारवेन सद्भावं) वह लज्जा, भय, मदमें फंसा रहता है (जिन उत्त नहु लष्य) जिनेन्द्र कथित उपदेश पर लक्ष्य नहीं देता है (संसारे सरनि भावना होई) उसकी भावना संसारमें भ्रमण की ही होती है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिका लक्ष्य रागद्वेष, मोह व विषयोंकी पुष्टि होता है। वह लज्जामें फंसा रहता है। ऐसा काम न करूँगा तो मेरी लाज जायगी, कुलकी लाज जायगी; इस लज्जाके कारण शक्ति न रहने पर भी व्याह शादीमें अधिक खर्च करता है, कुरीतियोंको व कुचालोंको नहीं छोडता है। वह सदा भयभीत रहता है कि कोई मेरी निन्दा न करे, मुझे नाम न रक्खे, मेरेको रोग न होजावे आदि शंकाशील रहकर न करने योग्य काम करता है। बहुतसे काम वह अपना अहंकार पुष्ट करनेको करता है। मेरा जगतमें नाम हो, दूसरोंकी बदनामी हो—उसके जीवनका ध्येय यही रहता है। वह जिनेन्द्र भगवानके उपदेश पर ध्यान नहीं देता है, क्योंकि उसकी सर्व भावना संसारमय होती है।

संसार सरनि सोधं, अभावं भाव सरनि सुविसुद्धं।
जिन समयं नहु पिच्छइ, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २४५ ॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि सोधं) मिथ्यादृष्टी संसार मार्गकी ही तरफ दृष्टि रखता है (अभाव भाव सरनि सुविसुद्धं जिन समयं नहु पिच्छइ) संसारका अभाव जैसे हो ऐसे भावोंके निर्मल मार्गको बतानेवाले जिन आगमपर दृष्टि नहीं रखता है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्त) इसलिये मिथ्यादृष्टी दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीकी रुचि शरीर सम्बन्धी व लौकिक सम्बन्धी कार्योंकी ही तरफ रहती है। वह जिनवाणीके उपदेशपर ध्यान नहीं देता है जिससे मोक्षमार्गके भावोंकी पहचान होसके। अधिकतर अशुभ भावनाके होनेसे वह दुर्गतिके योग्य कर्म बांध लेता है।

सरीरं विरयन्तो, सरीर भाव असुह मुकं च।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, दर्सन मोहंध सरीर सहकारं ॥ २४६ ॥

अन्वयार्थ—(सरीरं विरयन्तो) सम्यग्दृष्टी शरीरपर रुचि नहीं रखता है (सरीर भाव असुह मुकं च) शरीर सम्बन्धी अशुभ भावोंको उन्होंने त्याग दिया है (ज्ञानेन ज्ञान सुद्ध) उसको निश्चय है कि ज्ञानसे ही ज्ञानकी शुद्धि होती है (दर्सन मोहंध सरीर सहकार) परन्तु मिथ्यादृष्टी शरीरकी ही भावना रखता है।

भावार्थ—सम्यग्दृष्टीने अपने आत्माको भलेप्रकार पहचान लिया है कि वह परमात्माके समान ज्ञाता दृष्टा अविनाशी आनन्दमई परम वीतराग अखण्ड पदार्थ है। उसके गाढ़ रुचि है कि शरीर सुख क्षणिक व अतृप्तिकारी है, अतीन्द्रिय सुख जो आत्मासे ही प्रगट होता है सच्चा सुख है। इसलिये वह शरीरसे वैरागी व आत्माका परम रुचिवान रहता है। तथा कर्मोंको काटकर अपने ज्ञानको शुद्ध करनेके लिये आत्मज्ञानकी ही भावना भाता है। मिथ्यादृष्टी बिलकुल इसके विरुद्ध रुचि रखता है। वह शरीरमें व इन्द्रिय सुखमें ही आसक्त रहता है।

अनृत असत्यं महियं, असुचि अनेय भाव अनन्तानं।
तं ऋतं जानन्तो, दर्सन मोहंध अनिस्ट रूवेन ॥ २४७ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत असत्यं महिय) मिथ्या व नाशवन्त इस शरीरके साथ (असुचि अनेय भाव अनंत नं) अपवित्र अनेक अनंतानंत भाव मिथ्यादृष्टि किया करता है (तं ऋतं जानंतो) उस शरीरको ही सत्य जानता है (दर्सन मोहंध अनिष्टरूवेन) मिथ्यादृष्टि अपना बुरा ही करता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टिको अपने शरीरके साथ ऐसा मोह रहता है कि उसके सम्बन्धको लेकर रातदिन पांच इंद्रिय भोग सम्बन्धी तथा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील तथा परिग्रह सम्बन्धी अनंत प्रकारके भाव किया करता है। वह शरीरको स्थिर व सत्य मान लेता है, आत्माकी तरफ दृष्टि नहीं रखता है इसलिये वह अपना बहुत बुरा करता है।

सरीर भाव सहिओ, जिन उत्तं सुत वयन नहु पिच्छं।
मिच्छा कुज्ञान सहिओ, दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं ॥ २४८ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर भाव सहिओ) शरीर सम्बन्धी भावोंमें लिप्तताके कारण (जिन उत्तं सुत वयन नहु पिच्छं) जिनेन्द्रोक्त शास्त्रके वचनोंको देखता नहीं है (मिच्छा कुज्ञान सहिओ) मिथ्यात्व और मिथ्याज्ञान सहित वर्तता है (दर्सन मोहंध दुग्गए पत्तं) इसीलिये मिथ्यादृष्टी दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी शरीरका मोही रहता हुआ जिनवाणीपर दृष्टि नहीं देता है, न पढ़ता है, न सुनता है, न ध्यानमें लेता है। उसको वैराग्यकी बात कड़वी लगती है, किंतु रागकी बात प्यारी लगती है। मिथ्यादर्शन और अज्ञानके प्रतापसे अशुभ कर्म बांधकर वह दुर्गतिमें जाता है।

भोगं अनिस्ट रूवं, अनिस्ट भावेन सरनि संसारे ।
अनृतभाव स भोगं, दर्सन मोहंध अनृत भोगं च ॥ २४९ ॥

अन्वयार्थ—(भोगं अनिस्ट रूव) इंद्रियोंके भोग अहितकारी हैं, आत्माके शुद्ध स्वरूपसे हटानेवाले हैं। (अनिस्ट भावेन सरनि ससारे) इन अनिष्ट भोगोंकी आसक्तिकी भावनासे संसारमें भ्रमण होता है । (अनिस्ट भाव स भोगं) भोगोंके साथ तीव्र अशुभ भाव होते हैं । (दर्सन मोहंध अनृत भोग च) इन मिथ्या भोगोंमें ही उलझा रहता है ।

भावार्थ—इंद्रियोंके भोगोंके पीछे जो आसक्त होकर पड़ जाता है वह धर्मकार्यको भूलकर व न्याय व अन्यायका ख्याल छोड़कर महान तृष्णामें आतुर रहनेसे तीव्र अशुभ भावोंसे पापकर्मका बन्ध कर लेता है । इसीसे वह इन मिथ्या भोगोंमें अन्ध होनेसे संसारमें दीर्घकाल तक भ्रमण किया करता है ।

स्वयंभू स्तोत्रमें श्री समन्तभद्राचार्य कहते हैं—

स्वास्थ्यं यदात्यन्तिकमेष पुंसा स्वार्थो न भोग परिभंगुरात्मा । तृषोऽनुसगान्न च तापशान्तिरितीदमाख्यद भगवान् सुपार्श्व ॥

भावार्थ—प्राणियोंका परम हित अपने आत्माके स्वरूपमें तल्लीनता है न कि क्षणभंगुर भोग । इन भोगोंसे तो तृष्णाकी वृद्धि होती है, ताप शांत नहीं होता है । हे भगवान् ! आपने ऐसा उपदेश किया है ।

भोगं संसार सुभावं, भोगं अभाव भाव उवलष्यं ।
अनिस्ट भोग स उत्तं, दर्सन मोहंध सुस्ट भोगं च ॥ २५० ॥

अन्वयार्थ—(भोग संसार सुभावं) ये भोग संसार स्वभावमई हैं (भोग अभाव भाव उवलष्यं) इन भोगोंके कारण नाशवंत शरीरके साथ ही परिचय रहता है (अनिष्ट भोग स उत्तं) ये भोग अहितकारी कहे गए हैं (दर्सन मोहंध सुस्ट भोगं च) मिथ्यादृष्टी इन भोगोंको हितरूप मानता है ।

भावार्थ—पंचेन्द्रियोंके भोगोंमें सारा संसार फंसा है तथा इनही भोगोंकी तृष्णासे ही वारवार शरीर प्राप्त होता है । यह अज्ञानी प्राणी उस नाशवान शरीरमें ही अनुरागी रहता है । रातदिन उसहीकी सेवा किया करता है। जिससे वह आत्महितको भूल जाता है, भोगोंमें अन्ध भाव आत्म रूचिको हटानेवाला है । इन भोगोंसे तृष्णा बढती है, संसारमें ताप शांत नहीं होता है । संसारका भ्रमण बढता

ही जाता है। आत्मस्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है। इसलिये इनकी आसक्ती अहितकारी है परंतु मिथ्या-दृष्टीको सम्यग्ज्ञान नहीं होता है इसलिये वह इन भोगोंको ही हितकारी जानता है।

सार समुच्चयमें भोगोंके सम्बन्धमें कहा है—

भुक्त्वाप्यनन्तरं भोगान् देवलोके यथेप्सितान्। यो हि तृप्तिं न सम्प्राप्तः स किं प्राप्स्यति सम्प्रति ॥ ७५ ॥

वरं हालाहलं भुक्तं विषं तद्भवनाशनम्। न तु भोगविषं भुक्तमनन्तभवदुःखदम् ॥ ७६ ॥

इन्द्रियप्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम्। तच्च कर्मविबन्धाय दुःखदानैकपण्डितम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ—स्वर्ग लोकमें इच्छानुसार सुखोंको निरन्तर भोग करके भी जो तृप्त न हुआ वह अब इन थोडे सुखोंसे कैसे तृप्त होगा। हालाहल जहर पीना तो अच्छा है, उससे इसी जन्मका नाश है परन्तु भोग रूपी विषको सेवना उचित नहीं जिससे अनन्त जन्मोंमें दुःख पहुंचता है। इंद्रियोंके द्वारा होनेवाला सुख सुखसा झलकता है पर वह सच्चा सुख नहीं है। इस इंद्रिय सुखके भोगनेसे कर्मोंका बन्ध होता है जिससे बहुत दुःख प्राप्त होता है।

भोगं भोग सुभावं, विकहा वसन विषय भाव उवभोगं।
आलापं असुद्ध भावं, दर्सन मोहंध अनृत भोगं च ॥ २५१ ॥

अन्वयार्थ—(भोग भोग सुभाव) भोगोंको भोगते हुए भोग करनेका ऐसा स्वभाव पड़ जाता है (विकहा वसन विषय भाव उवभोग) कि चार विकथा, सात व्यसन, पांच इंद्रियोंके विषय सम्बन्धी भावोंका उपभोग किया करता है (आलाप असुद्ध भाव) अशुद्ध भावोंको लिये हुए बकवाद करता है (दर्सन मोहंध अनृत भोग च) मिथ्यादृष्टी इन मिथ्या भोगोंमें आसक्त रहता है।

भावार्थ—जिनके भोगोंके भीतर लालसा होजाती है वे स्त्री, भोजन, देशके भोग व राजाओंके भोगकी कथाओंमें रंजायमान रहते हैं। जूआ खेलना, मांसाहार, मद्यपान, चोरी, शिकार, वेश्या सेवन व परस्त्री सेवन इन सात व्यसनोंकी आदत पड जाती है, रात दिन इनही भावोंमें उलझे रहते हैं तथा पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी भावना नित्य रहती है। परस्पर हास्य कौतूहलमें भी अशुचि भावोंकी प्रदर्शक वार्तालाप होती रहती है। खेद है मिथ्यादृष्टि जीव इन मिथ्या भोगोंके कारण अपना अहित कर लेता है।

भोगं नंत विसेषं, अज्ञानं तव वय किरिय विकह संयुत्तं ।
वयनं न सुद्ध वयनं, अनिस्ट रूवेन अन्ध अन्धानि ॥ २५२ ॥

अन्वयार्थ—(भोग नंत विसेषं) भोग सम्बन्धी भावोंके अनन्त भेद हैं (अज्ञानं तव वय किरिय विकह सयुत्त) भोगोंकी लालसासे अज्ञानी लोग तप करते हैं, व्रत पालते हैं, क्रिया साधते हैं परन्तु विकथाओंको नहीं त्यागते हैं (वयन न सुद्ध वयन) वे कभी शुद्ध वैराग्यपूर्ण वचन नहीं कहते हैं (अनिस्ट रूवेन अन्ध अन्धानि) वे अपना अहित करते हुए स्वयं अन्धे रहते हुए अन्धोंको मार्ग बताते हैं ।

भावार्थ—भोगोंकी तृष्णा मनमें रखके भविष्यमें भोग प्राप्त हों इस लालसासे मिथ्यादृष्टि उपवासादि तप करते हैं, मुनि व श्रावकके व्रत पालते हैं, भोजनादि क्रिया शुद्ध रखते हैं परंतु विकथा नहीं त्यागते हैं। न कभी आत्मज्ञानवर्द्धक चर्चा करते हैं। वे आप भी संसारमें डूबते हैं और दूसरे अज्ञानियोंको भी अज्ञानका मार्ग बताते हैं। बहुतसे जगतके प्राणी भोग लालसासे दिनमें व्रत करते हैं, रात्रिको चन्द्रमा व नक्षत्र देखकर खाते हैं। अग्नि तपन रूप तप करते हैं। अनेक भेष बनाकर साधुपना साधते हैं परन्तु धर्मकी चर्चा नहीं करते हैं। कोई २ जैनके व्रत तप आदि करते हैं, भावना विषयभोगकी रहती है। इससे वे परम्परा अनिष्ट फलको ही पाते हैं ।

अन्धं अन्ध सुभावं, दर्सन मोहंध दुक्ख वीयम्मि ।
दोसं अनन्त नन्तं, संसारे निरय निगोद वासम्मि ॥ २५३ ॥

अन्वयार्थ—(अन्धं अन्ध सुभावं) अन्ध पुरुषका स्वभाव ही अन्धा होता है, उसे कुछ दीखता ही नहीं है (दर्सन मोहंध दुक्ख वीयम्मि) इसी तरह जो मिथ्यात्वके उदयसे अन्धा है वह हित अहित धर्म अधर्मपर दृष्टि न देता हुआ अज्ञानसे कुआचरण करके भोगोंमें लिप्त होकर दुक्खका बीज बोता है (दोसं अनन्त नन्तं) अनन्तानन्त दोषोंका पात्र होता है (संसारे निरय निगोद वासम्मि) संसारमें नरकगतिमें जाता है या निगोदमें दीर्घकाल बिताता है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन व अनन्तानुबन्धी कषायके उदयसे जो कोई भोगोंमें अन्धा होजाता है वह महान् अन्धा है। वह कुत्सित आचरण करके घोर पाप बांधता है। वह अनन्त दोषमई भाव पैदा करता है। कोई २ नरक चला जाता है। कोई २ निगोदवास पाता है।

मन चंचलता ।

उत्पन्नं मन चवलं, अनन्त विसेसेन पर्जाय संदिट्ठं ।
चेतन नन्द स्वरूवं, अप्प सहावेन कम्म षिपिऊनं ॥ २५४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्नं मन चवलं) जब यह चञ्चल मन उत्पन्न होता है (अनन्त विसेसेन पर्जाय संदिट्ठं) यह अनन्त प्रकारसे शरीरपर ही दृष्टि रखता है (चेतन नन्द सरूवं) आत्मा आनन्द स्वभावी है (अप्प सहावेन कम्म षिपिऊन) जब यह अपने शुद्ध स्वभावमें रत होता है तब कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—कर्मोंके बन्धका कारण संकल्प विकल्परूप यह मन है। यह मन इन्द्रियोंके विषयोंमें रंजायमान होकर शरीर भोग सम्बन्धी अनन्तभाव किया करता है। जो कोई इस मनको रोककर आनन्द स्वभावी निज आत्मामें तल्लीन होते हैं उसके वीतराग भावोंसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

सार समुच्चयमें कर्म निर्जराका उपाय कहा है—

सम्यक्त्वसमतायोगे नैःसंग्य क्षमता तथा । कषायविषयासंग कर्मणा निर्जरा परा ॥ ३२४ ॥

भावार्थ—जो आत्मश्रद्धानरूपी सम्यक्तमें व समताभावमें लीन है, ममता रहित है, श्रद्धावान है, कषाय तथा विषयोंसे उदासीन है उसीके बहुत कर्मोंकी निर्जरा होती है।

मन चवलं उववन्नं, संसरइ सुभाव पर्जाय अनुरक्तं ।
अघ सरूवं पिच्छदि, पर्जय विरतस्य कम्म षिपिऊनं ॥ २५५ ॥

अन्वयार्थ—(मन चवलं उववन्नं) मनकी चञ्चलता जब उत्पन्न होती है तब (संसरई सुभाव पर्जाय अनुरक्त) वह मन संसारमें भ्रमणरूप पर्यायोंमें लवलीन रहता है (अप्प सरूवं पिच्छदि) जब ऐसे मनको रोककर जो आत्माके स्वभावका अनुभव करता है (पर्जय विरतस्य कम्म षिपिऊनं) और शरीर पर्यायसे विरक्त होता है उसीके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टीका मन चंचल होता है। वह वर्तमान शरीरमें आसक्त होता है इसीलिये संसारमें भ्रमणकारी भावी पर्यायोंमें भी आसक्त होता है। संसारके सुख भव भवमें प्राप्त हों यही उसके मनकी

आशा रहती है। ऐसे मनको रोककर सम्यग्दृष्टी जीव शरीरसे, संसारसे व भोगोंसे उदासीन होकर निज आत्मामें एकतान होकर अनुभव करता है तब उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

पर्जय सहाव उत्तं, सरीर संस्कार भाव उववन्नं ।
कृतकारित अनुमतयं, पज्जय विरतस्य कम्म विरयंतो ॥२५६॥

अन्वयार्थ—(पर्जय सहाव उत्त) पर्यायमें रत होनेका स्वभाव ऐसा कहा गया है कि (कृतकारित अनुमतयं) कृतकारित अनुमोदनासे (सरीर सस्कार भाव उववन्न) शरीर सम्बन्धी संस्कारके भावोंको पैदा करना (पज्जय विरतस्य कम्म विरयन्तो) जो कोई पर्यायसे विरक्त होता है उसीके कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—पर्याय स्वभावसे अभिप्राय है कि शरीरके सुखोंमें लवलीन रहना। जैसे मैंने शरीरको ऐसे ऐसे पदार्थोंका भोग कराया था, व मैंने दूसरोंको अमुक २ पदार्थ दिये थे जिससे वे शरीरके सुख भोग सकें अथवा जो कोई शरीरके सुखमें मग्न हैं, उनको जानकर प्रसन्न होना। इस तरह कृतकारित अनुमोदनासे शरीरके सुखकी व शरीरके श्रृङ्गारकी बातोंमें लवलीन रहना पर्याय स्वभाव है। जो कोई सम्यग्दृष्टी जीव पर्यायको विनाशीक जानकर व शरीर सुखको अतृप्तिकारी तृष्णावर्द्धक जानकर उस पर्यायबुद्धिको त्याग देता है और निश्चल होकर आप आपमें लवलीन होता है उसीके कर्मोंका क्षय होता है।

इंद्रिय सुख स्वभाव।

इंदी सुभाव दिट्ठं, अनिस्ट संजोय सरनि संसारे ।
जिन वयनं पेच्छन्तो, अतिदी भाव इंदि विरयंति ॥ २५७ ॥

अन्वयार्थ—(इंदि सुभाव दिट्ठं) शरीराश्रित इंद्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा गया है कि वे (अनिस्ट संजोय सरनि संसारे) आत्माको अहितकारी विषयभोगोंका सम्भोग मिलाती हैं और उनमें तन्मय कराकर प्राणीको संसारमें भ्रमण कराती हैं (जिन वयनं पेच्छन्तो) जो सम्यग्दृष्टी जिनवाणीपर विश्वास लाता है वह (अतिदी भाव इंदि विरयंति) आत्माके अतीन्द्रिय सुखपर निश्चय रखता हुआ इंद्रियके सुखोंसे विरक्त रहता है।

भावार्थ—पांचों इंद्रियोंके भोगोंकी तृष्णाका यह स्वभाव है कि उससे पीड़ित हो, यह प्राणी नाना-प्रकार भोगोंकी सामग्री एकत्र करके उनके भोगमें फँस जाता है। आत्मीक उन्नतिसे बेखबर होजाता है, परन्तु सम्यग्दृष्टी जीव जिनवाणीके उपदेशपर पूर्ण विश्वास करता है और आत्माके स्वाभाविक इंद्रियातीत परमानन्दको ही सच्चा सुख जानता है। इंद्रिय सुखको झूठा व कल्पित सुख जानकर इससे विरक्त होजाता है। वास्तवमें इंद्रिय सुख दुःखरूप ही है, ऐसा श्री प्रवचनसारमें कहा है—

सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं। जं इन्दियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुःखमेव तहा ॥ ७६-१ ॥

भावार्थ—यह इन्द्रियजन्य सुख पराधीन है। इच्छित वस्तु मिले व भोगने योग्य इन्द्रिय हो तब होता है तथा इसमें विघ्न आजाते हैं इससे बाधा सहित है। एक दिन पदार्थोंके वियोगसे व अपने मरण होनेसे नाश होजाता है। तथा रागभावके विना इंद्रियभोग नहीं होता इससे यह बन्धका कारण है। तथा आकुलतामय है इससे विषम है अतएव यह इंद्रिय सुख दुःखरूप ही है। सार समुच्चयमें कहा है—

अक्षाण्येव स्वकीयानी शत्रवो दुःखहेतव। विषयेषु प्रवृत्तानि कषायवशवर्तिन ॥ ७९ ॥

भावार्थ—ये इंद्रियें ही अपने आत्माकी शत्रु हैं। क्योंकि दुःखोंके कारण हैं। कषायके वशमें होकर प्राणी इंद्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति करते रहते हैं।

जं इंदी च सहावं, तं जाने हि सयल मोहंधं।
जिन उवएस लहंतो, अतिंदी सहकार कम्म विरयंतो ॥ २५८ ॥

अन्वयार्थ—(जं इंदी च सहावं) इंद्रियोंके सुखोंमें रत होनेका जो कुछ स्वभाव है (तं जाने हि सयल मोहंधं) उसीको सर्व प्रकारसे दर्शन मोहका उदय जानो (जिन उवएस लहंतो) जो श्री जिनेन्द्रके उपदेशको प्राप्त करता है (अतिंदी सहकार कम्म विरयंतो) वह अतीन्द्रिय आनन्दके साधनसे कर्मोंका क्षय करता है।

भावार्थ—मिथ्यादृष्टी जीव दर्शनमोह और अनन्तानुबन्धी कषायोंके उदयसे इंद्रियोंके सुखोंको उपादेय जानकर इनमें तन्मय रहता है परन्तु सम्यग्दृष्टी जीव इस सुखको झूठा समझकर व जिनवाणीके प्रतापसे तत्वोंको जानकर आत्मीक आनन्दमें मग्न होता है। आत्मानन्दकी मग्नता ही कर्मोंकी निर्जरा करती है। सम्यग्दृष्टीके निःकांक्षित अङ्ग होता है इसलिये वह भोगोंकी तृष्णा कभी नहीं रखता है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

इह जन्मनि विभवादीनमुत्र चक्रित्वकेशवत्वादीन् । एकान्तवाददुषितपरसमयानपि च नाकाक्षेत् ॥ २४ ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी इस जन्ममें धन कुटुम्ब आदिको व परलोकमें चक्रवर्ती व नारायण आदिके पदोंको व एकांतनयरूप पर दर्शनोंको नहीं चाहता है। वह अतीन्द्रिय सुखप्रदाता अनेकांत मतका दृढ़ श्रद्धालु रहता है।

जब ध्यानीके अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

इष्टोपदेशमें कहा है—

आनंदो निर्दहत्युद्धं कर्मेधनमनारतं । न चासौ खिद्यते योगीबहिर्दु खेष्वचेतन. ॥ ४८ ॥

भावार्थ—जब आत्मीक आनन्दका अनुभव होता हैं तब वह आनन्द ही प्रचुर कर्मोंकी निर्जरा लगातार करता रहता है। आनन्दमग्न योगी बाहरी दुःखोंमें उपयोग न देता हुआ खेदित नहीं होता है।

दिस्टी दिस्टतु इंदी, दिस्टी संसार सरनि सद्भावं ।
जिनवयनं पेच्छंतो, दिस्टी अदिस्टि कम्म विरयंतु ॥ २५९ ॥

अन्वयार्थ—(दिस्टी दिस्टतु इदी) सामने पांचों इंद्रिये ही दिखलाई पड़ती हैं (दिस्टी संसार सरनि सद्भाव) पांचों इंद्रियोंकी ओर दृष्टि है सो ही संसारके मार्गको बढ़ानेवाली है (जिनवयनं पेच्छतो) जो सम्यग्दृष्टी जिनवाणीपर मनन करता है वह (दिस्टी अदिस्टि कम्म विरयंतु) अपनी दृष्टि अदृष्ट आत्मापर लेजाता है इसीसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—जहांतक ज्ञानोपयोग पांचों इंद्रियोंके विषयोंमें रागी है वहांतक कर्मबन्ध है और संसार है। ज्ञानी जिनवाणीका भलेप्रकार अभ्यास करता है और पांचों इंद्रियोंसे जो नहीं जाना जासक्ता, ऐसे अदृष्ट आत्मापर विश्वास लाकर उसीका अनुभव करता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

दृष्टि गुण दोष कथन ।

दिट्ठी प्रपंच भावं, दिट्ठी उववन्न पर्याय सद्भावं ।
जिन सुभाव सहावं, अतिंदी दिट्ठि कम्म विरयंतु ॥ २६० ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी प्रपंच भावं) यह दृष्टि जगतके प्रपंच भावोंमें लगी रहती है (दिट्ठी उववन्न पर्याय सद्भाव) यह दृष्टि वर्तमान प्राप्त शरीरके संस्कार व सुखोंमें तन्मय रहती है वही दृष्टि जब प्रपंचसे और शरीरसे हटकर (जिन सुभाव सहावं) अपने आत्माके स्वभावपर जाती है जिसका स्वभाव श्री सिद्ध जिन परमात्माके समान है तब (अतिंदी दिट्ठी कम्म विरयंतु) इंद्रियोंसे छुटकर अतीन्द्रिय आत्माका अनुभव होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—संसारी जीवका उपयोग जगतकी मायामें, धन धान्यादि परिग्रहमें, कुटुम्ब परिवारमें, शरीरकी ममतामें फँसा रहता है । ज्ञानी जीव इन मिथ्या क्षणिक पदार्थोंसे वैरागी होकर जिनवाणीके तत्वोंपर ध्यान देता है और अतीन्द्रिय आत्माकी प्रतीति लाता है—समझ जाता है कि मेरे आत्मद्रव्यका वैसा ही स्वभाव है जैसा श्री सिद्ध परमात्माका है । फिर इंद्रियोंसे व मनसे उपयोगको हटाकर अपने निश्चय किये हुए आत्माके स्वरूपमें तन्मय होता है तब स्वानुभव जगता है—स्वानुभवके प्रतापसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

दिट्ठी विभ्रम रूवं, उतसाह उच्छाह दिट्ठि स सहावं ।
जिन रंजन जिन उत्तं, अतिन्दी भाव कम्म विरयंति ॥ २६१ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी विभ्रम रूवं) यह दृष्टि मिथ्यात्वरूप भ्रममें फँसी हुई है । इस दृष्टिको भ्रमसे हटाकर (उतसाह उच्छाह दिट्ठी स सहाव) जब अपने आत्माके स्वभावपर उत्साह व आनन्दके साथ लगाई जाती है (जिन रंजन जिन उत्त) तथा जिनेन्द्रके स्वरूपमें रंजायमान हुआ जाता है व जिनेन्द्र कथित तत्वोंपर ध्यान दिया जाता है तब (अतिंदी भाव कम्म विरयंति) अतीन्द्रिय भाव उत्पन्न होता है—आत्मस्थ परिणति होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—जब ज्ञानी जीव सर्व प्रकारकी शङ्काओंको व भ्रमभावको हटाकर अपने ज्ञानानन्द स्वभावकी पहचान करके उसके विचारमें बड़ा उत्साहित होता है व आनन्द मानता है तथा आदर्शरूप परमात्मा श्री जिनेन्द्रकी भक्ति बड़े भावसे करता है व जिनवाणीका मनन करता है तब इसकी परिणति इंद्रियोंसे अतीत आत्माके स्वरूपमें एकाग्र होती है। यही ध्यान अवस्था कर्मोंकी निर्जराकी कारण है।

दिट्ठी अनेय रूवं, जन रंजन कल सहाव संदिट्ठं ।
ज्ञान सहाव स उत्तं, अप्प सहावेन दोष विरयंति ॥ २६२ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी अनेय रूव) यह दृष्टि अनेक मार्गोंमें जाती है। (जन रंजन कल सहाय सदिट्ठं) यह देखा गया है कि यह दृष्टि लोगोंके रंजायमान करनेमें व शरीरके स्वभावमें अधिकतर लगी रहती है (ज्ञान सहाव स उत्तं) वही दृष्टि इस लौकिक प्रपंचसे हटकर ज्ञान स्वभावी आत्मामें लगी हुई तब कहलाती है जब (अप्प सहावेन दोष विरयंति) आत्माके स्वभावमें ठहरनेसे रागादि दोष दूर होजावें।

भावार्थ—आत्माका उपयोग शरीरके सुखमें व लोगोंको राजी रखनेमें अधिकतर लगा रहता है। जब इस उपयोगको इनसे हटाकर ज्ञानी जीव आपके ज्ञानानन्द स्वभावमें एकाग्र करता है तब रागादि दोष छूटते जाते हैं।

दिट्ठी मन उपपत्ती, दिट्ठी दिट्ठेइ अभाव भय जुत्तं ।
ज्ञान सहाव उवन्नं, अप्प सहावेन दोष विरयंति ॥ २६३ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी मन उपपत्ती) जब दृष्टि मनके संकल्प विकल्पोंमें जाती है (दिट्ठी दिट्ठेइ अभाव भय जुत्तं) तब यह दृष्टि भय सहित नाशवंत शरीरकी ही तरफ देखा करती है (ज्ञान सहाव उवन्नं जब ज्ञान स्वभाव उत्पन्न होजाता है (अप्प सहावेन दोष विरयंति) तब आत्माके स्वभावमें लीन होनेसे रागादि दोष दूर होजाते हैं।

भावार्थ—मनका स्वरूप संकल्प विकल्पमय है। जब दृष्टि मनके अनेक विचारोंमें लगी रहती है तब मनमें इस नाशवंत शरीरका ही खयाल आता है, शरीरके बने रहनेका भाव होता है, शरीर रोगी न हो छूट न जावे ऐसा भय होता है। यह सब मिथ्यात्वके उदयसे होता है। जब सम्यग्दृष्टी आत्माका स्वभाव ज्ञानानन्दमय निश्चय करके उसके ध्यानमें जमता है तब रागादि दोष स्वयं मिट जाते हैं।

दिट्ठी नन्त विसेसं, अनुमोयं पजाय भाव सद्भावं ।
ज्ञान सहावं सुद्धं, दिट्ठी विसेस कम्म विरयंति ॥ २६४ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी नन्त विसेस) दृष्टि अनन्त भेद रूप होती है [illegible] यह दृष्टि शरीरके वर्तमान भावोंमें प्रसन्न हुआ करती है [illegible] उससे हटकर जो दृष्टि शुद्ध ज्ञान स्वभावी आत्मामें अनुरक्त होती है [illegible] यही विशेष दृष्टि कर्मोंकी निर्जराका कारण है।

भावार्थ— उपयोग अनन्त प्रकारके भावोंमें रमा करता है। वर्तमान प्राप्त शरीर सम्बन्धी भावोंमें बड़ी प्रसन्नता रखता है। यदि शरीर सुन्दर बलिष्ट है, यदि पुण्योदयसे धनकी वृद्धि होरही है, कुटुम्बकी वृद्धि होरही है, शरीरके भोग अनगिनती प्राप्त होरहे हैं तब यह उपयोग उन्हीं बातोंमें रात दिन उलझा रहता है। जो ज्ञानी उस उपयोगको सांसारिक प्रपन्नोंसे हटाकर ज्ञान स्वभावधारी शुद्ध आत्मामें लगाता है तब यह विशेष ज्ञानोपयोग कर्मोंकी निर्जराका कारण होता है।

दिट्ठी अनन्त रुवं, पजय सुभाव दिट्ठि अनुमोयं ।
दुग्गय गमन सहावं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २६५ ॥

अन्वयार्थ—(दिट्ठी अनन्त रुवं) यह दृष्टि अनन्त स्वभावोंमें फंसी रहती है ([illegible]) शरीरके स्वभावमें यह दृष्टि बड़ी प्रसन्न रहती है ([illegible]) जिससे उस जीवका कुगतिमें गमन होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—शरीरके सुखोंमें आनन्द माननेवाली दृष्टि रागद्वेष मोहके कारण तीव्र कर्मोंको बांधकर जीवको कुगतिमें पटक देती है। जब यह दृष्टि ज्ञान स्वभाव आत्मामें लीन होती है, तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

शब्द गुण दोष कथन।

अनिष्ट सब्द स उत्तं, सव्दं संसार सरनि पेच्छंतो।
कम्म उववन्न भावं, अतिंदी सहकार कम्म विरयंति॥ २६६॥

अन्वयार्थ—(अनिष्ट सब्द स उत्त) अहितकारी शब्द वे कहे गये हैं (सब्दं संसार सरनि पेच्छन्तो) जिन शब्दोंका लक्ष्यबिन्दु संसार मार्ग होता है (कम्म उववन्न भाव) इससे कर्मबन्धकारक भाव होते हैं (अतिंदी सहकार कम्म विरयंति) जब इन शब्दोंसे उपयोगको हटाकर अतीन्द्रिय आत्मामें रमण होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—शब्दोंका प्रयोग जहां अशुभ भाव सहित होता है; राग, रंग, कौतूहलरूप, इन्द्रिय विषयोंमें रंजायमान रूप व क्रोध, मान, माया, लोभ, कषायकी पुष्टिरूप तब तो पापकर्मका बन्ध होता है। जब शब्दोंका प्रयोग शुभ भावसहित होता है; श्री जिनेन्द्रकी स्तुतिरूप, शास्त्रोपदेश रूप, जप रूप, सत्य वचनरूप, परोपकार रूप, दान धर्मरूप, मंत्रोंका मननरूप, तब पुण्य कर्मोंका बन्ध होता है। जब दोनों प्रकारके शब्दोंको रोककर शब्द रहित होकर इंद्रियातीत आत्मामें एकतानता होती है तब ही कर्मोंका क्षय होता है।

सव्दं च सव्द रूवं, रस निकसनि तंति तार फूकं च।
सव्द सहाव सकम्मं, अतिंदी सहकार कम्म विरयंति॥ २६७॥

अन्वयार्थ—(सव्दं च सव्द रूवं) शब्दका स्वभाव अनेक शब्दरूप होता है (रस निकसनी तंति तार फूकं च) जिससे शृङ्गाररस, वीररस, बीभत्सरस आदि भाव निकलें; तांतोंका, तारोंका व फूकका बाजा होता है जिनसे अनेक रसीले शब्द निकलते हैं (सव्द सहाव सकम्म) इन शब्दोंके भीतर रंजायमान होनेसे कर्मोंका बन्ध होता है (अतिंदी सहकार कम्म विरयति) जो अतीन्द्रिय आत्मामें लीन होता है उसके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—गानेमें शब्दोंके सात स्वर प्रसिद्ध हैं। इन स्वरोंको लेकर अनेक प्रकार बाजोंके द्वारा अनेक प्रकार रसोंके प्रगट करनेवाले शब्द निकलते हैं, जिनमें मन रंजायमान होजाता है। सर्वार्थसिद्धिमें बाजें

चार प्रकारके कहे गए हैं। (१) तत चामके–जैसे ढोल, मृदंग, तबला आदि। (२) वितत तारोंके–जैसे सितार, वीणा, सारंगी आदि। (३) घन–जैसे ताल, घंटा आदि। (४) सौषिर–फूंकके बांसरी, शंखादि। इन बाजोंकी ध्वनिमें मन रागी होजाता है जिससे कर्मोंका बंध होता है। जब उपयोग सर्व प्रकारके शब्दोंसे छुटकर शब्दरहित अमूर्तीक आत्मामें लवलीन होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

रसनस्य रसनभावं, कसनस्य कम्म भाव उपपत्ती।
तंती अनन्त भावं, अतिंदी सहकार कम्म विरयंति॥ २६८॥

अन्वयार्थ—(रसनस्य रसनभाव) रसोंका रसीला रंजायमानकारक भाव होता है (कसनस्य कम्म भाव उपपत्ती) जब बाजोंको बजाया जाता है तब रागभावकी उत्पत्तिका कारण होता है। (तंती अनंत भावं) तारोंके द्वारा बाजेमें अनेक प्रकारके रसीले भाव निकलते हैं (अतिंदी सहकार कम्म विरयति) जब इन शब्दोंकी तरफसे उपयोगको रोककर अतीन्द्रिय आत्मामें उपयोगको तन्मय किया जाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—शृंगार आदि रसोंको प्रगट करनेवाले शब्द बाजोंके बजनेसे निकलते हैं उनके द्वारा अवश्य रागभाव पैदा होजाता है जिससे कर्मोंका बन्ध होता है। इन शब्दोंसे उपयोगको हटाकर जब अतींद्रिय आत्मामें एकाग्र हुआ जाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

तारं नंत विसेसं, फूकं कम्मान भाव उववन्नं।
सव्द सुहाव असुद्धं, अतिंदी भाव कम्म षिपनं च॥ २६९॥

अन्वयार्थ—(तारं नंत विसेसं) तारोंके द्वारा बजनेवाले बाजोंके अनेक प्रकारके सुर तालादि होते हैं (फूक कम्मान भाव उववन्नं) इसीतरह बांसरी आदि फूकके बाजे भी होते हैं, ये सब बाजे रागादि भावकर्मको उत्पन्न करते हैं (सव्द सुहाव असुद्धं) सब ही शब्दोंका स्वभाव पौद्गलिक अशुद्ध है (अतिंदी भाव कम्म षिपनं च) जो शब्दोंसे रागभाव छोड़कर शब्द रहित आत्मामें उपयुक्त होता है उसीके कर्मकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—सर्व ही प्रकार बाजोंके शब्द रागभाव पैदा करनेमें हेतु हैं। शब्द आत्माका स्वभाव नहीं है, पुद्गलकी पर्याय है, भाषावर्गणाका परिणमन है। इनके भीतर आत्माका तत्व नहीं है। अतएव इन सर्व शब्दोंसे उपयोगको रोकर जो अतीन्द्रिय आत्मामें तन्मय होता है उसीके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

श्री पंचास्तिकायमें शब्दका स्वभाव कहा है—

सद्दो खंधप्पभवो खधो परमाणुसंगसघादो। पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥ ७९ ॥

भावार्थ—शब्द स्कन्धोंसे पैदा होता है। स्कन्ध परमाणुओंके मिलनेसे बनता है। उन स्कन्धोंके परस्पर मिलनेसे शब्द पैदा होता है। कोई शब्द स्वाभाविक होते हैं। जैसे मेघोंका गर्जन। कोई शब्द प्रायोगिक होते हैं जैसे बाजोंके शब्द।

सब्दं असब्द दिट्ठी, सब्दं सुह असुह कम्म बंधानं।
संसार सरनि बूडं, अप्प सहावेन कम्म षिपिऊनं ॥ २७० ॥

अन्वयार्थ—(सब्द असब्द दिट्ठी) शब्द वे ही सफल हैं जिनकी दृष्टि शब्द रहित आत्माकी तरफ रहती है (सब्द सुह असुह कम्म बंधानं) शुभ भावोंसे कहे गये शब्द पुण्यकर्मको व अशुभ भावोंसे कहे गये शब्द पापकर्मोंको बांधते हैं (संसारसरनि बूडं) कर्मोंका बन्ध संसारमें डुबानेवाला है (अप्प सहावेन कम्म षिपिऊनं) केवल मात्र आत्माके स्वभावमें लीन होनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—जगतमें शब्दोंका व्यवहार दो प्रकारके भावोंसे किया जाता है। यदि दान, जप, तप, परोपकार, भगवत् स्तुति आदिमें शब्दोंका व्यवहार है तब तो पुण्य बन्ध होता है। यदि विषयोंमें लीनतारूप क्रोधादि कषायरूप, हिंसा, असत्य व चोरी व कुशीलमें व परिग्रहके संचयमें प्रेरणारूप तथा परके अपकाररूप, हास्यरूप, निन्दारूप, ईर्षारूप, हास्य कौतूहलरूप, कामोत्तेजकरूप शब्दोंका व्यवहार होता है तब पापकर्मका बन्ध होता है। शुभ भावनायुक्त शब्द पुण्य व अशुभ भावनायुक्त शब्द पापबन्ध करते हैं। कर्मोंका बन्ध संसारमें भ्रमण करानेवाला है। जिन शब्दोंका लक्ष्य अध्यात्म चर्चा है, जो शब्द अशब्दपर लक्ष्य दिलाते हैं, वे शब्द सर्व शब्दोंसे उत्तम हैं। यद्यपि उनसे भी पुण्य बन्ध होता है तथापि वे शब्द रहित आत्मापर लेजानेवाले होते हैं। ॐ ह्रीं अर्हं आदि शब्दोंके मनन करनेसे धीरे २ उपयोग आत्मस्थ होजाता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है।

सब्दं च सुहं दिट्ठं, पुन्य सहकार कम्म उपपत्ती।
पुन्य पाव उववन्नं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७१ ॥

अन्वयार्थ—(सव्दं च सुहं दिट्ठं जहां शुभ शब्द देखे जाते हैं वहां (पुन्य सहकार कम्म उपपत्ति) पुण्य-कर्मोंका बन्ध होता है (पुन्य पाप उववन्नं) यद्यपि शुभ शब्द पुण्यबन्ध करते हैं तथापि अशुभ शब्दोंसे पापका ही बन्ध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) जब उपयोग ज्ञान स्वभावमें लीन होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—ज्ञानी जीव मौन रहकर अशब्द आत्माके स्वभावमें लय होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है। जहांतक स्वानुभव नहीं है और अन्तर्जल्प अर्थात् भीतरमें मन्द मन्द शब्द उचारण है या बहिर्जल्प अर्थात् प्रगटरूप शब्दोंका कहना है वहांतक अवश्य पुण्यकर्मोंका बन्ध है। इसलिये शब्दातीत-भावमें रमनेका ही पुरुषार्थ करना योग्य है।

सव्दं पर आनन्दं, सव्दं पज्जाय भाव उवलष्यं।
सव्दं कम्मनुमोयं, अप्प सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७२ ॥

अन्वयार्थ—(सव्द पर आनन्दं) शब्दोंसे दूसरोंको आनन्दित किया जाता है (सव्दं पज्जाय भाव उवलष्य) शब्दोंका लक्ष्य शरीरकी अवस्थाकी तरफ रहता है (सव्दं कम्मनुमोयं) शब्द अच्छे बुरे कामोंकी अनुमोदना किया करते हैं (अप्प सहावेन कम्म विरयंति) इन सब शब्दोंको छोड़कर आत्म स्वभावमें रमण करनेसे ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—शब्दोंका प्रयोग नाना प्रकारसे होता है। बहुतसे शब्द इसी अभिप्रायसे कहे जाते हैं कि दूसरे लोग प्रसन्न रहें। कोई शब्द अपने शरीर सुख व परके शरीरके सुखोंका ही वर्णन करते हैं, कोई शब्द किन्हींके किये गए अच्छे बुरे कामोंकी अनुमोदना रूप होते हैं। इन शब्दोंमें शुभ अशुभ अभि-प्रायके अनुसार पुण्य पापका बन्ध होता है। ज्ञानी कर्मोंकी निर्जराके लिये शब्दोंका व्यवहार छोड़कर जब शब्द रहित आत्मामें लीन होता है तब ही कर्मकी निर्जरा होती है।

असव्दं सव्द उत्तं, असव्द कोह लोह संयुत्तं।
असव्द अनर्थ रूवं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७३ ॥

अन्वयार्थ—(असब्दं सब्द उत्त) अशब्द सहित शब्द वे कहे गए हैं जहां (असब्द कोह लोह सयुत्तं) अन्तरङ्ग क्रोध व लोभ सहित शब्द हों (असब्द अनर्थ रूप) ये शब्द रहित क्रोध लोभ भाव स्वपरको अनर्थकारी है (ज्ञान सहावेन कम्म विपयति , जहां इन भावोंको छोड़कर ज्ञान स्वभावमें रमण होता है वहीं कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—अन्तरंग भावको अशब्द कहते हैं। यदि अन्तरंग भावोंमें क्रोध है तथा लोभ है तौ उन भावोंसे मिश्रित ही शब्द निकलेंगे। चाहे वे ऊपरसे कितने ही सुन्दर हों। ऐसे शब्द भी शब्द प्रयोग करनेवालेको पाप बन्धकारी हैं तथा ऐसे शब्दोंसे परस्पर लड़ाई झगड़े युद्ध होजाते हैं। लोभके वशीभूत हो प्राणी परको ठगनेरूप मिथ्या शब्द कहता है। नानाप्रकार मीठी बातोंको कहकर विश्वास दिलाता है और अपना स्वार्थ साधता है। क्रोधके वशीभूत हो मर्मछेदी निन्दक अपमानवर्द्धक वचन कहता है, जिससे लड़ाई झगड़ा होजाता है, मारपीट होजाती है। अतएव बुद्धिमानको उचित है कि क्रोध व लोभके वशीभूत हो अनर्थकारी शब्दोंको न कहे। तथा कर्मकी निर्जराके लिये तो शब्द रहित हो केवल एक निज आत्मामें ही रमण करे।

असब्द अज्ञान सुभावं, असब्द कम्मान तिविह बंधानं।
असब्द असुद्ध रूवं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयन्ति ॥ २७४ ॥

अन्वयार्थ—(असब्द अज्ञान सुभावं) अशब्द क्रोधादि भाव अज्ञान स्वरूप है। (असब्द कम्मान तिविह बन्धान) इन भावोंसे कर्मोंका बन्ध तीन प्रकार रूप होता है (असब्द असुद्ध रूव) ये अशब्द भाव अशुद्ध भाव है। (ज्ञान सहावेन कम्म विपयति) जब इन कषाय भावोंको त्यागकर ज्ञान स्वभावमें रत हुवा जायगा तब कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—क्रोधादि कषाय भीतरमें उठते हैं जहां शब्द नहीं है। ये आत्माके पर निमित्तसे हुए औपाधिक अशुद्ध भाव हैं। इन भावोंके फलसे सात प्रकार व कभी आठ प्रकार कर्म बंधते हैं। उनही कर्मोंके उदयसे फिर रागादि भाव कर्म होते हैं व शरीरादि नोकर्म प्राप्त होते हैं। इसलिये कहा गया है कि इन भावोंसे तीन प्रकार कर्म बंधते हैं। कषाय रहित शुद्ध आत्माकी परिणतिके पाए विना कर्मकी निर्जरा न

होगी। कोई शब्द न बोले, मौन रहे, परंतु अन्तरंगमें क्रोध, लोभ आदि न छोडे तो उसको आत्माकी वीतराग परिणतिका लाभ न होगा, जिससे कर्मकी निर्जरा होती है।

रसना इंद्रिय दोष कथन।

जिह्वा स्वाद अनंतं, जिह्वा विचलंति स्वाद सहियानं।
स्वादं अनंत भावं, अप्प सहावेन कम्म विरयति ॥ २७५ ॥

अन्वयार्थ—(जिह्वा स्वाद अनंतं) जिह्वा अर्थात् रसना इंद्रिय अनन्त प्रकारके स्वादको ग्रहण करती है (स्वाद सहियानं जिह्वा विचलति) स्वादको ले करके रसना इंद्रिय चंचल होजाती है, तृष्णावान होजाती है (स्वाद अनन्त भावं) अनन्त प्रकारके स्वादको चाहती है (अप्प सहावेन कम्म विरयति) जो इस स्वादके रागको छोड़कर आत्माके स्वभावमें रमण करेंगे उनहींके कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—अब जिह्वा इंद्रियके जीतनेकी भावना भाई जाती है। जिह्वा इन्द्रिय खट्टे, मीठे, चरपड़े, तीखे, कसायले आदि स्वादकी लोलुपी रहती है। दूध, घी, दही, मीठा, लवण, तेल इन छ रसोंके बने हुए अनेक प्रकार व्यंजनोंको चाखना चाहती है, अनेक प्रकार फलोंका स्वाद चाहती है। जितने २ इस जिह्वाको इच्छानुकूल रसीले भोग्य पदार्थ मिलते जाते हैं उतनी २ इसकी स्वादकी तृष्णा वढती जाती है—अनगिनती पदार्थोंके स्वाद लेनेकी, देश विदेशके पदार्थोंको खानेकी भावना होजाती है। इस रसना—इन्द्रियकी लोलुपताको जो जीतकर आत्म—रसका रसिक हो आत्मामें रत होगा उसीके ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

जिह्वा स्वाद सुभावं, स्वाद सुभाव कम्म उववन्नं।
कम्मान बन्ध बन्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७६ ॥

अन्वयार्थ—(जिह्वा स्वाद सुभाव) जिह्वाके स्वादका स्वभाव ऐसा है (स्वाद सुभाव कम्म उववन्न) कि उस स्वादमें रंजायमान होनेसे रागरूपी भाव कर्म पैदा होजाता है (कम्मान बन्ध बन्ध) उस रागभावसे कर्मोंका

बन्ध होता रहता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) जो रसना इन्द्रियको जीतकर ज्ञान स्वभावमें रत होगा उसीके ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—वीतरागी साधु रसना इंद्रियके विजयी होते हैं। वे सरस नीरस आहारको विना रागद्वेषके संयमके पालनेके लिये शरीरके रक्षार्थ लेते हैं। उनके तो वह भोजन रागभाव उत्पन्न नहीं करता है, परंतु जो रागी, मोही, विषयासक्त हैं, वे निरन्तर रसीले पदार्थकी चाहमें रहते हैं। उनको रसयुक्त पदार्थोंके मिलनेपर अवश्य रागभाव पैदा होजाता है। तथा भावीके लिये भी अधिक तृष्णावान होजाते हैं। इन भावोंसे उनको कर्मका तीव्र बन्ध होता रहता है। जो कोई इस रसना इन्द्रियको जीतकर आत्माके स्वभावमें रमण करते हैं उनहीके कर्म क्षय होते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय दोष कथन।

सरीर सुभाव उववन्नं, अवंभ भावेन कम्म बन्धान।
दोसं अनन्त दिट्ठं, अतिंदी सहाव कम्म विरयंति ॥ २७७ ॥

अन्वयार्थ—(शरीर सुभाव उववन्न) स्पर्शेन्द्रिय सम्बन्ध स्वभाव जब उत्पन्न होता है (अवम भावेन कम्म बंधान) तब अब्रह्म भावके होनेसे कर्मोंका बंध होता है (दोस अनत दिठ्ठ) इस कुशील भावसे अनंत दोष देखे जाते हैं (अतिंदी सहाव कम्म विरयति) जो स्पर्शेन्द्रियको जीत कर अतीन्द्रिय स्वभावमई आत्मामें रत होता है उसीके कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—अब स्पर्शेन्द्रिय विजयकी भावनाका विचार किया जाता है। जगतमें जिह्वा इंद्रिय व स्पर्शेन्द्रिय दो ही बड़ी प्रबल हैं। इनके आधीन होकर प्राणी बहुत अनर्थ करता है। स्पर्शेन्द्रियके विषयोंकी वांछासे काम भाव जागृत होता है, तब शुद्ध ब्रह्म भाव व शील भाव नष्ट होजाता है। अब्रह्मभावके होने पर उसकी पूर्तिके लिये अनगिनती दोष व भाव व अनर्थ होते हैं। जो तत्वज्ञानी इस कुशील भावसे बिलकुल विरक्त हो व ब्रह्मचर्य भावमें लीन हो शुद्ध भावसे आत्माका ध्यान करते हैं उनके कर्मका क्षय होता है।

एयं अनेय भावं, मन पज्जाय कम्म बंधानं।
मनविलयं ज्ञान सहावं, अप्प सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७८ ॥

अन्वयार्थ—(एयं अनेय भाव) एक मनके भीतर ऊपर कथित अनेक भाव होते हैं (मनपज्जाय कम्मबन्धान) मनके विचारोंके कारण कार्यको किये विना भी कर्मोका बंध हुआ करता है (मनविलय ज्ञान सहाव) जब मन विला जाता है—रुक जाता है तब आत्माका ज्ञान स्वभाव प्रकाशमान होता है (अप्प सहावेन कम्म विरयति) आत्मीक स्वभावमें रत होनेसे कर्मोका क्षय होता है।

भावार्थ—आत्मध्यानके लिये मनके रोकनेकी बडी जरूरत है। अतएव इंद्रियोंके विषयोंकी अपेक्षाको लेकर व शरीरमें व कुटुम्ब परिवारमें रागको लेकर व मान प्रतिष्ठाके भावको लेकर व क्रोधादि भावको लेकर मनमें अनेक प्रकारके कुभाव उत्पन्न होते हैं, जिन भावोंसे कर्मोका बंध होता है। मनका विषयोंमें रमना आत्मस्वरूपसे हटानेवाला है। योगसारमें श्री योगेन्द्रदेव कहते हैं—

जेहउ मणु विसयह रमइ तिम जे अप्प मुणेइ। जोइउ मुणइ रे जोइहु लहु णिव्वाण लहेइ ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जैसा मन विषयोंमें रमता है वैसा यदि यह आत्मामें लीन हो तो योगी कहते हैं हे योगी! शीघ्र ही निर्वाणका लाभ हो। जब मन विलीन होजाता है, आत्मध्यानमें गुप्त होजाता है तब ही आत्मानुभव जागृत होता है, जिससे कर्म क्षय होते हैं।

वचन गुण दोष कथन।

वयनं असुद्ध वयनं, असुद्ध आलाप कम्म बंधानं।
जन रंजन स सहावं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २७९ ॥

अन्वयार्थ—(वयन असुद्ध वयनं) वचनोंको लेकर अज्ञानी प्राणी बहुत अशुद्ध व असत्य वचन बोलता है (असुद्ध आलाप कम्म बंधानं) शास्त्रविरुद्ध असत्य वचन कहनेसे कर्मोका बन्ध होता है (जन रंजन स सहाव) प्राणियोंको नानाप्रकार वचनोंके विलाससे जगतके प्राणियोंको रंजायमान करनेका स्वभाव पड़ जाता है।

(ज्ञान सहावेन कम्म विग्यति) जो वचनोंकी प्रवृत्तिको भी रोककर अपने ज्ञानमई स्वभावमें लय होते हैं उन-हीके कर्मकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—कर्मोंके क्षयके लिये मन वचन कायकी क्रियाको रोकनेकी जरूरत है। मनको रोकनेकी आवश्यक्ता बताकर स्वामी अब वचनकी प्रवृत्तिको रोकनेका उपदेश करते हैं। वचनोंकी असत्य व निरर्थक प्रवृत्तिसे बहुत कर्मका बन्ध होता है। बहुतसे प्राणी शास्त्रविरुद्ध वचन कहते हैं, बहुतसे स्वार्थसाधक असत्य वचन कहते हैं, बहुतसे वृथा बहुत बकबक करके हास्य कौतूहल सहित लोगोंको खुशी करते हैं। इत्यादि वचनके व्यवहारसे कर्मका बन्ध होता है। आत्मामें लवलीन होनेके लिये इस वचनकी प्रवृत्तिको रोकना होगा तब ही कर्मोंका क्षय होगा। ज्ञानार्णवमें कहा है—

मर्मच्छेदि मनः शल्य च्युतस्थैर्यविरोधकम्। निर्दय न वचस्त्याज्य प्राणै कंठगतैरपि ॥ १३-९ ॥

भावार्थ—मर्मका छेदनेवाला, मनमें शल्य उपजानेवाला, चित्तमें आकुलता पैदा करनेवाला, विरोध उपजानेवाला, तथा हिंसाकारी निर्दय वचन कंठगत प्राण होनेपर भी नहीं बोलना चाहिये।

असद्वदनवल्मीके विशाला विषसर्पिणी। उद्वेजयति वागेव जगदन्तर्विषोल्वणा ॥ १०-९ ॥

भावार्थ—दुष्ट पुरुषोंके मुखरूपी बांबीमें अन्तरंगमें विषसे उत्कृष्ट ऐसी विस्तीर्ण विषवाली जो असत्य वाणीरूपी सर्पिणी रहती है वही जगतभरको दुःख देती है।

वयनं असुद्ध वयनं, पज्जायं रंजेइ वयन सहकारं।
जन रंजन मूढ सहावं, ज्ञान सहावेन वयन तिक्कंती ॥ २८० ॥

अन्वयार्थ—(वयनं असुद्ध वयनं) वचनोंमें अशुद्ध वचन वह है जो (पज्जायं रंजेइ वयन सहकारं) वचनोंकी सहायतासे शरीरके सुखमें रंजायमान होता है (जन रंजन मूढ सहावं) मूर्ख लोगोंका स्वभाव पड़ जाता है कि वे लोगोंका चित्त वचनोंसे प्रसन्न किया करते हैं। (ज्ञान सहावेन वयन तिक्कंती) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे वचनोंकी प्रवृत्ति स्वयं छूट जाती है।

भावार्थ—शरीरमें रागी मानव अपने वचनोंसे अपनी प्रशंसा व अपने सुखोंका भोग वर्णन किया करते हैं, विषयोंकी कथाएँ करते हैं। चार आदमियोंमें बैठकर मानवोंके मनोंको रंजायमान करना मूर्खोंका स्वभाव पड़ जाता है। इसतरह वचनोंकी वृथा प्रवृत्तिसे अज्ञानी कर्म बांधते हैं। आत्माके

अनुभवमें तब ही लीन हुआ जायगा जब वचनोंका व्यवहार बन्द होगा। अथवा आत्मामें लीन होनेसे स्वयं वचन व्यवहार नहीं रहता है।

अज्ञान सुभाव सुभावं, आलापं देह कम्म उववन्नं।
अज्ञानं सहकारं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८१ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान सुभाव सुभावं) अज्ञानीके स्वभावका ऐसा स्वरूप है कि वह (आलापं देइ) नाना प्रकार चर्चा व बकवाद किया करता है (अज्ञान सहकारं कम्म उववन्नं) इस अज्ञानके कारण वह आलपी कर्मोंको बांधता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—मिथ्याज्ञानी तत्वचर्चा करनेसे व जिनवाणीके पढ़ने सुननेसे उदास होकर संसार सम्बंधी निन्दा प्रशंसाकी व विषयोंके सेवनकी वृथा बकवाद किया करता है। चार विकथाओंमें स्त्री, भोजन, देश व राजाओंकी कथाओंमें मग्न रहता है। दूसरोंकी हानिको कहते हुए प्रसन्न होता है। आपसे कुछ काम होगया हो तो अपनी बड़ाई करता है। इसतरह अज्ञानसे बहुत कर्मोंका बन्ध होता है। वचनोंको रोककर जब आत्मध्यान होता है तब ही कर्म क्षय होते हैं।

वयनं कम्म उववन्नं, अनंतविसेसेन नंतनंताइ।
गलियति पूरति उत्तं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८२ ॥

अन्वयार्थ—(गलियति पूरति उत्त) गलन पूरण स्वभाव पुद्गलमई यह शरीर कहा गया है (अनंत विसेसेन नंतनताइ वयनं कम्म उववन्नं) इस शरीर सम्बन्धी अनन्त प्रकारके भेदोंको लेकर अनेक प्रकार वचनोंको कहनेसे कर्मोंका बंध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ज्ञान स्वभावमें लय होनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—शरीरमें नये पुद्गल मिलते हैं, पुराने झड़ते हैं, इसलिये गलन पूरण स्वभाव यह शरीर है। शरीर सम्बन्धी दिन रातकी ही चर्चाको किया जावे तो बहुत बड़ी कहानी होजायगी। जो भूत भविष्यत् वर्तमान तीन काल सम्बन्धी शरीरकी चर्चाको एकत्र किया जावे तो बड़ा लम्बा चौड़ा विस्तार होजायगा। इन वचनविलासोंसे महान कर्मका बन्ध होता है। ज्ञानी जीव इनसे उदास होकर जब निजात्मामें रमण करता है तब ही कर्मोंका क्षय होता है।

वयनं सहाव उत्तं, नंत विसेसेन पज्जाय संयुत्तं।
वयनं विरयंति सुद्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८३ ॥

अन्वयार्थ— वयन सहाय उत्त) वचनोंका स्वभाव कहा गया है (नन विसेसेन पज्जाय संयुत्त) शरीर पर्यायको लेकर वचनोंके अनन्त भेद होते हैं (वयन विरयति सुद्ध) जो सर्व वचनोंसे विरक्त होकर शुद्ध भावमें जमते हैं वे (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंकी निर्जरा करते है।

भावार्थ—मन विकल्पोंके साथ २ वचनके सर्व भेदोंको त्यागनेकी जरूरत है। शरीर सम्बन्धी वचन विलास, रागद्वेष, मोह उत्पादक होनेसे पापकर्ममें बंध करानेवाला है। यदि आत्मा सम्बन्धी व तत्व सम्बन्धी वचन प्रयोग किया जावे तो उससे पुण्यकर्मका वन्ध होता है। पुण्य पापकर्मके वन्धसे वचनेके लिये व कर्मोंके क्षयके लिये यह आवश्यक है कि वचनोंकी सव प्रवृत्ति रोक दी जावे। मौन सहित निज आत्माके शुद्ध स्वभावमें तन्मय हुआ जावे। आत्माकी निर्विकल्प समाधी ही वह अग्नि है जो कर्मोंको जलाती है और आत्माको शुद्ध सुवर्णके समान परमात्मा बनाती है।

कायकृत कर्म गुणदोष कथन।

कृतस्य कम्म उववन्नं, कृतस्य पुग्गल सहाव अनेयं च।
कृतस्य बंध सम्बन्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८४ ॥

अन्वयार्थ—(कृतस्य कम्म उववन्न) काय द्वारा क्रिया करनेसे कर्मोंका वन्ध होता है (कृतस्य पुग्गल सहाव अनेयं च) शरीर पुद्गलके निमित्तसे अनेक प्रकार क्रियाएँ होती हैं (कृतस्य बंध सम्बन्धं) जहां कामोंके करनेकी आरंभ क्रिया है वहां वन्ध अवश्य है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) ज्ञान स्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—जैसे कर्मोंके क्षयके लिये मन द्वारा विकल्प व वचनोंका आलाप त्यागनेकी जरूरत है वैसे ही काय द्वारा क्रियाओंके भी त्यागनेकी जरूरत है। बहुधा लौकिक जन शरीरके सम्बन्धको लेकर द्रव्य

कमाना, तुलाना, वस्त्र पहनाना, खिलाना, पिलाना, सोना, कूदना, दौड़ना, चलना, कूटना, पीटना, पीसना, वर्तन बनाना, खेती करना, शस्त्र चलाना आदि अनेक क्रियाएँ करते हैं इनसे कर्मोंका बन्ध होता है। जो कर्मोंकी निर्जरा करना चाहे उसको इन सर्व क्रियाओंको छोड़कर आसन जमाकर निश्चल बैठकर काय द्वारा कर्मसे वैराग्यवान हो, आत्म-ध्यान करना चाहिये।

कृतस्य असुद्धं कम्म, गृह वालेन ग्रही कर्म कृतं च।
अबंभं अभावं च, ज्ञान सहावेन कम्मं विरयंति ॥ २८५ ॥

अन्वयार्थ—(कृतस्य असुद्धं कम्म) क्रिया द्वारा बहुतसे अशुद्ध कर्म किये जाते हैं (गृह वालेन ग्रही कर्म कृत च) अज्ञानी गृहस्थी द्वारा गृहस्थके अनेक कर्म किये जाते हैं (अबंभं अभावं च) जब इन गृह कर्मोंको और अब्रह्मका अभाव किया जायगा तब (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें रमनेसे कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—कायके वर्तनमें बहुतसे अशुद्ध कर्म होते हैं। गृहस्थी अज्ञानसे मूढ होकर व तन्मय होकर द्रव्य कमाना, पानी भरना, आटा पीसना, ऊखलीमें कूटना, बुहारना तथा रोटी बनाना इन छः कर्मोंको करता रहता है तथा स्त्रियोंके मोहसें रागी होकर ब्रह्मचर्यका घात करता है। जो कोई कर्मोंकी निर्जरा करना चाहे उसे बन्धकारक गृहस्थीके आरम्भोंको तथा कुशील भाव व कर्मको सर्वथा छोड़कर निर्ग्रन्थ होकर आत्मध्यानमें जमना होगा। सारसमुच्चयमें कामभावके जीतनेका उपदेश है—

दोषाणामाकरः कामो गुणानां च विनाशकृत्। पापस्य च निजो बन्धु परापदां चैव संगमः ॥ १०४ ॥
पिशाचेनैव कामेन छिद्रितं सकलं जगत। बभ्रमेति परायत्तं भवाब्धौ स निरन्तरम् ॥ १०५ ॥
वैराग्यभावनामन्त्रैस्तन्निवार्य महाबलं। स्वच्छन्दवृत्तयो धीराः सिद्धिसौख्यं प्रपेदिरे ॥ १०६ ॥

भावार्थ—यह काम दोषोंकी खान है, गुणोंको नाश करनेवाला है, पापका अपना बन्धु है, बड़ी २ आपत्तियोंको लानेवाला है। पिशाचके समान इस कामसे सर्व जगत पीड़ित है। तथा जगतके प्राणी इसीके आधीन हो निरन्तर संसार-सागरमें भ्रमते रहते हैं। इस कामके महान् बलको वैराग्य भावनारूपी मन्त्रोंसे दूर करके स्वच्छन्द वृत्तिधारी धीरवीर साधुजन मुक्तिके सुखको पाते भए।

नोकम्मं उववन्नं, भावं कम्मं च सयल असहावं ।
कम्मं कम्म कलंकं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८६ ॥

अन्वयार्थ—(नोकम्मं उववन्न) यह शरीर उत्पत्तिरूप है (भावं कम्मं च सयल असहावं) इसके निमित्तसे सर्व ही वैभाविक भाव कर्म होते हैं (कम्म कम्म कलंक) उन भावोंके अनुसार क्रिया करनेसे कर्मकलङ्कका लोप होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे ही कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—यह शरीर विनाशीक है, क्योंकि उत्पत्तिरूप है । इसके पालनेके लिये व इसके भीतर जो इंद्रियाँ होती हैं उनकी इच्छाकी पूर्तिके लिये नानाप्रकार रागभाव या विरोधकोंसे द्वेषभाव करने पड़ते हैं । उन भावोंके अनुसार नानाप्रकार हिंसा आदि आरंभ क्रियाएँ करनी पड़ती हैं जिनसे कर्मोंका बन्ध होता है । तत्वज्ञानी कायकी इन क्रियाओंको छोड़कर आत्माके स्वभावमें लीन होकर रत्नत्रयकी एकतासे कर्मोंकी निर्जरा करते हैं ।

पुन्य पाउ उववन्नं, हिंसानन्दी च दोष संयुत्तं ।
अनृत असत्य सहियं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयन्ति ॥ २८७ ॥

अन्वयार्थ—(पुन्य पाउ उववन्न) इस शरीरकी क्रियासे अभिप्रायके अनुसार पुण्य तथा पापका बन्ध होता है (हिंसानंदी च दोष संयुत्त) यदि परम द्वेषभाव सहित होकर हिंसामें आनन्द मानते हुए स्थावर व त्रसकी हिंसा की जाती है (अनृत असत्य सहिय) साथमें मिथ्यात्व भाव व अज्ञानभाव हो तो उससे पापकर्मका ही बन्ध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) जहां पुण्य व पापकर्म बन्धकारक सर्व कायकी क्रियाका त्याग होता है और ज्ञान स्वभावमें लीनता होती है वहीं कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—कायकी क्रिया यदि मन्द कषायसे शुभ भावनायुक्त होती है तब सातावेदनीय आदि पुण्य कर्मका बन्ध होता है । यदि तीव्र कषायसे अशुभ भावनायुक्त होती है तब असाता वेदनीय आदि पापकर्मका बन्ध होता है । महान् भारी पापकर्म बन्धकारक हिंसानन्दी भावसे हिंसा करता है, प्राणियोंको सताता है । ऐसी हिंसा वे ही लोग करते हैं जो मिथ्यादृष्टी व अज्ञानी हैं तथा इस क्षणिक असत्य संसारकी पर्यायोंके मोही हैं। वे स्वार्थवश किसीका जडमूलसे नाश करके भी आनन्द मानते हैं। आत्मध्यानीको सर्व कायकी क्रियाको त्यागकर साम्यभावमें लय होना होगा तब ही कर्मोंका क्षय होगा ।

अनृत नन्द आनन्दं, स्तेयं अबंभ नन्द सहकार ।
पुग्गल पज्जाय दिट्ठं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २८८ ॥

अन्वयार्थ—(अनृत नन्द आनन्दं) मृषा बोलनेके आनन्दमें मग्न होकर (स्तेय अबंभ नन्द सहकार) या चोरी करने व कुशील सेवनेके आनन्दमें भरकर (पुग्गल पज्जाय दिट्ठं) शरीरकी पुद्गल पर्यायकी तरफ दृष्टि रखकर बहुतसी खोटी क्रियाएँ की जाती हैं उनसे पापकर्मका बन्ध होता है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) जो सर्व कायकी क्रियाको त्यागकर ज्ञान स्वभावमें लय होते हैं वे कर्मोंसे छूटते हैं ।

भावार्थ—अज्ञानी मिथ्यादृष्टी जीव शरीरका मोही जैसी निर्दयतासे हिंसा करता है वैसी निर्दयतासे झूठ बोलकर विश्वासघात करता है, चोरी करता है व अब्रह्मका सेवन करता है। इन पापोंको सेवनकर बहुत राजी होता है। इससे वह घोर पापकर्म बांधता है। आत्माके ध्यानके लिये तो सर्व कायकी क्रियाएँ छोड़नी ही होंगी तब ही कर्मोंकी निर्जरा होसकेगी।

विषय सहाव स उत्तं, व्रत तप किरियं च कस्ट अनेयं ।
अज्ञाने पेच्छंतो, ज्ञान बलेन कम्म विरयंति ॥ २८९ ॥

अन्वयार्थ—(विषय सहाव स उत्त) पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी वांछा करके जो विभाव कहा गया है उसके वश होकर (व्रत तप किरियं च कस्ट अनेयं) अज्ञानी व्रत करता है, तप साधता है, क्रियाकांड करता है तथा बहुत कष्ट उठाता है (अज्ञाने पेच्छंतो) उसकी इन क्रियाओंको करते हुए दृष्टि मिथ्याज्ञानकी तरफ है (ज्ञान बलेन कम्म विरयंति) इन सबको छोड़कर जो ज्ञानस्वभावी आत्मामें लय होंगे उन्हींके कर्मोंकी निर्जरा होगी।

भावार्थ—कर्मोंका क्षय मिथ्यात्व सहित व्रत, तप व क्रियासे कभी नहीं होगा । जहां भविष्यमें इंद्रियोंके सुखोंकी भावना है वहां सर्व कुछ जप तप बन्ध ही कारण हैं। जो कोई सम्यग्दृष्टी व्रत, तप, क्रियाको करते हुए आत्मध्यानमें ऐसा लय होगा जहां क्रियाओंका, व्रतोंका व तपका कोई विकल्प नहीं है। तब ही उसके कर्मोंकी निर्जरा होगी। समयसार कलशमें कहा है—

क्लिश्यन्तां स्वयमेव दुष्करतरैर्मोक्षोन्मुखैः कर्मभिः । क्लिश्यन्तां च परे महाव्रततपोभारेण भग्नाश्चिरं ॥
साक्षान्मोक्ष इदं निरामयपदं संवेद्यमानं स्वयं । ज्ञानं ज्ञानगुणं विना कथमपि प्राप्तुं क्षमन्ते न हि ॥१०-७॥

भावार्थ—मोक्षमार्गसे विरुद्ध महान कठिन तपादि कर्म करके कोई अपनेको क्लेश दे तो दे। अथवा दूसरे कोई मोक्षमार्गके अनुकूल अहिंसादि पांच महाव्रत व अनशनादि बारह प्रकार तपके भारको ढोकर चिरकाल कष्ट उठावें तो उठावें परन्तु जो मोक्ष साक्षात् एक निराकुल अविनाशी स्वानुभवगम्य ज्ञानमय एक पद है सो आत्मज्ञान गुणके विना कोई किसी भी तरह प्राप्त नहीं कर सक्ता।

पुग्गल सहाव उत्तं, पज्जय अनिस्ट इस्ट सद्‌भावं।
अज्ञानं कम्म परं, ज्ञान बलेन कम्म विरयंति ॥ २९० ॥

अन्वयार्थ—(पुग्गल सहाव उत्तं) पुद्गलकी लीनताका ऐसा स्वभाव कहा गया है कि (पज्जय अनिस्ट इस्ट सद्भावं अज्ञान कम्म पर) शरीररूपी पर्यायका बुरा भला विचार कर अज्ञानी कर्म करता रहता है (ज्ञान बलेन कम्म विरयंति) जो पुद्गलसे वैरागी होकर आत्मज्ञानके बलको प्रगट करेगा उसीके कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—शरीरका मोही जीव रात दिन यही विचार करता है कि शरीरका भला जिनसे हो उन कामोंको करूं व बुरा जिनसे हो उन कामोंको न करूं। इसलिये वह शरीरको सुखदाई विषय भोगके कर्म तो करता है व दुखदाई तपादि कर्म नहीं करता है। यदि शरीरके सुखका लोभ मिलता है तो कदाचित् व्रत व तप भी आचरण करता है। इन सब कर्मोंसे कर्मका ही बंध होता है। कम छेदके लिये तो सर्व कायकी क्रियाको छोड़कर स्वयं आत्मस्थ होना होगा।

कम्मं कम्म विसेसं, भाव कुभाव कम्म उपपत्ति।
संसार कम्म विरयं, पुन्नं कम्मं च भाव सुह उत्तं ॥ २९१ ॥

अन्वयार्थ—(कम्मं कम्म विसेस) कर्मोंमें कर्मके भेद भी हैं (भाव कुभाव कम्म उपपत्ति) शुभ भावोंसे पाप-कर्मका बन्ध होता है (ससार कम्म विरय पुन्नं कम्मं च सुह भाव उत्त) जो कोई सांसारिक कर्मोंसे विरक्त होकर पुण्यकर्म करता है वह पुण्यकर्म शुभोपयोग सहित कहा गया है।

भावार्थ—सामान्यसे मन्द कषायरूप भावोंको शुभ भाव व तीव्र कषायरूप भावोंको अशुभ भाव कहते हैं। इनसे क्रमसे पुण्यकर्म व पापकर्मका बन्ध होता है, परन्तु मोक्षमार्गमें मिथ्यादृष्टी अज्ञानीका किया हुआ पुण्यकर्म भी शुभोपयोग सहित नहीं कहा जाता है क्योंकि उसकी भावना संसारके विषयोंकी प्राप्ति है।

जो संसारसे विरक्त है और मोक्षका परम रुचिवान है वह जब शुद्धोपयोगके साधक मन्द कपायरूप पूजा दान जप तप श्रावक व मुनिके व्रतोंको पालता है तब ही उसके शुभोपयोग कहा जाता है। धर्मध्यान शुभोपयोगमें होता है सो धर्मध्यान सम्यग्दृष्टीके ही संभव है। मिथ्यादृष्टी कितना भी तप व्रत पाले वह आर्त व रौद्रध्यान ही कहलायगा। श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें कहा है–'परे मोक्षहेतू' अर्थात् धर्मध्यान व शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं। मोक्षमार्ग सम्यग्दृष्टीको ही प्राप्त होता है।

श्री प्रवचनसारके ज्ञेयतत्व अधिकारमें शुभोपयोगका स्वरूप कहा है—

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे। जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥ ६५–२ ॥

भावार्थ—जो श्री जिनेन्द्रदेव अरहन्तको पहचानता है, सिद्धोंके स्वरूपका तथा निर्ग्रन्थ साधुओंका सच्चा स्वरूप श्रद्धानमें रखता है तथा जो जीवोंपर दया भावका धारी है उसीके शुभोपयोग होता है। इससे सिद्ध है कि सम्यग्दृष्टीके ही शुभोपयोग होता है। जिससे मोक्षमार्गमें अबाधक पुण्य कर्मका बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टीके संसारवर्द्धक पुण्यकर्मका बन्ध मन्द कषायसे होता है। वह मन्द कपायरूप भाव संसारवर्द्धक है, इससे उसको अशुभोपयोग कहा गया है, शुभोपयोग नहीं।

एकम्म कम्म जाने, जीव विरोह जीव घातं च।
सरनं कम्म विरोधं, नंदं कम्मं च घाइ संयुत्तं ॥ २९२ ॥

अन्वयार्थ—(एकम्म कम्म जाने) इन कर्मोंमें जो बन्ध होते है उन कर्मोंको विशेष जानो, जो (जीव विरोह जीव घातं च) जीवके स्वभावके विराधक हैं व जीवके घातक हैं (विरोध कम्म सरन) यह विरोधी कर्म ही संसारमें भ्रमण करानेवाले हैं (नंद कम्म च घाइ सयुत्तं) क्रिया करनेमें आनन्द माननेसे ही घातीयकर्मोंका बंध होता है।

भावार्थ—कर्म आठ हैं–चार घातीय, चार अघातीय। चार घातीय कर्म ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय जीवके ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त, चारित्र तथा वीर्य स्वभावके घातक हैं। इन हीसे जीवका महान बुरा होता है। ये ही कर्म रागद्वेप मोह भावोंको उत्पन्न करते हैं जो संसार भ्रमणके मूल कारण हैं। जब शुभ व अशुभ क्रिया करनेमें प्रसन्नता होती है तब इन कर्मोंका बंध अवश्य होता है

जहां कषायका उदय बिलकुल नहीं होता है वहां किसी क्रियामें किंचित् भी राग नहीं होता है, वहां इन चारोंका बन्ध नहीं होता है। ग्यारहवें, बारहवें व तेरहवें गुणस्थानोंमें योग सम्बन्धी क्रिया है परन्तु कषायका उदय नहीं है इसलिये मात्र सातावेदनीयका ही बन्ध होता है। इस कारण यहांपर कहा गया है कि इस घातीयकर्मोंके क्षयके लिये राग भाव सहित सर्व मन वचन कायकी क्रियाको छोड़कर आत्मस्थ रहना योग्य है, जिससे कर्मोंकी निर्जरा होजावे।

कम्मं सहाव उत्तं, कृत विरयं च कारितं विरियं।
अनुमय विरयति सुद्धं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति ॥ २१३ ॥

अन्वयार्थ—(कम्मं सहाव उत्त) मन वचन कायकी क्रियाका स्वभाव ऊपर कहा गया। (कृत विरयं च कारितं विरिय) ज्ञानीको स्वयं मन वचन कायकी क्रियासे विरक्त होना चाहिये तथा मन वचन कायसे क्रिया करानेसे भी विरक्त रहना चाहिये (अनुमय विरयति सुद्ध) तथा मन वचन कायसे किसीके कामकी अनुमोदनासे भी विरक्त होना चाहिये। मात्र शुद्ध भाव रखना चाहिये (ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति) ज्ञान स्वभावमें ही रत होनेसे ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—कर्मोंकी निर्जराका उपाय निश्चिन्त होकर आत्माके स्वभावमें रत होना है। जब मन वचन काय कृतकारित अनुमोदनासे नौ प्रकार सर्व प्रवृत्तिके विचारको छोड़ा जायगा तब ही मन वचन कायके प्रपंचोंसे भिन्न होकर वीतरागभावके साथ आत्मध्यान होसकेगा, तब ही कर्मकी निर्जरा होगी।

समयसार कलशमें कहा है—

कृतकारितानुमननैस्त्रिकालविषय मनोवचनकायैः। परिहृत्य कर्म सर्वं परमं नैष्कर्म्यमवलम्बे ॥ ३२–१० ॥

भावार्थ—ध्यानी विचारता है कि मैं मन वचन काय कृतकारित अनुमोदनासे भूत भविष्य वर्तमान तीन काल सम्बन्धी सर्व कर्मोंको छोड़कर परम निष्कर्म या क्रियारहित भावको या शुद्ध वीतराग भावको अवलम्बन करता हूं। वास्तवमें श्री तारणतरण स्वामीने बहुत विस्तारके साथ मन वचन कायकी क्रियाका त्याग बताया है जो मनन करने योग्य है।

उत्पति षिपति स कम्मं, ज्ञान सहावेन विरय कम्मानं।
ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं, चेतन आनन्द कम्म विरयंति ॥ २१४ ॥

अन्वयार्थ—(उत्पति षिपति स कम्मं) यह कर्म ही बन्धता है तथा झड़ता है, रागद्वेष मोहसे उनका बंध होता है और (ज्ञान सहावेन कम्मान विरय) वीतराग विज्ञानमई स्वभावसे कर्मोंका क्षय होता है (ज्ञानेन ज्ञान सुद्धं) ज्ञान चेतनाके अनुभवसे ही या आत्मज्ञानमें मगन होनेसे ही ज्ञान शुद्ध होता है या केवलज्ञान पैदा होता है (चेतन आनन्द कम्म विरयंति) कर्मोंका क्षय दुःखित भावसे नहीं होता है। किन्तु जब चेतन स्वभावमें आनन्दका अनुभव होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव तो निश्चल व अखण्ड है। कर्म वर्गणाएँ जब आत्माके प्रदेशोंमें एक क्षेत्रावगाहरूप ठहरती हैं तब कर्मोंकी उत्पत्ति कही जाती है और जब वे प्रदेशोंमेंसे चली जाती हैं, बंधावस्था त्याग देती हैं तब कर्मोंका क्षय कहलाता है। जबतक वीतराग ज्ञानानन्दमई स्वभावमें लयता न होगी व अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद न आयगा तबतक कर्मोंका क्षय न होगा। आर्तध्यान व रौद्रध्यानसे व भक्तिभावसे तो कर्मोंका बन्ध होता है। जहां मात्र वीतराग शुद्धभाव है वहां ही कर्मोंका क्षय होता है। श्री समयसारजीमें कहा है—

रत्तो बन्धदि कम्म मुंचदि जीवो विरागसपत्तो। एसो जिणोवदेसो तह्मा कम्मेसु मा रज्ज ॥ १५० ॥

भावार्थ—रागी जीव कर्मोंको बांधता है। वीतरागी जीव कर्मोंसे छूटता है। यह श्री जिनेन्द्रका उपदेश है। इसलिये हे भव्यो! शुभ व अशुभ कर्मोंमें राग मत करो।

चिदानन्द स्वभाव कथन।

चिदानंद स सहावं, कम्मं न पिच्छेइ नंद सहकारं।
सुकिय सुभाव सुसमयं, ज्ञानानंदेन कम्म नहु पिच्छं ॥ २९५ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद स सहाव) आत्माका अपना स्वभाव चैतन्यमय तथा आनन्दमय है (नंद सहकारं कम्मं न पिच्छेइ) वह आनन्दके भीतर मगनताके कारण मन वचन कायकी क्रियापर लक्ष्य नहीं रखता है (सुकिय सुभाव सुसमय) आत्माका अपने स्वभावरूप रहना ही स्वसमय है (ज्ञानानदेन कम्म नहु पिच्छं) ज्ञानानंदमें मगन होनेसे कर्मोंका बन्ध नहीं होता है।

भावार्थ—अब यहां यह बताते हैं कि आत्मानन्दमें मगन होना या स्वसमय रूप रहना ही कर्म-बन्धके अभावका कारण है। जिससमय आत्मा अपने दर्शन ज्ञान स्वभावमें सन्मुख होता है, उसका उपयोग मन वचन कायकी क्रियासे बिलकुल हट जाता है, तब ही सच्चा सुख वेदन होता है, यही संवर व निर्जराका कारण है। समय आत्माको कहते हैं उसके दो भेद हैं—स्वसमय तथा परसमय, उनका स्वरूप समयसारजीमें कहा है:—

जीवो चरित्तदसणणाणट्ठिउ तं हि ससमयं ज ण, पुग्गलकम्मपदेसट्ठियं च तं जाण परसमय ॥ २ ॥

भावार्थ—जब यह आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान व निश्चय सम्यग्चारित्रमें ठहरता है, आप आपरूप एकाग्र होता है तब इसको स्वसमय जानो। जब यह पुद्गल कर्मके उदयकी अवस्थामें ठहरता है तब इसको परसमय जानो। स्वसमय ही हितकारी है।

चिदानन्द चेतनयं, षिपनिक रूवेन कम्म संषिपनं।
कम्म सहाव न पिच्छं, चिदानन्द नंद स सरूवं ॥ २९६ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद चेतनयं) यह आत्मा चिदानंद चैतन्यमय है (षिपनिक रूवेन कम्म संषिपनं) जब यह द्रव्य व भाव रूपसे क्षपणक होता है तब कर्मोंका क्षय होता है (कम्म सहाव न पिच्छ) जहां कर्मोंके स्वभावपर दृष्टि नहीं रहती है (चिदानंद नंद स सरूवं) जहां आत्मा अपने ही चिदानन्द स्वभावमें मगन होता है।

भावार्थ—कर्मोंके क्षयका उपाय वीतरागभाव है। यथार्थ शुद्धोपयोगरूप वीतराग निर्विकल्प भाव जो अधिक कालतक ठहर सके क्षपणक रूपमें होता है। बाहरसे परिग्रहका त्यागकर निर्ग्रंथ दिगम्बर भेष हो—अन्तरंगमें कषायोंको व इंद्रियोंको विजय करनेसे परम समताभाव व वीतरागभाव हो, ऐसे भावके धारी मन वचन कायकी क्रियासे व कर्मोंके उदयसे या कर्मचेतनासे या कर्मफलचेतनासे विरक्त होते हैं तब ही अपने ज्ञानानन्दमई स्वभावमें ठहरते हैं। और परमानन्दका स्वाद लेते हैं। रागद्वेष-पूर्वक काम करनेमें तन्मय होनेको कर्मचेतना कहते हैं। मैं सुखी, मैं दुःखी इस भावके अनुभवको कर्मफलचेतना कहते हैं।

चिदानन्द लष्य नयं, लष्यंतो ज्ञान ज्ञान विज्ञानं ।
अलषं लषंतु रूवं, लष्यन्तो कम्म नहु पिच्छं ॥ २९७ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द लष्य नयं) आत्माका लक्षण चिदानन्द है (लष्यन्तो ज्ञान ज्ञान विज्ञानं) इस लक्षणकी पहचानसे ही आत्माका ज्ञान होता है, आत्माका ध्यान होता है तथा भेदविज्ञान होता है (अलषं रूवं लखतु) हे भव्यजीव ! मन, वचन, कायसे न लखने योग्य आत्माको पहचानो, उसका अनुभव करो (लष्यंतो कम्म नहु पिच्छ) अनुभव करते हुए कर्मोंका वन्ध नहीं होगा ।

भावार्थ—आत्माका असाधारण गुण चिदानन्द है जो सिवाय आत्माके और किसी पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल व आकाश द्रव्यमें नहीं पाया जाता है। इस लक्षणसे लक्ष्यरूप आत्माका ज्ञान करके उसको परद्रव्य, परगुण, पर पर्याय, विभाव भावादिसे भिन्न जानना चाहिये तथा इसी लक्षणको लेकर उसका ध्यान करना चाहिये। यह आत्मा मनसे विचारा जाता है, परन्तु उसका अनुभव या उसमें तल्लीनता तब ही होती है जब मनका विचार भी वन्द होजाता है, वचन व काय तो थिर होना ही चाहिये । जहां आत्मानुभव है वहीं संवर पूर्वक निर्जरा है ।

चैतन्यभावसे ही आत्मा ग्रहण किया जाता है ऐसा ही समयसारकलशमें कहा है—

वर्णाद्यैः सहितस्तथा विरहितो द्वेधास्त्यजीवो यतो, नामूर्तत्वमुपास्य पश्यति जगज्जीवस्य तत्वं ततः ।
इत्यालोच्य विवेचकैः समुचित नाव्याप्यतिव्यापि वा, व्यक्तं व्यंजितजीवतत्वमचलं चैतन्यमालम्ब्यता ॥ १०–२ ॥

भावार्थ—अजीव द्रव्य वर्णादि सहित मूर्तीक भी हैं व वर्णादि रहित अमूर्तीक भी है इसलिये अमूर्तीकपनेके लक्षण द्वारा देखनेसे जगतको जीव तत्व नहीं दिख सक्ता है, इसमें अति दूषण आता है। यदि रागादि भावलक्षण करें तो अव्याप्ति दोष आता है इसलिये भेदविज्ञानियों द्वारा भलेप्रकार निर्णीत एक निश्चल चैतन्य लक्षण ही ठीक है। इसीसे जीवतत्वका ग्रहण होता है। जो गुण एक द्रव्यमें व दूसरेमें भी पाया जावे उसमें अतिव्याप्ति दोष है, जो गुण एक उस द्रव्यकी सर्व जातिमें न पाया जावे उसको अव्याप्ति दोष कहते हैं । अमूर्तीकपना जीवमें भी है, आकाशादिमें भी हैं, रागादिभाव किन्हीं जीवोंमें है, किन्हींमें नहीं है ।

चिदानन्द चिंतवनं, चिन्तंतो ज्ञान विमल सद्भावं ।
मल सुभाव न दिट्ठं, चेतन आनन्द कम्म संषिपनं ॥ २९८ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद चितवन) चिदानन्द स्वभावका चितवन करना चाहिये (चिततो ज्ञान विमल सद्भाव) ऐसा विचारनेसे ज्ञान निर्मल होजायगा (मल सुभाव न दिट्ठ) आत्माका मलीन स्वभाव रागादि रूप व संसारी पर्याय रूप न दिखलाई पडेगा (चेतन आनद कम्म सषिपनं) इसी चिदानन्द स्वभावमें रमण करनेसे कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—मैं चिदानन्द स्वभाव हूं ऐसी भावना वारवार करनेसे ज्ञानमेंसे राग दि मैल निकल जायगा तथा आत्मा वीतराग विज्ञान रूप ही झलकेगा, एकेन्द्रिय पर्याय रूप या क्रोधादि रूप नहीं दिखलाई पडेगा । द्रव्यकी दृष्टिसे देखते हुए पर्याय नहीं दीखेगी । इसतरह भावना करते २ जब इस चिदानंद स्वभावमें तल्लीनता होगी तब कर्मोंकी निर्जरा होगी ।

चिदानन्द संदिट्ठं, दंसन दंसेइ ज्ञान सहकारं ।
चरनं दुविह संयोगं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ २९९ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद सदिट्ठ) चिदानन्द स्वभावको भले प्रकार देखना चाहिये (दसन दसेइ ज्ञान सहकारं) मैं चिदानन्द स्वभाव हूं इस ज्ञानकी सहायतासे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब सम्यक्त भाव ऐसा ही श्रद्धान करता है । तब ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान होजाता है । सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानकी प्रगटता पर (चरन दुविह सयोग) व्यवहार तथा निश्चय चारित्रका संयोग मिलाना चाहिये । (ज्ञान सहावेन कम्म संषिपन) ज्ञान स्वभावमें जब एकता होगी तब ही कर्मोंकी अविपाक निर्जरा होगी ।

भावार्थ—कर्म अपना फल देकर तो सर्व प्राणियोंके झड़ते रहते हैं, इसको सविपाक निर्जरा कहते हैं परंतु प्रचुर कर्मोंका विना फल दिये हुए स्थिति व अनुभाग खण्डन होकर झड जाना सो अविपाक निर्जरा है । यह निर्जरा आत्मानुभवसे ही होती है । तत्वज्ञानी जीव मैं चिदानन्द स्वभाव हूं ऐसी भावना भाते भाते ही सम्यक्ती व सम्यग्ज्ञानी होता है । फिर रागद्वेषको हटानेके लिये शक्तिके अनुसार श्रावकके एक देश या मुनिके सर्व देश व्यवहार चारित्रके द्वारा आत्मानुभव रूप निश्चय चारित्रकी उन्नति करता है जितनी २ वीतरागता इस स्वानुभवकी वृद्धिसे होगी उतनी २ अधिक कर्मोंकी निर्जरा होगी ।

चिदानन्द सहकारं, ज्ञान विज्ञान सहाव संजुत्तं ।
अंकुर ज्ञान स्वभावं, नन्दं आनंद कम्म संषिपनं ॥ ३०० ॥

(चिदानंद सहकार) चिदानन्द लक्षणकी सहायतासे (ज्ञान विज्ञान सहाव संजुत्तं) ज्ञान या केवलज्ञान स्वभावधारी आत्मा है ऐसा विश्वास होता है (अंकुर ज्ञान स्वभाव) तब ही ज्ञान स्वभावमई अंकुर फूटता है (नन्द आनन्द कम्म संषिपनं) इसी ज्ञानांकुरमें आनन्दित होनेसे जो परम सुख होता है उसीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

भावार्थ—चिदानन्द लक्षणके आश्रय मनन करनेसे ज्ञान स्वभावी आत्माका निश्चय होकर मोक्ष प्राप्तिका कारण भाव भेदविज्ञान रूपी अंकुर प्रकाशित होता है। इसी अंकुरकी सहायतासे जब आत्माके स्वभावमें रमण किया जाता है तब परमानन्दका स्वाद आता है, तब ही कर्मोंका क्षय होता है। भेद विज्ञान ही सिद्ध होनेका उपाय है। समयसार कलशमें कहा है—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन । तस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ॥ ७-८ ॥

भावार्थ—जितने भी सिद्ध हुए हैं वे भेदविज्ञानसे हुए हैं। जितने संसारमें बद्ध हैं वे भेदविज्ञानकी अप्राप्तिसे बद्ध हैं।

चिदानंद संदिट्ठं, दिट्ठी दिट्ठे ज्ञान अनुमोयं ।
पज्जावं नहु पिच्छदि, दिट्ठी आनंद कम्म संषिपनं ॥ ३०१ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद संदिट्ठं) चिदानन्द स्वभावका अनुभव करना चाहिये (दिट्ठी दिट्ठे ज्ञान अनुमोयं) भेदविज्ञानकी दृष्टि आनन्दमय ज्ञानकी तरफ सन्मुख रहती है (पज्जावं नहु पिच्छदि) शरीरकी तरफ दृष्टि नहीं रखती है (दिट्ठी आनन्द कम्म सषिपनं) जब आनन्दमय दृष्टि होती है तब कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—शरीर व उसके सम्बन्धी सर्व चेतन व अचेतन पदार्थोंसे उपयोगको हटाकर एक ज्ञानानन्दमय आत्माकी तरफ लौ लगानेसे और अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

चिदानन्द सुभावं, अनुमोय देइ ज्ञान विज्ञानं ।
पज्जायं नहु पिच्छदि, सुकिय सुभाव कम्म षिपनं च ॥ ३०२ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द सुभाव अनुमोय ज्ञान विज्ञानं देइ) चिदानन्दमई स्वभावमें प्रसन्नता रखनेसे ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है (पज्जायं नहु पिच्छदि) सम्यग्दृष्टी जीव शरीर पर्यायपर दृष्टि नहीं रखता है (सुकिय सुभाव कम्म विपनं च) किन्तु अपने आत्माके स्वभावपर दृष्टि रखता है इसीसे कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—मैं आत्मा चिदानन्दमय स्वभाववाला हूं, ऐसी भावना करते करते परसे भिन्न आत्माकी प्रतीति होती है । ज्ञानी जीव जब सर्व कर्मजनित पर्यायोंसे उदास होकर एक अपने स्वभाव हीमें तन्मय होता है तब ही कर्मोंकी निर्जरा होती है ।

षिपिओ संसार सुभावं, षिपिओ नन्त नन्त कम्मानं ।
अनुमोयं ज्ञान सुभावं, कम्मं पिपिऊण तिविह योगेन ॥ ३०३ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिओ ससार सुभावं) जब संसार स्वभावरूप दर्शनमोहका क्षय होजाता है (षिपिओ नन्त नन्त कम्मानं) तथा अनन्तानुबन्धी कषायोंका क्षय होजाता है (अनुमोयं ज्ञान सुभावं) तब क्षायिक सम्यग्दृष्टी अपने ज्ञान स्वभावमें ही अनुमोदना करता है (तिविह योगेन कम्मं पिपिऊण) तब मन, वचन, कायको रोक लेनेसे शेष कर्मोंका भी क्षय होजाता है।

भावार्थ—सात प्रकृति-चार अनन्तानुबन्धी कषाय व तीन दर्शन मोहनीय इनके क्षयसे क्षायिक सम्यक्त होता है । यह सम्यक्ती निरन्तर ज्ञान स्वभावमें रत रहता है। यह बहुत शीघ्र ही ध्यानका अभ्यास करके ज्ञानानन्दमय स्वभावमें थिर होकर सर्व ही कर्मोंका क्षय कर डालता है।

चिदानन्द आनन्दं, ज्ञान सहावेन सुभाव आनन्दं ।
ज्ञानेन ज्ञान लब्धं, अनुमोयं कम्म नन्त संषिपनं ॥ ३०४ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द आनन्दं) चिदानन्दमई स्वभावमें आनन्द मानना चाहिये (ज्ञान सहावेन सुभाव आनन्दं) जब ज्ञान स्वभावमें रतिपना होता है तब स्वाभाविक सहज आनन्द अनुभवमें आता है (ज्ञानेन ज्ञान लब्धं) ज्ञानके द्वारा ही केवलज्ञानकी प्राप्ति होती है (अनुमोयं कम्म नन्त संषिपनं) इस बातकी अनुमोदना करनेसे अनन्त कर्मोंका नाश होजाता है ।

भावार्थ—आत्माका स्वभाव चिदानन्दमई है । इस स्वभावमें जो रागद्वेष छोड़कर संलग्न होजाता

है उसके ही परिणामोंसे मोक्षमार्गकी सच्ची अनुमोदना रहती है—वीतरागभावसे कर्मोंका क्षय होता है।

चिदानन्द परिनामं, परिनवै ज्ञान विज्ञान सहकारं ।
पर पज्जाय न दिट्ठं, परिनवै अनुमोय कम्म षिपनं च ॥ ३०५ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द परिनाम) चिदानन्द आत्माका परिणाम (ज्ञान विज्ञान सहकारं परिनवै) जब भेद विज्ञानकी सहायतासे निज स्वभावमें परिणमन करता है तब (पर पज्जाव न दिट्ठ) पर पर्याय या अशुद्ध संसार पर्याय नहीं दीखती है (परिनवै अनुमोय कम्म षिपनं च) आनन्दमय भावमें परिणमन होनेसे कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—चिदानन्दमय स्वभावमें रमणता तथा शरीर व कर्म सम्बन्धी भावोंसे वैराग्य आत्म-ध्यान है जो कर्मोंको क्षय करता है।

चिदानंद षिपिऊनं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन ।
ज्ञान विज्ञान सुभावं, लघु गुरु पंच ज्ञान अनुमोयं ॥ ३०६ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानंद षिपिऊनं) चिदानन्द भाव ही कर्मोंका क्षय करनेवाला है (तिविह जोएन कम्मान षिपिओ) जब मन वचन काय तीनों योगोंसे थिर हुआ जाता है तब कर्मोंका क्षय होता है (ज्ञान विज्ञान सुभावं) आत्माका स्वभाव ही ज्ञानमय है (लघु गुरु पंच ज्ञान अनुमोय) ज्ञान थोड़ा हो या बहुत हो, सम्यग्ज्ञानमें प्रसन्न रहना योग्य है।

भावार्थ—जब सम्यग्दृष्टीको ज्ञानस्वभावी आत्माकी दृढ़ता होजाती है तब चाहे श्रुतज्ञान थोड़ा हो या बहुत हो, सम्यग्ज्ञानमें ही आनन्द मानता है, उसीमें रमण करता है, जिससे कर्मोंका क्षय होता है।

ज्ञानं ज्ञान सहावं, ज्ञान विज्ञान कम्म संषिपनं ।
विमलं सुभाव उत्तं, ज्ञानं ज्ञानेन विमल मिलियं च ॥ ३०७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं ज्ञान सहाव) जब ज्ञान ज्ञानस्वभावमें रत होता है (ज्ञान विज्ञान कम्म संषिपनं) तब भेदज्ञान पूर्वक सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होता है (विमल सुभाव उत्त) आत्माका स्वभाव मलरहित निर्मल शुद्ध कहा गया है (ज्ञानेन विमल ज्ञानं मिलिय च) ज्ञानका अनुभव करनेसे ही केवलज्ञानका लाभ होता है।

भावार्थ—सर्व पर भावोंसे भिन्न होकर जब ज्ञान शुद्धात्मामें रत होता है तब ही कर्मोंका क्षय होता है और तब ही केवलज्ञानका लाभ होता है।

चिदानन्द सुभावं, उवइट्ठं परम जिनवरेंदेहि।
परम सहावं सुद्धं, चेतन आनंद निव्वुए जंति ॥ ३०८ ॥

अन्वयार्थ—(परम जिनवरेंदेहि उवइट्ठं) श्री जिनेन्द्र तीर्थंकरोंने उपदेश किया है (चिदानंद सुभावं) कि आत्माका स्वभाव चिदानन्द है (परम सहावं सुद्धं) तथा उत्कृष्ट स्वभाव शुद्ध वीतराग है। (चेतन आनंद निव्वुए जति (जो कोई इस चिदानन्द स्वभावमें मग्न होता है वही निर्वाणको जाता है।

भावार्थ—श्री तीर्थंकरोंने यही बताया है कि हरएक आत्मा परमात्माके समान शुद्ध चिदानन्दमय वीतरागी है। जो इसीका निश्चय करके ध्यानमग्न होता है वही निर्वाण पाता है।

योगसारमें कहा है—

जो जिण सो हउ सो जि हउ एहउ भाव णिभंतु। मोक्खह कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु ॥ ७४ ॥

भावार्थ—जो जिनेन्द्र है सो ही मैं हूं, ऐसी निःशङ्क हो भावना करो। यही मोक्षका कारण है। हे योगी! और कोई तंत्र व मंत्र नहीं है।

चिदानन्द आनन्दं, परम सुभावेन कम्म संषिपनं।
सीह सुभाव सुदिट्ठं, गयंद जूहेन दिट्ठि विरयंति ॥ ३०९ ॥

अन्वयार्थ—(चिदानन्द आनन्दं परम सुभावेन कम्म सषिपनं) यह आत्मा चिदानन्दमई परमात्माके स्वभावके समा है, ऐसी भावना करनेसे कर्मोंका क्षय होजाता है (सीह सुभाव सुदिट्ठं गयंद जूहेन दिट्ठि विरयंति) जैसे सि तो देखते ही हाथियोंके समूह भाग जाते हैं, दृष्टिसे बाहर होजाते हैं।

भावार्थ—जैसे सिंहके तेजके सामने हाथीके झुण्ड नहीं ठहरते हैं, भाग जाते हैं, वैसे चिदानन्दमई आत्मीक स्वभावके प्रकाश होनेसे कर्मोंके समूह क्षय होजाते हैं।

तं सुभाव सभावं, परमं आनन्द चेतनं सहियं।
कम्मं तिविह विमुक्कं, विमलं ज्ञानेन सिद्धि संपत्तं ॥ ३१० ॥

अन्वयार्थ—(परमं आनन्द चेतनं सहियं तं सभावं-सुभावं) परम आनन्दमई चैतन्य स्वभावधारी उस आत्माकी भलेप्रकार भावना कर (कम्मं तिविह विमुक्कं) जिससे तीनों प्रकार कर्म छूट जावें (विमलं ज्ञानेन सिद्धि संपत्तं) शुद्ध ज्ञानके प्रकाश होनेपर सिद्ध गति प्राप्त होती है।

भावार्थ—शुद्धात्माकी भावनासे रागद्वेष भाव कर्म छूटते हैं, ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म क्षय होते हैं तथा पुनः पुनः शरीररूपी नोकर्मके पानेका अवसर छूटता है—आत्मध्यानसे ही केवलज्ञान होता है, तब शीघ्र सिद्ध गति मिल जाती है।

गलित स्वभाव कथन।

गलियं सुभाव उत्तं, गलियं कम्मान तिविह योएन।
गलियं परिनाम असुद्धं, गलियं विषयं च मिच्छ सद्भावं ॥ ३११ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं सुभाव उत्तं) गलनशील स्वभावोंको कहा जाता है (गलिय कम्मान तिविह योएन) तीन योगोंको रोकनेसे कर्म गल जाते हैं (गलियं परिनाम असुद्धं) अशुद्ध भाव सब गल जाते हैं (गलियं विषयं च मिच्छ सद्भाव) विषयोंकी इच्छा व मिथ्यात्वभाव भी गल जाता है।

भावार्थ—अब गलित स्वभाववाली वस्तुओंको बताते हैं। आत्मा तो अगलित स्वभाव है। आत्माका स्वभाव कभी नहीं गलता, कभी नष्ट नहीं होता। परन्तु जो २ आत्मामें पर पुद्गलका संयोग है तथा कर्मजनित भावोंका संयोग है सो सब गलित स्वभाव है, छूट जानेवाला है। जब मन, वचन, कायकी गुप्तिमई आत्म-समाधिमें एकाग्र हुआ जाता है तब इस वीतराग तपसे द्रव्य कर्मोंका क्षय होजाता है। ये द्रव्य कर्म गलित स्वभाव हैं। बन्धनेके पीछे अपने समयपर पक करके झड़ते ही रहते हैं। ध्यानसे उनको शीघ्र विपाकसे पहले गला डाला जाता है। अशुद्ध रागादि भाव भी या शुभ व अशुभ उपयोग भी सब गलित स्वभाव हैं—एकसे नहीं रहते, बदलते रहते हैं। तथा शुद्धोपयोगी इनको गला डालता है। विषय वांछा व मिथ्यात्वभाव गलन स्वभाव है—एकसे नहीं रहते तथा सम्यग्दृष्टी ज्ञानी इनको गला डालता है। इसतरह गलित स्वभाववाले पदार्थोंसे मोह करना उचित नहीं है।

गलियं कुज्ञान उत्तं, गलियं परिनाम गलिय मोहंधं ।
ज्ञान सहावं सुद्धं, विमल सुभाव मुक्ति गमनं च ॥ ३१२ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं कुज्ञान उत्तं) मिथ्या ज्ञानका स्वभाव भी गलनशील है, एकसे भाव नहीं रहते तथा सम्यग्ज्ञानसे उसका नाश होजाता है (गलिय परिनाम गलिय मोहंध) सर्व ही पर्याय गलित स्वभाव अर्थात् क्षणभंगुर हैं, दर्शन मोह भी सम्यक्तसे गल जाता है (ज्ञान सहावं सुद्धं) आत्माका शुद्ध ज्ञान स्वभाव अविनाशी है (विमल सुभाव मुक्ति गमनं च) इसी निर्मल स्वभावको लिये हुए जीव मोक्षमें जाकर अनन्तकाल तक रहता है ।

भावार्थ—जितनी पर्यायें या अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं सब व्ययशील या गलित स्वभाव हैं। कुज्ञान सम्यग्ज्ञानसे गल जाता है। दर्शन मोह सम्यक्तसे गल जाता है। एक आत्माका निज शुद्ध ज्ञान स्वभाव सदा बना रहता है । संसार अवस्थामें यह ढका रहता है। कर्मावरण हटनेसे यह प्रकाशमान होजाता है तब मोक्षमें अनन्तकाल तक बना रहता है।

गलियं सहाव उत्तं, गलियं सलं च रागदोसं च ।
गारव गलिय अनिस्टं, ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ३१३ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय सहाव उत्तं) गलित स्वभाववाली वस्तुओंको कहते हैं (गलियं सलं च रागदोसं च) माया मिथ्या, निदान ये तीन शल्य राग तथा द्वेष भी गलन स्वभाव हैं, गल जाते हैं (गारव गलिय अनिस्टं) अशुभकारी मद भाव भी गल जाता है (ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च) आत्मा एक अविनाशी ज्ञान स्वभावके ही द्वारा मुक्तिमें जाता है।

भावार्थ—कोई ऐसा माने कि मेरे रागद्वेष नहीं जांयगे, मेरी शल्यें नहीं मिटेंगी, मेरा मद्भाव नहीं मिटेगा, उस जीवको समझानेके लिये यह कहा गया है कि जितने कर्मजनित परभाव हैं, वे अपने स्वभावमें आनेसे मिट जाते हैं। जैसे गर्म पानीकी गर्मी अवश्य मिटेगी, गर्म लोहा अवश्य ठण्डा होगा उसीतरह जब सम्यक्ती निज आत्माका यथार्थ स्वभाव अनुभव करता है तब उसकी शल्यें मिट जाती हैं, मद्भाव नहीं रहता है व जैसे २ वीतरागताकी वृद्धि करता है, रागद्वेप मिटता जाता है।

गलियं घाय चउक्कं, गलियं संसार सरनि सहकारं ।
गलिओ कम्म स उत्तं, ज्ञान सहावेन जंति निव्वानं ॥ ३१४ ॥

अन्वयार्थ—(गलियं घाय चउक्क) चार घातीय कर्म भी गल जाते हैं (गलिय संसार सरनि सहकारं) संसारके भ्रमणके सहकारी रागादि भाव भी गल जाते हैं (गलिओ कम्म स उत्त) और सर्व ही कर्म गल जाते हैं ऐसा कहा है (ज्ञान सहावेन निव्वान जंति) यह आत्मा ज्ञान स्वभावमें लय होनेसे ही निर्वाणको जाता है ।

भावार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय तथा अन्तराय ये चार घातीय कर्म भी गलन स्वभाव हैं । शुक्लध्यानके द्वारा ये भी बिलकुल नष्ट होजाते हैं । संसारके भ्रमणके कारण रागद्वेष मोह भाव हैं । ये भी वीतरागमई स्वभावके प्रकाशसे गल जाते हैं, सारे ही कर्म आने जानेवाले हैं । चौथे शुक्लध्यानसे अघातीय कर्म भी गल जाते हैं, मात्र एक अविनाशी ज्ञानानन्द स्वभाव रह जाता है । यह ही नित्य है इसीको लिये हुए निर्वाणमें जाता है ।

गलियं अर्थ अनर्थ, गलियं अनुमोय अज्ञान सहकारं ।
गलियं पुग्गल रूवं, ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ३१५ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय अर्थ अनर्थ) जितने अनर्थकारक भाव हैं या संयोग हैं वे सब गल जाते हैं (गलियं अनुमोय अज्ञान सहकार) मिथ्याज्ञानसे जो यह अपनी प्रसन्नता रखता है वह भाव भी गल जाता है (गलियं पुग्गल रूव) पुद्गलका सर्व स्वभाव गल जाता हैं ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च) एक ज्ञान स्वभावको लिये हुए आत्मा मुक्तिमें जाता है ।

भावार्थ—कर्मबन्धकारक मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योग हैं । ये ही अनर्थकारी हैं, ये सब गलनशील हैं, गल जाते हैं । मिथ्याज्ञानसे जो संसारमें व कुधर्ममें अनुमोदक भाव था वह भी सम्यग्ज्ञानसे जाता रहता है । सर्व ही पुद्गलका संयोग-तैजस, कार्माण, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर, भाषा वर्गणा तथा मन ये सब छूट जाते हैं । पुद्गलसे सर्वथा छूटनेपर आत्माका एक अविनाशी स्वभाव रह जाता है उसीको लिये हुए यह मोक्षमें चला जाता है ।

गलियं मनस्य रुचियं, गलियं वचनस्य असुह सुह जननं ।
कललंकृत कर्म सुगलियं, गलियं स भाव कम्म नहु पिच्छं ॥ ३१६ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय मनस्य रुचिय) शुद्ध आत्माके मनकी रुचि या मन द्वारा राग भाव गल जाता है (गलिय वचनस्य असुह सुह जनन) शुभ अशुभ भावोंमें उत्पन्न करनेवाला वचनका प्रयोग भी नहीं रहता है (कललकृत कर्म सुगलियं) शरीर सम्बन्धी क्रिया भी बन्द होजाती है (गलिय स भाव कम्म नहु पिच्छं) सर्व भाव कर्म रागादिक औपाधिक भाव भी गल जाते हैं, वहां कोई दिखलाई नहीं पड़ते हैं।

भावार्थ—जब आत्मा कर्मरहित होजाता है तब उसके मन वचन काय व उनकी क्रियाएँ कोई नहीं रहती हैं। सर्व ही भाव जो स्वभावसे विरुद्ध हैं, नहीं रहते हैं।

गलियं गमनागमनं, गलियं च कोप विषय सम्बन्धं ।
गलियं मान कषायं, गलियं कम्मान सव्वहा सव्वे ॥ ३१७ ॥

अन्वयार्थ—(गलिय गमनागमनं) सिद्ध शुद्ध आत्माके जाना आना बन्द होजाता है (गलियं च कोप विषय सम्बन्ध) क्रोध आने योग्य विषयका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है (गलिय मान कषाय) मान कषाय भी गल जाता है (गलिय कम्मान सव्वहा सव्वे) उनके सर्व ही कर्म सर्वथा नष्ट होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवानके योग व कषाय नहीं रहते न कोई कर्म शेष रहते हैं, इससे वे सब क्रोध मानादि कषाय रहित व इच्छा रहित व द्वेष रहित अपने स्वभावमें निश्चल विराजते हैं। उनका फिर किसी अन्य गतिमें गमनागमन नहीं होता है। वह सिद्ध गति निश्चल अविनाशी रहती है।

चौदस प्रान उववन्नं, उववन्नं विमल केवल ज्ञानं ।
केवल दर्शन दर्स, नंत चतुस्टै सुभाव संतुस्टं ॥ ३१८ ॥

अन्वयार्थ—(चौदस प्रान उववन्नं) सयोग केवली अरहंत भगवानके चार या दस प्राण अभी हैं (उववन्न विमल केवल ज्ञानं) उनके निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न होगया है। (केवल दर्सन दर्स) वह केवल दर्शनसे देखते हैं (नंत चतुस्ट सुभाव संतुस्टं) वे अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य इन चार प्रकार अनन्त-चतुष्टय स्वभावमें संतोषी हैं।

भावार्थ—अरहन्त भगवान अभी शरीर सहित हैं इसलिये प्रगटपने पांच इंद्रिय, मन वचन काय, तीन बल, आयु व श्वासोच्छ्वास ये दश प्राण हैं तथा कार्यकी अपेक्षा उनके चार ही प्राण हैं–आयुकर्म, श्वासोच्छ्वास, वचनयोग तथा काययोग। उनका भाव अत्यन्त सन्तोषी है, वे परम सुखी हैं, परम ज्ञानी हैं, परम वीतरागी हैं।

नन्तानन्त सुदिट्ठं, लोयं अवलोय लोकनं भावं।
नंदं परमानन्दं, परमप्पा परम निव्वुए जंति॥ ३१९॥

अन्वयार्थ—(नंतानंत सुदिट्ठ) श्री परमात्मा अनंतानंत द्रव्यगुण पर्यायोंको भलेप्रकार देखनेवाले हैं (लोय अवलोय लोकन भावं) उनके भीतर लोक व अलोकको देखने योग्य केवलज्ञान प्रगट होगया है (नंद परमानंद) वे परमानन्दमें मग्न हैं (परमप्पा परम निव्वुए जंति) वे परमात्मा परम निर्वाणको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—कर्मोंके गलनसे यह आत्मा परमात्मा होकर निर्वाणको चला जाता है।

विलय स्वभाव कथन।

विलयं सुभाव उत्तं, कम्म निबंधाइ वंस विलयंति।
विमल सुभावं दिट्ठं, अनुमोयं विमल सिद्धि संपत्तं॥ ३२०॥

अन्वयार्थ—(विलयं सुभाव उत्त) अब विलय स्वभावको कहते हैं (कम्म निबंधाइ वंस विलयंति) केवली परमात्माके कर्मोंके बंधे हुए वंश विला जाते हैं (विमल सुभाव दिट्ठ) निर्मल आत्माका स्वभाव झलक जाता है (अनुमोय विमल सिद्धि संपत्त) वह स्वभाव आनन्दमई है और वीतराग सिद्धावस्थाको प्राप्त होचुका है।

भावार्थ—कर्मोंका स्वभाव नित्य नहीं है, वे यातो अपना फल देकर विलय होते हैं या ध्यानके बलसे विलय होते हैं। परम मुनि तपस्वी ऐसा शुक्लध्यान जगाते हैं कि जिसकी ज्वालासे घाति अघाति आठों ही कर्मोंके वंश जो अनादिकालसे अपनी वंशावली जमाए हुए थे सो नष्ट होजाते हैं, तब जैसे शुद्ध सुवर्ण सोलह तापके देनेसे सर्व किट कालिमासे रहित हो चमक उठता है तथा फिर कभी अशुद्ध नहीं होता है

वैसे ही यह आत्मा सर्व कर्म मैल गल जानेपर परम सिद्ध परमात्मा होजाता है और नित्य अपने स्वभावमें रमण करता है।

कम्म स्वभावं विलयं, सिद्ध सहावेन विमल ज्ञानस्य ।
अनुमोयं उवएसं, परम जिनं परम सिद्धि संपत्तं ॥ ३२१ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म स्वभाव विलयं) कर्मोंका स्वभाव विला गया (सिद्ध सहावेन विमल ज्ञानस्य) सिद्ध स्वभाव निर्मल ज्ञानके साथ प्रगट होगया (अनुमोय उवएस) अर्हत् अवस्थामें जिनका उपदेश आनन्दका दाता है (परम जिनं परम सिद्धि सपत्त) परम रागादिके विजयी अर्हत् परमात्मा परम सिद्धभावको प्राप्त होजाते हैं।

भावार्थ—जबतक कर्म आत्माके साथ बन्धे रहते हैं तबतक उनकी कर्मसंज्ञा रहती है। जब उन कर्मोंकी निर्जरा होती है तब उन कर्मोंका कर्मस्वभावपना चला जाता है। कर्मवर्गणा पुद्गलरूप रह जाती है जैसे बन्धके पहले थी। बन्ध प्राप्त कर्म ही आत्माके गुणोंको रोक सक्ते हैं। जब उनकी मुक्ति होजाती है तब आत्मा अपने निर्मल शुद्ध स्वभावमें प्रगट होता है। स शरीर अर्हत् अवस्थामें उपदेश होता है। जब शरीर नहीं रहता है तब मात्र आत्मा अपने स्वभावमें रह जाता है, उनको अशरीर व सिद्ध परमात्मा कहते हैं।

विमल स्वभाव कथन।

विमलं विमल सहावं, विमलं विमलं च लद्ध सम भावं ।
अनुमोय विमल स उत्तं, विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥ ३२२ ॥

अन्वयार्थ—(विमल विमल सहावं) परमात्माका विमल स्वभाव सर्व मलसे रहित है (विमल विमल च लद्ध सम भावं) वह स्वभाव द्रव्यकर्मरूपी मलसे भी रहित है व भावकर्मरूपी मलसे भी रहित है, समताभावका जहां लाभ होगया है (अनुमोय विमल स उत्त) उसीको परमानन्दमय विमल स्वभाव कहते हैं (विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं) विमल स्वभाव होनेहीसे सिद्ध गति प्राप्त होती है।

भावार्थ—पुद्गलका जहांतक आत्माके साथ संयोग है वहांतक मल स्वभाव झलकता है जैसे—स्फटि-

कके साथ किसी वस्तुका संयोग होनेसे उस वस्तुका संयोगिक वर्ण झलकता है उसीतरह कर्मके संयोगसे ही रागादि विभाव आत्मामें प्रगट होता है–कर्म संयोग हटते ही आत्मा निर्मल स्फटिकके समान शुद्ध अपने स्वभावमें रह जाता है, तब ही इसे सिद्ध परमात्मा कहते हैं। कर्मवर्गणाएं सिद्ध स्थानमें भरी रहें तथापि अबंधवर्गणाएं कुछ भी विकार व आवरण आत्मामें नहीं कर सक्ती हैं। जैसे आकाशका कोई विगाड़ परद्रव्य नहीं कर सक्ते वैसे ही सिद्धात्माका कोई बिगाड़ परद्रव्य नहीं कर सक्ता।

नन्त चतुस्टय युत्तं, अयसय पडिहार विमल ज्ञानस्य।
चौदस प्रान संजुत्तं, ज्ञानं अनुमोय सिद्धि संपत्तं ॥ ३२३ ॥

अन्वयार्थ—(नन्त चतुस्टय युत्त) श्री अर्हंत सशरीर परमात्मा चार अनन्त चतुस्टय बिराजमान होते हैं (अयसय पडिहार विमल ज्ञानस्य) केवलज्ञान होते ही उनमें अतिशय व प्रातिहार्य प्रगट होजाते हैं (चौदस प्रान सजुत्त) चार या दश प्राण सहित हैं (ज्ञानं अनुमोय सिद्धि सपत्त) ज्ञान व आनन्द गुणके साथ वे सिद्ध दशाको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ—अर्हंत भगवानके शरीरकी रचनाकी अपेक्षा दश प्राण हैं–पांच इंद्रिय, मन, वचन, काय-बल, आयु, श्वासोच्छ्वास परन्तु कार्य करनेकी अपेक्षा केवल चार प्राण हैं। वचन बल, काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास। उनके अर्हंत अवस्थामें बहुतसे अतिशय प्रगट होजाते हैं। जैसे उनके निकट वैर विरोध न रहना, जाति विरोधी पशुओंमें भी मैत्रीभाव होना, चारों तरफ दुर्भिक्ष न पड़ना आदि तथा आठ प्रातिहार्य प्रगट होते हैं। अशोक वृक्ष, सिंहासन, छत्र, चमर, दुंदुभि बाजे, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, भाम-ण्डल। इनमें पहले छः देवों द्वारा निर्मित होते हैं। दिव्यध्वनि जिनेन्द्रकी वाणी है। भामण्डल उनके परमौदारिक सूर्य कोटिसम भासमान प्रभाका भण्डार है। वे शरीरकी आयु तक अर्हंत अवस्थामें कहलाते हैं। फिर शरीरसे रहित होनेपर सिद्ध नाम पाते हैं।

ज्ञानं दंसन सम्मं, दानं लाभं च मोय उवमोयं।
वीर्यं सम्मत सुचरनं, लब्धि संजुत्त सिद्धि संपत्तं ॥ ३२४ ॥

अन्वयार्थ—(सम्म ज्ञान दंसन) अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन (दानं लाभ च मोय उवमोय) अनन्त दान, अनन्त

लाभ, अनन्त भोग, अनन्त उपभोग (वीर्य सम्मत सुचरन) अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त, क्षायिक चारित्र (लब्धि सजुत्त सिद्धि संपत्त) इन नौ लब्धियोंके साथ वे अर्हत सिद्ध गतिको प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—चार घातीय कर्मोंके क्षयसे ये नौ मुख्य गुण अर्हतके प्रगट होजाते हैं। इन्हींको नौ लब्धियाँ कहते हैं। ये कभी नष्ट नहीं होती हैं। सिद्ध अवस्थामें भी बनी रहती हैं। ये स्वाभाविक हैं। कर्मोंके उदयसे ढकी हुई थीं सो कर्मके क्षयसे प्रगट होगईं।

ज्ञानावरण कर्मबन्ध व फल।

ज्ञानं च परम ज्ञानं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं।
अक्षर सुर विंजन रूवं, ज्ञान विज्ञान अप्प परमप्पं ॥ ३२५ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च परम ज्ञान) ज्ञान केवलज्ञान है यही श्रेष्ठ है (ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं) भेदविज्ञानसे उस ज्ञानका जानना केवलज्ञानकी प्रगटताका कारण है (अक्षर सुर विंजन रूवं) वह ज्ञान जिस आगमसे होता है वह स्वर व्यंजन अक्षरोंसे बना है अथवा ज्ञान ही अक्षर, स्वर, व्यंजन स्वभाव रूप है (ज्ञान विज्ञान अप्प परमप्पं) भेदविज्ञानके द्वारा ही आत्मा परमात्मा होता है।

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक ज्ञान केवलज्ञान है। इसपर ज्ञानावरण कर्मका आवरण है, इससे प्रगट नहीं है। उस आवरणको हटानेका उपाय, मैं केवलज्ञानमय हूँ अज्ञानमय नहीं हूँ ऐसा भेदविज्ञान है। आत्माकी इसी भावनासे आत्मा शुद्ध होजाता है। जैसे मलीन सुवर्ण अग्निकी पुनः पुनः आंच देनेसे शुद्ध होजाता है। यहां गाथामें अक्षर सुर व्यंजन स्वरूप ज्ञानको कहा है, सो इनका शब्दार्थ विचारनेसे ऐसा अर्थ होता है कि आत्माका स्वाभाविक ज्ञान अक्षर रूप है, अर्थात् अविनाशी है, सुर रूप है, अर्थात् सूर्यवत् प्रकाशित है, व्यंजन रूप है अर्थात् स्पष्ट प्रगट है।

अक्षर अक्षर रूवं, अषय पदं अषय सुद्ध सद्भावं।
अषयं च विमल रूवं, विमल सहावेन निव्वुए जंति ॥ ३२६ ॥

अन्वयार्थ—(अक्षर अक्षर रूवं) ज्ञान कभी नाश नहीं होता है इसलिये आत्माका स्वाभाविक ज्ञान

अक्षर स्वरूप है (अपय पदं अपय सुद्ध सदभावं) वही अविनाशी पद है व अविनाशी शुद्ध सत्तारूप है (अपय च विमल रूव) जो अक्षय स्वभाव है वही निर्मल स्वभाव है (विमल सहावेन निव्वुए जंति) जब स्वभाव निर्मल होजाता है तब ही जीव निर्वाणको जाता है।

भावार्थ—आत्माका ज्ञान स्वभाव अक्षररूप है अर्थात् कभी मिट नहीं सक्ता, अविनाशी है। जब ज्ञानावरणका पर्दा हट जाता है तब उसका निर्मल स्वभाव प्रकाशमान होजाता है। इसी निर्मल स्वभावको लिये हुए यह जीव सिद्ध गतिमें सदा काल बना रहता है।

ज्ञानं अक्षर सुरयं, ज्ञानं संसार सरनि मुक्कं च।
अज्ञान मिच्छ सहियं, ज्ञानं आवरन नरय वासम्मि ॥ ३२७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं अक्षर सुरय) ज्ञान अक्षररूप अविनाशी है व ज्ञान ही सूर्यसम स्वपर प्रकाशक है (ज्ञान संसार सरनि मुक्कं च) ज्ञान ही संसारके भ्रमणसे छुड़ानेवाला है (अज्ञान मिच्छ सहियं) परन्तु यदि ज्ञान मिथ्या दर्शन और मिथ्याज्ञान सहित हो तो (ज्ञानं आवरन नरय वासम्मि) ऐसा ज्ञानावरण कर्मका क्षय हो जिससे नरकमें जाकर नारकीके योग्य ही ज्ञान रहे।

भावार्थ—ज्ञान ही अक्षर है व सुर है। अर्थात् ज्ञान अविनाशी है व सूर्यके समान प्रकाशमान है। सम्यग्ज्ञानसे ही संसार भ्रमण कटता है जब कि मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानसे संसार भ्रमण बढ़ता है। ज्ञानावरणका बन्ध विशेष होता है—नरकमें जाकर मूढ़ होना पड़ता है।

सुरं च सुरं च रूवं, सुरं च सुद्ध समय संयुत्तं।
जोजन रंजन सहियं, ज्ञानं आवरन थावरं पत्तं ॥ ३२८ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुरं च रूवं) ज्ञान सुररूप सूर्यके स्वभावके समान वीतराग स्वपर प्रकाशक है (सुरं च सुद्ध समय संयुत्त , यह सूर्यसम ज्ञान शुद्ध आत्मीक भाव सहित है (जोजन रंजन सहिय) जो अपने ज्ञानको लोगोंके रंजायमान करनेमें लगाते, आत्मकल्याणमें नहीं लगाते वे (ज्ञानं आवरन थावरं पत्तं) ऐसा तीव्र ज्ञानावरण कर्मका बन्ध करते हैं जिससे मरकर एकेन्द्रिय स्थावरमें जन्म पाते हैं।

भावार्थ—ज्ञान उसे ही कहते हैं जो यथार्थ जाने फिर उससे यथार्थ ही काम लिया जावे। सम्य-

ज्ञान आत्मा व अनात्माको ठीक जानके आत्माके मननमें झुकता है जिससे केवलज्ञानका प्रकाश हो जाता है। जिसके आत्मतत्वका सच्चा श्रद्धान नहीं होता है वह अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता होकर व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि जानकर उस ज्ञानका उपयोग लोगोंके मन प्रसन्न करनेमें लगाता है, रागवर्द्धक भाषण करता है, शृङ्गारका नाटक ग्रन्थ रचकर विषयोंमें लोगोंका मन अनुरक्त कराता है। जो ज्ञानका खोटा उपयोग करता है उसके ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध होता है जिसके फलसे वह पंचेन्द्रियसे एकेन्द्रिय होजाता है फिर पंचेन्द्रिय होना अति दुर्लभ होजाता है। इसलिये उचित है कि यदि हम विद्वान हैं तो हम अध्यात्म विद्याको जानकर वैराग्यवान बने। उस विद्यासे जनताको मोक्षमार्गपर लगावे तब वह ज्ञान तारक होगा अथवा वही ज्ञान संसारसागरमें डूबानेवाला होगा।

सुरं च सुयं सुलष्यं, अलषं लषियं च सुरं स सहावं।
जे कल रंजन विषयं, ज्ञानं आवरन नरय वियम्मि ॥ ३२९ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुयं सुलष्य) उस स्वाभाविक सूर्यसम ज्ञानका स्वयं ही प्रकाश होता है (स सहावं सुरं च अलषं लषियं) स्वाभाविक ज्ञान अलख आत्माका अनुभव कर सक्ता है (जे कल रंजन विषय) जिनके ज्ञानका विषय शरीरको प्रसन्न रखाना है वे (ज्ञानं आवरन नरय वीयम्मि) ज्ञानावरण कर्मको बांधकर नरकका बीज बोते हैं।

भावार्थ—शुद्ध ज्ञान जो केवलज्ञान है वह प्रत्यक्ष मन वचन कायसे न लखने योग्य आत्माका अनुभव करता है जब कि स्वसंवेदन ज्ञान परोक्ष रूपसे आगमके आधारसे उसी अलख आत्माका अनुभव करता है। जो अपने आत्माकी तरफ ज्ञानको न लगाकर ज्ञानसे शरीरकी ही शोभा बढ़ाने व शरीरको आराम देने व विषय भोगोंके भोगनेमें काम लेते हैं, ज्ञानका दुरुपयोग करते हैं वे ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरक जाते हैं।

सुरं च सुद्धुववन्नं, सुरं च षिपिओ हि सुयं कम्मानं।
मनरंजन गारव सहियं, ज्ञानं आवरन थावरं वीयं ॥ ३३० ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुद्धुववन्न) सूर्य समान ज्ञान जब निर्मल होकर प्रगट होता है (सुरं च पिपि...

सुयं कम्मानं) तब इस ज्ञानके होते ही स्वयं हो घातीय कर्म क्षय होजाते हैं (मनरंजन गारव सहियं) परन्तु यदि ज्ञानको अपने व दूसरोंके मनके रंजायमान करनेमें व मदके प्रकाशमें लगाया जावे तो (ज्ञानं आवरन थावर वीय) ज्ञानावरण कर्मका वन्ध होकर स्थावरमें जन्म प्राप्त हो।

भावार्थ—जिस ज्ञानसे कर्मोंका नाश होकर परमात्मपद होता है उसी ज्ञानके द्वारा जो शृङ्गाररस, काव्य, कविता आदि बनाकर विषयवासनाके द्वारा अपना मन व दूसरोंका मन प्रसन्न किया जावे अथवा मानमें भरकर दूसरोंको मूर्ख कहकर तिरस्कार किया जावे, तो इस मान व लोभ कषायकी तीव्रतासे ज्ञानावरणका वन्ध ऐसा होगा कि बोलनेकी शक्तिरहित स्थावर योनिमें जन्म प्राप्त होगा।

सुरं च सुयं षिपनं, सूषम सभाव विमल ज्ञानं च।
पज्जय सहाव रुचियं, ज्ञानं आवरन नरय संजुत्तं ॥ ३३१ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सुयं षिपनं) यह सूर्य समान ज्ञान स्वयं क्षायिक भाव है (सूषम सभाव विमल ज्ञान च) यह इंद्रियोंसे अगोचर अतीन्द्रिय सूक्ष्मभाव है तथा निर्मल ज्ञानमय है (पज्जय सहाव रुचियं) यदि वह ज्ञान शरीर पर्यायमें रुचिवान होजावे तो (ज्ञानं आवरन नरय सजुत्त) ज्ञानावरणका वन्ध होकर नरकमें जन्म हो।

भावार्थ—निर्मल ज्ञान अतीन्द्रिय है व क्षायिक है, सर्व ज्ञानावरणके क्षयसे प्रगट होता है। ज्ञानसे ही ज्ञानकी पूर्णता होती है ऐसा होनेपर भी जिस ज्ञानसे केवलज्ञान होता है उसी ज्ञानोपयोगको यदि शरीरके सुखोंमें लगा दिया जावे–शरीरसे मौजशौकमें, खिलाने, पिलाने, हुलाने, साफ करने, कपड़े व गहने पहिनाने, शृङ्गार करनेमें व आलसी, सुखिया बनानेमें व इंद्रियोंके भोगमें लगा दिया जावे तौ वही ज्ञान कषाय सहित होकर ऐसा ज्ञानावरणका वन्ध कराता है जिससे नरक धरामें जाकर मूढ़ता प्रगट हो जाती है।

सुरं च सूषम रूवं, सुरं च संसार विषय विरयम्मि।
यदि पज्जय संजुत्तं, ज्ञानं आवरन थावरं पत्तं ॥ ३३२ ॥

अन्वयार्थ—(सुरं च सूषम रूवं) ज्ञान सूर्य अति सूक्ष्म है, इंद्रियातीत है, अनुभवगम्य है (सुरं च समार विषय विरयम्मि) यह सूर्यसम केवलज्ञान व उसका उपाय सम्यग्दर्शनमई आत्मज्ञान संसारके विषय-

भोगोंसे विरक्त है (यदि पज्जय सजुत्तं) यदि यही ज्ञान पर्यायमें रत हो तो (ज्ञ न आवरन थावर पत्त) ज्ञानावरणका बन्ध होकर स्थावरोंमें जन्म प्राप्त होवे।

भावार्थ—ज्ञान उसे ही कहते हैं जो स्वाधीनताके सन्मुख हो व पराधीन असार संसारसे विमुख हो, परन्तु जिसका ज्ञान मिथ्या होजाता है वह पर्याय रत होजाता है। मैं स्वामी, मैं सेवक, मैं गुरु, मैं शिष्य, मैं तपस्वी, मैं भोगी, मैं रागी, मैं परोपकारी, मैं हिंसक, मैं निपुण, मैं कर्ता, मैं भोक्ता, मैं धर्मात्मा ऐसा अहङ्कार भाव उसके ऊपर छाजाता है, जिससे वह तीव्र मानी होजाता है। दूसरोंसे अपनी प्रतिष्ठा कराता है। प्रतिष्ठा न पानेपर क्रोध करता है। ज्ञानका दुरुपयोग करनेसे वह नीच गोत्र व स्थावर नामकर्म बांधकर स्थावरोंमें जन्म पालेता है।

विंजन सहाव ज्ञानं, ज्ञानं जानन्ति अलष लष्येय ।
ज्ञानहीन पज्जायं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३३३ ॥

अन्वयार्थ—(विंजन सहाव ज्ञानं) ज्ञानको व्यंजन स्वभाव भी कहते हैं क्योंकि यह अपनेको प्रगट है (ज्ञान जानंति अलष लष्येय) यही ज्ञान उस आत्माको जानता है जो अलक्ष्यसे ही व ज्ञानसे ही अनुभवने योग्य है (ज्ञानहीन पज्जायं) जिसका शरीरमें मोह है, जो ज्ञानहीन है (ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं) वह ज्ञानावरण कर्मको बांधकर दुर्गतिमें जाता है।

भावार्थ—व्यंजन भी ज्ञानको ही कहते हैं। यह ज्ञान प्रकाशमान है। सबको ज्ञानका अनुभव है कि मैं जानता हूँ। ज्ञानसे ही ज्ञानी आत्माका अनुभव होता है। ऐसा होनेपर भी जो मूर्ख ज्ञानसे अपने शरीरको ही आत्मा मानते हैं-शरीरके ही प्रवन्धमें रात दिन ज्ञानका उपयोग रखते हैं, बुद्धिबलसे असत्य व अन्याय करके दूसरोंको ठगकर धन कमाते हैं व अपनी चतुरताका बड़ा अभिमान करते हैं। वे ज्ञानावरणका तीव्र बन्धकर कुगतिमें ज्ञानहीन होते हैं।

विंजन विज्ञान जनयं, लोकं आलोक लोकनं सुद्धं ।
पज्जायं संजुत्तं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३३४ ॥

अन्वयार्थ—(विंजन विज्ञान जनयं) यह ज्ञान ही भेदविज्ञानको उत्पन्न करता है (सुद्ध लोक अलोक लोकनं)

शुद्ध ज्ञान लोक अलोकको एक काल देखता है (पज्जायं संजुत) परन्तु जो ज्ञान पर्यायमें रत होजावे (ज्ञानं आवरन दुगए पत्त) तो ज्ञानावरणका बन्ध होकर दुर्गतिकी प्राप्ति हो।

भावार्थ—शास्त्र द्वारा व गुरु द्वारा ज्ञानका मनन करनेसे ही आत्मा और आत्माका विवेकरूप भेद विज्ञान पैदा होता है और उस भेदविज्ञानसे सर्वज्ञ स्वरूप केवलज्ञान होजाता है ऐसा ज्ञानका महात्म्य है, परन्तु जो मूर्ख ज्ञानी होकर भी शरीरके मोहमें फँस जावे–शरीर व शरीरके सम्बन्धी पुत्र, पुत्री, पौत्र आदिके स्नेहमें इतना मूर्छावान होजावे कि उनके शादी विवाह आदि कार्योंकी रात दिन चिन्ता करे, धनादिके विशेष खर्चके लिये असत्यसे धन कमावे, मान पुष्ट करनेको वहुत अधिक खर्च करे। धर्मके काममें न समय दे न धन दे न तन दे। संसार कार्यमें चतुराई बतावे, धर्मके समझनेमें अपनेको बुद्धिहीन बतावे ऐसा मोही ज्ञानावरण कर्म बांधकर दुर्गति पाता है।

अक्षर सुर विंजनयं, पदं च परम तत्त परमेस्टी।
पद लोयन पज्जायं, ज्ञानं आवरन नरय गइ सहियं ॥३३५॥

अन्वयार्थ—(अक्षर सुर विंजनय पद च परम तत्त परमेस्टी) अक्षर स्वरूप अविनाशी सुर अर्थात् सूर्यसम स्वपर प्रकाशक व्यंजन रूप अर्थात् स्पष्ट प्रगटरूप तथा पदरूप अर्थात् ज्ञान ज्योति स्वरूप सबसे बड़ा तत्व परमेष्ठी परमात्माका है (पद लोयन पज्जाय) जो शरीरधारी इस ज्ञान ज्योतिका लोप करता है (ज्ञानं आवरन नरय गइ सहिय) वह ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरक जाता है।

भावार्थ—अक्षर, सुर, व्यंजन व पद ये सर्व ही शब्दकोषके अनुसार ज्ञानके ही वाचक हैं। शुद्ध ज्ञानके धारक अरहंत व सिद्ध परमेष्ठी हैं। जो कोई मानव इन सच्चे परमात्मामें श्रद्धा न लाकर इनका खण्डन करते हैं व शुद्ध ज्ञानके होनेका निषेध करते हैं, नास्तिक भावमें लीन होकर लोक परलोक नहीं मानते हैं, शरीरके सुखमें रात दिन मग्न हैं, वे ज्ञानका दुरुपयोग करनेसे ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरक-गति पाते हैं।

पदं च अर्थ संयुत्तं, अर्थति अर्थ च ज्ञान सहकारं।
पद विनस्ट पर पिच्छं, ज्ञानं आवरन नरक गय सहियं ॥३३६॥

अन्वयार्थ—(पद च अर्थ सयुत्तं) पद वही है जो अर्थ सहित हो प्रयोजनीय हो, (ज्ञान सहकार अर्थ अर्थति) इस ज्ञानरूपी पदकी सहायतासे आत्म पदार्थका निश्चय किया जाता है (पद विनस्ट पर पिच्छ) परन्तु जो भ्रष्ट ज्ञान है सो परपदार्थमें ही रत है इसलिये (ज्ञानं आवरन नरक गय सहियं) वह ज्ञानावरणका वन्ध कराकर नर्क गतिमें पहुंचा देता है ।

भावार्थ—ज्ञानका यथार्थ फल आत्मज्ञान तथा केवलज्ञान है । इस कार्यको न लेकर जो ज्ञानको शरीर पर्यायमें रत करा देते हैं वे आत्माका कुछ भी विचार न करते हुए शरीरको सर्व प्रकारका आराम देनेके लिये बहुत प्रारंभ अन्याय पूर्वक हिंसा पूर्वक करते हैं व धन धान्यादिमें तीव्र ममता रखते हैं । किसी अनाथ, किसी गरीबका धन मारनेमें जिनको ग्लानि नहीं आती है । ऐसे स्वार्थान्ध तीव्र हिंसक भावोंसे नर्क आयु बांधते हैं व साथमें ज्ञानावरण कर्मका भी ऐसा वन्ध करते हैं जो ज्ञान विपाकमें नरक गति लायक रह जाता है ।

पदं च शब्द संयुत्तं, पदं च परम भाव संदर्स ।
शब्दं विनष्ट रूवं, पर षज्जाय ज्ञान आवरनं ॥ ३३७ ॥

अन्वयार्थ—(शब्द सयुत्तं च पदं) शब्द सहित पद शब्द द्वारा ज्ञानका बोध कराता है (पद च परम भाव सदर्स) यह शुद्ध ज्ञान पद परम भावको देखनेवाला है (रूवं विनष्ट शब्द) जो शब्द आत्मस्वभावके लोपनेवाले हैं (पर पज्जाय) पर पर्यायमें ही रत हैं । (ज्ञान आवरनं) उनसे ज्ञानावरण कर्मका ही बंध होता है ।

भावार्थ—शब्द और ज्ञानमें वाच्य वाचक सम्बन्ध है । जिन शब्दोंसे आत्मज्ञानका परमात्माका बोध हो वे ही शब्द हितकारी हैं । जो शब्द आत्मज्ञानके व परमात्म ज्ञानके लोपक हैं उनके कहनेवालोंको ज्ञानावरणका ही बन्ध होता है । नास्तिकताके वचन, विषय सुखमें फंसानेवाले वचन, कुटुम्बमें रति करानेवाले वचन, बहु धन, बहु परिग्रह एकत्र करानेवाले वचन, सप्त व्यसनोंमें फंसानेवाले वचन, मिथ्यात्व दुष्टकारक वचन जीवोंको मोक्षमार्गसे हटाकर संसारमार्गमें लगानेवाले हैं। जो इन वचनोंका प्रयोग करता है उसको ज्ञानावरणका तीव्र वन्ध पडता है ।

पद अर्थं सब्द सुभावं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान सुह रूवी ।
रागं जन रंजयनं, ज्ञानं आवरन दुक्ख वीयम्मि ॥ ३३८ ॥

अन्वयार्थ—(सब्द सुभावं पद अर्थं) शब्दका यह स्वभाव है जो पदार्थको या वस्तुको व ज्ञानको बोधन करावे (ज्ञान विज्ञान ज्ञान सुह रूवी) श्रुतरूपी शब्दोंका भंडार आगम ज्ञान विज्ञानका बोध करानेवाला होता है (राग जन रंजयनं) यदि वे ही शब्द रागमें, मानवोंके रंजायमान करनेमें अनुरक्त हों तो उनके प्रयोग-कर्ताको (ज्ञान आवरन दुक्ख वीयम्मि) ज्ञानावरणका बन्ध होगा जिससे दुःखोंकी प्राप्ति होगी ।

भावार्थ—शब्दोंको कहनेका व लिखनेका प्रयोजन यह होना चाहिये जो सम्यग्ज्ञान व तत्वज्ञानकी प्राप्ति होसके । बड़े २ आचार्य आगमकी रचना इसी हेतुसे करते हैं । यदि मोक्षमार्गमें लगानेका हेतु होता है तो शब्दोंकी रचना करनेवालेको व भाषण करनेवालोंको ज्ञानावरणका विशेष क्षयोपशम होता है । यदि कोई संसारमार्गवर्द्धक उपदेश देनेमें व कुमार्ग पोषक, हिंसा पोषक, श्रृङ्गाररसवर्द्धक ग्रन्थ, काव्य, नाटक आदि रचनेमें शब्दोंका प्रयोग करता है तो वे शब्द खोटे अभिप्रायसे कहे हुए ज्ञानावरण कर्मका बन्ध कराते हैं, जिससे अज्ञानकी वृद्धि होगी ।

पद रहियं अज्ञानं, सुत उत्तं पज्जाय दिष्टि संदर्स ।
वत तव क्रिय अज्ञानं, ज्ञानं आवरन सरनि संसारे ॥ ३३९ ॥

अन्वयार्थ—(पद रहिय अज्ञान) सम्यग्ज्ञानसे रहित जो कुछ ज्ञान है वह मिथ्याज्ञान है (पज्जाय दिष्टि सदर्स सुत उत्त) इस मिथ्याज्ञानके आधीन होकर पर्यायपर दृष्टि रखते हुए शास्त्र कहा जाता है (वत तव क्रिय अज्ञान) उस शास्त्राधारसे व्रत, तप, क्रिया भी सब मिथ्याज्ञानरूप होती है । (ज्ञान आवरन सरनि संसारे) उनके पालनेपर भी ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है जो संसारमें भ्रमण कराता है ।

भावार्थ—जो मिथ्या शास्त्रोंकी रचना मिथ्याज्ञानके द्वारा की जाती है उससे जगतका बहुत अकल्याण होता है । साधारण जनता उनपर विश्वास करके मिथ्या व्रत, तप, क्रिया पालती है । जैसे उपवास करके फलाहार, मिठाई खाना, रात्रिको भक्षण करना, व्रत करके भी रागरंग गाजेवाजेमें लगे रहना, नाच खेल तमाशोंमें धर्म मान लेना, कायक्लेश देनेवाला तप करना, पंचाग्नि जलाना, गांजा तम्बाकू पीना,

पशुबलिमें धर्म मानना, द्यूत रमनमें शिकार खेलनेमें धर्म मानना, श्रृङ्गारभावकी भक्ति करना आदि जगतमें अनेक क्रियाएँ मिथ्या शास्त्रोंसे ही चली हैं। जो ऐसे शास्त्रोंको रचते हैं व जो इनपर चलते हैं वे सब ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध करते हैं।

पदं च पद वेदंतो, पद दर्स विज्ञान विंदु दसतो।
पद विज्ञान विहीनो, ज्ञानं आवरन निगोय वासम्मि ॥३४०॥

अन्वयार्थ—(पदं च पद वेदन्तो) सम्यग्ज्ञान ही परमात्माके पदका अनुभव कर सक्ता है (पद दर्स विज्ञान विन्दु दसंतो) वह भेदविज्ञान जो आत्माके स्वरूपको भिन्न देखनेवाला है वही सिद्ध पदको देख सक्ता है जो विन्दुसे उपलक्षित है (पद विज्ञान विहीनो) जिसको परमात्मपदका ज्ञान नहीं है वे (ज्ञानं आवरन निगोय वासम्मि) ज्ञानावरण कर्मको बांधकर निगोद वास पाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति विना न भेद विज्ञान होता है न केवलज्ञान होता है न सिद्ध पदका दर्शन होता है। जो लोग अपने ज्ञानको स्वपदके जाननेमें व परमात्माके जाननेमें नहीं लगाते हैं, ज्ञानकी प्राप्तिमें प्रमाद करते हैं, उनके भावोंमें तीव्र आलस्य रहती है। अज्ञानमें ही रंजायमान रहते हैं। अज्ञानसे मनमाना व्यवहार करते हैं। भावोंकी मलीनतासे वे ज्ञानावरण कर्मका ऐसा तीव्र बन्ध करते हैं कि वे एकेन्द्रिय साधारण वनस्पतिकायमें चले जाते हैं, जहां ज्ञान बहुत ही अल्प होता है।

पदविंदं सर्वज्ञं, पदविंद परम केवलं ज्ञानं।
पदविंदेय अनिष्टं, ज्ञान आवरन दुःख वीयम्मि ॥ ३४१ ॥

अन्वयार्थ—(पदविद सर्वज्ञ) ज्ञान सर्वज्ञको पहचानता है (पदविंद परम केवलं ज्ञानं) ज्ञान पद परम केवल ज्ञानको अनुभव करता है (पद अनिष्ट विदेय) यदि ज्ञानपद आत्माको जो अहितकारी है उसका अनुभव करने लगे तो (ज्ञान आवरन दु ख वीयम्मि) ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होगा जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—ज्ञान ज्योति जो हमारेमें है, यदि वह परमात्मा व उसके केवलज्ञान गुणकी भक्ति सम्पन्न है तब तो आत्माका हित है, परंतु यदि वह ज्ञान ज्योति आत्माके अहितकारी मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योगोंके ही प्रपंचमें आसक्त है तो उससे ज्ञानावरणका बन्ध ही होगा। आत्माका इष्ट

कार्य सम्यक्त, व्रत, चारित्र, तप व ध्यान है। इनको छोड़कर जहां सांसारिक प्रपंचमें तल्लीनता है वहां आत्माके बन्ध ही है।

पद विंदं च सहावं, पदर्थं परम अर्थ स सरूवं।
पर पज्जाय सहावं, ज्ञानं आवरन सरनि संसारे ॥ ३४२ ॥

अन्वयार्थ—(पद सहावं च विंद) ज्ञानपद आत्माके स्वभावका अनुभव करता है (पदर्थं परम अर्थ स सरूव) तथा ज्ञानका प्रयोजन परम पदार्थरूप अपने ही आत्माके स्वस्वरूका मनन है (पर पज्जाय सहावं) परंतु वही ज्ञान यदि शरीररूपी पर पर्यायके स्वभावमें रत होजावे तो (ज्ञानं आवरन सरनि संसारे) ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होकर संसारहीमें भ्रमना होगा।

भावार्थ—ज्ञानकी सफलता निज आत्मीक ज्ञानसे व निज आत्मीक ध्यानसे है। यदि ज्ञान कर्मोदयजनित पर्यायोंको ही आत्मा मान ले और उनमें ही आसक्त होजावे—अज्ञानसे मैं रागी द्वेषी हूं, मैं उच्च हूं, मैं नीच हूं, मैं हितकर्ता हूं, मैं अहितकर्ता हूं ऐसा मान ले—परिग्रहके प्रपंचमें ही फंसा रहे, कभी भूलकर भी अपना ज्ञान न पावे तो इस अज्ञानसे ज्ञानावरण कर्मका ही तीव्र बन्ध होगा जो दीर्घकाल भव भ्रमण कराएगा।

पद विंदं परमानन्दं, दिगंगं सर्वज्ञ सुद्ध स सरूवं।
परमानन्दं पज्जायं, ज्ञानावरन दुक्ख वीयम्मि ॥ ३४३ ॥

अन्वयार्थ—(पद विंद परमानन्दं दिगग सर्वज्ञ सुद्ध स सरूवं) ज्ञानज्योति उस परमानन्दमई दिगम्बर सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूपमें लीन अरहन्त भगवानको जानती है (परमानन्दं पज्जायं) यदि वह ज्ञानज्योति पर पर्यायमें आनन्द मानने लगे तो (ज्ञानावरन दुक्ख वीयम्मि) उसे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध हो जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—ज्ञानका यथार्थ स्वरूप यह है कि वह अरहन्त सर्वज्ञ वीतराग परमात्माको भलेप्रकार जाने, जो शरीर सहित होते भी दिशा ही जिनका वस्त्र है अथवा जो अमूर्तीक हैं, दिशा ही जिनका अङ्ग है। भेदविज्ञानके द्वारा परमात्म—स्वरूपका यथार्थ बोध होता है, यदि वह ज्ञान मिथ्या हो शरीर हीमें आपा मानने लग जावे, परमात्माको श्रद्धामें न लावे। शरीरके ही सुखमें लीन हो। शरीरका ही यत्नशील हो। रागद्वेषके वशीभूत हो तो उसे ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध होगा क्योंकि वह ज्ञान-स्वरूपसे बाहर है।

पद विंदं परमेस्टी, इस्टी संयोग कम्म षिपनं च ।
जे पज्जायं सहियं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३४४ ॥

अन्वयार्थ—(पद विन्दं परमेस्टी) ज्ञान ज्योति परमेष्टीको पहचानती है (इस्टी संयोग कम्म षिपनं च) जब उस ज्ञानमें शुद्धात्माके स्वभावका जो परम इष्ट है अनुभव होता है तब कर्मोंकी निर्जरा होती है (जे पज्जायं सहिय) जो शरीररूपी पर्यायमें रत हैं उनको (ज्ञान आवरन दुग्गए पत्त) ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है, वे दुर्गतिमें जाते हैं।

भावार्थ—शुद्धात्माके अनुभवमें उपयोगकी स्थिरता कर्मबन्धनाशक है जबकि शरीरमें रागभाव कर्मबन्धकारक है। पर्यायसे यहां प्रयोजन उन सर्व ही अवस्थाओंसे है जो कर्मोंके उदयके निमित्तसे होती है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत व रागद्वेषादि व गुणस्थानादि ये सर्व शुद्धात्मासे भिन्न अवस्थाएँ हैं इनको अपना मानना यही पर्याय दृष्टि है। इस अज्ञानसे ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध होता है।

पदविंद च उवन्नं, पर्नै परम तत्त परमप्पं ।
इष्टविओय अनिष्टं, ज्ञानं आवरण चउ गए भमनं ॥ ३४५ ॥

अन्वयार्थ—(पदविंदं च उवन्नं , जब भेद विज्ञान ज्योतिका उदय होता है तब (प म तत्त प मप्पं पर्नै) परम तत्व परमात्माके स्वभावमें परिणमन होता है (इष्टविओय अनिष्ट) जब यह उपयोग इष्टवियोग व अनिष्ट संयोग जनित आर्तध्यानमें लय होता है (ज्ञान आवरण चउ गए भमनं) तब ज्ञानावरणका विशेष बंध होकर चारों गतियोंमें जीव भ्रमण करता है।

भावार्थ—भेद विज्ञानके होने पर सम्यग्दृष्टि आत्माके स्वभावमें तल्लीन होता है। जो कोई शरीरासक्त है वह पुत्र, मित्र, स्त्री आदि चेतन व धन मकानादि अचेतन पदार्थोंका वियोग पाने पर परिणा... बहुत ही क्लेशित करता है। इसीतरह जब किसीको अनिष्ट स्त्री, पुत्र, भ्राता, स्वामी व स्थान... संयोग होता है और क्लेशका वेदन होता है तब अनिष्ट संयोग जनित आर्तध्यान होता है। यह आर्त... होना अज्ञान है, इससे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है।

अर्थ च-अर्थ सुद्धं, अर्थति अर्थ सुद्ध परमत्थं ।
अर्थ विरय अनर्थ, ज्ञानं आवरन अनृतं दिट्टं ॥ ३४६ ॥

अन्वयार्थ—(अनर्थ च अर्थ सुद्ध) सर्व पदार्थोंमें मुख्य पदार्थ शुद्ध आत्मा है (अर्थति अर्थ सुद्ध परमत्थं) वही रत्नत्रय स्वरूप पदार्थ है, वही शुद्ध परमार्थ है (अर्थ विरय अनर्थ) जो इस परमार्थसे विपरीत है वह इस अनर्थकारी संसारपर्यायमें मगन है (अनृतं दिट्ट) वह असत्य जगत प्रपंच ही देखा जाता है (ज्ञानं आवरन) इससे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होता है ।

भावार्थ—शुद्ध पदार्थ श्री अरहंत व सिद्ध परमात्मा है या अपना ही आत्मा है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र ये रत्नत्रय धर्म आत्माका स्वभाव है । जो इस भेदको नहीं पहचानता है और संसारके शरीर, धन, कुटुम्बादि पदार्थोंमें मगन है वह सच्चे ज्ञानसे दूर रहनेके कारण तीव्र ज्ञानावरण कर्मका बन्ध करता है ।

अर्थ ति अर्थ सुद्धं, सम सम्पूर्ण ज्ञान समयं च ।
ज्ञान विहीन अनर्थ, पज्जय सहकार ज्ञान आवरनं ॥ ३४७ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थ ति अर्थ सुद्धं) रत्नत्रय स्वरूप शुद्ध पदार्थ है (सम संपूर्ण ज्ञान समयं च) वही समतासे पूर्ण ज्ञानमई पदार्थ है (ज्ञान विहीन अनर्थ) जो इस आत्माके यथार्थ ज्ञानसे बाहर है वही अनर्थमें मगन है, मिथ्यादृष्टी अज्ञानी है (पज्जय सहकार ज्ञान आवरन) शरीरमें रागभावके कारण ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध होता है ।

भावार्थ—यह आत्मा निश्चयसे रत्नत्रय स्वरूप व परम साम्यरूप सत् पदार्थ है । जो इस ज्ञानको नहीं जानता है वह अज्ञानी मिथ्या दर्शनमें रत होनेसे, संसारकी मायामें फँस जानेसे और निरंतर अज्ञानकी भावना करनेसे ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध करता है ।

अर्थ अवयास अर्थ, अवयासं सुद्ध विमल ज्ञानस्य ।
अवयास रहिय अज्ञानं, आवरन नरय वीयम्मि ॥ ३४८ ॥

अन्वयार्थ—(अर्थ अवयास अर्थ) जो सर्वव्यापक पदार्थ है वह ज्ञानरूपी पर्याय है (अवय स सुद्ध विमलज्ञानस्य शुद्ध आवरण रहित ज्ञानमें आकाशके समान शक्ति है। सर्व लोकलोक निक ालवर्ती पर्यायोंको जान सत्ता है (अवयास रहिय अज्ञानं) जिसकी ऐसी समझ हो कि ज्ञानमें ऐसा अवकाश नहीं होता है है (ज्ञानं आवरन नरय वीयम्मि) वह ज्ञानावरण कर्म बांधकर नरकका बीज बोता है।

भावार्थ—आत्माका मुख्य स्वभाव ज्ञान है। उसमें लोकाकाशके सर्व पदार्थोंकी सर्व पर्यायें अवकाश पासक्ती हैं। ऐसे निर्मल ज्ञानका जिसको विश्वास नहीं है, वह अपनेको अल्पज्ञानी ही म न ा है वह विषयभोगोंका करना ही अपना कर्तव्य जानता है। इस अज्ञानसे ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होजाता है।

अवयासं सुद्ध सहावं, अवयासं परम भाव उवलद्धं।
अवयास कम्म पिपनं, अवयासं रहिय ज्ञान आवरनं ॥ ३४९ ॥

अन्वयार्थ—(अवयासं सुद्ध सहाव) सर्वको जाननेवाला आत्माका शुद्ध स्वभाव है (परम भाव अवयास उवलद्ध) जिसने ऐसे उत्कृष्ट भावको अर्थात् ज्ञान स्वभावको पहचान लिया है (अवयास कम्म पिपनं) उसका ज्ञान कर्मोंको क्षय करनेवाला है (अवयास रहिय ज्ञान आवरन) जिसको ऐसे व्यापक ज्ञानका श्रद्धान नहीं है वह मिथ्यादृष्टी ज्ञानावरण कर्मको बांधता है।

भावार्थ—यह आत्मा परमात्माके समान शुद्ध ज्ञानका धारी है ऐसा जिसको श्रद्धान है वह सम्यग्दृष्टी है। जिसको ऐसा निश्चय नहीं है वह बहिरात्मा मिथ्याज्ञानी है। वह संसारके ही कार्योंमें तन्मय रहता है। अतएव ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध करता है।

अवयास नंतनंतं, अनन्त चतुस्टय विमल सभावं।
अवयास हीन पुरिया, ज्ञानं आवरन सरनि संसारे ॥ ३५० ॥

अन्वयार्थ— अवयास नंतनंत) ज्ञान अनन्त है उसमें अनन्त पदार्थोंके जाननेका अवकाश है (अनन्त चतुस्टय विमल सभावं) ऐसा अवकाश जिसके होता है वह अनन्त चतुष्टय रूप विमल स्वभावी परमात्मा है (अवयास हीन पुरिसा) जो पुरुष इस आत्माके व आत्माके निर्मल ज्ञानके श्रद्धानसे शून्य हैं वे मिथ्यादृष्टी (ज्ञानं आवरन सरनि संसारे)-ज्ञानावरण कर्मको बांधकर संसारमें भ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—परमात्माके निर्मल ज्ञानमें ऐसी शक्ति है जो वर्तमान लोकालोक जैसे अनन्त भी लोकालोक हों उन सबको क्रम रहित जान सके। जो ऐसी ज्ञानकी शक्तिको नहीं पहचानते हैं, वे शरीरके रागी इंद्रियजनित ज्ञानमें ही श्रद्धानी हैं। वे इंद्रियोंसे पदार्थोंको जानकर रागद्वेष करते हैं। पुद्गलमें मग्नता होनेसे वे ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध कर लेते हैं।

सदर्थ अप्प सहावं, सहकारेन सदर्थ विज्ञानं।
अनृत अचेत अनर्थ, अज्ञान कस्ट ज्ञान आवरनं ॥ ३५१ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहाव सदर्थ) आत्माका स्वभाव ही सत्य पदार्थ है (सहकारेन सदर्थ विज्ञान) इस श्रद्धानकी सहकारतासे ही सत्य पदार्थका विशेष ज्ञान होता है (अनृत अचेत अनर्थ) जो कोई मिथ्या अज्ञान व असत् पदार्थके रागी हैं (अज्ञान कस्ट ज्ञान आवरनं) उनको अज्ञानका बड़ा दुःख होता है। वे ज्ञानावरण कर्मका तो तीव्र बन्ध करते ही है।

भावार्थ—मैं आत्मा शुद्ध ज्ञान स्वभावी हूँ यह श्रद्धान व यही मनन ज्ञानको बढ़ाते २ केवलज्ञानमें पहुँचा देता है। परन्तु जिसको यह श्रद्धान नहीं है वह जगतके नाशवंत जूठे अज्ञान स्वरूप स्त्री, पुत्र, मित्र, ग्राम, धनादिमें लीन होते हुए अपने अज्ञानसे बड़ा कष्ट पाते हैं। पदार्थोंके प्राप्त करनेकी चितामें वे धर्म कर्म छोड़ देते हैं। यदि ऐसा उद्यम करते हुए भी धन लाभ नहीं होता है तो बड़ा कष्ट पाते हैं। यदि धनका, स्त्रीका, पुत्रका, पुत्रीका वियोग होजाता है तो महान् कष्ट पाते हैं। अज्ञानसे दुःख बढ़ता है। ज्ञानीके यथार्थ विचार है। वह इष्टवियोगादिमें समताभाव रखता है। ऐसे मोही जीव ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध करते हैं।

सहकार अर्थ स सहावं, सहजोपनीत सहाव सत् अर्थ।
अनेय विभ्रम सहियं, ज्ञानं आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३५२ ॥

अन्वयार्थ—(स सहाव अर्थ सहकार) अपने स्वभावमई पदार्थकी मददसे (सहजोपनीत सहाव सत अर्थ) सहज ही प्रकाशने योग्य स्वभावमई सत् पदार्थ आत्मा झलक जाता है (अनेय विभ्रम सहियं) जिनको आत्माके

स्वरूपमें भ्रम होता है व अनेक शंकाएँ होती हैं, निर्णय नहीं कर पाते, ज्ञानको यथार्थ नहीं कर पाते (ज्ञान आवरन दुग्गए पत्तं) वे ज्ञानावरणसे दुर्गतिके पात्र होते हैं।

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक केवलज्ञान सहज ज्ञान है। आत्माका अनुभव करनेसे वह ज्ञान आपोआप सहजमें प्रगट होजाता है। जिनको आत्माके स्वरूपमें भ्रम है, शङ्का है वे जीवनभर अज्ञानी रहते हुए ज्ञानावरणका तीव्र बंध करते हैं।

सव्दं सदर्थ रूवं, सव्दं षिपिओय कम्म तिविहेन ।
सव्दं अलष्य लष्यं, सव्दं अनिस्ट ज्ञान आवरनं ॥ ३५३ ॥

अन्वयार्थ—(सव्दं सदर्थ रूवं) शब्दोंसे सत् पदार्थ आत्माका स्वरूप मालूम होता है (सव्दं षिपिओय कम्म तिविहेन) ॐ ह्रीं आदि शब्दोंकी सहायतासे आत्माका मनन करते हुए मन वचन कायकी गुप्तिसे जब भावोंमें वीतरागता झलकती है तब कर्मोंकी निर्जरा होजाती है (सव्द अलष्य लष्य) शब्दकी सहायतासे ही जो अलक्ष्य आत्मा है उसका लक्ष्य होजाता है (सव्द अनिस्ट ज्ञान आवरनं) यदि सम्यग्ज्ञान वर्द्धक शब्दोंको न बोलकर संसारवर्द्धक अनिष्ट शब्दोंका उच्चारण होगा तो अज्ञानके कारण ज्ञानावरण कर्मका बन्ध होगा।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा अनुभवगम्य है तथापि शास्त्रोपदेश व गुरुपदेश द्वारा जो योग्य शब्द सुनने व देखनेमें आते हैं उनके अर्थपर मनन करनेसे आत्माके स्वरूपका बोध होजाता है। तथा अनेक मन्त्रोंको जपनेसे व मन्त्रपर ध्यान लगानेसे अभ्यास करते करते धीरे २ वह आत्मा जो मन वचन कायसे अलक्ष्य है सो लक्ष्यमें आजाता है। शब्दोंके द्वारा आगम पढ़नेसे व तत्वका विचार करनेसे जितने अंश वीतरागता होती है, कर्म क्षय होजाते हैं। शब्दोंमें ऐसी शक्ति है जो उनका सदुपयोग किया जावे तो अपना उपकार होता है। परंतु यदि मिथ्या उपदेश सुना जावे व मिथ्या शास्त्र पढे जावें व मिथ्या उपदेश दिया जावे व संसारका पोषण किया जावे तो उन शब्दोंके द्वारा अपने आत्माका बुरा होता है व ज्ञानावरणका तीव्र बन्ध होता है।

वयनं च कम्म जिनियं, वयनं च सुद्ध सहाव निम्मलयं ।
वयनं सास्वय रूवं, अनिस्ट वयनं च ज्ञान आवरनं ॥ ३५४ ॥

अन्वयार्थ—(वयनं च कम्म जिनियं) जिनेन्द्रके वचनोंका मनन करनेसे कर्मोंको जीता जाता है (वयनं

च सुद्ध सहाव निम्मलयं) वचनोंको जपनेसे व उनके अर्थपर विचार करनेसे शुद्ध स्वभाव निर्मल होजाता है (वयनं सास्वय रूवं) ये जिनवचन प्रवाहकी अपेक्षा शाश्वत-अविनाशी हैं। (अनिस्ट वयन च ज्ञान आवरन) परंतु जो संसारवर्द्धक वचनोंको सुना, पढ़ा जावे व उनके अर्थपर श्रद्धा लाई जावे व तदनुकूल आचरण किया जावे तो ज्ञानावरण कर्मका तीव्र वन्ध होता है।

भावार्थ—जिनेन्द्रकी वाणीके प्रतापसे जो यथार्थ तत्वका अनुभव करते हैं वे कर्मोंका क्षय करते हैं। उनका ज्ञान स्वभाव शुद्ध रूपसे प्रकाशित होता जाता है। यह जिनवाणी सदासे ही जगतमें विद्यमान है इसलिये शाश्वत है। विदेह क्षेत्रोंमें सदा ही तीर्थंकर विहार करते रहते हैं। कुशास्त्रोंके प्रतापसे जीवका बुरा होता है। वह मूढतासे सराग व कपाय पोपनेवाले धर्मको ग्रहण कर लेता है, अज्ञानके कारण तीव्र ज्ञानावरणका वन्ध करता है।

वयनं च ऋतं वयनं, ऋत सहकार अनृतं विरयं।
जे अनृत उवएसं, ज्ञानं आवरन दुक्ख वीयम्मि ॥ ३५५ ॥

अन्वयार्थ—(वयन च ऋतं वयन) वचन वे ही हितरूप हैं जो सत्य शास्त्रोक्त वचन हों। (ऋत सहकार अनृतं विरयं) सत्य वचनोंको जान लेनेसे मिथ्याज्ञान चला जाता है। (जे अनृत उवएस) जो मिथ्या उपदेश करते हैं (ज्ञान आवरन दुक्ख वीयम्मि) वे ज्ञानावरणको बांधकर दुःखोंका बीज बोते हैं।

भावार्थ—श्री सर्वज्ञ वीतराग भगवानकी परम्परासे जो ऋपिगणोंने शास्त्रोंकी रचना की है उनमें यथार्थ आत्म-कल्याणकारक उपदेश है। उस उपदेशको मनन करनेसे मिथ्याज्ञान व मिथ्या श्रद्धान चला जाता है। उनके ज्ञानावरणका क्षयोपशम होनेसे ज्ञानका प्रकाश बढ़ता है। परन्तु जो मिथ्यात्वका उपदेश करते हैं व जो उनपर श्रद्धान लाते हैं, वे तीव्र ज्ञानावरण कर्मका वन्ध करके दुःखोंका बीज बोते हैं।

ज्ञानं च विमल ज्ञानं, ज्ञानं सहकार कम्म संपिपनं।
पज्जायं न हु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन मुक्ति गमनं च ॥३५६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च विमल ज्ञान) ज्ञान वही है जो सत्य निर्मल सम्यग्ज्ञान हो (ज्ञान सहकार कम्म सपिपन) सम्यग्ज्ञानके होनेपर आत्मज्ञानका अनुभव होता है जिससे कर्मोंका क्षय होजाता है (पज्जाय नहु पिच्छदि)

तब वह आत्माका यथार्थ ज्ञान कर्मजनित पर्यायपर दृष्टि नहीं रखता है (ज्ञान सहावेन मुक्तिगमनं च) ऐसे आत्मज्ञानकी सहायतासे यह जीव मुक्तिको पाता है।

भावार्थ—भेदविज्ञान केवलज्ञानका कारण है, भेदविज्ञान दोइजका चन्द्रमा है, केवलज्ञान पूर्णमासीका चन्द्रमा है, भेदविज्ञानके प्रतापसे आत्मामें आत्मा ठहरता है तब आत्मानुभव झलकता है। यही यथार्थ धर्मध्यान तथा यही शुक्लध्यान है। इसी ज्ञानपूर्वक ध्यानसे कर्मोंका क्षय होकर यह जीव अर्हंत परमात्मा होता है, फिर सिद्ध परमात्मा होजाता है। ऊपरके कथनोंमें बताया है कि जो आत्मज्ञानसे शून्य हो अन्य शरीरादिमें आपा मानके सत्य धर्मसे बाहर रहते हैं, मिथ्याज्ञानकी आराधना करते हैं, सम्यग्ज्ञानका निरादर करते हैं उनके ज्ञानावरण कर्मका तीव्र बन्ध पड़ता है, जिससे वे नर्क व निगोदमें जाकर मूढ़ व अल्पज्ञानी होजाते हैं। अतएव ज्ञानीको ज्ञानावरणके बन्धके कारणोंसे बचना चाहिये और ज्ञानके प्रकाशके कारणोंको आचरणमें लाना चाहिये। श्री तत्वार्थसारमें अमृतचन्द्र आचार्यने कहा है—

मात्सर्यमन्तरायश्च प्रदोषो निह्नवस्तथा। आसादनोपघातौ च ज्ञानस्योत्सूत्र—चोदितौ ॥ १३—४ ॥
अनादरार्थश्रवणमालस्य शास्त्रविक्रय। बहुश्रुताभिमानेन तथा मिथ्योपदेशनम् ॥ १४ ॥
अकालाधीतिराचार्योपाध्यायप्रत्यनीकता। श्रद्धाभावोऽप्यनभ्यासस्तथा तीर्थोपरोधनम् ॥ १५ ॥
बहुश्रुतावमानश्च ज्ञानाधीतेश्च शाठ्यता। इत्येते ज्ञानरोधस्य भवन्त्यास्रवहेतव ॥ १६ ॥

भावार्थ—नीचे लिखे भावोंसे व कर्मोंसे ज्ञानावरण कर्मका आस्रव तथा बन्ध होता है। (१) ज्ञानियोंसे ईर्षाभाव रखना, (२) ज्ञानके प्रकाशमें विघ्न करना, (३) उत्तम ज्ञानसे भी बुरा मानना, (४) ज्ञान होते हुए भी अपने ज्ञानको छिपाना, (५) ज्ञानियोंका निरादर करके ज्ञान प्रकाशसे रोकना, (६) सत्य ज्ञानका मिथ्या युक्तियोंसे खण्डन करना, (७) अनादरके साथ शास्त्रको सुनना, (८) ज्ञान प्राप्तिमें आलस्य रखना, (९) शास्त्र बेचकर धनशाली होनेकी इच्छा रखना, (१०) बहुत शास्त्रज्ञाता होनेपर अभिमानसे मिथ्या उपदेश करना, (११) अकालमें पढना, जैसे सामायिकके समय, संध्याके समय व अन्य ऋतु खराब होनेपर, तूफानके समय, भूकम्पके समय आदि अकालमें, (१२) आचार्य तथा उपाध्यायसे विरुद्ध चलना व कहना, (१३) शास्त्रमें श्रद्धा नहीं रखना, (१४) शास्त्रका अभ्यास न करना, (१५) धर्मतीर्थका प्रचार रोकना, (१६) बहुत शास्त्रोंके जाननेका घमंड रखना, (१७) ज्ञानके पढ़नेमें मूर्खता इत्यादि।

दर्शनावरण कर्मका बंध व फल।

दर्सन अनन्त दर्सं, दर्सन विन्नान ज्ञान सहकारं ।
दर्सन भेय चवक्कं, दंसन दंसेइ अप्प परमप्पं ॥ ३५७ ॥

अन्वयार्थ—(दर्सन अनंत दर्सं) दर्शन भी आत्माका गुण है। यह अनन्त पदार्थोंको एकसाथ देखनेवाला है (दर्सन विन्नान ज्ञान सहकारं) यह दर्शनोपयोग ज्ञानका सहकारी है (दर्सन भेय चवक्कं) दर्शनोपयोगके चार भेद हैं (दंसन दसेइ अप्प परमप्पं) दर्शनोपयोग आत्मा तथा परमात्माको समानपने देखता है।

भावार्थ—अब दर्शनोपयोग व दर्शनावरण कर्मका वर्णन करते हैं–ज्ञान जब पदार्थको विशेष जानता है तब दर्शन सामान्यपने जानता है। विषय और आत्माकी चेतन परिणतिकी जब ज्ञानके लिये प्रथम सन्मुखता होती है। जबतक पदार्थका आकार नहीं जाना गया तबतक दर्शनोपयोग होता है। ऐसा ही द्रव्यसंग्रहमें कहा है:—

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टु मायार । अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णए समये ॥ ४३ ॥

भावार्थ—जो आकारको न जानकर पदार्थोंका सामान्य ग्रहण हो जिसमें पदार्थका विशेष न जाना जावे उसको आगममें दर्शन कहा है। मतिज्ञानके पहले दर्शन काम करता है। दर्शनोपयोगके चार भेद हैं–

चक्षु दर्शन—जो चक्षु द्वारा सामान्यपने जानता है, चक्षुद्वारा मतिज्ञानके पहले होता है।

अचक्षु दर्शन—जो चक्षुको छोड़कर अन्य चार इन्द्रिय तथा मन द्वारा सामान्यपने ग्रहण करता है। यह चक्षु सिवाय अन्य इंद्रिय व मन द्वारा मतिज्ञानके पहले होता है।

अवधि दर्शन—सम्यग्दृष्टी जीव जब प्रत्यक्ष, भूत व भावी पदार्थोंको जानते हैं तब उस ज्ञानके पहले जो सामान्य ग्रहण होता है वह अवधि दर्शन है।

केवल दर्शन—जो केवज्ञानके साथ२ दर्शनावरण कर्मके सर्वथा क्षय होनेपर प्रकाशमान होता है। जैसे–ज्ञान विशेषपने आत्मा व परमात्माको जानता है, दर्शन सामान्यपने उनको ग्रहण करता है।

चषु दरसति सुद्धं, अचष्य दर्सन दर्सयति सुद्धं च ।
अवधे अवहि संजुत्तं, केवल दंसेइ नन्त नन्ताइं ॥ ३५८ ॥

अन्वयार्थ—(चपु सुद्ध दरसति) चक्षुदर्शन सामान्यपने देखता है (अचष्य दर्सन दर्सयति सुद्धं च) अचक्षु दर्शन भी सामान्यपने देखता है (अवधे अवहि सजुत्त) अवधिदर्शन अवधिज्ञानके समय पहले होता है (केवल दंसेइ नंन नंताइ) केवलदर्शन अनन्तानन्त पदार्थोंको देखता है।

भावार्थ—इस गाथामें चार दर्शनका स्वरूप बताया है ।

चषुं च सुद्ध भावं, चषुं च विमल दिस्टि सद्भावं ।
संसार सरनि विरयं, पज्जय रत्तं च चषु आवरनं ॥ ३५९ ॥

अन्वयार्थ—(चपु च सुद्ध भावं) यदि चक्षु शुद्ध भावसे आत्मज्ञानोपयोगी पदार्थोंको देखनेको सन्मुख होता है (चपु च विमल दिस्टि सद्भाव) यदि चक्षु निर्मल आत्माके स्वभावको देखनेमें उद्देश्यवान होती है (संसार सरनि विरय) संसार मार्गसे विरक्तपने जहां चक्षुका उपयोग होता है वही यथार्थ चक्षु दर्शन है (पज्जय रत्तं च चपु आवरनं) यदि शरीर व शरीर सम्बन्धी विषयभोगोंमें चक्षु रागी है तो चक्षु दर्शनावरण कर्मका बन्ध होता है ।

भावार्थ—चक्षु प्राप्त करनेका यही सदुपयोग है कि जिनशास्त्रोंको देखा जावे, जैन महात्माओंका दर्शन किया जावे, व उनही स्थानोंको व वस्तुओंको देखा जावे जिससे मोक्षमार्गकी तरफ प्रवृत्ति होसके। यही यथार्थ चक्षुदर्शनका उपयोग है । जो कोई अज्ञानी ऐसा न करके कुशास्त्रोंके शृंगाररस नाटकोंको, खेल तमाशोंको, कुत्सितभाव करनेवाले स्थानोंको, रागवर्द्धक स्त्रियोंके रूपोंको व पांचों इंद्रियोंके भोग्य पदाथाको देखा करता है वह चक्षुका दुरुपयोग करता है । उसके दर्शनावरण कर्मका बन्ध होता है ।

वरन विसेस न दिस्टं, नहु दिट्ठं असुद्ध भाव अनिस्टं ।
इस्ट संजोई दिट्ठं, पर्जय रूवं च चषु आवरनं ॥ ३६० ॥

अन्वयार्थ—(वरन विसेस न दिस्टं) जो चक्षु विशेष रागवर्द्धक वर्णोंको नहीं देखती है (असुद्ध भाव अनिस्टं नहु दिट्ठ) अशुद्ध भावको उत्पन्न करनेवाले अहितकारी पदार्थोंको नहीं देखती है (इस्ट संजोई दिट्ठं) आत्माको

अहितकारी पदार्थोंको ही देखती है वही चक्षुदर्शन है (पर्जय रूवं च चषु आवरन) यदि चक्षु शरीरके देखनेमें आसक्त है तो उससे चक्षुदर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा।

भावार्थ—चक्षु होनेका सदुपयोग यही है जो उससे रागद्वेष मोहवर्द्धक चेतन अचेतन पदार्थोंको न देखा जावे। यदि नानाप्रकारके सुन्दर बाग, महल, किले आदिको देखा जायगा तो राग बढ़ेगा। यदि वेश्यादिको व स्त्रियोंके मनोहर चित्रोंको व परस्त्रियोंको व उनके वस्त्राभूषणोंको देखा जायगा तो राग बढ़ेगा। यदि चैत्यालयोंको, शास्त्रोंको, साधुओंको, धर्मस्थानोंको, तीर्थोंको देखा जायगा तो वैराग्य बढ़ेगा। सम्यग्दृष्टीको चक्षुका सदुपयोग करना चाहिये। अज्ञानी चक्षुका उपयोग रागवर्द्धक पदार्थोंके देखनेमें करते हैं। शरीरोंको, वस्त्राभूषणोंको, सुन्दर नगरादिको, नाटकादिको देखा करते हैं जिनसे भाव बिगड़ जाते हैं। तब वे दर्शनावरण कर्मका बन्ध करते हैं जिसके फलसे चक्षुका ही मिलना कठिन होगा।

चषुं विमल सहावं, दंसन ज्ञानेन अनुमोयं संजुत्तं।
अनुमोय अन्तरियं, चषुं आवरन दुग्गए पत्तं॥ ३६१॥

अन्वयार्थ—(चषुं विमल सहावं) चक्षु दर्शनका विमल स्वभाव यह होना चाहिये जो (दसन ज्ञानेन अनुमोयं सजुत्त) दर्शन ज्ञान गुणधारी आत्माके स्वभावमें अनादिका बोध हो, ऐसे शास्त्रोंको व सद्गुरुओंको देखा जावे (अनुमोयं अन्तरिय, यदि आत्मानन्दके भीतर अन्तराय डाला जावे, अर्थात् आत्मज्ञान वर्द्धक शास्त्रोंको व अल्पज्ञानी गुरुओंको न आप देखें न दूसरोंको देखने दें तो (चपु आवरन दुग्गए पत्तं) चक्षु दर्शनावरणका बन्ध होगा और यह जीव कुगति जाकर चक्षु रहित होगा।

भावार्थ—सच्चा चक्षुका काम यही होना चाहिये जो आत्मज्ञानके आनन्द देनेवाले कारणोंका दर्शन किया जावे। जो कोई शास्त्रावलोकनमें, धर्मतीर्थके दर्शनमें, चैत्यालय दर्शनमें, सद्गुरुके दर्शनमें रोकते हैं व उनका नाश करते हैं व बिगाड़ते हैं, ऐसे विघ्नकर्ता चक्षु दर्शनावरण कर्मका बन्ध करते हैं।

चषुं च दिस्टि इस्टं, अतिंदी सहकार ज्ञान सहकारं।
दंसन सुद्ध अनुमोयं, दंसन आवरन पज्जाय संदिट्ठं॥ ३६२॥

अन्वयार्थ—(चषुं च दिस्ट इस्ट) चक्षुको आत्म–हितकारी पदार्थोंको ही देखना चाहिये (अतिन्दी सहकार ज्ञान सहकार) जिससे ऐसे ज्ञानकी प्राप्ति हो जिससे अतीन्द्रिय आनन्दका स्वाद पासके (सुद्ध दंसन अनुमोय) जिससे शुद्ध सम्यग्दर्शनकी अनुमोदना की जावे (दर्शन आवरन पज्ज य सदिट्ठ) यदि शरीरके रागवर्द्धक पदार्थोंको देखा जावेगा तो दर्शनावरणका बन्ध होगा।

भावार्थ—चक्षु होनेका यही फल है जो अध्यात्म ग्रन्थोंका अवलोकन किया जावे जिससे आत्मानन्दका लाभ हो। शरीरमें राग बढानेवाले शास्त्रोंको व पदार्थोंको देखना चक्षु दर्शनावरणके बन्धका कारण है।

दंसेई मोष मग्गं, मल रहिओ सुद्ध दंसनं विमलं।
असत्य असरन तिक्तं, दंसन सहकार कम्म विलयंति ॥ ३६३ ॥

अन्वयार्थ—(मोषमग्गं दसेइ) चक्षु दर्शनसे मोक्षमार्ग बतानेवाले ग्रन्थोंको देखना चाहिये (मल रहिओ सुद्ध विमल दंसनं) जिससे दोष रहित निर्मल सम्यग्दर्शनका लाभ होसके (असत्य असरन तिक्त , और इस मिथ्या अशरण संसारका त्याग होसके (दंसन सहकार कम्म विलयति) ऐसे दर्शनोपयोगकी मददसे कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—चक्षु दर्शनसे मोक्षमार्ग साधक शास्त्रोंको देखकर अपनी श्रद्धाको, अपने ज्ञानको व अपने चारित्रको निर्मल करना चाहिये। आत्मध्यानकी विशेष योग्यता बढानी चाहिये जिससे कर्मोंका क्षय हो। शास्त्रोंके देखनेसे भी उपयोग रमनेसे भी तप होता है और कर्म झड़ते हैं।

अचष्यं दंसन उत्तं, सव्द सहकार ज्ञान विज्ञानं।
कम्म मल सुयं च षिपनं, अचषु दर्सन दर्सए सुद्धं ॥ ३६४ ॥

अन्वयार्थ—(अचष्य दंसन उत्त) अब अचक्षु दर्शनको कहते हैं (सव्द सहकार ज्ञान विज्ञानं) शब्दोंकीसे भेद विज्ञानको प्राप्त करना योग्य है (कम्म मल सुयं च षिपनं) आत्मानुभव होते ही कम मल स्वयं लगता है (अचषु दर्सन दर्सए सुद्धं) अचक्षु दर्शन सामान्यपने देखता है।

[भा]वार्थ—अचक्षु दर्शन चक्षुको छोड़कर अन्य इंद्रिय व मन द्वारा सामान्यपने देखता है। जैसे शब्दको [सुन]ते हुए पहले अचक्षुदर्शन होगा पीछे शब्दका मतिज्ञान होगा, फिर शब्द द्वारा श्रुतज्ञान होगा

अतएव जिन शास्त्रोंके ज्ञानसे भेदविज्ञानका लाभ होता है उन शास्त्रोंके देखनेमें यह अचक्षु दर्शन सहकारी है। भेदविज्ञानसे आत्मानुभव होता है, आत्मानुभवसे कर्मोंका क्षय होता है। ऐसा यह अचक्षुदर्शन यदि सदुपयोगमें लाया जावे तो परम उपकार करता है।

दंसन लोयालोयं, दंसन दंसेइ मुक्ति सहकारं।
पज्जायं पर रत्तं, दंसन आवरन सरनि संसारे ॥ ३६५ ॥

अन्वयार्थ—(दसन लोयालोयं) दर्शन लोक अलोकको देख सक्ता है (दसन दसेइ मुक्ति सहकार) अचक्षुदर्शन मुक्ति प्राप्तिमें सहकारी शास्त्रोंको देख सक्ता है तब ही यह सफल है (प पज्जायं रत्तं) यदि वह दर्शन शरीरादि व रागादि पर पर्यायमें अनुरक्त हो (दंसन आवरन समारे सरनि) तो दर्शनावरण कर्मका बंध होकर संसारमें भ्रमना होगा।

भावार्थ—केवलदर्शन यद्यपि सर्वदर्शी है तथापि अचक्षुदर्शन भी मोक्षमार्गका सहकारी है। यदि जिनवाणीको व गुरुके उपदेशको सुननेमें अचक्षुदर्शनको लगाया जावे तो यह आत्माका परम उपकारक है परन्तु यदि रागवर्द्धक विकथा, नाटक, खेल, तमाशोंमें इसे लगाया जावे, चारों इंद्रियोंके भोगोंमें व मनके असद्विचारोंमें इसे परणमाया जावे तो अशुभ भावनाके फलसे दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा जिससे कर्णद्वारा या घ्राण द्वारा या रसना द्वारा दर्शनकी शक्तिसे विहीन एकेंद्रिय, द्वेन्द्रियादिमें उत्पन्न होना होगा।

दंसन अनन्त रूवं, दंसन दिट्ठी च कम्म पिपिऊनं।
यदि पज्जय अनुरत्तं, दंसन आवरन वेंदिया पत्तं ॥ ३६६ ॥

अन्वयार्थ—(दसन अनन्त रूव) यद्यपि केवलदर्शन अनन्त पदार्थोंको देखनेवाला है तथापि (दसन दिट्ठी च कम्म पिपिऊन) अचक्षुदर्शनके द्वारा व शास्त्रोंके सुनने व तत्व मनन करनेसे कर्मोंका क्षय होता है (यदि पज्जय अनुरत्त) परन्तु यदि शरीरादि पर्यायमें लीन किया जाय तो (दंसन आवरन वेंदिया पत्त) दर्शनावरण कर्म बंध जायगा जिससे द्वेन्द्रियमें जन्म होगा।

भावार्थ—यदि कोई अचक्षुदर्शनका सदुपयोग मोक्षमार्गके सहकारी कार्योंमें करे तो कर्मोंकी निर्जरामें यह सहकारी होगा, स्पर्शइंद्रिय द्वारा धर्मस्थानोंकी यात्रा करे, भक्ति करे, दंडवत् प्रणाम करे, कुशीलके

कारणोंको न स्पर्शे। रसनाइंद्रिय द्वारा शुद्ध भोजन राग रहित भक्षण करे। घ्राणइंद्रिय द्वारा पदार्थकी परीक्षा करे, रागभावमें न लीन हो। कर्ण इंद्रिय द्वारा तत्वोपदेश सुने, मनसे तत्वका मनन करे तो यह अचक्षुदर्शन मोक्षमार्गमें सहकारी होजायगा, परन्तु यदि अन्याययुक्त कुशीलके स्पर्शमें, अभक्षके भक्षणमें, रागवर्द्धक पदार्थोंके सूंघनेमें, रागवर्द्धक कुत्सित शब्दोंके सुननेमें, अपध्यानमें अचक्षुदर्शनको उपयुक्त किया जायगा तो दर्शनावरण कर्मका ऐसा बंध पड़ जायगा कि यह प्राणी परभवमें मन रहित, कर्ण रहित, चक्षु रहित, घ्राण रहित द्वेन्द्रिय पर्यायमें लट केंचुआ आदि पैदा होजायगा।

दंसेई तिहुवनग्गं, दंसन ज्ञानं च अनुमोय संजुत्तं।
यदि पज्जाय सुभावं, दंसन आवरन सरनि संसारे ॥ ३६७ ॥

अन्वयार्थ—(दंसेई तिहुवनग्गं दसन ज्ञानं च अनुमोय संजुत्तं) केवलदर्शन तीन लोकके अग्रभागमें विराजित अनंतदर्शन, अनन्तज्ञान व परमानन्द सहित श्री सिद्ध भगवानको सामान्यपने देखता है (यदि पज्जाय सुभावं) यदि दर्शनोपयोग शरीरकी ओर रागी हो तो (दंसन आवरन सरनि संसारे) दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा जिससे संसारमें भ्रमण होगा।

भावार्थ—यदि दर्शनोपयोग श्री सिद्ध भगवानको केवलदर्शनसे या अचक्षुदर्शनसे जान रहा है तो आत्माका परम हित है। परन्तु यदि दर्शनोपयोग इन्द्रिय भोग्य पदार्थोंके भीतर राग सहित उपयुक्त हो, जिससे सांसारिक भाव बढे तो संसारमें मग्नताके अभिप्रायसे प्राणीके दर्शनावरण कर्मका बंध होगा।

दंसन षिपनिक रूवं, दंसन सहकार कम्म विलयंति।
यदि पज्जाये रत्तं, दंसन आवरन सरनि संसारे ॥ ३६८ ॥

अन्वयार्थ—(दसन षिपनिक रूवं) दर्शन क्षायिक भाव रूप है अर्थात् केवलदर्शन दर्शनावरणके सर्वथा क्षयसे प्रगट होता है (दंसन सहकार कम्म विलयति) इसकी सहायतासे शेष घातीय कर्म क्षय होजाता है। (यदि पज्जाए रत्त) यदि शरीर पर्यायमें राग सहित वर्तन करे तो (दंसन आवरन सरनि संसारे) दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा जो भ्रमण कराएगा।

भावार्थ—केवलदर्शन क्षायिकभाव आत्माको पूर्ण शुद्ध कर देता है वही अशुद्ध व क्षयोपशम रूप

दर्शन यदि इंद्रिय सम्बन्धी पदार्थोंके देखने व जाननेमें राग सहित उपयुक्त होगा तो दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा।

दंसन विमल सहावं, ज्ञान विज्ञान दंसनं सुद्धं।
संसरनि भाव सहकारं, दंसन आवरन दुक्ख संतत्तं ॥३६९॥

अन्वयार्थ—(दंसन विमल सहावं) निर्मल वीतराग स्वभाव दर्शनोपयोग (सुद्धं ज्ञान विज्ञान दंसनं) शुद्ध ज्ञानके धारी आत्माका दर्शन करता है (संसरनि भाव सहकारं) परन्तु जो दर्शनोपयोग संसारके भावोंमें अनुरक्त होता है (दंसन आवरन दुक्ख संतत्तं) वह दर्शनावरण कर्मका बन्ध करता है जिसके फलसे यह जीव दुःखोंसे संतप्त होता है।

भावार्थ—दर्शनोपयोग जो उपयोग शास्त्रावलोकनमें, शास्त्र श्रवणमें, धर्मकार्यमें किया जाता है तो वह आत्मानुभवके लिये परम्परासे सहकारी होजाता है। इसके विरुद्ध जो इस दर्शनोपयोगको संसार-मार्गमें लगाया जावे, कषाय व विषयके साधनोंके अवलोकनमें लगाया जावे तो इससे दर्शनावरण कर्मका बन्ध होगा व संसारमें कष्ट उठाना पड़ेगा।

दंसन अरूव रूवं, रूवातीतं च निम्मलं विमलं।
यदि कल इस्ट सुभावं, दंसन आवरन नन्त संसारे ॥३७०॥

अन्वयार्थ—(दंसन अरूव रूव) यद्यपि दर्शनोपयोग निराकार स्वभाव है (रूवातीत च निम्मल विमल) तथापि अमूर्तीक कर्म रहित वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभवमें सहकारी है (यदि कल इस्ट सुभाव) यदि वह दर्शनोपयोग शरीरके रागमें लीन हो तो (दंसन आवरन नन्त संसारे) दर्शनावरण कर्मका बन्ध होकर अनन्त संसारमें भ्रमण हो।

भावार्थ—मतिज्ञान पूर्वक श्रुतज्ञान होता है। श्रुतज्ञानसे शुद्ध आत्माका अनुभव होता है। यह मतिज्ञान दर्शनोपयोग पूर्वक होता है। अध्यात्म शास्त्र सुनने व विचारने व मननकी रुचि होते ही इंद्रि-योंसे व मनसे काम लिया जाता है तब दर्शनोपयोग प्रथम सहकारी है। परन्तु यदि शरीरके रागपूर्वक इस दर्शनोपयोगको सुन्दर २ रूपोंके देखनेमें, सुन्दर नाटक काव्य सुननेमें, अश्लील गाली व गान सुन-

नेमें, परस्त्रियोंके स्पर्शमें, मांस मदिरा भक्षण करनेमें, अतर फुलेल सूँघनेमें आदि शरीर सम्बन्धी विष-
योंमें लीन किया जावे तो ऐसा दर्शनावरण कर्मका बन्ध हो जिससे यह जीव निगोदमें जाकर केवल एक
स्पर्शन इंद्रियसे दर्शनकी अल्पशक्ति रखता हुआ वारवार जन्म लेकर अनन्तकालको पूरा करे।

इस्ट संजोयं सुद्धं, इस्टं षिपिऊन कम्म तिविहेन।
जो अनिस्ट दिस्ट सहकारं, दंसन आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३७१ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं इस्ट संजोयं) यदि दर्शनोपयोगको शुद्ध वीतराग आत्म हितकारी संजोगमें जोड़ा
जावे (इस्ट तिविहेन कम्म षिपिऊन) तो वह इस्ट वीतरागभाव मन, वचन कायकी गुप्तिसे कर्मोंका क्षय कर
देता है (जो अनिस्ट दिस्ट सहकारं) जो रागद्वेष वर्द्धक अनिष्ट दृष्टिमें लगाया जावे तो (दंसन आवरन दुग्गए पत्तं)
दर्शन आवरण कर्मका तीव्र बन्ध होकर दुर्गतिमें जाना पडता है।

दर्शन आवरण कर्मका तीव्र बन्ध होकर दुर्गतिमें जाना पडता है।

भावार्थ—वीतराग वर्द्धक निमित्तोंमें दर्शनोपयोगका उपयोग कर्मकी निर्जराका कारण होजाता है।
परंतु यदि उसी उपयोगको रौद्रध्यान सम्बन्धी हिंसा, असत्य, चोरी व परिग्रहके कार्योंमें या आर्तध्यान
सम्बन्धी इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, पीडा चितवन व भोगाभिलापके कार्योंमें लगाया जावे तो दर्शना-
वरणका तीव्र बन्ध होकर यह जीव दुर्गतिमें चला जावे। जैसे शस्त्र प्रयोगके लिये शस्त्रोंका बनाना,
देखना, मिथ्या बुलवानेके लिये झूठे गवाहोंसे मिलना, उनकी सेवा करनी, ठगनेके लिये मीठी २ बातें
कहना व परिग्रह सम्बन्धी सामानका लाना, रखना, खरीदना, बारबार देखना, रंजायमान होना रौद्रध्यान
सम्बन्धी कार्योंमें दर्शनज्ञानका उपयोग है। इष्टमित्रोंकी तसवीर देखकर उनके वियोगको याद करना,
अनिष्ट स्थान, भाई, स्वामीको देखते हुए, स्पर्शते हुए, सेवा करते हुए आर्तभाव लाना, शरीरके रोगीको
देखते हुए स्पर्शते हुए हायहाय करना, किसीके सुन्दर हार कुण्डलादिको देखकर अपनेको मिले ऐसी
भावना करनी, ये सब आर्तध्यान सम्बन्धी दर्शन व ज्ञानका उपयोग है। इन बातोंसे दर्शनावरण कर्मका
तीव्र बन्ध होता है। श्री तत्वार्थसारमें अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

दर्शनस्यान्तरायश्च प्रदोषो निह्नवोऽपि च। मात्सर्यमुपघातश्च तस्यैवासादनं तथा ॥१७-४॥
नयनोत्पाटनं दीर्घस्वापिता शयनं दिवा। नास्तिक्यवासना सम्यग्दृष्टिसंदूषणं तथा ॥ १८ ॥
कुतीर्थानां प्रशंसा च जुगुप्सा च तपस्विनाम्। दर्शनावरणस्यैते भवन्त्यास्रवहेतवः ॥ १९ ॥

भावार्थ—दर्शनावरण कर्मके आस्रव व बन्धके कारण नीचे प्रकार हैं–(१) शास्त्र, चैत्यालय, साधु महात्मा आदिके देखनेमें किसीको विघ्न कर देना, (२) किसीकी दृष्टि अच्छी हो व बुद्धि अच्छी हो व ज्ञान निर्मल हो तौभी उससे द्वेष रखना, (३) स्वयं किसी तीर्थको या मन्दिरको या शास्त्रको देख चुका है तौभी यह कहना कि हमने नहीं देखा है, (४) दूसरेकी दृष्टि उत्तम हो व इंद्रियोंकी शक्ति उत्तम हो या शास्त्रावलोकम अच्छा किया हो तौभी उससे इर्षा रखना अथवा इर्षाभावसे धर्मस्थानोंमें जानेकी व शास्त्र देखनेकी मनाई करना, (५) किसीने किसी धर्मस्थानको व शास्त्रको ठीक २ देखा है वह उसका ठीक ठीक वर्णन करता है तौभी उसके कथनकी मिथ्या बातें बनाकर खण्डन करना, (६) कोई विद्वान अपनी देखी यथार्थ हितकारी बातको कहना चाहता है तौभी उसकी अविनय करना, न कहने देना, (७) किसीकी आंखें उपाड़ डालना–अन्धा कर देना, (८) बहुत अधिक सोना, (९) दिनमें निद्राकी आदत रखना, (१०) नास्तिकपनेकी अन्तरङ्गमें वासना रखनी, (११) सम्यग्दृष्टि धर्मात्माके ज्ञानमें, श्रद्धानमें व आचरणमें मिथ्या दोष लगाना, (१२) अधर्मवर्द्धक खोटे तीर्थोंकी प्रशंसा करना, (१३) तपस्वी धर्मात्मा साधुओंसे ग्लानि करना इत्यादि।

दंसन परनै उत्तं, अनन्त चतुस्टै विमल सहकारं।
आनन्दं परमानन्दं, दंसन धरनं च मुक्ति गमनं च ॥ ३७२ ॥

अन्वयार्थ—(दसन पानै उत्तं) इसतरह दर्शनोपयोगके परिणमनको कहा गया (अनंत चतुष्टै विमल आनंदं परमानन्द सहकारं) यह दर्शनोपयोग अर्हंत पदकी प्राप्तिका सहकारी होजाता है जहां अनन्तज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होते हैं, जो वीतराग हैं व परमानन्दमें मग्न हैं (दंसन धरन च मुक्तिगमनं) दर्शनोपयोगका यथार्थ उपयोग मोक्षके गमनका हेतु है।

भावार्थ—ज्ञान विना चारित्र नहीं, चारित्र विना मोहादि कर्मोंका क्षय नहीं, कर्मोंके क्षय विना अर्हन्त परमात्मा पद नहीं, दर्शनोपयोगकी सहायता विना ज्ञान नहीं, अतएव जो उत्तम उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए अपने चक्षु व अचक्षु दर्शनका उपयोग मोक्षमार्गके सहकारी कारणोंमें करते हैं उनके लिये यह दर्शन ही परमात्मा पदका हेतु होजाता है।

मोहनीय कर्मका बन्ध व फल।

मोह प्रमान उत्तं, अप्पा परमप्प लोक लोकं च।
जदि सरनि भाव मोहं, चौ गई संसार मोहं च ॥ ३७३ ॥

अन्वयार्थ—(मोह प्रमान उत्तं) अब मोहनीयकर्मकी शक्ति कही जाती है (अप्पा परमप्प लोक लोकं च) यदि मोहनीय कर्मका अभाव हो तो यह आत्मा परमात्मा व त्रिलोकदर्शी होजाता है (जदि सरनि भाव मोहं) परंतु संसारके कार्योंमें मोह हो तो (चौ गई ससार मोह च) चार गतिमें भ्रमण करानेवाले मोहका बन्ध होजाता है।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके उदय रहते हुए इस जीवको रत्नत्रयकी प्राप्ति नहीं होती है। दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसे ही क्षायिक सम्यक्त, वीतराग यथाख्यात चारित्र होता है तब ही अन्य ज्ञानावरण दर्शनावरण अन्तराय कर्मका क्षय होकर परमात्म पद प्रगट होता है। यह मोह ही आत्मीक स्वभावका मुख्य घातक है। संसारका मोह–इन्द्रिय विषयोंका मोह, प्रतिष्ठा पानेका मोह, स्त्री पुत्रादि धनादिका मोह इस जीवको बावला बना देता है जिससे यह मिथ्या कुदेवादिकी भक्ति करता है व तीव्र लोभ, मान, माया व क्रोधके वशीभूत होजाता है, तीव्र काम भावमें मूर्छित होजाता है अतएव मोहनीय कर्मका ऐसा बन्ध करता है कि मिथ्यात्व दशामें यह चारों ही गतियोंमें बारबार भ्रमण किया करता है।

मोहं च परम मोहं, ज्ञानं अनुमोय मोह सहकारं।
यदि कल इस्ट विमोहं, पुग्गल सभाव नंत नंताई ॥ ३७४ ॥

अन्वयार्थ—(मोहं च परम मोह) यदि परम तत्वके प्रेममें मोहित हो (मोह सहकार ज्ञानं अनुमोय) तो यह ज्ञानी इस मोहकी सहायतासे शास्त्र ज्ञानमें व गुरु द्वारा प्रगट ज्ञानमें व ज्ञानके साधनोंमें आनन्द मानता है (यदि कल इस्ट विमोहं) परंतु यदि शरीरके रागमें मूढ़ होजावे तो (पुग्गल सभ व नंत नंताई) अनन्तानन्त काल तक पुद्गल स्वभावमें ही रति प्राप्त हो इतना भ्रमण करे।

भावार्थ—मोह भी दो प्रकारका है–एक प्रशस्त, दूसरा अप्रशस्त। प्रशस्त मोह उसे कहते हैं जिससे

शुद्धोपयोगके स्वामी परमात्माके स्वरूपमें मगन हो भक्ति कीजावे, उनकी स्तुति कीजावे, शुद्धोपयोगके निमित्त शास्त्र चर्चामें प्रेम किया जावे, अध्यात्मके ज्ञाता गुरुओंकी वाणी सुननेमें प्रेम किया जावे। इत्यादि। यह मोह मोक्षमार्ग साधक है। अप्रशस्त मोह उसे कहते हैं जिससे विषयभोगोंमें मोह किया जावे। भोग सहकारी स्त्री पुत्रादि मित्रादिमें राग किया जावे। भोज्य पदार्थ भोजन सुगंध पुष्प वस्त्राभूषणसे राग किया जावे। शरीरके संस्कारमें मोह किया जावे। धन संग्रहमें मोह किया जावे। उसके लिये परके ठगनेमें राग किया जावे। महान कष्ट देकर भी स्वार्थ साधनमें मोह किया जावे। अपने स्वार्थ विरोधकको जड़मूलसे नाश करनेमें राग किया जावे। इस अप्रशस्त रागमें तीव्र कषाय व मिथ्यात्व होनेसे मोहनीय कर्मका ऐसा तीव्र बंध पडता है कि वह जीव एकेन्द्रिय निगोद पर्यायमें चला जाता है जहां पुद्गलके ही अज्ञान स्वभावमें अनन्तकाल इस जीवको बिताना पडता है। शरीर रूप ही मैं हूं यह बुद्धि अनन्तकाल तक रहा करती है। पर्याय बुद्धिका मिटना अनन्तकालमें भी दुर्लभ होजाता है।

मोहं दंसन सुद्धं, सुद्धं ज्ञानं च कम्म षिपिऊनं।
जदि पज्जय मोह सहावं, पज्जायं लेंति नंत नंताइं॥ ३७५॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध दंसन मोइ) शुद्ध सम्यग्दर्शनका प्रेम (सुद्धं ज्ञानं च कम्म षिपिऊनं) तथा शुद्ध आत्मज्ञानका प्रेम कर्मोंका क्षय करनेवाला है (जदि पज्जय मों सहाव) परंतु यदि शरीरका मोह हो तो (नंत नंताइ पज्जायं लेंति) अनंतानंत पर्यायोंको यह जीव लेता रहता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग भावका राग यद्यपि शुभ है तथापि उसमें शुद्धभावके भी अंश होते हैं। इसलिये जितने अंश वीतरागता होती है उतने अंश कर्मोंकी निर्जरा होजाती है। परन्तु शरीरका मोह, शरीरके सुखोंका मोह, शरीरके सम्बन्धियोंका मोह प्राणीको अंधा कर देता है जिससे यह मूढ़ हो कभी कभी ऐसे मिथ्यात्वमें फँस जाता है कि अपना भला होनेको वृक्षोंकी पूजा करता है, तीव्र अज्ञानके सेवनसे घोर मोहनीय कर्मको बांधकर एकेन्द्रिय पर्यायमें अनन्तानन्तवार जन्मता मरता है।

मोहं ज्ञानमईओ, इस्टं मोह च विगत संसारे।
जदि कल मोह सहावं, कल सहकार नन्त संसारे॥ ३७६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानमई ओ मोहं) सम्यग्ज्ञानमई मोह या आत्माके अनुभवका राग (इस्टं मोहं च विमल संसारे) हितकारी व प्रशस्त मोह है और संसारसे छुड़ानेवाला है (जदि कल मोह सहावं) यदि शरीरके मोहमें लिप्त होजावे (कल सहकार नन्त संसारे) तो इस शरीरके मोहसे अनन्त संसारमें रुलता है।

भावार्थ—मोक्षसे प्रेम व मोक्षमार्ग जो निश्चय रत्नत्रयमई आत्मानुभूति है उससे प्रेम शुभ राग है जिसका फल संसारका नाश है। परन्तु यदि शरीरका मोह हो आत्माके रागसे विमुख हो और पर्याय-बुद्धि धारकर शरीरके सुखके लिये मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्यका सेवन करे, धर्मकी ओरसे बिलकुल बेखबर रहे, तीव्र कृष्णलेश्याके परिणाम रक्खे तौ यह जीव ऐसा मोहनीयकर्म बांधता है कि जिससे अनन्त संसारमें रुलना पड़ता है।

मोहं दंसन ज्ञानं, चरनं तव सहाव इस्टं च।
जदि अनिस्ट मोहंधं, अनिस्ट संसार सरनि वीयम्मि॥ ३७७॥

अन्वयार्थ—(दंसन ज्ञानं मोहं) सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका राग (चरनं तव सहाव इस्टं च) तथा सम्यक्-चारित्र व सम्यक् तपका राग तथा अपने आत्मस्वभावका प्रेम परम हितकारी है (जदि अनिस्ट मोहंध) यदि आत्माके अहितकारी कार्योंमें मोहांध होजावे तो (अनिस्ट संसार सरनि वीयम्मि) इस दुःखदाई संसार-भ्रमणका बीज बो देवेगा।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप ये चार आराधनाएँ मोक्षमार्ग हैं। जो इनका प्रेम रखता है वह प्रेम मोक्ष लेजानेका कारण है। परन्तु यदि संसारकी वासनाके मोहमें अन्ध हो व्यसनी होजावे, हिंसक होजावे, ठग, चोर, व्यभिचारी होजावे तौ ऐसा मोहनीयकर्म बांधता है जो कष्टमई संसारमें दीर्घ कालतक कष्टको दिलाता है।

मोहं परमप्पानं, मोहं कल्यान परंपराइ सुखदं।
जदि मोहं पजायं, पज्जय रत्तं संसार दुक्ख वीयम्मि॥ ३७८॥

अन्वयार्थ—(परमप्पानं मोहं)-परमात्माके स्वरूपसे राग (मोहं कल्यान परम्पराइ सुखदं) ऐसा शुभ राग

परम्परासे कल्याणकारी व सुखदाई है (जदि मोह पज्ज यं) यदि शरीरका मोह हो पज्जयरत्त ससाग दुक्ख वीयमिम) तो शरीरका रागी संसारके दुःखोंका बीज बोनेवाला होता है।

भावार्थ— परम पद, सिद्धपद, स्वस्वरूपका राग यद्यपि शुभ राग है, परन्तु परम्परा शुद्धोपयोगमई वीतराग भावमें पहुँचानेवाला परम कल्याणकारी व परम सुखदाई राग है। जब कि शरीरका राग मोहांध बनाकर विषय व कषायोंमें उलझाकर हिंसक कार्योंको करानेवाला है जिसका फल तीव्र मोहनीयका बंध है जो संसारके दुःखोंका बीज है।

श्री तत्वार्थसारमें दर्शनमोह व चारित्रमोहके बन्धके कारण बताए हैं—

केवलीश्रुतसघाना धर्मस्य त्रिदिवौकसाम्। अवर्णवादग्रहणं तथा तीर्थकृतमपि ॥ २७–४ ॥
मार्गसदूषण चैव तथैवोन्मार्गदेशनम्। इति दर्शनमोहस्य भवन्त्यास्रवहेतवः ॥ २८ ॥
स्यात्तीव्रपरिणामो य कषायाणा विपाकत। चारित्रमोहनीयस्य स एवास्रवकारणम् ॥ २९ ॥

भावार्थ— दर्शनमोहके आस्रव बन्धके कारण नीचे प्रकार हैं-(१) केवली भगवानकी निंदा करनी, (२) सच्चे शास्त्रकी बुराई करनी, (३) साधु संघ, आर्यिका संघ, श्रावक संघ, श्राविका संघकी झूठी निंदा करनी, (४) जिनधर्मकी निंदा करनी, (५) चार प्रकार देवोंकी झूठी निंदा करनी, (६) उत्तम मार्गमें दोष लगाना, (७) कुमार्गकी पुष्टि करना।

चारित्र मोहके बन्धका कारण कषायोंके उदयसे तीव्र परिणाम करना है। सर्वार्थसिद्धिमें श्री पूज्यपाद स्वामी कहते हैं कि अपनेमें व दूसरोंमें कषाय पैदा करना, तपस्वी जनके चारित्रमें दोष लगाना, संक्लेश भावसे साधु लिंग व व्रत पालना, ये सामान्यसे चारित्र मोहका बन्धका कारण है। साधर्मियोंकी व दीनोंकी हँसी करना, बहुत बकवाद अट्टहास करना हास्य नोकर्म बन्धका कारण है। नानाप्रकार क्रीड़ा करना, व्रत व शीलकी अरुचि रखना रति नोकषायके बन्धका कारण है। दूसरोंमें अरति पैदा कराना, रतिका नाश करना, पापियोंका संसर्ग करना अरतिके बन्धका कारण है। अपनेमें व दूसरोंमें शोक पैदा करना, दूसरोंको शोक होजानेपर अभिनन्दन करना शोकके बन्धका कारण है। आप भयभीत रहना व दूसरोंको भय पैदा करना भयके बन्धका कारण है। उत्तम कामोंसे घृणा भाव जुगुप्साके बंधका

कारण है। झूठ बोलना, मायाचारसे ठगना, दूसरोंके छिद्र देखना तीव्र काम राग रखना स्त्रीवेदनीयके बन्धका कारण है। अल्प क्रोध, उद्धत न होना, स्वदार सन्तोष आदि पुरुषवेदके बन्धका कारण है। तीव्र काम भाव, गुप्त इंद्रियका छेद, परस्त्रीका सेवन नपुंसकवेदके बन्धका कारण है।

आनन्दं परमानन्दं, परमप्पा परम भाव दरसीहिं।
हित मित ज्ञान सहावं, विमल सहावेन निव्वुए जंति ॥३७९॥

अन्वयार्थ—(परमप्पा परम भाव दरसीहिं आनन्दं परमानन्दं) परम भावके देखनेवाले परमात्माके आनन्द स्वभावमें परमानन्द मानना (हित मित ज्ञान सहाव) तथा अपने ज्ञान स्वभावमें प्रेम रखना तथा ज्ञानकी मर्यादाको पहिचानना (विमल सहावेन निव्वुए जंति) ऐसा वीतराग स्वभावके रखनेसे यह जीव निर्वाणको प्राप्त करता है।

भावार्थ—संसारके साथ मोह त्याग देनेसे व मोक्षसे राग करनेसे, परमात्माके गुणोंका अभिनन्दन करनेसे, आत्माके ज्ञान स्वभावमें मग्न होनेसे, अनन्तज्ञानको पहचानेसे, आगमकी रुचि रखनेसे यह जीव शीघ्र ही निर्वाणका लाभ करता है।

अंतराय कर्मबन्ध व फल।

ज्ञानं च ज्ञान रूवं, ज्ञान सहावेन दंसनं विमलं।
अनुमोयं यदि रूवं, ज्ञानं अंतरं च नरय वीयम्मि ॥ ३८० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं च ज्ञान रूवं) ज्ञानका स्वभाव जानना है (ज्ञान सहावेन विमलं दसन) ज्ञानके स्वभावसे निर्मल आत्माका दर्शन होता है (यदि रूवं अनुमोय) यदि पुद्गलके रूपकी अनुमोदना करे तो (ज्ञान अंतर च नरय वीयम्मि) ज्ञानमें विघ्न होनेसे अन्तराय कर्मका बन्ध हो व नर्कका बीज बोया जावे।

भावार्थ—अब अन्तराय कर्मके बन्धके कारण भावको कहते हैं। ज्ञान होनेका यही सदुपयोग है जो आत्माके स्वभावको पहचाना जावे, उसे निश्चयसे परमात्मा रूप माना जावे, आत्मानुभव होना ही

ज्ञानका सदुपयोग है। जो कोई ज्ञानका उपयोग इस हितकारी कार्यमें न लेवे, किंतु पुद्गलके भीतर रागी होकर ज्ञान साधनमें विघ्न डाले तो अन्तराय कर्मका बन्ध होगा जो नर्कका दुःख मिलेगा।

ज्ञानं ज्ञान सुसमयं, ज्ञानी अनुमोय विमल सहकारं।
जदि पज्जय अनुमोयं, अन्तर आवरन दुग्गए पत्तं ॥ ३८१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानं ज्ञान सुसमय) ज्ञानका यही कार्य होना चाहिये जो अपने आत्माका यथार्थ ज्ञान पावे (ज्ञानी विमल सहकारं अनुमोय) ज्ञानी होकर वीतरागताके कारणोंका अभिनन्दन किया जावे (जदि पज्जय अनुमोय) जो कोई ऐसा न करके शरीरका व शरीरके सुखोंका व शरीरके सम्बन्धियोंका अभिनन्दन करे (अंतर आवरन दुग्गए पत्तं) तो वह आत्मशक्तिघातक अन्तराय कर्मोंको बांधे व दुर्गतिको प्राप्त होवै।

भावार्थ—आत्मज्ञानको पाकर मोक्षप्राप्तिके साधनोंका स्वागत करना योग्य है। जो कोई संसार-वर्द्धक, विषयकषाय पोषक, दुराचार प्रेरक कार्योंका स्वागत करके आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्न डालता है वह अन्तराय कर्म बांधता है जो दुर्गतिका देनेवाला है।

ज्ञानं च सुद्ध भावं सुद्धं अवयास नन्त नन्ताइं।
जदि पज्जय सहकारं, पज्जय अनुमोय निगोय वासम्मि ॥३८२॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान च सुद्ध भावं) ज्ञानका स्वभाव शुद्ध भाव है (सुद्धं अवयास नन्त नन्ताइं) शुद्ध ज्ञानमें अनन्तानन्त भाव झलकते हैं (जदि पज्जय सहकार) यदि शरीरके मोहमें मगनता हो (पज्जय अनुमोय निगोय वासम्मि) तो पर्यायके भीतर प्रसन्न होनेसे निगोदका वास प्राप्त हो।

भावार्थ—जो ज्ञान लोकालोक प्रकाशक है वह ज्ञान शरीरके सुखमें मगन होनेसे, शरीरके लिये दुराचार सेवनेसे, हिंसादि पांच पापोंमें लिप्त होनेसे इतना कम रह जाता है कि यह प्राणी एकेन्द्रियका बहुत अल्पज्ञान रखनेवाला निगोद प्राणी पैदा होजाता है। शरीरासक्तको अन्तराय कर्मका तीव्र बन्ध पडता है।

नन्त चतुस्टै जाने, ज्ञानं अंकुर अनुमोय मिलियं च।
जदि पज्जाय सुभावं, ज्ञानं अन्तर दुक्ख वीयम्मि ॥ ३८३ ॥

अन्वयार्थ—(नन्त चतुरटै जाने) बुद्धिमानको उचित है कि अनन्तज्ञानादि चतुष्टय स्वरूपको पहचाने (ज्ञान अकुर अनुमोय मिलियं च) आत्मज्ञान रूपी अंकुरको पाकर उसके मिलनेमें बड़ा ही हर्ष माने (जदि पज्जाय सुभावं) यदि शरीरके स्वभावमें लीन हो (ज्ञानं अन्तर दुक्ख वीयम्मि) और ज्ञानमें विघ्न डाले तो वह अन्तराय कर्म बांधे जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—भेदविज्ञानकी प्राप्तिमें आनन्द मानना हमारा कर्तव्य है। यह भावना भानी चाहिये कि परमात्मपद प्रगट हो। जो कोई इस भेदविज्ञान प्राप्तिका उपाय न करके शरीरके सुखोंमें रंजायमान होजावे–ऐसा शरीरासक्त हो कि धर्मको न सेवन करे, न धर्मके ज्ञानको पानेका उत्साह करे, विषयभोगोंमें ही आसक्त हो तो वह अज्ञानी अपने आत्मकार्यमें विघ्न करनेसे घोर अन्तराय कर्मका वन्ध करेगा जिसके उदयसे ऐसी पर्याएं पाएगा जहां पंचेन्द्रिय सैनी होना भी कठिन होगा।

पज्जायं पर पिच्छं, पज्जाय नन्त विसेस संदिट्ठं।
पज्जायं विरयन्तो, ज्ञानं अनुमोय कम्म संषिपनं॥ ३८४॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं पर पिच्छ) सर्व ही परकृत पर्यायोंको पर देखना चाहिये (पज्जाय नन्त विसेस संदिट्ठं) पर्यायोंके अनन्त भेद जानना चाहिये (पज्जाय विरयतो) जो पर्यायोंसे विरक्त होते हैं (ज्ञानं अनुमोय कम्म संषिपनं) और आत्मज्ञानमें आनन्द मानते हैं उनहीके कर्मोंका क्षय होता है।

भावार्थ—कर्मोंके उदयसे निगोदसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत अनेक व्यंजन पर्यायें तथा भावोंकी अपेक्षा अनन्त प्रकारके अज्ञानभाव व असंख्यात प्रकारके कषायभाव होते हैं। ये सर्व ही भाव पर हैं, मेरा स्वभाव नहीं है, मैं तो ज्ञाता दृष्टा वीतराग आनन्दमई अविनाशी एक पदार्थ हूँ। ऐसा जानकर जो सर्व सांसारिक अवस्थाओंसे विरक्त होकर निश्चिन्त होकर निज आत्माके अनुभवमें लीन होते हैं और आत्मानन्दका स्वाद लेते हैं, उनके कर्मोंका विशेष क्षय होता है।

जदि कस्टं च अनेयं, सुतं तवं च नन्तनन्ताइं।
जदि पज्जायं पिच्छदि, ज्ञानंतर दुक्ख वीयम्मि॥ ३८५॥

अन्वयार्थ—(जदि कस्टं च अनेयं नन्तनन्ताइं सुतं तवं च) यदि अनेक कष्ट उठाकर भी अनेक तरहके

शास्त्रोंके अर्थोंको जाने तथा तपस्या भी करे (जदि पज्जायं पिच्छदि) परन्तु यदि शरीरादि अशुद्ध अवस्थाओंका राग बना रहे तो (ज्ञानतर दुक्ख वीयम्मि) ज्ञानमें विघ्न डालनेसे अन्तराय कर्मका वन्ध पड़ेगा जो दुःखोंका बीज है।

भावार्थ—यदि कोई बहुत परिश्रम करके ग्यारह अंग नौ पूर्व तक शास्त्रोंको जानले तथा शरीरको क्लेश देता हुआ अनेक प्रकारका तप करे, परन्तु आत्मज्ञानसे शून्य हो, भावना मान प्रतिष्ठाकी हो व आगामी विषयभोगोंके भोगनेकी हो तौ उसके मिथ्याज्ञान होनेसे अन्तराय कर्मका अवश्य वन्ध पड़ेगा।

ज्ञान सहावं जानदि, ज्ञानं विज्ञान मनुवरं जेई।
ज्ञान अनुमोय अन्तरयं, अज्ञानं सहकार नरय वासम्मि ॥३८६॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं जानदि) बुद्धिमान आत्माके ज्ञान स्वभावको जानता है (ज्ञानं विज्ञान मनुवरं जेई) तथा भेदविज्ञानमें व आत्माके विचारमें मनको रंजायमान रखता है (ज्ञान अनुमोय अंतरयं) जो कोई इस आत्माके ज्ञानानन्दके लाभमें अंतराय डालता है (अज्ञानं सहकार नरय वासम्मि) अज्ञानके कारण वह नर्कमें जाता है।

भावार्थ—जो संसारासक्त प्राणी है वह अपने कर्तव्यसे विमुख है अतएव वह अपने हितमें अंतराय करनेसे अंतराय कर्मका बंध करता है।

ज्ञान दंसन समं, चरनं चरन्ति मनुव रंजेइ।
जदि पज्जाय सदिट्ठं, नवि ज्ञानं नवि दंसनं चरनं ॥ ३८७ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दसन चरन मनुव रजेइ चरंति) ज्ञानी जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्रका आचरण बडे प्रसन्न मनसे करते हैं (जदि पज्जाय सदिट्ठ) यदि कोई मूर्ख आत्माके स्वभावमें रंजायमान न होकर शरीरके ही रागपर दृष्टि रखता है (नवि ज्ञानं नवि दसन चरनं) वहां न सम्यग्ज्ञान है, न सम्यग्दर्शन है, न सम्यक्चारित्र है।

भावार्थ—जिसकी दृष्टि शुद्ध आत्माके श्रद्धान ज्ञान चारित्रपर है वहीं निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र हैं। जहां शुद्धात्माका अनुभव नहीं है, न उसका श्रद्धान है, किन्तु कर्मकृत व्यवहार रचनामें ही

ध्यान है, व्यवहार सम्यक्त ज्ञान चारित्र पर ही लक्ष्य है, जीवादि सात तत्वोंके श्रद्धानको ही सम्यक्त जानता है, शुद्धात्माकी अनुभूति व श्रद्धाको सम्यक्त नहीं जानता है वहां वास्तविक रत्नत्रय नहीं है न सच्चा मोक्षमार्ग है।

अज्ञानं भत्तीए, अज्ञानं सहकार ज्ञान विरयन्तो।
तव वय कृत पज्जायं, अज्ञानं सहकार दुक्ख वीयम्मि ॥ ३८८ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानं भत्तीए) जहां मिथ्याज्ञानकी भक्ति है वहां (अज्ञान सहकार ज्ञान विरयन्तो) मिथ्या ज्ञानके कारण सम्यग्ज्ञानका अभाव ही रहता है (तव वय कृत पज्जायं) केवल शरीर सम्बन्धी कायक्लेश, तप व शरीर सम्बन्धी व्रत आदि क्रिया (अज्ञान सहकार दुक्ख वीयम्मि) मिथ्याज्ञानके होनेसे दुक्खोंके बीज हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन सहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं जहां शुद्धात्माका यथार्थ श्रद्धान तथा ज्ञान है। इस भावको ध्यानमें रखते हुए शुद्धात्माके अनुभवके हेतुसे मन वचन कायको रोकनेके लिये जो व्यवहार तप व व्यवहार श्रावक व मुनिके व्रत साधन किये जावे तौ तो वे मोक्षमार्ग है। परन्तु सम्यक्त रहित केवल पुण्यके हेतुसे व मान प्रतिष्ठाके हेतुसे साधन किये हुए व्रत तप आदि बन्ध हीके कारण हैं। यद्यपि कुछ सातावेदनीयका बन्ध मंद कषायसे होजावे, परन्तु घातीय कर्मोंका बन्ध विशेष पड़ता है। अतएव कर्मका बन्ध धिक होता है जो भविष्यमें दुःखोंका कारण है।

नोकम्मं पिच्छंतो, भाव कम्मं च पिच्छ विरयंतो।
दव्व कम्मं नहु पिच्छदि, ज्ञानंतर अनन्त संसारे ॥ ३८९ ॥

अन्वयार्थ—(नोकम्मं पिच्छतो) जिसकी दृष्टि केवल शरीरके ही ऊपर है (भाव कम्मं च पिच्छ विरयंतो) रागादि भाव कर्मोंकी ओर दृष्टि नहीं है (दव्व कम्मं नहु पिच्छदि) न ज्ञानावरणादि द्रव्योंके बन्धपर दृष्टि है (ज्ञानंतर अनन्त संसारे) वह ज्ञानमें विघ्न डालनेसे अन्तराय कर्मका बन्ध करता है जो अनन्त संसार भ्रमणका कारण है।

भावार्थ—अज्ञानसे अन्तरायका विशेष बन्ध होता है। जो अज्ञानी केवल शरीरको ही आपा मानकर उसीको पहचानता है, उसीके सुखमें तन्मय है उसको यह ज्ञान नहीं है कि मेरे भीतर जो क्रोधादि

कषाय हैं व रागादि विकार हैं व इच्छाएँ हैं, ये भावकर्म हैं, औपाधिक भाव हैं, आत्माके निज स्वभाव नहीं है और न यह श्रद्धा है कि पुण्य व पापकर्मोंका बंध पड़ता है, जो भावोंकी पहचान व परवाह नहीं करना है, कर्मोंके बन्धकी शंका नहीं रखता है। वह मूढ़ अज्ञानी तीव्र अन्तराय कर्मका बन्ध करता है।

तत्वार्थसारमें कहा है—

तपस्विगुरुचैत्यानां पूजालोपप्रवर्तनं । अनाथदीनकृपणभिक्षादिप्रतिषेधनम् ॥ ५५-४ ॥
वधबन्धनिरोधश्च नासिकाच्छेदकर्तनम् । प्रमादाद्देवतादत्तनैवेद्यग्रहणं तथा ॥ ५६ ॥
निरवद्योपकरणपरित्यागो वधोऽङ्गिनाम् । दानभोगोपभोगादिप्रत्यूहकरणं तथा ॥ ५७ ॥
ज्ञानस्य प्रतिषेधश्च धर्मविघ्नकृतिस्तथा । इत्येवमन्तरायस्य भवन्त्यास्रवहेतव ॥ ५८ ॥

भावार्थ—अन्तराय कर्मके बन्धके नीचे लिखे कारण हैं—(१) तपस्वी गुरु चैत्य चैत्यालयकी भक्तिका लोप करना, (२) अनाथ दीन कृपणको भिक्षा व दान देनेको मना करना, (३) किसीको मारना, (४) बन्धनमें डाल देना, (५) अच्छे कामोंसे व जाने आनेसे रोक देना, (६) कषायवश होकर लोभके आधीन होकर देवताके चढ़ाए हुए नैवेद्यको लेलेना, (७) निर्दोष शास्त्रादि धर्मसाधनकी सामग्रीको छोड़ देना, (८) प्राणियोंका वध करना, (९) दानमें अन्तराय करना, (१०) भोजनपानादिमें विघ्न करना, (११) वारवार भोगने योग्य मकान, वस्त्र, भूषण आदिको न भोगने देना, (१२) धार्मिक कार्य करना चाहता हो तो रोकना, (१३) किसीके लाभमें विघ्न करना, (१४) ज्ञानका खण्डन करना व ज्ञानकी प्राप्तिमें विघ्न करना व आलस्य करना, (१५) धर्मकी उन्नतिमें विघ्न करना आदि।

पज्जायं च अनन्तं, पज्जाय सरूव ज्ञान अनुमोयं ।
जदि अन्तरं न दिट्ठं, ज्ञान विमल सहाव सिद्धि संपत्तं ॥३९०॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं च अनंतं) ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञानावरणके मन्द व अधिक क्षयोपशमकी अपेक्षा निगोदसे लेकर वारहवें क्षीण कषाय गुणस्थान पर्यंत अनन्त है (पज्जाय सरूव ज्ञान अनुमोयं) जो पर्याय स्वरूप ज्ञानकी अनुमोदना करता है, एकाकार शुद्ध ज्ञानको नहीं जानता है वह ज्ञानमें अन्तराय डाल रहा है (जदि अतर न दिट्ठ) यदि यह अन्तराय न देखा जावे और शुद्ध ज्ञानको पहचाना जावे तो (ज्ञान विमल सहाव सिद्धि सपत्त) वह निर्मल ज्ञान स्वाभाविक आत्माका स्वभाव अवश्य सिद्धि पानेका उपाय है।

भावार्थ—जैसे सूर्यके ऊपर मेघोंके आनेसे जो अल्प प्रकाश होरहा है उसीको कोई सूर्यका असली प्रकाश मानले तो वह अज्ञानी है। ज्ञानी वही है जो मंद प्रकाश होते हुये भी यही जाने कि बादलोंके कारण ऐसा मन्द प्रकाश है। सूर्यका स्वभाव बिलकुल तेजस्वी व धूपको फैलानेका है। इसीतरह ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे नानाप्रकार अल्पज्ञानकी अवस्थाएँ संसारी प्राणियोंमें प्रगट होरही हैं, उन्हींको जीवका स्वभाव मानले और केवलज्ञानमई जीवका स्वभाव न जाने तो वह अज्ञानी है। ज्ञानी वही है जो अल्पज्ञान होते हुए भी यह श्रद्धानमें लावे कि आत्माका स्वभाव शुद्ध सहज निर्मल ज्ञान है, उसीको केवलज्ञान कहते हैं। ऐसा ज्ञाता ज्ञानमें विघ्न नहीं कर रहा है। अतएव वह इसी ज्ञान स्वभावके अनुभव करनेसे एक दिन मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

सिद्ध स्वरूप कथन।

इय घाय कम्म मुक्कं, मुक्कं संसार सरनि सल्यं च।
कम्मं तिविहं मुक्कं, विमल सहावेन निव्वुए जंति ॥ ३११ ॥

अन्वयार्थ—(इय घाय कम्म मुक्क) इसतरह जो ऊपर कथित आत्माके स्वभावके चार घातीय कर्मोंसे छूट जाता है (मुक्क संसार सरनि सल्यं च) वह संसारके मार्गसे व सर्व शल्योंसे छूट जाता है (कम्म तिविह मुक्क) फिर वह तीनों प्रकारके कर्मोंसे मुक्त होजाता है (विमल सहावेन निव्वुए जंति) तब वह कर्म रहित स्वभावके प्रगट होनेसे निर्वाणको चला जाता है।

भावार्थ—भेद विज्ञान द्वारा आत्मानुभव करते रहनेसे व पर्यायसे विरक्त होनेसे इस जीवको शुक्लध्यानका लाभ होता है। प्रथम शुक्लध्यानसे मोहनीय कर्मका, दूसरे शुक्लध्यानसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायका क्षय होकर यह आत्मा अरहंत होजाता है। आयुके अन्तमें शेष कर्मोंका उन्हींके साथ २ सर्व प्रकारके भाव कर्मोंका और शरीरादि नोकर्मोंका भी छुटकारा होजाता है और वह जीव सीधा निर्वाणपदको पहुँच जाता है।

अज्ञान भाव मुक्कं, मिच्छा विषयं च राग संषिपन ।
षिपियं अनन्त अभावं, ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपन च ॥ ३९२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान भाव-मुक्क) सिद्ध भगवानमें अज्ञान भावका अभाव है (मिच्छा विषय च राग सषिपन) मिथ्यात्वभाव, इंद्रियोंका विषय राग सर्व क्षय होगया है (अनत अभावं षिपिय) अनन्त प्रकारके क्षणिक भावोंका होना भी मिट गया है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपन च) उनके ज्ञानानन्द स्वभावसे कर्मोंका पूर्ण क्षय होगया है ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानमें जब स्वभावका प्रकाश है तब जितने भी राग, द्वेष, मोह, अज्ञान आदि कर्मजनित भाव हैं उनका अभाव है ।

परिनामं अज्ञानं, जन रंजन राग सहाव षिपनं च ।
कल रंजन दोष विलयं, मन रंजन गारवं च विलयन्ति ॥ ३९३ ॥

अन्वयार्थ—सिद्धात्माके (अज्ञानं परिनामं जन रंजन राग सहाव षिपन च) अज्ञान भाव मिट गया, जनोंको प्रसन्न करनेका राग स्वभाव जाता रहा (कल रंजन दोष विलयं) शरीरमें राग करनेका दोष भी जाता रहा (मन रंजन गारव च विलय) अपने मनको रंजायमान करनेवाला मद भाव भी जाता रहा ।

भावार्थ—सिद्ध परमात्माके मोहनीयादि आठों कर्म नहीं हैं, इसलिये कर्मजनित सर्वप्रकारके विकार उनमें नहीं हैं, न कोई अज्ञान है, न कोई राग है, न कोई दोष है, न कोई भेद है । वे तो अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य व अनन्त सुख, क्षायिक सम्यक्त, वीतराग चारित्रादि शुद्ध गुणोंके समुद्र हैं ।

एयं अनेय रूवं, रूवातीतं च कम्म मोहंधं ।
उत्पन्नं षिपिऊनं, षिपिओ कम्मा नन्तनन्ताइ ॥ ३९४ ॥

अन्वयार्थ—(एयं अनेय रूवं) सिद्ध परमात्मा एक भी हैं, अनेक रूप भी हैं (रूवातीत च) रूपसे अतीत अमूर्तीक है (कम्म मोहंध उत्पन्न षिपिऊनं) मोहनीय कर्म जो पहले उदय होता रहता था उसे क्षय कर दिया है (षिपिओ कम्मा नन्तनन्ताइ) तथा जो अनन्तानन्त कर्मवर्गणाएँ जीवके साथ थीं सो सब क्षय होगई हैं ।

भावार्थ—सिद्ध भगवान् एक अखण्ड हैं इसलिये एक हैं। वही भिन्न २ ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्यादि गुणोंकी अपेक्षा अनेक रूप हैं। वर्णादिसे रहित अमूर्तीक हैं। मोहका सर्वथा अभाव है। वे किसीसे रागद्वेष मोह नहीं करते हैं। तथा उनकी आत्मा बिलकुल शुद्ध होगई है।

षिपिओ नन्त विसेसं, षिपिओ सभाव पुन्न पावं च।
मन सहकारं षिपिनं, मन उववन्न कम्म संषिपनं ॥ ३९५ ॥

अन्वयार्थ—(नन्त विसेस षिपिओ) सिद्ध भगवानमें वे अनन्त भेद नहीं हैं जो कर्मोदयसे संसारी अवस्थामें होते थे (पुन्न पाव च सभाव षिपिओ) उनके न पुण्य पापकर्म हैं न उनके बन्धक शुभ व अशुभ रागादि भाव हैं (मन सहकार षिपिनं) मन भी नहीं है न संकल्प-विकल्प है (मन उववन्न कम्म सषिपन) मनके अनेक विकल्पोंसे व मनकी चिन्ताओंसे जो कर्म बन्धते थे वे भी सब क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके भीतर शुद्ध स्वभाव प्रगट है, वहां सब संसारी पर्यायें नहीं हैं। संपूर्ण कर्मका नाश होगया है, इससे न शुभ न अशुभ उपयोग है। इसलिये नवीन पुण्य व पापका बन्ध नहीं है, जिसके फलसे पुर्नजन्म हो। मन सर्व कल्पनाओंका मूल है वह भी नहीं है, न मन सहकारी कर्म बन्धते वे कुछ नहीं हैं।

षिपिओ समल विसेसं, षिपिओ कषाय विष्य सम्बन्धं।
नन्तानन्त अभावं, षिपिओ पज्जय दिट्ठि अनिस्टं ॥ ३९६ ॥

अन्वयार्थ—(षिपिओ समल विसेस) सब ही प्रकारके मल सिद्धमें नहीं हैं (कषाय विषय सम्बन्धं षिपिओ) वहां वे सम्बन्ध कुछ नहीं हैं जिनके कारण विषयोंकी इच्छा हो व क्रोधादि कषाय पैदा हो (नन्तानन्त अभावं) अनन्तानन्त कर्म वर्गणाओंका संयोग जो पहले था सो अब नहीं रहा (अनिस्ट पज्जय दिट्ठि षिपिओ) अहितकारी पर्यायकी दृष्टि भी क्षय होगई है।

भावार्थ—सिद्धोंमें कोई कर्मका संयोग शेष नहीं रहा जिससे मिथ्या राग हो, विषयोंकी इच्छा हो, कषायका उदय हो। न वहां शरीर है न इंद्रियां हैं जो विषयकषायके उत्पन्न करनेमें बाहरी कारण होती हैं।

षिपिओ ति मूढ भावं, षिपिओ परिनाम अजीव पज्जाया ।
षिपिओ मान निबन्धं, षिपिओ संसार सरनि विलयं च ॥३९७॥

अन्वयार्थ—(ति मूढ भावं षिपिओ) तीन मूढ़ताका भाव सिद्धोंमें नष्ट होगया है (अजीव पज्जाए परिनाम षिपिओ) अजीवकी अपेक्षासे होनेवाले विभाव परिणाम भाव सर्व दूर होगए हैं (मान निबन्धं षिपिओ) मानका सर्व सम्बन्ध नाश होगया है (समार सरनि विलयं च षिपिओ) संसारमार्ग व मोक्षमार्गका विकल्प सब नष्ट होगया है ।

भावार्थ—सिद्धोंमें देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता, पाखण्डमूढ़ता नहीं रही, शरीर सम्बन्धी कोई भी रागादि विकल्पोंकी सम्भावना नहीं है । शरीर ही नहीं है, न किसीसे कोई नाता है, जो अहँकार हो । न वहां संसारका मार्ग, न उसके नाशका उपाय है । वे तो साध्यको सिद्ध कर चुके हैं ।

विमल सहावं दिट्ठं, विमल परिनाम नन्त नन्ताई ।
विमल सहाव सुसमयं, विमलं उत्पन्न मुक्ति गमनं च ॥ ३९८ ॥

अन्वयार्थ—(विमल सहावं दिट्ठं सिद्धोंमें निर्मल स्वभाव दिख गया है (विमल नंत नताई परिनाम) उनमें अनन्त परिणतियां जो समय २ होती हैं वे सव निर्मल होती हैं । (विमल सहाव सुसमयं) उनका निर्मल स्वभाव आत्मानुभव रूप है (विमलं उत्पन्न मुक्ति गमनं च) मल रहित भाव झलकनेपर ही सिद्धगति होती है।

भावार्थ—सर्व कर्मोंका संयोग मिटनेपर ही सिद्धगति होती है । वहां आत्माका शुद्ध स्वभाव प्रगट है । अगुरुलघु कारणके आश्रय जो स्वभाव पर्याय षट्गुणी हानि वृद्धिरूप होती हैं वे सव स्वाभाविक सदृश परम निर्मलसे निर्मल होती है । द्रव्यका स्वभाव है कि उसमें उद्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीन भाव हुआ करें । द्रव्य व गुणोंकी अपेक्षा सिद्धोंमें ध्रुवता है, स्वभाव परिणतिके होते रहनेकी अपेक्षा उत्पाद व्ययपना है । जैसे क्षीरसमुद्रका शुद्ध जल है उसमें समय २ कल्लोलें होनेपर भी कोई मलीनता जलमें नहीं होती है न कोई कमी होती है, उसीतरह स्वभाव परिणमन होनेपर भी कोई मलीनता व गुणोंकी कमी नहीं होती है जैसा कि आलापपद्धतिमें कहा है—

अनाद्यनिधने द्रव्ये स्वपर्याया प्रतिक्षणम् । उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

भावार्थ—अनादि अनन्तद्रव्यमें स्वाभाविक पर्याय प्रतिक्षण होती रहती है। जैसे समुद्रमें जलकी तरंगें उठती बैठती हैं। सिद्ध सदा अपने आत्माके स्वादमें मगन है, कोई राग द्वेपका सम्बन्ध नहीं है।

अनुमोय ज्ञान सहियं, ज्ञानं अनुमोय विमल ज्ञानं च।
विमलं च दंसनत्वं, नंत चतुस्टय मुक्ति गमनं च॥ ३९९॥

अन्वयार्थ—(अनुमोय ज्ञान सहियं) सिद्धोंमें आनन्द है तथा ज्ञान है (ज्ञानं अनुमोय विमल ज्ञानं च) ज्ञान-चेतना सम्बन्धी आनन्द होनेसे वह ज्ञान सर्वदा निर्मल है (विमल च दंसनत्व) अनन्तदर्शन गुण भी निर्मल है (नन्त चतुस्टय मुक्ति गमनं च) अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त सुखकी प्रगटता होनेपर ही मुक्ति होती है।

भावार्थ—सिद्धोंके कर्मचेतना, कर्मफलचेतना नहीं है–एक ज्ञानचेतना ही है, जिससे वे मात्र आत्मज्ञानका आनन्द लेते हुए निर्मलज्ञानमें कोई विकार नहीं पाते हैं। वे अनन्तचतुष्टय सहित होनेसे अनन्त बली व अनन्त सुखी हैं।

षिपिओ कम्म सुभावं, मल सुभाव सयल षिपिऊनं।
आवरनं नहु पिच्छइ, विमल सहावेन कम्म संषिपनं॥४००॥

अन्वयार्थ—(कम्म सुभावं षिपिओ) कर्मोका सर्व स्वभाव सिद्धकी आत्मामें नहीं रहता है (मल सयल सुभाव षिपिऊनं) सर्व ही मलीन भाव क्षय होगए हैं (आवरनं नहु पिच्छइ) कोई आवरण नहीं दिखता है (विमल सहावेन कम्म सषिपनं) निर्मल स्वभावके होनेसे कर्मोका अभाव होगया है।

भावार्थ—जब सिद्धोंमें कोई कर्मोका आवरण नहीं है तब उनके उदयसे होनेवाली मलीनता रह ही नहीं सक्ती है। आत्माका स्वभाव रूप होजाना ही सिद्धपना है।

संसार सरनि सहियं, संसारे सरंति परिनाम विरयंति।
ज्ञानावरन न दिट्ठं, ज्ञान सहावेन सरनि मुक्कं च॥ ४०१॥

अन्वयार्थ—(संसार सरनि सहियं संसारे सरन्ति) संसार मार्ग सहित जीव ही संसारमें भ्रमण करते हैं (परिनाम विरयंति) संसार मार्ग सम्बन्धी राग द्वेष मोहके सर्व परिणाम अब सिद्धोंमें नहीं हैं (ज्ञानावरन न

दिट्ठं) न कोई ज्ञानपर ही आवरण देखा जाता है (ज्ञान सहावेन सरनि मुक्कं च) ज्ञान स्वभावके विकाशसे उनके संसार-भ्रमणका मार्ग बन्द होता है, वे अब संसारमें फिर भ्रमण न करेंगे।

भावार्थ—संसारमें भ्रमणका बीज राग द्वेष मोह है। उनहीसे नूतन कर्म बन्धते हैं जिनके उदयसे जीव एक गतिसे दूसरी गतिको जाता है। शुद्ध सिद्ध भगवानमें पूर्ण वीतरागता है, तथा पूर्ण ज्ञान भी है। अज्ञान तथा मोहके अभावसे उनको फिर संसार भ्रमण नहीं करना होगा।

परभावं पर सहियं, पर सहकार नन्त विरयंमि।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन परभाव षिपनं च ॥४०२॥

अन्वयार्थ—(परभावं पर सहियं) जितने भी औपाधिक भाव होते हैं वे पर जो कर्म हैं उनके संयोग सम्बन्ध होनेपर ही होते हैं (पर सहकार नन्त विरयंमि) सो सिद्धोंकी अनन्तानन्त कर्म वर्गणाओंका सर्व संयोग क्षय होगया है (आवरनं नहु पिच्छदि) उनमें कोई भी आवरण नहीं दिखता है (ज्ञान सहावेन परभाव षिपनं च) उनमें शुद्ध ज्ञान स्वभाव प्रगट होगया है। इसलिये अशुद्ध ज्ञानके परिणमन सब क्षय होगये हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें रागद्वेषादि विभाव परिणाम बिलकुल भी नहीं होते हैं। क्योंकि कोई भी कर्मका आवरण शेष नहीं है। जैसे शुद्ध स्फटिकमणिमें जब परका संयोग नहीं है तब लाल पना, हरा पना, पीत पना कैसे झलक सक्ता है, कभी नहीं—स्फटिकका स्वभाव ही झलकेगा। वैसे ही सिद्धोंमें कर्मोंका पटल हट जानेसे कोई भी विभाव भाव नहीं होसक्ता है। वे शुद्ध स्वभावमय अविनाशी हैं। जैसे शुद्ध सुवर्ण कुन्दन होजानेपर फिर वह किट्ट कालिमामई नहीं होता है। वैसे सिद्धात्मा फिर कभी मलीन नहीं होते हैं।

पज्जायं नन्त विसेसं, अनन्त परिनाम पज्जाय विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, दंसन दिट्ठी च कम्म षिपिऊनं ॥४०३॥

अन्वयार्थ—(पज्जायं नन्त विसेसं) पर्यायोंके अनन्त भेद हैं (अनन्त परिनाम पज्जाय विरयंति) सिद्धोंमें उन सर्व अनन्त पर्यायोंका शून्यपना है जो कर्म संयोगसे होती थीं (आवरनं नहु दिट्ठं) कोई आवरण उनमें नहीं देखा जाता है (दंसन दिट्ठी च कम्म षिपिऊनं) अनन्त दर्शन प्रगट हुआ और कर्मोंका क्षय होगया।

भावार्थ—कर्म संयोग होनेपर ही आत्माको अनन्त शरीर धारण करने पड़े थे तथा भावोंकी अपेक्षा अनन्त प्रकारके अज्ञान भाव होते थे। अब सर्व कर्मोंका आवरण क्षय होगया है इसलिये सिद्धोंमें वे सर्व कर्मजनित पर्यायें अब नहीं होसक्ती हैं। वे अन्य चार गतिमेंसे किसी गतिमें पैदा नहीं होते हैं उनको अनन्त दर्शन स्वभाव प्रकाशमान होगया है, दर्शनावरण कर्म कोई शेष नहीं रहा है।

नोकम्मं उववन्नं, नोकम्म भावं सयल विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं दिट्ठी च कम्म पिपिऊनं ॥ ४०४ ॥

अन्वयार्थ—(नोकम्म उववन्न) संसारी जीवके शरीर पैदा होता है (नोकम्म सयल विरयति) शरीर संबंधी सर्व ही भाव शरीर रहित सिद्ध भगवान्में नहीं हैं (आवरनं नहु दिट्ठ) न कोई वहां आवरण दिखलाई पड़ता है (ज्ञानं दिट्ठी च कम्म पिपिऊनं) जब केवलज्ञानका प्रकाश होगया तब शेष कर्मोंका क्षय होगया।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मामें न शरीर है न कोई शरीर सम्बन्धी क्षुधा, तृषा आदि दोष हैं। वहां कोई कर्मोंका आचरण नहीं है। वे निरावरण निर्मल परमात्मा हैं।

भाव कम्म उववन्नं, भाव परिनाम सयल विरयंति।
आवरनं नहु सहियं, ज्ञान सहावेनं कम्म षिपनं च ॥४०५॥

अन्वयार्थ—(भाव कम्म उववन्न) संसारी जीवोंके मोहकर्मके उदयसे रागादि भाव कर्म उत्पन्न होते हैं (भाव परिनाम सयल विरयति) श्री सिद्ध परमात्मामें वे सर्व ही भावकर्म नहीं हैं (आवरनं नहु सहियं) क्योंकि उनके साथ किसी कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म षिपनं च) ज्ञान स्वभावके प्रकाशसे उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—जैसे सिद्ध भगवानमें कोई स्थूल शरीर नहीं है वैसे ही उनमें मोहजनित रागादि भाव-कर्म भी नहीं हैं, वे सर्व पुद्गलके संयोग रहित शुद्ध आत्मा हैं।

कम्मं सकम्म पिच्छं, कम्म सहावेन सयल विरयंति।
आवरनं न उवन्नं, दंसन दिट्ठी च कम्म विरयंति ॥ ४०६ ॥

अन्वयार्थ—(कम्म सकम्म पिच्छ) द्रव्यकर्म कर्म सहित संसारी जीवमें देखे जाते हैं (कम्म सहावेन सयल विरयंति) सिद्ध भगवानके सर्व ही कर्मकी प्रकृतियोंका अभाव है (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई आवरण नहीं दिखाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च कम्म विरयंति) उनके अनन्त दर्शनका प्रकाश हुआ फिर सर्व कर्म क्षय होगए।

भावार्थ—जैसे सिद्ध भगवानमें नोकर्म नहीं हैं, भावकर्म नहीं हैं, वैसे उनमें ज्ञानावरणादि कोई भी द्रव्य कर्म नहीं हैं। उनके चौदहवें गुणस्थानके अन्तमें सर्व कर्म क्षय होगये।

आरति रति सहकारं, आरति परिनाम नन्त विरयंति।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च ॥४०७॥

अन्वयार्थ—(रति सहकारं आरति) रतिके कारण आर्तध्यान होजाता है (आरति परिनाम नन्त विरयंति) सिद्ध भगवानके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेदरूप आर्तध्यानके परिणामोंमेंसे कोई भी अँश आर्तध्यानका नहीं है (आवरनं नहु पिच्छदि) उनमें कोई आवरण नहीं देखा जाता है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च) उनके ज्ञानानन्द स्वभावके प्रकाश होते ही कर्म क्षय होगये।

भावार्थ—जगतके पदार्थोंमें व शरीरमें रागभाव होनेसे इष्टवियोगके कारण अनिष्ट संयोगके कारण, पीड़ाके कारण व भोगाभिलाषके कारण भावोंमें आर्तध्यान होजाता है। सिद्धोंके जगतके किसी भी पदार्थसे रागद्वेष नहीं है। इससे उनके आर्तध्यानका कोई झलकाव नहीं होसक्ता। वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं। उनके सर्व ही कर्म क्षय होगए हैं।

रौद्रं सहाव जुत्तं, रौद्रं सहकार नन्त विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, दंसन दिट्ठी च कम्म विलयंति ॥ ४०८ ॥

अन्वयार्थ—(रौद्र सहाव जुत्त) संसारी जीव दुष्ट भावोंके साथ होकर रौद्रध्यान करते हैं (रौद्रं सहकार नन्त विरयंति) सिद्ध भगवानमें रौद्रध्यान सम्बन्धी अनन्त प्रकारके विकार नहीं हैं (आवरनं नहु दिट्ठं) कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च कम्म विलयंति) उनके अनन्तदर्शनका प्रकाश होगया है, फिर सर्व कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—संसारी जीवोंके विषय कषाय होते है इसलिये उनमें हिसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी, परिग्रहानन्दी ये। चार प्रकारके रौद्रध्यान होसक्ते हैं, परन्तु सिद्धोंमें कोई सांसारिक विचार नहीं हैं न उनके उत्पादक कर्मोंका ही सम्बन्ध है।

मिथ्यात भाव सहकारं, मिथ्या परिनाम सत्व विरयंति।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं अनुमोय कम्म गलियं च ॥ ४०९ ॥

अन्वयार्थ—(मिथ्यात भाव सहकारं) संसारी जीवोंके मिथ्यात्वभाव होता है (मिथ्या परिनाम सत्व वि यति) सिद्धोंमें सर्व ही मिथ्यात्व सम्बन्धी भावोंका अभाव है (आवरन नहु दिट्ठं) न कोई आवरण दिखलाई पड़ता है (ज्ञान अनुमोय कम्म गलिय च) ज्ञान स्वभावमें मगन होनेसे उनके सर्व कर्म गल गये हैं।

भावार्थ—संसारी जीवोंके दर्शनमोहका उदय होता है इससे मिथ्यात्वभाव पाया जाता है। सिद्धोंके मोहका सर्वथा अभाव है अतएव क्षायिक सम्यक्त तो है, परन्तु कोई मिथ्याभाव नहीं है। उनके सब ही कर्म नहीं रहें।

अवंभ भाव संजुत्तं, अवंभ परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान महावेन अवंभ विलयं च ॥ ४१० ॥

अन्वयार्थ—(अवंभ भाव सजुत्तं) संसारी जीव अब्रह्म जो कुशीलभाव उसको रखनेवाले हैं (अवंभ परिनाम सयल गलिय च) सिद्धभगवानके सर्व ही अब्रह्मके भाव गल गए हैं (आवरन नहु जुत्त) वहां कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन अवंभ विलय च) उनके ज्ञान स्वभावमई ब्रह्मका प्रकाश होगया है इसलिये अब्रह्मका चिह्न भी नहीं रहा है।

भावार्थ—संसारी जीवोंको वेद नोकषायका उदय पाया जाता है इसलिये कुशील भाव होना संभव है। सिद्धोंके सर्व कषायोंका व अन्य सर्व कर्मोंका अभाव है इसलिये वे अन्तरंग ब्रह्ममें लीन हैं। वहां पूर्ण शीलभाव है। शरीर न होनेसे बाहर कोई कुशीलका विकार नहीं होसक्ता है।

अज्ञानी अनुमोय अज्ञानं, अज्ञान परिनाम नन्त विरयन्ति।
आवरनं नहु उत्तं, ज्ञान अनुमोय कम्म विलयन्ति ॥ ४११ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानी अज्ञान अनुमोय) संसारी अज्ञानी जीव अज्ञानका स्वागत करते हुए अज्ञानी रहते हैं (अज्ञान परिनाम नंत विरयन्ति) सिद्धोंके अनन्त प्रकारके अज्ञानभाव बिलकुल नहीं है। (आ॰ न नहु उत्त) न उनके ज्ञानावरण कर्मका संयोग कहा गया है (ज्ञान अनुमोय कम्म विरयन्ति) ज्ञानानन्द स्वभावमें लय होनेसे उनके कर्म विला गए हैं।

भावार्थ— निगोदसे लेकर केवलज्ञान होनेके पूर्वतक अज्ञानभाव अनन्त प्रकारके होते हैं। जब ज्ञानावरण कर्मका क्षय होगया तब सर्व अज्ञानभाव जाता रहा। सिद्धोंके कोई अज्ञानभाव नहीं है, न कोई कर्मकी सत्ता है।

अनिस्ट सहाव सहियं, अनिस्ट परिनाम नंत गलियं च ।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान सहावेन अनिस्ट विलयन्ति ॥ ४१२ ॥

अन्वयार्थ—(अनिस्ट सहाव सहिय) संसारी जीव कर्मबन्धकारक रागद्वेष मोह इन अनिष्ट भावोंको रखनेवाले हैं (अनिस्ट परिनाम नंत गलिय च) सिद्धोंके ऐसे अनन्त परिणाम जो शक्ति अंशकी अपेक्षा होसक्ते हैं सो सर्व गलगये हैं (आवरन नहु जुत्त) न उनके साथ मोहनीय कर्मका आवरण है (ज्ञान सहावेन अनिस्ट विलयन्ति) उनके भीतर ज्ञान स्वभावका-वीतराग भावका प्रकाश है जिससे सर्व ही अनिष्ट भावोंका अभाव है।

भावार्थ— सिद्धोंके भीतर वीतरागता होनेसे व कर्मोंका कोई संयोग न होनेसे कोई भी ऐसे भाव नहीं होसकते हैं जो आत्माके लिये हानिकारक हों। वे कभी भी संसारमें पतन होने योग्य भावोंको प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

कम्मस्स कम्म जुत्तं, कम्म सहकार कृत्य नहु पिच्छं ।
आवरन भाव तिक्तं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति ॥ ४१३ ॥

अन्वयार्थ—(कम्मस्स कम्म जुत्त) कर्म सहित संसारी आत्माके ही क्रिया पाई जाती है (कम्म सहकार कृत्य नहु पिच्छ) कर्मोंके उदयकी प्रेरणासे कोई भी होनेवाली क्रिया सिद्धोंमें नहीं देखी जाती है (आवरन

भाव तिक्त) वहां कोई भाव ऐसा नहीं होता है जो कर्मोंका आवरण कर सके (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति । वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं इसलिये सिद्धोंके सर्व क्रियाएँ विला होगई हैं ।

भावार्थ—मन, वचन, काय योगोंका हलन चलन ही क्रिया है । सो यह योगका परिणमन तेरहवें सयोग केवली गुणस्थान तक पाया जाता है । सिद्धोंके न मन है, न वचन है, न काय है, न किसी कर्मका उदय है जिससे आत्माके प्रदेश सकम्प हों, इसलिये कोई भी वैभाविक क्रिया सिद्धोंके नहीं है । वे अशरीर हैं, वे ज्ञानान्दमें मगन हैं, वहां किसी क्रियाकी कल्पना हो ही नहीं सक्ती है । वास्तवमें आत्माका स्वभाव सर्व पर कर्तृव्य व पर भोक्तव्यसे रहित है । जैसे समयसार कलशमें कहा है—

कर्तृ वं न स्वभावोऽस्य चितो वेदयितृत्ववत । अज्ञानादेव कर्ताऽय तदभावादकारक ॥ २–१० ॥

भावार्थ—इस आत्माका स्वभाव न कर्तापनेका है, न भोक्तापनेका है, अज्ञानसे ही यह जीव अपनेको कर्ता मान लेता है । ज्ञानके अभावसे यह कर्ता नहीं रहता है । यह ज्ञानीको अकर्ता ही प्रतिभासता है ।

रागं च रागजुत्तं, राग परिनाम नन्त गलियंति ।
आवरनं नहु दिट्ठं, दंसन दिट्ठी च राग गलियं च ॥ ४१४ ॥

अन्वयार्थ—(रागं च रागजुत्तं) रागी संसारी जीवके भीतर ही रागभाव पाया जाता है (राग परिनाम नन्त गलियंति) सिद्धोंके सर्व ही रागके भाव गल गये हैं (आवरन नहु दिट्ठ) उनमें कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च राग गलियं च) वीतरागभाव पूर्ण सम्यग्दर्शनका प्रकाश होनेपर सर्व राग गल गया है ।

भावार्थ—सिद्धोंमें मोहकर्म नहीं हैं जिनसे रागभाव पैदा हो । वे पूर्ण वीतराग हैं । क्षायिक सम्यक्तके प्रभावसे उनका मोहकर्म क्षय होगया ।

दोषं च भाव युतं, दोषं सहकार नन्त गलियं च ।
आवरन न उपपत्ती, ज्ञान बलेन दोष विलयंति ॥ ४१५ ॥

अन्वयार्थ—(दोषं च भाव युत) द्वेषभाव भी संसारी जीवमें पाया जाता है (दोषं सहकार नन्त गलियं च) सिद्धोंके द्वेषको पैदा करनेवाली अनन्त कर्मवर्गणाएँ गल गई है (आवरन न उपपत्ती) उनके रागी द्वेषी न

होनेके कारण नूतन कर्मका आवरण नहीं होता है (ज्ञान बलेन दोष विलयति) उन सिद्धोंमें ज्ञान स्वभाव प्रगट है इसलिये कोई द्वेषभाव हो नहीं सक्ता।

भावार्थ—सिद्धोंको न क्रोध है, न मान है। ये ही द्वेषभावके उत्पन्न करनेवाले हैं। वे अपने ज्ञानमई वीतराग स्वभावमें लीन हैं। यदि कोई कितनी भी निन्दा करे तौभी सिद्धभगवानमें कोई द्वेषभाव व क्रोधभाव पैदा नहीं होसक्ता है, क्योंकि वे सर्व कर्मरहित शुद्ध हैं।

मनं सुभाव संयुत्तं, मन सहकार परिनयं गलियं।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयन्ति ॥ ४१६ ॥

अन्वयार्थ—(मन सुभाव संयुत्त) संसारी जीवोंके आठ पांखड़ीका कमलाकार मन हृदय-स्थानमें होता है। उसकी सहायतासे संकल्प विकल्प रूप भाव मन काम करता है। सिद्धोंके न शरीर है न मनोवर्गणाका आगमन है जिससे मन बनता है। न मतिज्ञान न श्रुतज्ञान है, जो मन द्वारा जानते हैं। जिनके केवल ज्ञानावरणका उदय है उनको मनकी सहायताकी जरूरत है। सिद्धोंके कोई ज्ञानावरण नहीं है-प्रत्यक्ष ज्ञान है, मनकी जरूरत नहीं (मन सहकार परिनमं गलिय) इसलिये उनके मन सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (आवरनं नहु पिच्छं) उनके ज्ञानपर कोई आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म विलयति) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं, इसलिये उनके सर्व कर्म गल गए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके मात्र शुद्ध आत्मा ही है। आत्माका स्वभाव संकल्प विकल्पसे रहित है, इसलिये सिद्धोंके कोई तर्कवितर्क व मनके विचार नहीं हैं। उनके भाव मन व द्रव्य मनके कारणभूत कोई कर्मका उदय व संयोग नहीं है। मन, वचन, काय जहांतक है वहांतक संसारी है। समयसारकलशमें कहा है—

आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यन्तविमुक्तमेकं। विलीनसंकल्पविकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ॥ १०-१ ॥

भावार्थ—आत्माका स्वभाव परभावोंसे भिन्न है, अपने गुणोंसे पूर्ण है, आदि व अन्त रहित है। उसमें कोई संकल्प-विकल्पके जाल नहीं हैं। शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा ऐसा ही प्रगट होता है।

वचनं असुह सहावं, वचनं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु मुत्तं, ज्ञान सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४१७ ॥

अन्वयार्थ—(वचन असुह सहाव) वचन भी वहीं तक निकलते हैं जहांतक आत्मा कर्मोंके संयोगके साथ अशुद्ध है (वचनं परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके वचनोंका परिणमन व वचनोंके कहनेका कारण सब गल गया है (आवरन नह युत्त) कोई आवरण भी नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म गलिय च) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं इससे सर्व कर्म गल गए हैं।

भावार्थ—संसारी जीवोंके ही वचनोंकी प्रवृत्ति पाई जाती है। अरहन्त केवली शरीर सहित हैं, चार अघाति कर्म सहित हैं इससे उनके शरीर नामकर्म, स्वर नामकर्मके उदयसे वचन निकलते हैं। सिद्धोंके कोई भी कर्मोंका संयोग नहीं है, न कोई शरीर है, न भाषा वर्गणाओंको आकर्षण करनेका कारण योग परिस्पंद है, न उनके यह विकल्प ही होता है कि मैं कुछ बोलूं। इसलिये सिद्धोंके द्वारा कोई धर्मोपदेश नहीं होसक्ता है। अमूर्तीक परमात्माके मूर्तीक पुद्गलकी अवस्थारूप वचन कैसे निकल सक्ते हैं ? नहीं निकल सक्ते हैं, इसलिये सिद्धोंके भीतर वचनोंका काम नहीं हैं।

क्रुतं च भाव संयुत्तं, क्रुतं च कम्म गलिय सुह असुहं।
आवरन संग तिक्तं, ज्ञान परिनाम कम्म गलियं च ॥४१८॥

अन्वयार्थ—(कृत च भाव सयुत्तं) शरीरके द्वारा क्रिया करनेके भावोंको रखनेवाले संसारी जीव होते हैं (कृत च कम्म सुह असुहं गलिय) सिद्धोंके क्रिया करानेमें प्रेरक सर्व ही शुभ कर्म व अशुभ कर्म गल गए हैं (आवरन संग तिक्त) सर्व कर्मोंके आवरणका संयोग छूट गया है (ज्ञान परिनाम कम्म गलियं च) वे ज्ञानभावमें मगन हैं इसीसे सर्व कर्म गलगए हैं।

भावार्थ—क्रिया शरीर द्वारा होती है, काय योग द्वारा होती है, सयोग केवलीतक काय योग है, तब ही तक उनका विहार है। सिद्ध भगवानके न शरीर है न आत्माके प्रदेशोंको कम्पित करनेवाला नामकर्मका उदय है। वे निरन्तर ज्ञान स्वभावमें मगन होते हुए आत्मानन्दका स्वाद लेते हैं। उनके कोई भी क्रिया नहीं है, वे निष्क्रिय हैं। यही आत्माका सच्चा स्वभाव है।

कारित सहाव युत्तं, कारित सहाव दोष गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कारितं विलयं ॥ ४१९ ॥

अन्वयार्थ—(कारित सहाव युत्तं) संसारी जीवोंमें मोह व रागद्वेष हैं इससे वे दूसरोंको प्रेरणा करके काम कराया करते हैं (कारित सहाव दोष गलिय च) सिद्धोंमें वे कर्मके दोष ही नहीं हैं जिनसे वे किसीके द्वारा कोई काम कराएँ (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं देखा जाता है (ज्ञान सहावेन कारितं विलयं) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं। जैसे उनके स्वयं क्रिया नहीं है वैसे करानेका भी कोई संबंध नहीं है।

भावार्थ—कोई २ परमात्माको ऐसा मानते हैं कि वही सर्व काम कराता है, उसकी प्रेरणा विना पत्ता तक नहीं हिलता है। यहां सिद्धोंका स्वरूप ऐसा है कि वे अमूर्तीक परमात्मा होनेपर भी किसीसे कुछ करानेका विकल्प नहीं करते हैं, न उनके शरीर है, न मन है, न वचन है, आज्ञा कैसे देवेंगे? न मोह है न रागद्वेष है। वे परम उदासीन हैं। उनको कोई सम्बन्ध जगतके जीवोंके साथ नहीं है।

अनुमय सहाव महियं, अनुमय सहकार भाव गलियं च।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान सहावेन कम्म संगलियं ॥४२०॥

अन्वयार्थ—(अनुमय सहाव सहियं) संसारी जीवोंमें अनुमोदना करनेका स्वभाव होता है (अनुमय सहकार भाव गलिय च) सिद्धोंमें वह भाव ही सब गल गया है जिससे उनके भीतर किसीके अच्छे कार्यकी अनुमोदना हो (आवरन नहु जुत्त) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म संगलियं) उन्होंने अपने ज्ञान स्वभावसे सर्व कर्मोंको गला डाला है।

भावार्थ—किसीकी कार्यकी सराहना वहींतक होती है जहांतक रागभाव है व मन चञ्चल है। यह अनुमोदनाका कार्य प्रमत्तविरत छठे गुणस्थान तक ही होसक्ता है। सातवेंसे लेकर सर्व ही गुणस्थान ध्यानमय हैं, तब शरीर रहित, राग रहित, मन रहित शुद्ध परमात्माके यह अनुमोदनाका भाव कैसे हो सक्ता है? कोई ऐसा मानते हैं कि परमात्मा भक्तोंपर प्रसन्न होता है, सिद्धोंका ऐसा स्वभाव नहीं है। उनमें मोहका संबंध ही नहीं है। न वे प्रसन्न होते है न निन्दा करनेवाले पर असंतुष्ट होते हैं। वे राग द्वेषसे रहित निर्विकार समदर्शी परमात्मा हैं। वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं। इसीसे सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भोगं सहाव सहियं, भोगं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छइ, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४२१ ॥

अन्वयार्थ—(भोगं सहाव सहियं) संसारी जीव भोगनेके स्वभावको रखते हैं भोगं परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके सर्व ही भोगोंके करने योग्य भाव गल गए हैं (आवरनं नहु पिच्छइ) उनमें कोई आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म संषिपन) उनके ज्ञान स्वभाव प्रगट होनेसे कर्म क्षय होगए है ।

भावार्थ—भोग पांच इंद्रियोंसे मन द्वारा होते हैं । भोग भोगनेमें रागभावकी, मतिज्ञानकी, श्रुतज्ञानकी आवश्यक्ता है । ये सब संसारी जीवोंमें सम्भव हैं । सिद्धोंके न इंद्रिय है, न मन है, न राग है, न मतिश्रुतज्ञान है । वे आत्मानन्दका स्वाधीनतासे भोग करते हैं । वे पर पदार्थका भोग नहीं करते हैं । कोई २ परमात्माको जगतके सुखोंका भोक्ता मानते हैं । सिद्ध भगवानको इन बातोंसे कोई प्रयोजन नहीं है । वे भोजनपान नहीं करते हैं, न करनेका सुख ही भोगते हैं ।

उवभोग भाव जुत्तं, उवभोग परिनाम सव्व गलियं च ।

आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४२२ ॥

अन्वयार्थ— उवभोग भाव जुत्त) संसारी जीव उपभोग करनेका भाव रखते हैं (उवभोग परिनाम सव्व गलियं च) सिद्धोंमेंसे उपभोग करनेका सर्व भाव गल गया है (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई आवरन दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म संषिपन) वे ज्ञान स्वभावमें मगन होनेसे कर्मोंका क्षय कर चुके हैं ।

भावार्थ—जो एकवार भोगा जासके उसको भोग कहते हैं । जो वारवार भोगा जावे उसे उपभोग कहते हैं । जैसे वस्त्र आभूषण पात्र आदि। ये सर्व उपभोग शरीर सहित संसारी जीवोंमें पाए जाते हैं । सिद्धोंमें न शरीर है न इंद्रियां हैं न मोह कर्म है। इससे वे पर पदार्थका उपभोग नहीं करते हैं । वे निरन्तर अपने ज्ञानानन्दका ही उपभोग करते हैं । उनके सर्व ही कर्म गल गए हैं ।

परिनाम असत्य सहियं, असत्य भाव सयल गलियं च ।

आवरनं नहु सहियं, ज्ञान सहावेन परिनाम गलियं च ॥ ४२३ ॥

अन्वयार्थ—(परिनाम असत्य सहिय) संसारी जीवोंके अज्ञान व राग द्वेष होनेसे असत्य भाव होते हैं (असत्य भाव सयल गलिय च) सिद्धोंमें पूर्ण ज्ञान वीतरागता होनेसे सर्व ही असत्य भाव नहीं रहे (आवरनं

नहु सहिय) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन परिन म गलियं च) वे अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें लीन हैं, उनके असत्य भाव सब गल गए हैं।

भावार्थ—सिद्ध परमात्माके भीतर असत्य ज्ञानके कारण कोई आवरण नहीं है इसलिये वे सदा सत्य स्वरूपमें लीन हैं। वे पूर्ण सम्यग्ज्ञानी हैं, सर्वदर्शी हैं, परम वीतराग हैं। अल्पज्ञानी व सरागी ही असत्य कह सक्ता है। सिद्धोंमें असत्यका कोई सम्बन्ध ही नहीं है।

मय सहाव संजुत्तं, मय सहकार नन्त गलियं च।
आवरन भाव तिक्तं, ज्ञान सहावेन मद्य विलयंति॥ ४२४ ॥

अन्वयार्थ—(मय सहाव संजुत्तं) मद स्वभावको रखनेवाले संसारी जीव है (मय सहकार नन्त गलियं च) सिद्धोंके मदको उत्पन्न करनेवाले सर्व कर्म गल गए हैं (आवरन भाव तिक्तं) इनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञान सहावेन मद्य विलयति) वे ज्ञान स्वभावमें लीन हैं। उनके मदका होना असम्भव है।

भावार्थ—जाति कुल धनादिके आठ प्रकारके मद संसारी जीवोंमें पाए जाते हैं जिनके कषायमई कर्मोंका सम्बन्ध है। सिद्धोंके सर्व कर्म ही गल गए हैं। इसलिये वहां कोई प्रकारका मद या अहंकार नहीं होसक्ता है।

कषायं संयुत्तं, कषाय भाव नन्त गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म विरयंति॥ ४२५ ॥

अन्वयार्थ— कषायं संयुत्तं) संसारी जीव क्रोधादि कषायोंको रखते हैं (कषाय भाव नन्त गलिय च) सिद्धोंके कषाय भावको उत्पन्न करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरनं नहु पिच्छ) उनमें कोई कर्मका आवरन नहीं है (ज्ञान सहावेन कम्म विरयति) उनके ज्ञान स्वभावमें थिर होनेसे सर्व ही कर्म छूट गए हैं।

भावार्थ— सोलह कषाय और हास्यादि नौ नोकषाय चारित्र मोहनीय कर्मकी प्रकृतियां हैं। उनहीके उदयसे कषाय भाव होते हैं। सिद्धोंमें आठों ही कर्म नहीं हैं इसलिये न उनमें क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न हास्य है, न रति है, न अरति है, न शोक है, न भय है, न जुगुप्सा है, न स्त्रीवेद है, न पुंवेद है, न नपुंसक वेद है। वे पूर्ण वीतरागी निर्विकारी हैं।

पज्जाय भाव संजुत्तं, पज्जय सहकार नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठी, दंसन दिट्ठी च पज्जाय विलयंति ॥ ४२६ ॥

अन्वयार्थ—(पज्जाय भाव सजुत्तं) संसारी जीव जिस शरीररूपी पर्यायमें होते हैं उसीके रागमें होजाते हैं (पज्जय सहकार नंत गलिय च) सिद्धोंके कोई शरीर नहीं है तथा शरीर सम्बन्धी ममत्वके कारण अनन्त कर्म क्षय होगये हैं (आवरनं नहु दिट्ठी) यहां कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (दंसन दिट्ठी च पज्जाय विलयंति) सिद्धोंके अनन्त दर्शन प्रगट होगया है, वे मुक्त होगये हैं, उनके सर्व ही सांसारिक पर्याय विला गई हैं।

भावार्थ— सिद्धोंके शुद्ध आत्माका स्वभाव प्रकाशमान है। उनके न तो कोई कर्म है, न शरीर है, न कोई पर्यायका अहंकार ही होसक्ता है।

सल्यं च भाव सहियं, सल्यं परिनाम सयल गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञान सहावेन सल्य तिक्तं च ॥ ४२७ ॥

अन्वयार्थ—(सल्यं च भाव सहियं) संसारी जीव माया मिथ्या निदान इन तीन शल्य सहित पाए जाते हैं। (सल्य परिनाम सयल गलियं च) सिद्धोंके सर्व ही शल्य होने योग्य परिणाम क्षय होगए हैं। (आवरनं नहु दिट्ठ) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है। (ज्ञान सहावेन सल्य तिक्त च) उनका शुद्ध ज्ञान-स्वभाव प्रकाशित है, उसमें सर्व ही शल्योंका त्याग है।

भावार्थ— सिद्धोंमें कोई ऐसे कर्म भी नहीं हैं, न कोई सांसारिक मोह है, जिससे उनमें शल्य पाई जावें। वे सदा शल्य रहित शुद्ध भावमें ही रमण करते हैं।

लोभं सहाव युत्तं, लोभं सहकार परिनाम गलियं च ।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४२८ ॥

अन्वयार्थ—(लोभं सहाव युत्त) संसारी जीव लोभ कषाय सहित पाए जाते हैं (लोभ सहकार परिनाम गलियं च) सिद्धोंके लोभ उत्पन्न करनेवाली सर्व अवस्थाएं गल गई हैं। (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म गलिय च) वे ज्ञान स्वभावमें मगन हैं, उनके सर्व कर्म गल गए हैं।

भावार्थ—शरीर व इन्द्रियोंके सम्बन्धसे ही भोग्य पदार्थोंमें लोभ होता है सिद्धोंके न शरीर है न इंद्रियां हैं न वे कर्म हैं जिनके उदयसे लोभ कषाय पैदा हो। वे परम वीतराग हैं, परम कृतकृत्य हैं, परम संतोषी हैं।

कोहं सहाव युत्तं, कोहं परिनाम नन्त विरयंति।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कोह विलयंति ॥ ४२९ ॥

अन्वयार्थ—(कोह सहाव युत्त) संसारी जीव क्रोध स्वभावको रखनेवाले हैं (कोह परिनाम नन्त विरयंति) सिद्धोंके क्रोध भावके कारण अनन्त कर्म छूट गए हैं (आवरन नहु पिच्छ) उनमें कोई कर्मका आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कोह विलयंति) ज्ञान स्वभावमें थिर होनेसे शुक्लध्यानके प्रतापसे क्रोध कषायका नाश होचुका है।

भावार्थ—सिद्धोंके मोहकर्मका सर्वथा अभाव है। इसलिये क्रोधका उदय नहीं होसक्ता है। वे अपनी निन्दा करनेवाले पर कभी क्रोध नहीं करते हैं। वे सदा समताभावमें लीन रहते हैं।

मानं सहाव जुत्तं, मानं सहकार नन्त विरयंतो।
आवरनं नहु जुत्तं, ज्ञान संयुत्त कम्म विलयंति ॥ ४३० ॥

अन्वयार्थ—(मान सहाव जुत्त) संसारी जीवोंके मानका विभाव पाया जाता है (मान सहकार नन्त विरयतो) सिद्धोंके मान कषायके कारण अनन्त कर्मवर्गणाएं छूट गई हैं (आवरन नहु जुत्त) उनके कोई आवरण नहीं है (ज्ञान संयुत्त कम्म विलयंति) जिससमय आत्मज्ञानकी पूर्णताको प्राप्त किया तब ही सब कर्म क्षय होगए थे।

भावार्थ—मोहनीयकर्मका सर्वथा क्षय होनेसे सिद्ध परमात्माके कोई मान भाव नहीं दिखता है। वे पूर्ण उत्तम मार्दवगुणके धारी आत्मस्थ रहते हैं।

माया सहाव सहियं, माया परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं अनुमोय कम्म पिपनं च ॥४३१॥

अन्वयार्थ—(माया सहाव सहिय) संसारी जीवोंके माया भाव पाया जाता है (माया परिनाम सयल गलिय च)

सिद्धोंके मायाका बिलकुल अभाव है (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च) वे ज्ञानानन्द स्वभावमें तल्लीन हैं। उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके भीतर कोई मायाभाव नहीं होसक्ता। वे पूर्ण आर्जव धर्म जो आत्माका स्वभाव है उनमें लीन हैं।

मोहं सहाव उत्तं, मोहं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च॥ ४३२ ॥

अन्वयार्थ—(मोहं सहाव उत्तं) संसारी जीवोंमें मोहका विभाव कहा गया है (मोह परिनाम सयल गलियं च) सिद्धोंके मोह सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञानं अनुमोय कम्म षिपनं च) ज्ञानानन्दमई स्वभावमें लीन होनेसे सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान सर्व कर्म रहित हैं। उनमें न तो मोहनीय कर्म हैं जिनसे मोह उत्पन्न हो, न यह जगतके प्राणियोंके साथ मोह रखते हैं। वे बिलकुल निर्मोह उदासीन हैं। उनकी भक्ति करता है उसके परिणाम स्वयं ही सुधर जाते हैं। सिद्ध भगवान उस भक्तपर मोह करके उसके परिणाम नहीं सुधारते।

वसनं सहाव युत्तं, वसनं सहकार कम्म गलियं च।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयन्ति॥ ४३३ ॥

अन्वयार्थ—(वसनं सहाव युत्तं) संसारी जीव जूआखेलन आदि सात व्यसनकी आदतोंमें पाए जाते हैं (वसनं सहकार कम्म गलियं च) सिद्धोंके व्यसनभावके उत्पन्न करनेवाले कर्म गल चुके हैं (आवरन नहु दिट्ठं) उनमें कोई आवरन नहीं दिखलाई पडता है (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंति) उनके आत्माके शुद्ध ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्म सब विला गए हैं।

भावार्थ—तीव्र कषायोंके उदयसे संसारी जीवोंको जूआ खेलने, मांस खाने, मद्य पीने, चोरी करने, शिकार खेलने, वेश्या सेवने व परस्त्री सेवनेकी व ऐसी और भी अनेक बुरी आदतें पड जाया करती हैं। सिद्धोंमें कोई कषाय नहीं है, न इंद्रिये हैं, न शरीर है। उनके इन व्यसनोंके भावोंका होना ही संभव नहीं है।

विकहा सहाव सहियं, विकहा सभाव दोम विरयंति ।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञानं संयुत्त विकह विलयंति ॥ ४३४ ॥

अन्वयार्थ—(विकहा सहाव सहियं) संसारी प्राणियोंका ऐसा स्वभाव है कि स्त्री, भोजन, देश व राजा तथा अन्य रागद्वेष वर्द्धक विकथाओंमें लीन होजाते हैं (विकहा सभाव दोस विरयति) परंतु सिद्धोंमें इन विकथाओंके कहनेका कोई दोष नहीं होसक्ता (आवरन नहु पिच्छदि) उनमें कोई कर्मका आवरण नहीं है (ज्ञानं संयुत्त विकह विलयंति) वे शुद्ध ज्ञान सहित हैं। उनके विकथाओंका सर्व प्रकारसे अभाव है ।

भावार्थ—राग द्वेषके वशीभूत हो अपने व दूसरोंके मनको रंजायमान करनेके लिये विकथाएं कही जाती हैं। सिद्ध भगवान परम वीतराग हैं व सर्व कर्ममल रहित हैं। उनके विकथाओंकी कोई सम्भावना नहीं है ।

इंदि सहाव सहियं, इंदि परिनाम दोस विरयन्ति ।
आवरनं नहु पिच्छदि, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४३५ ॥

अन्वयाथ—(इंदी सहाव सहिय) संसारी जीवोंके इंद्रियोंके भोगोंकी चाह पाई जाती है (इदी परिनाम दोस विरयंति) सिद्धोंके इंद्रिय संवन्धी परिणामोंके कोई विकार नहीं है। (आवरन नहु पिच्छदि) उनमें कोई कर्मका आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म सषिान) अपने ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे उनके कर्म क्षय होगए हैं ।

भावार्थ—संसारी जीवोंके इंद्रियां भी हैं व कर्मके उदयसे उनके भोगकी इच्छा भी है परन्तु सिद्ध भगवानके न शरीर है, न इंद्रियाँ हैं, न रागभाव है जिनसे उनको किसी इंद्रियके भोगकी इच्छा हो। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दमें मग्न हैं।

रसन भाव संजुत्तं, रसना परिनाम सयल विरयन्ति ।
आवरनं नहु दिट्ठं, अतिंदी ज्ञान कम्म विरयन्ति ॥ ४३६ ॥

अन्वयार्थ—(रसन भाव सजुत्तं) संसारी जीव रसनाकी चाहकी दाहमें जलते हैं (रसना परिनाम सयल विरयति) सिद्धोंके रसना सम्बन्धी सर्व चाहनाएं विलय होगई हैं (आवरनं नहु दिट्ठ) सिद्धोंके कोई कर्मका

आवरण नहीं है (अतिंदी ज्ञान कम्म विर्यंति) सिद्धोंके अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष केवलज्ञान है, क्षयोपशम ज्ञान सम्बन्धी कर्म नहीं रहे हैं।

भावार्थ—सिद्धोंके न रसना इंद्रिय है, न मोहकर्म है, न मतिज्ञान है जिससे रसना द्वारा स्वादका ज्ञान हो। वे तो अतीन्द्रिय आनन्दके भोगसें परम तृप्त हैं। उनके कोई लालसा या चाह नहीं है।

स्पर्सन सहाव सहियं, स्पर्सन परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु युत्तं, अतिंदी ज्ञान कम्म गलियं॥ ४३७॥

अन्वयार्थ—(स्पर्सन सहाव सहियं) संसारी प्राणियोंके स्पर्शन इंद्रियकी चाह पाई जाती है (स्पर्सन परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके स्पर्शन इंद्रियकी चाह सम्बन्धी सर्व विकार गल गए हैं (आवरनं नहु युत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं है (अतिंदी ज्ञान कम्म गलियं च) इंद्रियातीत प्रत्यक्ष केवलज्ञानका प्रकाश है। क्षयोपशम ज्ञान सम्बन्धी कम गल गए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान ब्रह्म स्वरूप निजात्मामें लीन हैं, पूर्ण शीलव्रतके स्वामी हैं। उनके कुशील-सेवन सम्बन्धी कोई भाव नहीं होसक्ते, न वहां स्पर्शन इंद्रिय है, न मोहनीयकर्म है, न मतिज्ञान है।

घ्रानं सुभाव युत्तं, घ्रानं परिनाम नन्त गलियं च।
आवरनं न उवन्नं, अतिंदी परिनाम घ्रान विलयंति॥ ४३८॥

अन्वयार्थ—(घ्रानं सुभाव युत्त) संसारी जीवोंके नाशिकाका विषय पाया जाता है (घ्रानं परिनाम नन्त गलियं च) सिद्धोंके नाशिका इंद्रिय सम्बन्धी चाहको उत्पन्न करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरन न उवन्नं) उनमें कोई कर्मका आवरण न पिछला है न नया उत्पन्न होता है (अतिंदी परिनाम घ्रान विलयति) वे अतिंद्री ज्ञान व आनन्दकी परिणतिको रखनेवाला है। उनके घ्राण द्वारा ज्ञान ही विलय होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके न शरीर है, न घ्राण इंद्रिय है, न मतिज्ञान है, न मोहनीयकर्म है। इसलिये किसी वस्तुके सूंघनेकी चाह पैदा नहीं होसक्ती है। वे तो वीतराग अतीन्द्रिय ज्ञान आनन्दमें मगन हैं।

चष्यं सहाव सहियं, चष्यं परिनाम सयल विरयन्ति।
आवरनं नहु पिच्छं, अतिन्दी सभाव चप विरयन्ति॥ ४३९॥

अन्वयार्थ—(चष्यं सहाव सहियं) संसारी जीवोंके आंख होती है व देखनेकी चाह भी होती है (चष्यं परिनाम सयल विरयंति) सिद्धोंके चक्षु नहीं हैं, चक्षु सम्बन्धी सर्व देखनेके राग नहीं हैं (आवरनं नहु पिच्छं) उनमें कोई कर्मका आवरण भी नहीं है (अतिन्दी सभाव चष विरयन्ति) उनके अतीन्द्रिय स्वाभाविक देखनेकी शक्ति है। चक्षुद्वारा देखनेकी पराधीनता नहीं रही है।

भावार्थ—सिद्धोंके न चक्षुइंद्रिय है, न मतिज्ञान है, न मोहनीय कर्म है जिसके उदयसे देखनेकी चाह पैदा हो। वे अतीन्द्रिय, अनन्तदर्शन व अनन्तज्ञानसे सर्व देखते जानते हैं। वे परम स्वाधीन हैं, परम कृतकृत्य हैं।

सोत्रं सहाव सहियं, सोत्रं सहकार परिनयं विरयं।
आवरनं नहु उत्तं, अतिंदी परिनाम सोत्र विरयन्ति ॥ ४४० ॥

अन्वयार्थ—(सोत्रं सहाव सहियं) संसारी जीवोंके कान हैं व सुननेकी चाह भी पाई जाती है (सोत्र सहकार परिनय विरयं) सिद्धोंके कर्णद्वारा सुननेका स्वभाव मिट गया है (आवरन नहु उत्तं) उनके कोई आवरण नहीं कहा गया है (अतिंदी परिनाम सोत विरयति) उनके अतीन्द्रिय ज्ञानकी परिणति है इससे कर्णइंद्रिय द्वारा ज्ञान सब विला गया है।

भावार्थ—कर्म सहित संसारी जीवोंके ज्ञानावरणके उदयसे प्रत्यक्ष केवलज्ञान नहीं होता है अतएव वे मतिज्ञानके धारी होकर कर्णद्वारा सुनते हैं व उनके सुननेकी चाह भी पाई जाती है। सिद्ध भगवानके शरीर नहीं है तथा अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट है जिससे वे सब कुछ जान रहे हैं। उनके मोहनीय कर्म भी नहीं हैं जिनसे कोई चाह पैदा हो। वे परम कृतकृत्य हैं।

सरीर भाव सहियं, सरीर परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४४१ ॥

अन्वयार्थ—(सरीर भाव सहियं) संसारी जीवोंके शरीर है व शरीर सम्बन्धी मोह भाव है (सरीर परिनाम सयल गलियं च) सिद्धोंके शरीर नहीं है। उनके शरीर सम्बन्धी राग, भाव सब गल गए हैं (आवरन

नहु पिच्छं) न उनके कोई कर्मका आवरण दिखलाई पड़ता है (ज्ञान सहावेन कम्म संपिपनं) ज्ञान स्वभावके प्रकाशमें मग्न होनेसे उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्ध अशरीर हैं व मोह रहित हैं इससे उनके शरीर सम्बन्धी कोई भी विकारी भाव नहीं पाए जाते हैं। उनके अमूर्तिक ज्ञान स्वभावका प्रकाश होगया है।

संज्ञा सहाव सहिओ संज्ञा परिनाम नंत गलियं च।
आवरनं नहु उत्तं सुद्ध सहावेन कम्म विलयंति ॥ ४४२ ॥

अन्वयार्थ—(सज्ञा सहाव सहिओ) संसारी जीव संज्ञा भावको रखते हैं। उनके आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चार संज्ञाएं पाई जाती हैं। (संज्ञा परिनाम नंत गलियं च) सिद्धोंके वे अनंत कर्म ही गल गए हैं जिनके उदयसे संज्ञा सम्बन्धी परिणाम हों। (आवरनं नहु उत्त) उनके कोई भी कर्मका आवरण नहीं कहा गया है। (सुद्ध सहावेन कम्म विलयंति) उनका शुद्ध स्वभाव प्रगट होगया है। सब विभावकारक कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—मोहनीय कर्मके उदयसे व शरीरके सम्बन्धसे संसारी जीवोंके आहारकी चाह, भय मैथुनकी चाह व परिग्रहका मोह पाया जाता है, परन्तु सिद्धोंके न मोहनीय कर्म है न शरीर है। तब फिर इन संज्ञाओंका होना कैसे संभव हो सक्ता है? वे परम कृतकृत्य, निर्भय, ममता रहित, समभावमें लीन आत्मानन्दके भोगी हैं।

आहार भाव सहियं आहार परिनाम सयल विरयंति।
आवरनं न उपत्ती समभावेन कम्म गलियं च ॥ ४४३ ॥

अन्वयार्थ—(आहार भाव सहिय) संसारी जीव आहार करनेकी इच्छा रखते हैं (आहार परिनाम सयल विरयति) सिद्धोंके वे सर्व भाव छूट गए हैं जिनसे आहारकी चाह हो। (आवरन न उपत्ती) उनके न पिछला आवरण है न नया आवरण उत्पन्न होता है (समभावेन कम्म गलियं च) उनके समताभाव प्रगट हो गया है जिससे सर्व कर्म क्षय हो गये हैं।

भावार्थ—भोजनकी इच्छा उसीके होती है जो शरीर सहित हो व निर्बल हो सिद्धोंके न शरीर है

न रागभाव है, न कोई निर्बलता है क्योंकि वे अनन्त बलके धनी हैं। वे आत्मानन्दका आहार नित्य करते रहते हैं।

षादं विसेस जुत्तं, षादं, परिनाम नंत गलियं च।
आवरन भाव तिक्तं, अप्प सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४४४ ॥

अन्वयार्थ—(षादं विसेस जुत्तं) संसारी जीव आहारका एक भेद खाद्य पदार्थोंका सेवन उसमें रागी रहते हैं (षादं परिनाम नत गलियं च) सिद्धोंके खाद्यके आहार करनेके राग सम्बन्धी सर्व अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरन भाव तिक्तं) कर्मोंके आवरण भी नहीं है न कम आवरणके भाव हैं (अप्प सहावेन कम्म संषिपनं) वे अपने आत्माके स्वभावमें थिर होगए इसलिये सर्व कर्म क्षय होगए।

भावार्थ—आहार चार प्रकारका है–खाद्य-जिससे पेट भरे जैसे दाल, चावलादि रोटी। स्वाद्य–स्वादको सुधारे जैसे लोंग, इलायची, पान आदि। पेय–पानेयोग्य पानी, दूध आदि। लेह्य–चाटने योग्य चटनी आदि। संसारी जीवोंके शरीर है, इन्द्रिय है, राग भाव है इससे खाद्यके खानेकी इच्छा होती है। परन्तु सिद्धोंके न शरीर है, न इन्द्रिय है, न राग भाव उत्पादक कर्म है। उन निष्कर्म सिद्ध परमात्माके एक आत्मानन्दका ही भोग है।

स्वादं सहाव सहियं, स्वादं अनिस्ट सुभाव विरयन्ति।
आवरनं नहु युत्तं, विमल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४४५ ॥

अन्वयार्थ—(स्वादं सहाव सहिय) संसारी प्राणी स्वाद्य आहारके राग सहित पाए जाते हैं (स्वादं अनिस्ट सुभाव विरयति) सिद्ध भगवान आत्माको अहितकारी स्वाद्य भोजनके रागभावसे विरक्त होचुके हैं (आवरनं नहु युत्त) उनके साथ किसी कर्मका आवरन नहीं है (विमल सहावेन कम्म संषिपनं) उन्होंने निर्मल स्वभावका प्रकाश कर दिया है। उनके इसी कारण कर्मोंका क्षय होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके स्वाद्य भोजनका भी कभी राग भाव नहीं होसक्ता। वे संसारके विषय भोगोंसे सर्वथा विरागी हैं। उनकी आत्मामें रागोत्पादक कर्म नहीं हैं।

पेयं सहावं जुत्तं, पेय अनिस्ट परिनाम निरयन्ति ।
आवरन भाव तिक्तं, पेय सहकार कम्म संपिपनं ॥ ४४६ ॥

अन्वयार्थ—(पेयं सहाव जुत्त) संसारी जीव पीने योग्य पदार्थोंके रागी हैं (पेय अनिस्ट परिनाम विरयति) सिद्ध भगवान पेय पदार्थोंके अनिष्ट रागभावसे विरक्त होचुके हैं (आवरन भाव तिक्त) उनके कर्मोंके बन्धकारक भाव नहीं हैं (पेय सहकार कम्म संपिपन) उनके पेय राग पैदा करनेवाले कर्म क्षय होगये हैं ।

भावार्थ—सिद्धोंके संसार सम्बन्धी रागभाव पैदा करनेवाले सर्व कर्म गल गए हैं । वे पूर्ण वीतराग हैं । उनके पेयका राग असम्भव है ।

लेयं सहकार सहियं, लेयं परिनाम नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४४७ ॥

अन्वयार्थ—(लेय सहकार सहियं) संसारी जीव लेह्य आहारके रागी पाए जाते हैं (लेयं परिनाम नन्त गलिय च) सिद्धोंके लेह्य आहार सम्बन्धी रागको पैदा करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरनं नहु उत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं कहा गया है (सुद्ध सहावेन कम्म गलियं च) इन्होंने अपने शुद्ध स्वभावके प्रकाशसे कर्मोंका क्षय कर डाला है ।

भावार्थ—सिद्धोंके लेह्याहार सम्बन्धी भी रागभाव नहीं होसक्ता है । वे आत्मानन्दके भोगमें तृप्त हैं । सर्व कर्मोंसे रहित हैं । कर्म सहित संसारी जीवोंके ही आहार करनेका रागभाव सम्भव है, सिद्धोंके नहीं ।

निद्रा सहाव युत्तं, निद्रा परिनाम नन्त गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, अप्प सहावेन कम्म नहु पिच्छदि ॥४४८॥

अन्वयार्थ—(निद्रा सहाव युत्त) संसारी जीवोंके निद्रा आती है (निद्रा परिनाम नन्त गलिय च) सिद्धोंके निद्रा लानेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरन नहु दिट्ठं) उनमें कोई आवरण नहीं दिखलाई पड़ता है (अप्प सहावेन कम्म नहु पिच्छदि) आत्माके स्वभावमें लीन होनेके कारण वहां कर्मोंकी स्थिति देख नहीं पड़ती है ।

भावार्थ—लौकिकमें निद्रा भी एक संज्ञा मानी जाती है। शरीर व कर्म सहित संसारी जीवोंके ही वह सम्भव है। कर्म रहित व शरीर रहित सिद्धोंके निद्राकी सम्भवता नहीं है। वे सदा अपने आत्म-स्वरूपमें जागृत रहते हैं।

भयं च भय संजुत्तं, भय सुभाव अनिस्ट गलिय च।
आवरनं न उपत्ती, ज्ञान सहावेन कम्म संगलिय ॥ ४४९ ॥

अन्वयार्थ—(भय संजुत्त च भयं) भयभीत संसारी प्राणियोंके ही भय पाया जाता है (भय सुभाव अनिस्ट गलिय च) सिद्धोंके भयरूपी अनिष्टके उत्पन्न करनेवाले सर्व कर्म गल गए हैं (आवरनं न उपत्ती) न उनके पिछला आवरण है न कोई नया आवरण उत्पन्न होता है (ज्ञान सहावेन कम्म संगलिय) वे ज्ञान स्वभावमें स्थिर हैं, उनके सर्व कर्म गलगए हैं।

भावार्थ—भय भय नाम नो कषायके उदयसे बाहरी सबल कारणके होनेपर होता है। सशरीर सकर्मक संसारी जीवोंके तो यह संभव है परन्तु सर्व कर्मरहित व शरीर रहित सिद्ध परमात्माके कोई भय होनेका कारण नहीं है। वे सदा निर्भय अपने स्वरूपमें मगन हैं।

मैथुन सहाव जुत्तं, मैथुन परिनाम सयल गलिय च।
आवरनं न उपत्ती, विमल सहावेन कम्म विलयन्ति ॥ ४५० ॥

अन्वयार्थ—(मैथुन सहाव जुत्तं) संसारी प्राणियोंके मैथुनभाव-कामभाव पाया जासक्ता है (मैथुन परिनाम सयल गलिय च) परंतु सिद्धोंके मैथुन सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (आवरन न उपत्ती) उनके कोई नया आवरण भी नहीं होता है (विमल सहावेन कम्म विलयन्ति) उनका स्वभाव निर्मल प्रगट होगया है, इससे वहां सब कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—शरीर व वेद नोकपायके होते हुए व कामविकारका बाहरी निमित्त होते हुए ही संसारी प्राणियोंके कामभाव पाया जाता है। सिद्धोंके न शरीर है, न वेद नोकपाय कर्म है, न बाहरी कोई निमित्त है। वे सदा स्व ब्रह्मचर्यमें लीन हैं। उनके कामभाव कभी नहीं होसक्ता है।

आसा अनृत सहियं, आसा परिनाम नंत गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, अप्प सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४५१ ॥

अन्वयार्थ—(आसा अनृत सहिय) जो नाशवन्त असत्य पदार्थोंमें मगन हैं ऐसे संसारी प्राणियोंके ही विषयोंकी तृष्णा पाई जाती है (आसा परिनाम नत गलियं च) सिद्धोंके आशा–तृष्णाके उत्पन्न करनेवाले अनन्त कर्म गल गए हैं (आवरनं नहु दिट्ठं) उनमें कोई कर्मका आवरण दिखलाई नहीं पड़ता है (अप्प सहावेन कम्म गलियं च) आत्माके स्वभावमें लीन होनेसे उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं ।

भावार्थ—जिनको न अनन्त ज्ञान है, न अनन्त बल है, न मोहका उदय है । ऐसे संसारी प्राणियोंके आशा, तृष्णा पाई जासक्ती है, परन्तु सिद्ध भगवान अनन्त बली व अनन्त ज्ञानी हैं । अतींद्रिय सुखमें मग्न हैं । उनके पर पदार्थकी आशा कभी पाई नहीं जासक्ती है । वे परम कृतकृत्य व स्वभावमें लीन हैं ।

स्नेहं असत्य सहियं, स्नेहं परिनाम सयल मुक्कं च ।
आवरनं न उपत्ती, विमल सहावेन स्नेह विलयंति ॥ ४५२ ॥

अन्वयार्थ—(स्नेहं असत्य सहिय) संसारी जीव क्षणभंगुर असत्य पदार्थोंमें स्नेह करते रहते हैं (स्नेहं परिनाम सयल मुक्क च) सिद्धोंके सर्व ही स्नेह सम्बन्धी परिणतियां छूट गई हैं (आवरनं न उपत्ती) उनके कोई नया आवरण कर्मका भी नहीं है (विमल सहावेन स्नेहं विलयंति) निर्मल स्वभाव शुद्धोपयोगरूप प्रगट होगया है इससे स्नेहका सम्बन्ध सब क्षय होगया है ।

भावार्थ—जिनको कोई सांसारिक प्रयोजन होता है या कोई काम धार्मिक व लौकिक करना होता है वे उसके साधकोंसे स्नेह करते हैं । सिद्धोंके इन सब बातोंका कोई प्रयोजन नहीं है । वे परम कृतकृत्य हैं । वे साध्यको सिद्ध कर चुके हैं । इस कारण उनके स्नेहका कोई निमित्त नहीं है ।

लाजं अनृत दिट्ठं, अनृत सहकार लाज गलियं च ।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन लाज विलयंति ॥ ४५३ ॥

अन्वयार्थ—(लाज अनृत दिट्ठं) संसारी जीवोंके मिथ्या पदार्थोंके सम्बन्धमें लाज देखी जाती है कि

यदि ऐसा न करेंगे तो लाज जायगी (अनृत सहकार लाज गलियं च) सिद्धोंके इस मिथ्या पदार्थ सम्बन्धी लाजका भाव सब गल गया है (आवरनं नहु उत्तं) उनके कोई आवरण नहीं कहा गया है (सुद्ध सहावेन लाज विलयंति) शुद्ध स्वभावके प्रकाशसे उनके लाज भाव सम्बन्धी विकल्प ही मिट गए हैं।

भावार्थ—मान कषायके होनेपर लाजका भाव होता है। सिद्धोंके कोई कषाय नहीं है। वे स्वरूपानन्दमें मग्न हैं। जगतके जनोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर लाज क्या हो।

लोभं अनृत भावं, लोभं परिनाम सयल गलियं च।
आवरनं नहु उत्तं, लोभं गलियं च ज्ञान सहकारं ॥ ४५४ ॥

अन्वयार्थ—(लोभ अनृत भावं) मिथ्या पदार्थोंके सम्बन्धमें लोभ भाव सम्पूर्ण संसारी जीवोंके पाया जाता है। (लोभ परिनाम सयल गलिय च) सिद्धोंके सर्व ही लोभके परिणाम गल गए हैं (आवरन नहु उत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं है (लोभ गलिय च ज्ञान सहकार) आत्मज्ञानकी सहायतासे उनका लोभ भाव सर्व गल गया है।

भावार्थ—संसारी प्राणी शरीरासक्त हैं इसलिये उनमें लोभ भाव पाया जाता है। सिद्धोंके शरीर नहीं है, न लोभ कषाय रूपी कर्म है, वे ज्ञानानन्दमें मगन हैं, परम कृतकृत्य हैं।

भयं च अनृत सहियं, भय परिनाम अनिस्ट विलयंति।
आवरनं नहु उत्तं, सुद्ध सहावेन कम्म गलियं च ॥ ४५५ ॥

अन्वयार्थ—(भय च अनृत सहिय) संसारी जीवोंके शरीरादि मिथ्या पदार्थोंसे भय बना रहता है (भय परिनाम अनिस्ट विलयति) सिद्धोंके भय सम्बन्धी अनिष्ट परिणामोंकी कोई सम्भवना नहीं है (आवरनं नहु उत्तं) उनके कोई कर्मका आवरण नहीं कहा गया है (सुद्ध सहावेन कम्म गलिय च) शुद्ध स्वभावके प्रकाशमान होनेसे उनके सर्व कर्म नष्ट होचुके हैं।

भावार्थ—जिनके जगतके क्षणभंगुर पदार्थोंसे मोह होता है उनहीके भय होसक्ता है। सिद्धोंके न मोह है, न भय है, न कर्मोंका उदय है जिससे कोई भय हो।

मनरंजन गारव उत्तं, गारव परिनाम अनिस्ट गलियं च ।
आवरनं नहु दिट्ठं, ज्ञान सहावेन कम्म संपिपनं ॥ ४५६ ॥

अन्वयार्थ—(मनरंजन गारव उत्त) संसारी जीवोंके अपने मनको रंजायमान करनेवाला मदभाव कहा गया है (गारव परिनाम अनिस्ट गलिय च) सिद्धोंके गारवभाव सम्बन्धी समस्त अनिष्ट भाव गल गए हैं। (आवरनं नहु दिट्ठ) उनमें कोई आवरण नहीं देखा जाता है (ज्ञान सहावेन कम्म मपिपन) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे सर्व कर्मोंका क्षय होचुका है ।

भावार्थ—धन गारव, प्रतिष्ठा गारव, रस बनानेका गारव ऐसे कोई प्रकारका मदभाव अज्ञानी संसारी जीवोंके पाया जाता है। वे अपनेको बड़ा मानके मनमें प्रसन्न हुआ करते हैं। सिद्धोंके किन्हीं पर पदार्थोंका सम्बन्ध ही नहीं है न ऐसे कर्मोंका उदय है जिससे गारवभाव हो। वे परम मार्दवभाव सहित आत्माके स्वभावमें तल्लीन हैं।

आलस अनिस्ट रूवं, आलस परिनाम अनृतं तिक्तं ।
आवरनं नहु पिच्छं, विमल सहावेन कम्म संपिपनं ॥ ४५७ ॥

अन्वयार्थ—(आलस अनिस्ट रूवं) यह आलस्य अहितकारी भाव है सो संसारी जीवोंके पाया जाता है (आलस परिनाम अनृतं तिक्त) सिद्ध भगवानके कोई यह मिथ्या प्रमाद भाव नहीं है (आवरनं नहु पिच्छं) न उनके कोई आवरण दिखलाई पड़ता है (विमल सहावेन कम्म सपिपनं) वे निर्मल स्वभावमें मग्न हैं इसीसे उनके सर्व कर्म क्षय होगये हैं ।

भावार्थ—शुभ कार्योंमें प्रमादभावको आलस्य कहते हैं। शरीरासक्त संसारी प्राणियोंके इस प्रमाद-भावका होना सम्भव है, परन्तु सिद्धोंको न कोई शरीर है, न शरीरका राग है, न कोई कर्मका उदय है जिससे प्रमाद हो। वे नित्य अप्रमत्त रहते हुए अपने स्वभावके विलासमें तल्लीन हैं ।

परपंचं पर पिच्छं, पर पज्जाय परिनाम मुक्कं च ।
आवरनं नहु पिच्छं, विमल सहावेन कम्म संपिपनं ॥ ४५८ ॥

अन्वयार्थ—(परपंचं पर पिच्छं) प्रपंच या माया भाव पर पदार्थके सम्बन्धमें संसारी जीवोंके देखा

जाता है (पर पज्जाय परिनाम मुक्क च) सिद्ध भगवान उन भावोंसे ही मुक्त हैं जिनके उदयसे शरीरादि पर पर्याय होती हैं (आवरनं नहु पिच्छं) उनके कोई कर्मका आवरण देखा नहीं जाता है (विमल सहावेन कम्म संषिपनं) उन्होंने अपने शुद्ध स्वभावके प्रकाशसे कर्मोंका क्षय कर दिया है।

भावार्थ—जिसको धनादिकी ममता होगी विषयोंकी वांछा होगी, वही उनकी प्राप्तिके लिये मायाचार या प्रपंच करेगा। सिद्धोंके कोई पर पदार्थकी वांछा नहीं है। वे परम वीतराग हैं, परम कृतकृत्य हैं, अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें मग्न हैं। उनके मायाका कोई काम नहीं है।

विभ्रम विप्रिय भावं, विभ्रम परिनाम अनिस्ट गलियं च।
आवरनं नहु पिच्छं, ज्ञान सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४५९ ॥

अन्वयार्थ—(विभ्रम विप्रिय भावं) विभ्रम या संशय भाव एक अनिष्ट भाव है सो संसारी आत्मज्ञानियोंके पाया जाता है (विभ्रम परिनाम अनिस्ट गलियं च) सिद्धोंके कोई भी यह अहितकारी विभ्रम भाव नहीं है। वे पूर्ण निःशंक हैं (आवरन नहु पिच्छं) उनके कोई कर्मका आवरण देखा नहींजाता है (ज्ञान सहावेन कम्म सषिपनं) उन्होंने ज्ञान स्वभावके प्रकाशसे कर्मोंका क्षय कर डाला है।

भावार्थ—अल्पज्ञानी छद्मस्थोंके भ्रम या संशय होसक्ता है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी सिद्ध भगवानके कोई संशय नहीं होसक्ता। वहां संशय व उत्पादक कर्मका उदय भी नहीं है।

दह पाना पजत्ती, सुद्धं स सहाव हुंति चौ दसमो।
विमल सहावं दिट्ठं, चौ दस प्राण भाव उप्पत्ती ॥ ४६० ॥

अन्वयार्थ—(दह पाना पज्जत्ती) संसारी जीवोंके दश प्राण व छः पर्याप्ति होती हैं (सुद्धं स सहाव हुंति चौ दसमो) शुद्ध स्वभावके रमणकर्ता अरहन्तके चार या दश प्राण होते हैं (विमल सहावं दिट्ठ) तौभी वे अपने शुद्ध स्वभावको ही देखते हैं (चौ दस प्राण भाव उप्पत्ती) उनके कर्मोंके उदयसे चार या दश प्राणोंकी उत्पत्ति होती है।

भावार्थ—पांच इंद्रिय, मन वचन काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास ये दश प्राण हैं जो कार्यशील हैं।

आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा तथा मन ये छः पर्याप्तियें होती हैं। अर्थात् वे शक्तियें होती हैं जिनसे शरीरादि बन सकें। तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहंतके दशों प्राण बने रहते हैं, परन्तु काम चार ही प्राण करते हैं। अर्थात् वचनबल, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण कर्मोंके उदयसे वर्तते हैं। अरहन्त भगवान तो अपने शुद्धोपयोगमें लीन रहते हैं।

सिद्धोंके चार निश्चय प्राण।

दह संयुत्तं सहियं, अतिंदी सहकार सहाव संजुत्तं।
ज्ञान सहाव स उत्तं, सुप सत्ता बोध चेतना रूवं॥ ४६१॥

अन्वयार्थ—(दह सजुत्त सहिय) यद्यपि अर्हंत भगवान दश प्राणोंको रचनाकी अपेक्षा रखनेवाले हैं तौभी (अतिंदी सहकार सहाव सयुत्त) इंद्रियोंसे अतीत अतीन्द्रिय स्वभावके धारी हैं (ज्ञान सहाव स उत्त) इसीसे उनके एक ज्ञान स्वभाव कहा गया है (सुप सत्ता बोध चेतना रूवं) वह ज्ञानका स्वभाव भाव सुख, सत्ता, बोध, चेतनरूप है।

भावार्थ—अर्हंतोंके यद्यपि रचनाकी अपेक्षा दश व कर्मोदयसे कार्यकी अपेक्षा चार प्राण हैं तौभी वे अपने अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन आदि स्वभावमें लीन हैं। वे ज्ञान चेतनामय हैं। उनके अन्तरंगके चार प्राण होते हैं। सुख, सत्ता, चैतन्य, बोध। आत्माके आनन्दको सुख कहते हैं। वस्तुके अस्तित्वको सत्ता कहते हैं। अनुभव भावको चैतन्य कहते हैं। ज्ञान भावको बोध कहते हैं। ये आत्माके स्वाभाविक प्राण हैं, सो अर्हंत भगवानके पाए जाते हैं।

सुखं च भाव उपत्ती, सुख षिपनक भाव परिनाम संयुत्तं।
कम्म मल सुयं च षिपनं, सुख पानं सहाव उवनं च॥ ४६२॥

अन्वयार्थ—(सुख च भाव उपत्ती) अर्हंत परमात्माके आत्मिक सुख भावकी प्राप्ति है (सुख षिपनक भाव परिनाम सयुत्तं) वे क्षायिक भावके परिणमन सहित अनन्त सुखरूप हैं (कम्म मल सुयं च षिपनं) उनके

सुखका घातक चार घातीय कर्ममल स्वयं क्षय होगया है (सुख पानं सहाउ उवनं च) इसीसे सुख नामका स्वाभाविक प्राण प्रकाश होगया है।

भावार्थ—अतीन्द्रिय निराकुल स्वाभाविक सुख आत्माका एक गुण है। इसका पूर्ण प्रकाश अनन्त सुखरूप तब ही होता है जब चारों घातीय कर्मोंका क्षय होजावे। सुख प्राणका प्रकाश अर्हत व सिद्ध परमात्माके सदा रहता है।

सत्तानन्त विसेसं, सहकारे ज्ञान विमल सहकारं।
सहकार कम्म षिपनं, सत्ता पान विमल दिट्ठीओ ॥ ४६३ ॥

अन्वयार्थ—(सत्तानन्त विसेस) सत्ता वह प्राणका भेद है जिससे आत्मा अनन्तकाल तक बना रहता है (सहकारे ज्ञान विमल सहकार) इसी सत्ताके सहारे ही शुद्ध ज्ञानका सहयोग सदा रहता है (सहकार कम्म षिपनं) संसारीके अनादिकालसे जिनका सहयोग था वे कर्म जब क्षय होजाते हैं (सत्ता पान विमल दिट्ठीओ) तब सत्ता प्राण शुद्ध झलक जाता है।

भावार्थ—सत्ता प्राण सर्व ही जीवोंके पाया जाता है इसीसे यह जीव अनादिसे अनन्तकाल तक सदा बना रहता है। संसारावस्थामें इस जीवकी सत्तामें अनादिसे आठ कर्मोंका संयोग है, जिससे आत्माकी सत्ता मलीन होरही है। जब आत्माके घातक चार घातीय कर्मोंका क्षय होजाता है तब सत्ता गुण शुद्ध होजाता है, सिद्धोंके आठ कर्मोंके क्षयसे बिलकुल शुद्ध होजाता है।

बोधं ज्ञान सहावं, ज्ञान विज्ञान विमल ज्ञानस्य।
परिनाम ज्ञान समयं, पानं बोधं च विमल मल रहियं ॥ ४६४ ॥

अन्वयार्थ—(बोध ज्ञान सहाव) ज्ञान स्वभावको बोध प्राण कहते हैं (ज्ञान विज्ञान विमल ज्ञानस्य) भेद-विज्ञानसे यह ज्ञान स्वभाव शुद्ध होजाता है (परिनाम ज्ञान-समयं)-तब आत्मा ज्ञानमें ही परिणमन करता है (बोधं पान च विमल मल रहिय) ज्ञानावरणके मलके चले जानेपर यह बोधप्राण शुद्ध होजाता है।

भावार्थ—आत्माका तीसरा स्वाभाविक प्राण बोध है या ज्ञान है। जहांतक ज्ञानावरणका उदय है वहांतक यह ज्ञान प्राण मलीन रहता है। जब ज्ञानावरणका सर्वथा क्षय होजाता है तब अनन्तज्ञान स्वभाव अरहन्त व सिद्धके प्रगट रहता है।

चेतन अनन्त रूवं, चेतन नंदस्य कम्म सुइ षिपनं ।
चिदानन्द आनन्दं, परमं आनन्द सुद्ध दिट्ठीओ ॥ ४६५ ॥

अन्वयार्थ—(चेतन अनन्त रूवं) अनन्त काल तक रहनेवाला चैतन्य प्राण आत्माका स्वभाव है (चेतन नंदस्य कम्म सुइ षिपनं) इस स्वानुभवमई चैतन्य प्राणमें आनन्दके लाभसे कर्म क्षय होजाते हैं (चिदानन्द आनन्दं) तब चिदानन्द आत्मा आनन्दमई रहता है (परम आनन्द सुद्ध दिट्ठीओ) शुद्ध दृष्टिमें परमानंदका स्वाद आता है।

भावार्थ—आत्मामें आत्माका स्वाद दिलानेवाला चैतन्य प्राण है। जब यह आत्मा स्थिर होजाता है तब यह प्राण प्रकाशित रहता है और तब ही आत्मानन्दका स्वाद आता है। आत्मानन्दके स्वादके समय सच्ची वीतरागता होती है। इसीसे कर्मोंकी निर्जरा होती है। श्री अरहन्त भगवान व सिद्ध भगवानके यह प्राण सदा शुद्ध रूपमें प्रगट रहता है, इसीसे वे सदा स्वानुभवरूप रहते हुए परमानन्दका लाभ लेते हैं।

चौदस प्रान सुभावं, सुद्धं सहकार सुद्ध दिट्ठीओ ।
विमल सुभाव संयुत्तं, अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य ॥ ४६६ ॥

अन्वयार्थ—(चौदस प्रान सुभावं) श्री अर्हंत भगवान् निश्चयसे सुख सत्ता बोध चेतन्य इन चार प्राणके धारी हैं व व्यवहारसे दस प्राणके धारी हैं (सुद्धं सहकार सुद्ध दिट्ठीओ) वे शुद्ध होने कारण शुद्ध दृष्टिके रखनेवाले हैं (विमल सुभाव संयुत्त) वे शुद्ध स्वभावके धारी हैं (अप्पा परमप्प विमल ज्ञानस्य) उनका आत्मा परमात्मारूप निर्मल ज्ञानमय है।

भावार्थ—यहां अरहंत परमात्माका स्वरूप है, जो शीघ्र ही सिद्ध होनेवाले हैं।

षिपिओ कम्मं तिविहं, षिपिओ परिनाम असुद्ध बंधानं ।
सुद्ध सहावं पिच्छदि, विमल सहावेन विमल ज्ञानस्य ॥ ४६७ ॥

अन्वयार्थ—(तिविहं कम्मं षिपिओ) सिद्ध भगवानके तीनों ही प्रकारके कर्म क्षय होगए हैं (बंधान असुद्ध परिनाम षिपिओ) बन्धका कारण अशुद्ध भाव सब दूर होगया है (सुद्ध सहावं पिच्छदि) वे शुद्ध स्वभावको अनुभव कर रहे हैं (विमल सहावेन विमल ज्ञानस्य) उनका स्वभाव भी शुद्ध है व ज्ञान भी शुद्ध है।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म सहित हैं, परम शुद्ध परमात्मा हैं। बन्ध योग्य मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कपाय व योग कोई भी वहां नहीं है।

ए अतीचार कम्मानं, ज्ञान सहावेन कम्म विलयति।
विमलं विमल सहावं, ज्ञान विज्ञान मुक्ति गमनं च ॥ ४६८ ॥

अन्वयार्थ—(ए अतीचार कम्मानं) ऊपर जो राग द्वेप भय आलस्यादि दोष बहुतसी गाथाओंमें कहे गए हैं सो कर्मोंके उदयका दोप हैं (ज्ञान सहावेन कम्म विलयंते) श्री सिद्ध ज्ञान स्वभाव हैं, उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं (विमल च विमल सहावं) इससे उनका शुद्ध स्वभाव ऊपर लिखित सर्व दोपोंसे शून्य है (ज्ञान विज्ञान मुक्ति गमन च) वे केवलज्ञान सहित मोक्षको प्राप्त होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें कर्मोंका उदय न होनेसे कोई भी वे दोप नहीं पाए जाते हैं जो संसारी जीवोंके होते हैं।

सम्यक्तके आठ अंग सिद्धोंमें।

दंसन अंग स उत्तं, सम्यक दंसनस्य सुद्ध सद्भावं।
अनंत दंसन दिस्टं, सुद्ध सहावेन विमल दिट्ठीओ ॥ ४६९ ॥

अन्वयार्थ—(दसन अंग स उत्त) अब सम्यग्दर्शनके अंगोंको कहते हैं। (सम्यक दंसनस्य सुद्ध सद्भाव) सिद्धोंमें सम्यक्दर्शन शुद्ध होता है। (अनंत दंसन दिस्टं) उनमें अनंत दर्शन भी देखा जाता है (सुद्ध सहावेन विमल दिट्ठीओ) उनका स्वभाव शुद्ध है इससे उनकी दृष्टि निर्मल है।

भावार्थ—सिद्धोंमें क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है, उनके स्वभावमें कोई मल नहीं है।

निसंकिय निकंपिय, निविदिगिंच्छा अमूढ़ दिट्ठीओ।
उपगूहन ठिदिकरनं, वाच्छल पहावना अट्ठ अंगानि ॥ ४७० ॥

भावार्थ—इस गाथामें सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंके नाम हैं। (१) निःशंकित अंग, (२) निःकांक्षित

अंग, (३) निर्विचिकित्सा अंग, (४) अमूढ़ दृष्टि अंग, (५) उपगूहन अंग, (६) स्थितिकरण अंग, (७) वात्सल्य अंग, (८) प्रभावना अंग।

निःशंकित अङ्ग।

निसंक संक रहिओ, नव सभाव रहिय संक विरयंति।
निसंक ज्ञान अनुमोयं, पजय अज्ञान संक विलयंति ॥ ४७१ ॥

अन्वयार्थ—(निसंक सक रहिओ) सिद्ध भगवान निःशंक हैं। उनमें कोई शंका नहीं होसक्ती (नव सभाव रहिय संक विरयंति) उनमें कोई नूतन स्वभावका प्रकाश नहीं है, प्राचीन स्वाभाविक भाव है इससे शंका हो नहीं सक्ती (निसंक ज्ञान अनमोय) वे शंकारहित शुद्ध ज्ञानमें आनन्दित हैं (पज्जय अज्ञान संक विलयंति) शरीर सम्बन्धी अज्ञान व संशय सब विला गये हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें यथार्थ निःशंकित भाव है। वहां शंकाका कोई स्थान नहीं है। न शरीर है न ज्ञानावरण कर्मका उदय है न अल्प ज्ञान है। वहां परम निःशंक केवलज्ञान व क्षायिक सम्यक्त प्रगट है। वे अपने स्वभावके भीतर विना किसी शंकाके व विना किसी भयके मगन हैं। कोई उनका विगाड़ नहीं कर सक्ता है इससे भी निःशंक हैं।

अज्ञानं नहु पिच्छदि, अज्ञान भाव सयल तिक्तं च।
ज्ञान सहाव अनुमोयं, विमल सहावेन कम्म संषिपनं ॥ ४७२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञानं नहु पिच्छदि) सिद्धोंमें कोई अज्ञान नहीं देखा जाता है (अज्ञान भाव सयल तिक्तं च) ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे सर्व अज्ञान भावका त्याग होगया है (ज्ञान सहाव अनुमोय) वे अपने ज्ञान स्वभावमें आनन्दरूप हैं (विमल सहावेन कम्म संषिपनं) उन्होंने अपने विमल स्वभावसे कर्मोंका क्षय कर दिया है।

भावार्थ—सिद्धोंके अनन्त ज्ञान है-शुद्ध भावका प्रकाश है। वहां शङ्काका कोई काम नहीं हैं।

पर पज्जाय न पिच्छं, पजय परिनाम सयल गलियं च।
ज्ञान सहाव सुसमयं, निसंक भाव कम्म विलयंति ॥ ४७३ ॥

अन्वयार्थ—(पर पज्जाय न पिच्छ) सिद्धोंमें कोई कर्मजनित पर पर्याय नहीं देखी जाती है (पज्जय परिनाम सयल गलियं च) शरीर व कर्मोदय सम्बन्धी सर्व भाव गल गए हैं (ज्ञान सहाव सुसमयं) वहां ज्ञान स्वभावी अपना आत्मा ही प्रगट है (निसंक भाव कम्म वि'यंति) शुद्ध शंका रहित दृढ़ निश्चय रत्नत्रयमई भावोंके द्वारा उनके सर्व कर्म क्षय होगए हैं।

भावार्थ—सिद्धोंमें शुद्ध क्षायिक भाव है। किसी भी कर्मका उदय नहीं है जिससे शंका हो, वे ही शुद्ध निःशंकित अङ्गके धारी हैं। समयसारमें इस अङ्गका स्वरूप यह है—

जो चत्तारिवि पाए छिंददि ते कम्मोहवाधकरे। सो णिस्संको चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४४ ॥

भावार्थ—जो कोई कर्म बन्धक, मोह उत्पादक व बाधा करनेवाले मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग इन चारों बन्ध कारणोंको छेद डालता है, वह शङ्का रहित आत्मा सम्यग्दृष्टी मानना योग्य है। सिद्धोंके ये चारों ही नहीं हैं इसीलिये वे पूर्ण निःशंक हैं।

निःकांक्षित अङ्ग।

कंषा रहित सुभावं, इन्द धरनिंद पज्जाव नहु पिच्छं।
चक्क पज्जाव विमुक्कं, पज्जायं अज्ञान सुयं पिपनं च ॥ ४७४ ॥

अन्वयार्थ—(कंषा रहित सुभावं) सिद्धोंका स्वभाव सर्व प्रकारकी वांछासे रहित है (इन्द धरनिंद पज्जाव नहु पिच्छं) न वहां इंद्र तथा धरणेन्द्रकी पर्यायकी तरफ दृष्टि है (चक्क पज्जाव विमुक्कं) न वहां चक्रवर्तीकी पर्यायकी तरफ कोई सम्बन्ध है (पज्जाय अज्ञान सुय पिपन च) पर्याय सम्बन्धी सर्व अज्ञानका नाश होगया है।

भावार्थ—सिद्धोंके शरीर सम्बधी कोई कांक्षा नहीं हो सकती है, वे कर्म जनित सर्व पदोंसे उदास हैं। न वहां इन्द्रपदकी न धरणेन्द्रपदकी न चक्रवर्तीपदकी वांछा है। वहां तो कांक्षारूपी अज्ञान है ही नहीं। वे यथार्थ निःकांक्षित अङ्गके पालक हैं।

पज्जाय अनिस्ट रूवं, कंषा रहित विमल स सरूवं ।
पज्जाय कंष विलयं, ज्ञानं अनुमोय कंष रहिएन ॥ ४७५ ॥

अन्वयार्थ—(पज्जाय अनिस्ट रूव) सर्व ही शरीररूपी पर्याएं अनिस्ट हैं, आत्माके लिये हितकारी नहीं हैं (कंषरहित निर्मल स सरूव) सिद्धोंके सर्व कांक्षा रहित निर्मल अपने आत्माका स्वरूप प्रकाशित है (पज्जाय कष विलयं) किसी भी कर्मजनित पर्यायकी कांक्षा वहां नहीं है। (ज्ञान अनुमोय कष रहिएन) जो आत्मज्ञानमें आनन्द मानते हैं उनके कांक्षा होती ही नहीं।

भावार्थ—सिद्ध अपनी शुद्ध आत्मीक पर्यायमें है जो स्वाभाविक है, अविनाशी है तथा सर्वोत्कृष्ट है ऐसी शुद्ध पर्यायमें रहते हुए वे किसी अशुद्ध सशरीर पर्यायकी कैसे वांछा कर सक्ते हैं। वे अपने ज्ञानानन्द भावमें परम संतुष्ट हैं। समयसारमें कहा है—

जो ण करेदि दु कंखं कम्मफले तहय सव्वधम्मेसु। सो णिक्कंखो चेदा सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४५ ॥

भावार्थ—जो कोई कर्मोंके फलोंमें व सर्व अस्वाभाविक धर्मोंमें कांक्षा नहीं करता है वह सम्यग्दृष्टी आत्मा निःकांक्षित जानना चाहिये। सिद्धोंमें यह स्वभाव भले प्रकार घटता है।

निर्विचिकित्सित अङ्ग ।

विचि संसार सुभावं, विचं न पिच्छेइ परिनाम विरयंति ।
विचि च अनंत अनिस्टं, विचं न पिच्छेइ कम्म विलयंति ॥ ४७६ ॥

अन्वयार्थ—(विचि संसार सुभावं) घृणा करना यह संसारी प्राणियोंका स्वभाव है (विचं न पिच्छेइ परिनाम विरयंति) सिद्धोंके घृणाभाव नहीं देखा जाता है, उनके भाव विरक्त हैं। (विचि च अनन्त अनिस्टं) घृणाके सर्व ही भाव हानिकारक हैं (विच न पिच्छेइ कम्म विलयंति) सिद्धोंके घृणा नहीं देखी जाती है क्योंकि कर्मोंका क्षय हो गया है।

भावार्थ—मान कषायके उदयसे संसारी प्राणियोंके घृणा भाव होता है। सिद्धोंके मान कषाय नहीं

हैं। उनके कोई कर्म ही शेष नहीं रहे हैं, वे पूर्ण वीतराग हैं, अतएव विचिकित्सा दोषसे रहित हैं।

विचिं न अप्प सहावं, दंसन ज्ञानं च अनुमोय विमलं च ।
अज्ञान विचि नहु पिच्छं, सुद्धं सहकार निव्विचं पिच्छं ॥४७७॥

अन्वयार्थ—(विचि न अप्प सहावं) घृणाका भाव आत्माका स्वभाव नहीं है, विभाव है (दंसन ज्ञानं च अनुमोय विमल च) सिद्धोंके दर्शन, ज्ञान व आनन्द निर्मल प्रगट हैं (अज्ञान विचि नहु पिच्छं) इसलिये अज्ञानमई विचिकित्सा भाव सिद्धोंमें नहीं देखा जाता है (सुद्धं सहकार निव्विच पिच्छं) शुद्ध स्वभावके होनेसे वहां विचिकित्सा रहित भाव ही देखा जाता है।

भावार्थ—सिद्धका आत्मा शुद्ध स्वभावमें है इसलिये विभाव भावका अभाव है। वे यथार्थ निर्विचिकित्सित अङ्गके धारी हैं। समयसारमें कहा है—

जो ण करेदि दु गुछ चेदा सव्वेसिमेव धम्भाण। सो खलु णिव्विदिगिंच्छो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४६ ॥

भावार्थ—जो कोई सर्वही वस्तुके स्वभावोंमें घृणा नहीं करता है, उनको जैसा उनका स्वभाव है वैसा जानता है वही सम्यग्दृष्टी आत्मा निर्विचिकित्सित अङ्गका धारी मानना चाहिये।

अमूढदृष्टि अंग।

मूढ सहावं तिक्तं, मूढं लोयं च पज्जाय संदिट्ठं ।
पर सुभाव पज्जायं, मूढं दिट्ठी च गलिय परिनामं ॥ ४७८ ॥

अन्वयार्थ—(मूढ सहावं तिक्त) सिद्धोंमें मूढ़ स्वभावका त्याग है। (मूढं लोय च पज्जाय सदिट्ठं) मूढ़ लोगोंकी दृष्टि पर्जाय पर देखी जाती है (पर सभाव पज्जाय) वे पर्याय आत्माके स्वभावसे भिन्न परस्वभावरूप हैं (मूढं दिट्ठी च गलियं परिनामं) सिद्धोंके मूढदृष्टि मई सब परिणाम गल गए हैं।

भावार्थ—लौकिक प्राणी किसी कामनाको लेकर कुधर्मको धर्म मानकर सेवते हैं। सिद्धोंके न शरीर है न कोई इच्छा है न कोई पर पर्याय पर दृष्टि है। वे अपनी स्वाभाविक सिद्ध पर्यायमें मगन हैं। उनके वे सर्व कर्म ही गल गए हैं जिनके उदयसे मूढ़ताका भाव होसके।

अमूढ अरूव रूवं, दिट्ठं विमलं च ज्ञान विज्ञानं ।
अमूढ दिट्ठि भनियं, दंसन अंगं च कम्म विलयंति ॥४७९॥

अन्वयार्थ—(अमूढ अरूव रूवं) आत्माका स्वभाव मूढ़ता रहित तथा अमूर्तीक है (दिट्ठं विमलं च ज्ञान विज्ञानं) सिद्धोंने उस निर्मल ज्ञान स्वभावको देखा लिया है (अमूढ दिट्ठि भनियं) इसीसे उनके भीतर अमूढ़ दृष्टि कही गई है (दंसन अंग च कम्म विलयंति) इसी क्षायिक सम्यग्दर्शनके अंगसे उनके कर्मोंका नाश हुआ है।

भावार्थ—सिद्ध भगवान शुद्ध ज्ञान श्रद्धान चारित्रमई है इसलिये शुद्ध स्वभावमें शुद्धताके साथ मगन है। उनके पूर्ण यथार्थ अमूढ़ दृष्टि अंग है। समयसारमें कहा है—

जो हवदि असम्मूढो चेदा सव्वेसु कम्मभावेसु। सो खलु अमूढदिट्ठी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४७ ॥

भावार्थ—जो सर्व ही कर्मोंके उदयरूप भावोंको उनही स्वरूप यथार्थ जानता है तथा आत्माको आत्मारूप शुद्ध यथार्थ जानता है वही सम्यग्दृष्टी आत्मा अमूढ़ दृष्टिका धारी जानना योग्य है!

उपगूहन अंग।

उवगूहन सुभावं, ज्ञानी दोसं न दृस्यते भावं ।
पज्जायं पर विलयं, ज्ञानी अनुमोय कम्म विलयंति ॥ ४८० ॥

अन्वयार्थ—(उवगूहन सुभावं) सिद्ध भगवान उपगूहन स्वभावके धारी हैं (ज्ञानी दोसं भावं न दृस्यते) वे आत्मामें लीन ज्ञानी परके दोषोंपर दृष्टि नहीं देते हैं (पज्जायं पर विलयं) उनके कषाय जनित पर पर्याय सर्व विला गई है (ज्ञानी अनुमोय कम्म विलयंति) ज्ञानी आत्मानन्दमें मगन हैं इसीसे सर्व कर्मोंका क्षय है।

भावार्थ—परके दोषोंको ग्रहण करके परकी निन्दा करना अनुपगूहन नामका दोष है। सम्यग्दृष्टी समभावके धारी होते हुए परके औगुण नहीं ग्रहण करते हैं। सिद्ध भगवान तो परम ज्ञानी व परम सम्यक्ती व परम चारित्रवान हैं। वे वस्तु स्वभावके ज्ञाता इस दोषसे सर्वथा मुक्त हैं। वे ज्ञानानन्दमें मगन होकर अपने स्वरूपमें तन्मय हो परम उपगूहन अङ्गके पालक हैं।

गुन रूवं उवएसं, ज्ञानी सभाव कम्म षिपनं च ।
दोसं नन्त न पिच्छं, गुन अनुमोय ज्ञान विमलं च ॥४८१॥

अन्वयार्थ—(गुन रूवं उवएस) सिद्ध भगवान आत्मीक गुणोंके स्वभावका उपदेश अपने स्वभावके प्रकाशसे देरहे हैं। दोषका प्रकाश तो है ही नहीं (ज्ञानी सभाव कम्म षिपनं च) ज्ञानी सिद्ध भगवानके स्वभावका प्रकाश है इसीसे कर्मोंका क्षय है (दोस नन्त न पिच्छ) उनमें अनन्त दोषोंमेंसे एक भी दोष नहीं देखा जाता है (गुन अनुमोय ज्ञान विमलं च) उनमें आनन्द गुण व निर्मल ज्ञान है ।

भावार्थ—सिद्धोंमें स्वयं न कोई दोष है न वे परके दोषके ग्रहण करनेवाले हैं। वे अपने स्वरूपसे आत्मीक गुणोंके ही प्रकाशक हैं। उनके पूर्ण उपगूहन अंग है। समयसारमें कहा है—

जो सिद्धभत्तिजुत्तो उपगूहणगो दु सव्वधम्माणं । सो उवगूहणगारी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४८ ॥

भावार्थ—जो आत्माको सिद्ध सम जानके उसीकी भक्तिमें लीन हैं तथा सर्व विभावरूपी दोषोंको दूर करनेवाले हैं उन्हें उपगूहन अंग धारी सम्यग्दृष्टी जानना योग्य है ।

स्थितीकरण अंग ।

स्थितिकरन स उत्तं, ज्ञानी ज्ञानं च अनुमोय समयं च ।
पज्जायं नहु पिच्छं, स्थिति अंगं च कम्म विलयंति ॥ ४८२ ॥

अन्वयार्थ—(स्थितिकरन स उत्त) उसे स्थितिकरण अङ्ग कहा जाता है जहां (ज्ञानी ज्ञानं च अनुमोय समयं च) ज्ञानी सिद्ध भगवान अपने ज्ञान व आनन्दमय आत्मामें स्थित हैं (पज्जायं नहु पिच्छं) किसी भी कर्म-जनित अशुद्ध पर्यायपर उनकी दृष्टि नहीं है (स्थितिं अंगं च कम्म विलयंति) इस स्थितिकरण अङ्गके द्वारा उनके सब कर्म क्षय होगए हैं ।

भावार्थ—सिद्ध भगवान अपने ज्ञानानन्द स्वभावमें सदा तल्लीन हैं। कभी भी उस स्वभावसे चलायमान नहीं होते हैं। इसी स्वचारित्र रूप स्थितिकरण अङ्गसे वे कर्मोंसे सदा मुक्त रहते हैं ।

समयसारमें कहा है—

उम्मग्गं गच्छंतं सिवमग्गे जो ठवेदि अप्पाण । सो ठिदिकरणेण जुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २४९ ॥

भावार्थ—जो कुमार्गमें जाते हुए आत्माको रोककर मोक्षमार्गमें स्थापित करता है वह स्थितिकरण अङ्गका धारी सम्यग्दृष्टी मानना योग्य है ।

वात्सल्य अग ।

विज्ञानं वाच्छलं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं ।
दंसण ज्ञान सुसमयं, विमल सहावेन चरन संयुत्तं ॥ ४८३ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञानं वाच्छलं) ज्ञान रूप रहना ही वात्सल्य भाव है। अपने स्वभावसे प्रेम है (ज्ञान विज्ञान ज्ञान सहकारं) ज्ञान रूप रहना ही सहज केवलज्ञानका सहायक है (दंसन ज्ञान सुसमयं) वहां अपना आत्मा ही सम्यग्दर्शन है, अपना आत्मा ही सम्यग्ज्ञान है (विमल सहावेन चरन संयुत्तं) तथा अपने ही निर्मल स्वभावमें तिष्ठना ही सम्यक्चारित्र है ।

भावार्थ—सिद्ध भगवानका परम प्रेम अपने निश्चय रत्नत्रय स्वभावसे है । वे आप आपसें परम गाढ़ भावसे तल्लीन हैं ।

चरनं पि सुद्ध चरनं, संयम चरनस्य सुद्ध स सहावं ।
विलयंति कम्म मलयं, वाच्छलंगं ज्ञान विज्ञान अनुमोयं ॥ ४८४ ॥

अन्वयार्थ—(चरन पि सुद्ध चरनं) सिद्ध भगवानमें चारित्र भी शुद्ध आत्मामें चर्यारूप है (सुद्ध स सहाव संयम चरनस्य) शुद्ध अपने स्वभावमें तिष्ठना ही संयमाचरण है (कम्म मलयं विलयति) जिससे कर्मरूपी मल दूर होगए हैं (ज्ञान विज्ञान अनुमोय वाच्छलग) वे सिद्ध भगवान अपने ज्ञान स्वभावमें आनन्दरूप हैं । यही वात्सल्य अङ्ग है ।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान अपने स्वभावमें परम प्रेमालु हैं, लीन हैं व परमानन्दका विलास ले रहे हैं, वात्सल्य अङ्ग पाल रहे हैं। समयसारमें कहा है—

जो कुणदि वच्छलत्तं तिग्हे साधूण मोक्खमग्गम्मि । सो वच्छलभावजुदो सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २५० ॥

भावार्थ—जो मोक्षमार्गके साधक रत्नत्रय धर्ममें परम प्रेम करता है वही वात्सल्य अङ्गका धारी सम्यग्दृष्टी जानना चाहिये।

प्रभावना अंग।

प्रभावना सहाव उत्तं, परमं तत्वं च भाव विमलं च।
अप्पा परमप्पानं, विमल सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ४८५ ॥

अन्वयार्थ—(प्रभावना सहाव उत्तं) सिद्धोंका प्रभावना स्वभाव यह कहा गया है कि (परमं तत्वं च भाव विमल च) उनके भीतर परम आत्म-तत्व व शुद्ध भाव प्रकाश होरहा है (अप्पा परमप्पानं) उनका आत्मा परमात्मारूप है (विमल सहावेन मुक्ति गमनं च) वे शुद्ध स्वभावमें होकर मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं।

भावार्थ—सच्ची प्रभावना आत्म प्रभावना है। सिद्धोंकी आत्मामें पूर्ण प्रभाव रत्नत्रय धर्मका प्राप्त है। वे सिद्ध गतिमें हैं। जो करना था उसको कर चुके हैं। समयसारमें कहा है—

विज्जारहमारूढो मणोरहरएसु हणदि जो चेदा। सो जिणणाणपहावी सम्मादिट्ठी मुणेदव्वो ॥ २५१ ॥

भावार्थ—जो कोई आत्मज्ञानरूपी विद्याके रथपर आरूढ़ होकर मनरूपी रथके वेगोंको नाश करता है, सो जिनेन्द्रके ज्ञानका प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टी जानना योग्य है।

अङ्गं अस्ट स उत्तं, निसंक भाव सयल विज्ञानं।
संक सहावं तिक्तं, निसंक अङ्ग सयल संजुत्तं ॥ ४८६ ॥

अन्वयार्थ—(अस्ट अग स उत्त) इसतरह आठ अंग कहे गये हैं (निसक भाव सयल विज्ञान) सिद्ध भगवान शङ्का रहित सर्व ज्ञानके धारी हैं (सक सहावं तिक्त) शङ्कामई भाव वहां विलकुल नहीं है (निसंक अग सयल संजुत्तं) सिद्धोंके पूर्ण निःशङ्कित अंग है।

भावार्थ—सिद्धोंके निश्चल केवलज्ञान है। यही निःशङ्कित भाव है।

निसंक संक विलयं, अंगं अस्टं च निम्मलं विमलं।
इस्टं संजोय सुद्धं, कम्मं षिपिऊन मुक्ति गमनं च ॥ ४८७ ॥

अन्वयार्थ—(निसंक सक विलयं) सिद्ध भगवान पूर्ण निःशंक हैं, उनकी शंका सब विला गई है (अस्टं अगं च विम्मल विमलं) इसी तरह उनमें आठों ही अंग परम निर्मलसे निर्मल हैं (सुद्धं इस्टं संजोय) उनको परम हितकारी शुद्ध स्वभावका लाभ है (कम्म षिपिऊन मुक्ति गमन च) वे कर्मोंको क्षय करके मोक्ष पधारे हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शन आत्माका स्वभाव है इसलिये आठ अङ्ग भी आत्माके स्वभाव हैं। सिद्धोंके सर्व कर्मोंके क्षयसे इन अंगोंका पूर्ण प्रकाश है।

सिद्धं सहाव उत्तं, सिद्धं मुक्ति भाव सुद्ध सुपएसं।
विज्ञान सहाव उत्तं, ज्ञानं सभाव जान विमलं च ॥ ४८८ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्ध सहाव उत्त) सिद्ध भगवानका स्वभाव कहा गया (सिद्ध मुक्ति भाव सुद्ध सुपएसं) सिद्धोंने मोक्षके स्वभावको सिद्ध कर लिया है। उनके आत्माके सब प्रदेश शुद्ध हैं (विज्ञान सहाव उत्तं) उनको ज्ञान स्वभाव भी कहते हैं (ज्ञान सभाव जान विमलं च) उनका ज्ञान स्वभाव परम शुद्ध है।

भावार्थ—जो साध्यको सिद्ध कर सके उसे सिद्ध कहते हैं। मोक्षभाव साध्य था, उसे सिद्धोंने सिद्ध कर लिया है। उनकी आत्मामें कोई कर्म पुद्गल शेष नहीं रहा। वह आकाशके समान स्वच्छ है। तथा पूर्ण ज्ञानमई होनेसे उन्हें विज्ञान स्वभाव भी कहते हैं।

एक स्वभावी सिद्ध।

एयं भाव स उत्तं, अप्पं परिनाम मुक्ति सहकारं।
सुयं सुभावं दिट्ठं, सूषम परिनाम कम्म संषिपनं ॥ ४८९ ॥

अन्वयार्थ—(एवं भाव स उत्त) सिद्ध परमात्मा एक भावधारी हैं ऐसा कहते हैं (अप्पं परिनाम मुक्ति सहकारं) वे एक आत्माके अखण्ड अभेद भावके धारी हैं। इसी भावसे मुक्ति होती है (सुय सुभावं दिट्ठं) वे स्वयं

एक स्वभावमें ही प्रगट हैं (सूषम परिनाम कम्म संषिपनं) जो आत्माका एक अतीन्द्रिय सूक्ष्मभाव है वही कर्मोंका क्षय करनेवाला है।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रयकी एकतारूप आत्माका अनुभव गम्य अभेद निर्विकल्प शुद्धोपयोग एक ऐसा भाव है जो अति सूक्ष्म है। मन वचन कायसे ही कर्मोंका क्षय होता है। तव यही भाव कारण समयसाररूप हैं। व यही भाव सिद्धगतिमें सदा बना रहता है। यही भाव कार्य समयसाररूप है। ऐसे एक ही स्वभावके धारी सिद्ध हैं। उनका अनुभव करना योग्य है।

ज्ञान सहावं अप्पं, ज्ञान विज्ञान ज्ञान संयुत्तं।
दंसन दर्स अनन्तं, अवगाहनं अप्प सुद्ध परमप्पं ॥ ४१० ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं अप्प) आत्मा ज्ञान स्वभावी है (ज्ञान विज्ञान ज्ञान संयुत्तं) वही आत्मा भेदविज्ञान तथा आत्मानुभव रूप ज्ञान सहित है (दसन दर्स अनन्त) वही आत्मा अनन्तदर्शनसे देखनेवाली है (अवगाहनं अप्प सुद्ध परमप्प) वह अपने ही शुद्ध परमात्म स्वभावमें मगन है, एक रूप है।

भावार्थ—सिद्ध भगवानकी आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन गुणोंको रखती हुई भी अपने शुद्ध परमात्ममई अखण्ड स्वभावमें तल्लीन है, इसलिये एक स्वभाव रूप है।

अप्पं च वेदियत्वं, अप्पं च चेतन सहाव ज्ञानं च।
आनन्दं परमानन्दं, अप्प सहावेन मुक्ति गमनं च ॥ ४११ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प च वेदियत्व) सिद्ध भगवानके एक आत्मा ही अनुभव करने योग्य है (अप्प च चेतन सहाव ज्ञान च) आत्मा ही अनुभव करनेवाला चेतन स्वभावधारी है व जाननेवाला ज्ञान स्वभावधारी है (आनन्दं परमानन्दं) वही आत्मा परमानन्दमें मगन है (अप्प सहावेन मुक्ति गमन च) सिद्ध भगवान इसी ही आत्मीक स्वभावसे मोक्ष गये हैं।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा यद्यपि व्यवहारनयसे आप आपको जानते हैं व आप आपको अनुभव करते हैं व आप आपके आनन्दको लेते हैं, ऐसा कहा जाता है। तथापि वह एक अखण्ड आत्मीक स्वभाव हीमें लीन हैं व सदा रहेंगे इसलिये वह एक स्वभाव हैं।

मोक्षमार्ग ।

अप्पं च अप्प तारं, नाव विसेसं च पार गच्छंति ।
अप्पं विमल सरूवं, कम्मं पिपिऊन तिविह जोएन ॥४९२॥

अन्वयार्थ—(अप्पं च अप्प तारं) यह आत्मा आप ही अपनेको तारनेवाला है (नाव विसेसं च पार गच्छंति) जैसे कोई नौका विशेष आपसे आप ही समुद्रके पार जाती है (अप्प विमल सरूवं) आत्मा एक शुद्धोपयोग स्वभावधारी है (कम्मं पिपिऊन तिविह जोएन) मन वचन काय तीनों योगोंकी गुप्तिसे इसी शुद्धोपयोग द्वारा कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—आत्मा एक शुद्धोपयोग भावधारी है । यही एक भाव जहाज समान है । जैसे जहाज आप ही चलकर समुद्र पार होजाता है वैसे ही शुद्धोपयोग भावधारी आत्मा आप ही संसारसे पार होता है । यही एक भाव कर्म क्षयकारक है । यही एक भाव सदा बना रहता है, इससे सिद्ध एक स्वभाव हैं ।

इक्कं जिन सरूवं, सुयं षिपनं च कम्म वंधानं ।
अनन्त चतुस्टय सहियं, विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं ॥४९३॥

अन्वयार्थ—(इक्कं जिन सरूवं) सिद्धोंका एक ही तरहका जिन स्वभाव है, वे जीतनेवाले हैं (सुयं षिपनं च कम्म वंधानं) उन्होंने स्वयं ही कर्म बन्धनोंको काट डाला है (अनन्त चतुस्टय सहियं) वे अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय सहित हैं (विमल सहावेन सिद्धि संपत्तं) उन्होंने अपने शुद्धोपयोग स्वभावसे ही सिद्धि प्राप्त की है ।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा ही यथार्थ जिन हैं, जिन्होंने सर्व कर्मसेनाका संहार कर डाला है व आप परम शुद्ध होगये हैं । अब कभी भी कर्ममल उनको नहीं सताएँगे ।

वीर्यं च सिद्ध सिद्धं, तारन तरनस्य अनुमोय सहकारं ।
हितमित परिनय युत्तं, कोमल सभाव ज्ञान सहकारं ॥ ४९४ ॥

अन्वयार्थ—(वीर्यं च सिद्ध सिद्धं) सिद्ध भगवानने अपने वीर्यसे सिद्धि पाई है (तारन तरनस्य अनुमोय सहकारं) वह वीर्य तारनतरन है । आप ही अपनेको तारनेवाला है । तथा निजानन्दका सहकारी है (हितमित

परिनय युत्त) वह वीर्य हितकारी है, अनन्त है तथा अपनें परिणमनमें लीन है (कोमल सभाव ज्ञान सहकार) वह वीर्य अत्यन्त कोमल स्वभावरूप है। तथा अनन्त ज्ञानका सहकारी है।

भावार्थ—आत्मामें वीर्य एक गुण है। इसी वीर्यके प्रयोगसे आत्मा अपनेको भवसागरसे तार लेता है। इसलिये वही वीर्य तारनतरन है। इसी वीर्यकी सहायतासे आनन्द सदा बना रहता है व ज्ञान सदा जाना करता है। यह वीर्य अनन्त है, कभी अपने स्वभावके परिणमनसे थकता नहीं। सिद्धोंमें अनन्तवीर्य है।

सिद्धं च सव्व सिद्धं, सिद्धं अंगं च दिगन्तरं सिद्धं।
सिद्धं अर्थति अर्थ, सामर्थ्य समय दृष्टि अनुमोयं॥ ४९५॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं च सव्व सिद्ध) सिद्ध परमेष्ठी वह हैं जिन्होंने सर्व सिद्धि प्राप्त करली है (सिद्ध अंगं च दिगतरं सिद्ध) जिन्होंने द्वादशांगवाणीका ध्येय सिद्ध कर लिया है व जिन्होंने सर्व लोकालोकको ज्ञान-द्वारा जान लिया है (सिद्ध अर्थति अर्थ) सिद्ध भगवानने आत्मा पदार्थको प्राप्त कर लिया है (सामर्थ्य समय दृष्टि अनुमोयं) उनकी आत्मामें ऐसा वीर्य प्रगट है कि वे आनन्दमई दृष्टिके रखनेवाले हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवानने रत्नत्रय धर्मका सार प्राप्त कर लिया है, आत्मासे परमात्मा हुए हैं, नित्य परमानन्दमें मग्न हैं व अनन्तवीर्यके धारी हैं।

तारनतरन सुभावं, उवइट्ठं इस्ट दिस्टि सुद्धं च।
अनुमोयं सहकारं, उवएसं विमल कम्म विलयन्ति॥ ४९६॥

अन्वयार्थ—(तारनतरन सुभाव) सिद्ध भगवानका स्वभाव तारणतरण है। वे अपने जिस शुद्ध भावोंके द्वारा संसारसे पार हुए हैं वही स्वभाव दूसरोंको भी तारनेमें समर्थ है। दूसरे उसी स्वभावको पाकर संसारसे पार होजाते हैं (इस्ट सुद्ध दिस्टि च उवइट्ठ) वे अपने शुद्ध स्वभावसे इसका उपदेश देरहे हैं कि शुद्धोपयोगकी दृष्टि ही हितकारी है (अनुमोय सहकारं) इसी दृष्टिसें परमानन्दका सहयोग है (उवएसं विमल कम्म विलयंति) इस शुद्धोपयोग रूपी निर्मल उपदेशको जो अपनेमें अङ्कित करते हैं उनके कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान जिस शुद्धोपयोगसे मुक्त हुए हैं वही शुद्धोपयोग मोक्षके इच्छुकोंको प्राप्त करना चाहिये, यही उनका सम्यक् उपदेश है।

दर्सति सव्व दर्स, दर्सायंति सुद्ध विमल मल मुक्कं ।
अनुमोयं ज्ञान सहावं, उवएसं विमल कम्म गलियं च ॥ ४९७ ॥

अन्वयार्थ—(सव्व दर्स दर्सति) सिद्ध भगवान सर्व पदार्थोंको देखनेवाले हैं (सुद्ध विमल मल मुक्कं अनुमोयं ज्ञान सहावं दर्सायंति) तथा वे अपने स्वरूपसे ही शुद्ध रागादि मल रहित आनन्दमय ज्ञान स्वभावरूपी मोक्ष-मार्गको दिखला रहे हैं (उवएसं विमल कम्म गलियं च) जो इस शुद्धोपदेशको ग्रहण करते हैं उनके कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवानकी भक्तिका यही फल लेना चाहिये कि हम परमानन्दमई शुद्धोपयोगमें रमण करें जिससे हमारे कर्म गलें।

इच्छंति मुक्ति पंथं, इच्छा यारेन सुद्ध पंथ दर्सति ।
षिपिऊन तिविह कम्मं, षिपिनक सहकार कम्म विलयन्ति ॥४९८॥

अन्वयार्थ—(इच्छंति मुक्ति पंथं) भव्यजीव मोक्षमार्गकी इच्छा करते हैं (इच्छा यारेन सुद्ध पन्थ दर्सति) वे सिद्ध भगवान उनकी इच्छानुकूल अपने गुण व स्वभावसे ही शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्गको दिखला रहे हैं (षिपिऊन तिविह कम्मं) जिससे तीनों प्रकार कर्म भाव, द्रव्य व नोकर्म क्षय होजावे (षिपिनक सहकार कम्म विलयंति) क्षायिक सम्यक्त व क्षायिक चारित्रके प्रभावसे सर्व कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—जो मोक्षमार्गपर चलना चाहते हों उनका कर्तव्य है कि शुद्धोपयोगपर चलें इससे कर्म क्षय होंगे।

चेतन्ति चित्त सुद्धं, सुद्धं स सहाव चेत उवएसं ।
रुचितं विमल सहावं, रुचियन्तो ज्ञान निम्मलं विमलं ॥४९९॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं चित चेतंति) सिद्ध भगवान शुद्ध आत्माका ही अनुभव करते हैं (सुद्धं स सहावं चेत उवएसं) उनका यह ही उपदेश है कि शुद्ध आत्मीक स्वभावका ही अनुभव करो (विमल सहावं रुचितं) उसी आत्माके स्वभावकी ही रुचि करो (रुचियन्तो ज्ञान निम्मलं विमलं) उसी रुचिसे ही ज्ञान आवरण रहित और वीतराग होजाता है।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान शुद्ध आत्मानुभवमें तल्लीन हैं। वे अपने इस स्वभावसे ही दिखला रहे हैं कि शुद्ध आत्मस्वभावकी रुचि व इसीमें चर्या करना मोक्षमार्ग है। इसीसे वीतराग चारित्र व केवलज्ञान होता है।

उत्तं सुद्ध सुद्धं, उत्तायन्तु विमल कम्म विलयं च।
परषे परम सुभावं, परपंतो धुव सुद्ध कम्म गलियं च॥ ५०० ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सुद्धं उत्तं) सिद्धका स्वभाव शुद्ध वीतराग कहा गया है (उत्तायंतु विमल कम्म गलिय च) इस कहे हुए निर्मल स्वभावको प्राप्त करनेसे कर्म विला जाते हैं (परम सुभावं परषे) सिद्ध भगवान उत्कृष्ट स्वभावको देख रहे हैं (सुद्ध धुव परपंतो कम्म गलियं च) उसी शुद्ध अविनाशी स्वभावको देखनेसे या अनुभवनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—जिस मार्गसे चलकर आत्माने सिद्धगति पाई है उसी मार्गपर चलना भव्यजीवोंका कर्तव्य है। शुद्धोपयोग ही शुद्धिका उपाय है।

वोलन्ति वयन जिनियं, वोलन्तो सुद्ध कम्म विलयन्ति।
धरयन्ति धम्म सुक्कं, धरयन्तो सूक्ष्म कम्म षिपनं च॥ ५०१ ॥

अन्वयार्थ—(वोलन्ति वयन जिनियं) श्री जिनेन्द्र अरहन्तने जो वाणी कही है (सुद्ध वलन्तो कम्म विलयन्ति) उसी वाणीको शुद्ध रूपसे यथार्थ कहते हुए व उसपर मनन करते हुए कर्म विला जाते हैं (धम्म सुक्कं धरयन्ति) जो भव्यजीव धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान धारण करते हैं (धरयन्तो सूक्ष्म कम्म षिपनं च) उस शुद्ध ध्यानके धरनेसे सूक्ष्म कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—जिनवाणीका मनन भी कर्मकी निर्जराका कारण है तथा ध्यान तो अवश्य ही सर्व कर्मको क्षय कर डालता है।

पीओसि परम सिद्धं, पीवन्तो विमल ज्ञान सुद्धं च।
रहिओ संसार सुभावं, रहियो सरनि कम्म गलियं च॥ ५०२ ॥

अन्वयार्थ—(परम सिद्धं पीओसि) श्री सिद्ध भगवानने परम सिद्धत्वरूपी अमृतका पान किया है (पीवन्तो विमल ज्ञान सुद्धं च) जो कोई भी आत्मानन्दरूपी अमृतको पीते हैं उनके निर्मल शुद्ध ध्यानकी सिद्धि होती है (रहिओ संसार सुभाव) तथा सांसारिक विभाव मिट जाते हैं (रहियो सरनि कम्म गलियं च) संसार-मार्गसे वह छूटता जाता है और कर्म गलते जाते हैं ।

भावार्थ—आत्मानन्दरूपी अमृतका पान करते हुए सिद्धपद प्राप्त हुआ है । अब भी वे सिद्ध उसी अमृतको पीरहे हैं । जो भव्य जीव सिद्धिको पाना चाहें उन्हें इसीतरह आत्मानन्दके अमृतको पीते हुए ध्यानमें एकतान होजाना चाहिये । इसीसे कर्मोंका क्षय होता है ।

दिस्टंति तिहुवनग्रं, देषंतो विमल कम्म मुक्कं च ।
जिनियं च तिविह कम्मं, जिनयंतो अनिस्ट कम्म बन्धानं ॥५०३॥

अन्वयार्थ—(तिहुवनग्रं दिस्टंति) जो भव्यजीव तीन लोकके अग्रभागमें विराजित सिद्ध भगवानका स्वरूप मनन करते हैं (देषंतो विमल कम्म मुक्कं च) उसी शुद्ध स्वरूपको देखनेसे कर्म छूट जाते हैं (जिनिय च तिविह कम्मं) तथा द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्मको जीता जाता है (जिनयतो अनिस्ट कम्म बन्धान) तथा अनिष्ट कर्मका बन्ध नहीं होता है ।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवानके ध्यान करनेसे संवर भी होता है व निर्जरा भी होती है । मोक्षका मार्ग शुद्ध स्वरूपका रमण है ।

लेतं सुद्ध सहावं, लेयंतो विमल कम्म गलियं च ।
कलितं अप्प सहावं, कलयंतो सुद्ध कम्म गलियं च ॥ ५०४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध सहावं लेतं) शुद्ध स्वभाव ग्रहण करने योग्य है (विमल लेयंतो कम्म गलियं च) इसी शुद्ध स्वभावका ध्यान करनेसे कर्म गल जाते हैं (अप्प सहावं कलितं) आत्माका स्वभाव ही मनन करना चाहिये। (कलयतो सुद्ध कम्म गलियं च) शुद्ध स्वभावका मनन करनेसे कर्म्म गल जाते हैं ।

भावार्थ—सर्वमें सार शुद्धोपयोग है, यही कर्मक्षयका कारण है ।

३७

लष्यंतु अलप लपियं, लपयंतो लोयलोय विमलं च ।
अनुमोय विज्ञान ज्ञानं, अनुमोय विसुद्ध कम्म गलियं च ॥ ५०५ ॥

अन्वयार्थ—(अलप लपिय लप्यंतु) मन वचन कायसे न जाननेयोग्य ऐसा जो अलक्ष्य अपना शुद्धात्मा है उसका अनुभव करना योग्य है (लपयतो लोय लोय विमलं च) उसीका अनुभव करनेसे निर्मल केवलज्ञान होजाता है जो लोकालोकको देखनेवाला है (विज्ञान ज्ञानं अनुमोय) भेद विज्ञानपूर्वक आत्मज्ञानमें आनन्द मानना चाहिये (विसुद्ध अनुमोय कम्म गलियं च) शुद्ध आनन्दके लाभसे कर्म्म गल जाते हैं ।

भावार्थ—शुद्ध आत्मीक ध्यान ही मोक्षका उपाय है ।

जानंति ज्ञान विमलं, जानंतो अप्प परमप्प कम्म गलियं च ।
कहंतु विमल ज्ञानं, कहयंतो ज्ञान विज्ञान स सहावं ॥ ५०६ ॥

अन्वयार्थ—(विमल ज्ञान जानंति) शुद्ध आत्मज्ञानको जानना चाहिये (जानंतो अप्प परमप्प कम्म गलियं च) आत्माको परमात्माके समान जाननेसे कर्म्म गल जाते हैं (कहंतु विमल ज्ञान) शुद्ध आत्मध्यानको अभ्यासमें लाना चाहिये (कहयंतो ज्ञान विज्ञान स सहावं) अभ्यास करनेसे अपना स्वभाव ज्ञानमय प्रगट होजाता है ।

भावार्थ—शुद्ध निश्चयनय द्वारा अपनेको शुद्ध वीतरागमय निश्चय करके उसीका ध्यान करना योग्य है । इसीसे केवलज्ञान प्रगट होता है ।

अमरो विमुक्ति पंथं, अमराए मुक्ति ज्ञान सहकारं ।
साहंति ज्ञान अवयासं, साहंति विमल कम्म विलयंति ॥ ५०७ ॥

अन्वयार्थ—(विमुक्ति पथं अमरो) मोक्षका मार्ग अमर अविनाशी आत्माका स्वभाव है (अमराए मुक्ति ज्ञान सहकारं) यही अविनाशी मुक्तिके शुद्ध ज्ञानके प्रकाशका सहकारी है । (ज्ञान अवयास साहंति) यही शुद्ध ज्ञानका साधन है (विमल साहंति कम्म विलयंति) इस विमल साधनसे कर्म विला जाते हैं ।

भावार्थ—मोक्ष भी अविनाशी है व मोक्षमार्ग भी अविनाशी है । आत्माका स्वभाव ही साधन है, वही साध्य है ।

पोषंतु ज्ञान विज्ञानं, पोषंति विज्ञान कम्म षिपनं च ।
सिद्धंतु कम्म षिपनं, सिद्धंति कम्म तिविह मुक्कं च ॥ ५०८ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान विज्ञानं पोषतु) भेद विज्ञानका पालन करना चाहिये (पोषति विज्ञान कम्म षिपन च) भेद विज्ञानके सेवनसे ही कर्म गलते हैं। (कम्म षिपनं सिद्धंतु) कर्मका क्षय हो ऐसा साधन करो (सिद्धति कम्म तिविह मुक्कं च) ऐसे साधनसे तीनों ही प्रकार कर्म छूट जाते हैं।

भावार्थ—आत्मा भिन्न है, कर्मादि भिन्न हैं ऐसा मनन करनेसे व ऐसा ध्यान करनेसे ही आत्मा कर्म रहित होता है व मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

गमस्य अगमं दिस्टं, गमयं च अनंतनंत स सरूवं ।
सुनियं च मुक्ति मग्गं, सुनियं ज्ञान सहाव कम्म गलियं च ॥ ५०९ ॥

अन्वयार्थ—(अगमं गमस्य दिष्टं) अगम जो मन, वचन, कायसे न जानने योग्य आत्मा है उसीका ज्ञान स्वरूप देखना चाहिये (गमय च अनतनंत स सरूवं) उसी आत्माका अनंत स्वभाव अनुभव करने योग्य है (मुक्ति मग्गं च सुनियं) मोक्षके मार्गको सुनना चाहिये (सुनियं ज्ञान सहाव कम्म गलियं च) सुन करके आत्माके ज्ञान स्वभावमें लय होनेसे ही कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—मोक्षका उपाय एक आत्मानुभव है, उसीको श्री गुरुके प्रसादसे सुनना चाहिये, जानना चाहिये, धारणा चाहिये व भले प्रकार मनन करना चाहिये। आत्मानुभव हीसे कर्म गलते हैं।

अनुभवं अरूवरूवं, अनुभावंति संसार सरनि विगतं च ।
लीनं च परम तत्वं, लीनायंति मुक्ति कम्म तिक्तं च ॥ ५१० ॥

अन्वयार्थ—(अरूवरूवं अनुभवं) आत्माके अमूर्तिक स्वभावका अनुभव करना चाहिये (अनुभावंति संसार-सरनि विगतं च) आत्माका अनुभव करते करते संसारका भ्रमण मिट जाता है (परम तत्वं च लीनं) उत्कृष्ट आत्माके स्वभावमें लीन होना चाहिये (लीनायंति मुक्ति कम्म तिक्त च) स्व स्वरूपमें लीन होनेहीसे मुक्ति होती है व कर्मोंसे छूटना होता है।

भावार्थ—एक अमूर्तिक शुद्ध आत्माका अनुभव करना व उसीमें लीन होना ही मोक्षका मार्ग है।

गहियं च सुद्ध सुद्धं, गहयंतो विमल सुद्ध सद्‌भावं ।
जोयंतो जोग युक्तं, जोयंतो ज्ञान दंसन समग्गं ॥ ५११ ॥

अन्वयार्थ—(गहियं च सुद्ध सुद्धं) परम शुद्ध आत्माको ही ग्रहण करना चाहिये (गहयंतो विमल सुद्ध सद्‌भाव) आत्माके ही ध्यानसे निर्मल शुद्ध स्वभावका प्रकाश होता है (जोयंतो जोग युक्त) उचित धर्म ध्यान शुक्ल ध्यानको ही ध्याना चाहिये (जोयतो ज्ञान दसन समग्ग) इसी ध्यानसे ज्ञान दर्शनकी पूर्णता होजाती है।

भावार्थ—एक शुद्धात्मानुभव ही कर्तव्य है, इसीसे केवलज्ञान होगा।

मानंतु अप्पमानं, मानंतो सुद्धप्प कम्म षिपनं च ।
रचयंति विगत रूवं, रचयंतो अविगत कम्म गलियं च ॥ ५१२ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पमान मानंतु) आत्माके ज्ञान स्वभावको ही मानना चाहिये (सुद्धप्प मानतो कम्म षिपन च) शुद्धात्माको माननेसे ही कर्मोंका क्षय होता है (विगतरूवं रचयति) अमूर्तीक आत्मामें ही रचना या जमना चाहिये (अविगत रचयंतो कम्म गलियं च) नहीं मिटनेवाले अविनाशी स्वभावमें जमनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—अपने आत्माको निश्चयसे परम शुद्ध जानके श्रद्धान करके उसीका ध्यान करनेसे कर्मोंकी निर्जरा होती है।

परिनय परिनय सुद्धं, परिनाए सुद्ध विमल परिनामं ।
पूरंति कम्म षिपनं, पूराय तिविह कम्म षिपनं च ॥ ५१३ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्धं परिनय परिनय) शुद्ध आत्माकी परिणतिमें परिणमन करना चाहिये (परिनाए सुद्ध विमल परिनामं) निज आत्माके शुद्ध स्वरूपमें रमण करनेसे परम शुद्ध भाव होता जाता है। (पूरंति कम्म षिपनं) अपने स्वरूपमें पूर्ण रूपसे लय होनेसे कर्म क्षय होते हैं (पूराय तिविह कम्म षिपनं च) जो पूर्ण रूपसे परम शुद्ध शुक्लध्यानको प्राप्त होजाते हैं उनके तीनों ही प्रकारके कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—शुद्धोपयोग ही मोक्षमार्ग है। इसीकी पूर्णता जब होती है तब द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे छूटकर यह जीव परमात्मा होजाता है।

साधंतु अर्थ सुद्धं, साधयंति पंच दित्ति परमेस्टी ।
ऋतन्तु ऋत्यरूवं, ऋतायन्ति विमल कम्म गलियं च ॥ ५१४ ॥

अन्वयार्थ—(सुद्ध अर्थ साधंतु) शुद्ध पदार्थका साधन करना चाहिये (साधयति पंच दित्ति परमेस्टी) साधन करनेसे पांच दीप्ति या पांच जोतिरूप पांच परमेष्टी पद सिद्ध होता है। (ऋत्यरूवं ऋतंतु) सत्यार्थ आत्मा स्वरूपमें सत्यतासे जमना चाहिये (ऋतायंति विमल कम्म गलिय च) शुद्ध सत्य स्वरूपमें जमनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—शुद्धात्माके ही ध्यानसे साधु, उपाध्याय, आचार्य, अरहंत व सिद्ध परमात्मा होता है। ये ही पांच चमकते हुए उत्कृष्ट पद जगतमें हैं। सत्यात्माके ही अनुभवसे कर्मोंका क्षय होता है।

सोधं च परम सुद्धं, सोधयं पर्म भाव विमलं च ।
अवयास नंतनंतं, अवयास संसार सरनि मुक्तं च ॥ ५१५ ॥

अन्वयार्थ—(सोधं च परम सुद्धं) परम शुद्धभावकी खोज करनी चाहिये (सोधयं पर्म भाव विमलं च) खोज करनेसे उत्कृष्ट शुद्ध भाव प्राप्त होजाता है (अवयास नंतनंतं) ज्ञानमें अनन्तानंत लोकके जाननेकी शक्ति है (अवयास ससार सरनि मुक्तं च) उस ज्ञानके प्रकाश होते ही संसारका भ्रमण छूट जाता है।

भावार्थ—शुद्ध भावका ध्यान करनेसे भाव शुद्ध होजाता है और केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है।

इस्टं संजोय इस्टं, इस्टाए नंत इस्ट दिस्टं च ।
गंजंतु कम्म तिविहं, गंजायंतु कम्म भाव उववन्नं ॥५१६॥

अन्वयार्थ—(इस्ट सजोय इस्ट) हितकारी संयोगकी ही इच्छा करनी चाहिये (इस्टाए नंत इस्ट दिस्टं च) ऐसी इच्छासे ही अनन्त परम प्रिय आत्माका स्वभाव दीख जाता है (गजंतु कम्म तिविहं) द्रव्यकर्मादि तीनों प्रकार कर्मोंको जीतना चाहिये (गंजायंतु कम्म भाव उववन्नं) तथा कर्मोंके बन्धकारक भावोंको भी जीतना चाहिये।

भावार्थ—आत्माका हित आत्माका ध्यान है, इसीसे मोक्ष होता है। इसका अभ्यास करना जरूरी है।

दमनं कम्म सहावं, दमनाए नोकम्म दव्व कम्मं च ।
गलंतु परिनाम अभावं, गलयंति मिच्छ कम्म विलयंति ॥५१७॥

अन्वयार्थ—(दमनं कम्म सहावं) भावकर्मोंको दमन करना चाहिये (दमनाए नोकम्म दव्व कम्मं च) रागादि भाव कर्मोंको दमन करनेसे ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म न होंगे न शरीरादि नोकर्म होंगे (गलंतु परिनाम अभावं) क्षणभंगुर मिथ्या भावोंको हटाना चाहिये (गलयति मिच्छ कम्म विलयंति) मिथ्यात्वके गलनेसे कर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—रागादि भाव कर्म ही संसारके बीज हैं। इन हीसे आठों कर्मका बंध होता है। कर्मके उदयसे नया शरीर मिलता है। बीजको जलानेसे कर्म व शरीर दोनों न रहेंगे, परमें अहंबुद्धि यह क्षणभंगुर मिथ्या भाव है। इसी मिथ्यात्वके दूर होनेपर व सम्यक्तके प्रगट होनेपर सर्व कर्म अवश्य क्षय हो जांयगे।

विरयं संसार सुभावं, विरयंतो कम्म तिविह जोएन।
तिक्तंतु कम्म तिविहं, तिक्तंतो असुह कम्म विलयंति ॥५१८॥

अन्वयार्थ—(विरय ससार सुभावं) संसारके अथिर स्वभावसे विरक्त रहना चाहिये (विरयंतो कम्म तिविह जोएन) तव मन वचन काय तीनों योगोंकी गुप्तिसे कर्म्म क्षय होजाते हैं (तिविहं कम्म तिक्तंतु) द्रव्य कर्मादि तीनों प्रकार कर्मोंसे त्याग भाव करना चाहिये (तिक्तंतो असुह कम्म विलयंति) त्याग भाव करनेसे पापकर्म गल जाते हैं।

भावार्थ—जव संसारसे वैराग्य होता है व द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे त्यागभाव जागृत होता है तव ही कर्मका बंध रुकता है व पुरातन कर्म्म झड़ते हैं।

विज्ञान ज्ञान युत्तं, विज्ञान ज्ञान कम्म षिपनं च।
अनन्त चतुस्टय सहियं, अनन्ताए नन्तदिस्टि विमलं च ॥५१९॥

अन्वयार्थ—(विज्ञान ज्ञान युत्त) जव यह जीव भेदविज्ञानको प्राप्त कर लेता है तव (विज्ञान ज्ञान कम्म षिपनं च) तव आत्मज्ञानके अनुभवसे कर्मोंका क्षय होता है (अनन्त चतुस्टय सहियं) जव अनन्तज्ञानादि चतुस्टय प्रगट

हो जाते हैं (अनन्ताए नन्त दिस्टि विमलं च) तब शुद्ध भाव जग जाता है जो अनंतशक्तिका धारी है।

भावार्थ—भेदविज्ञान आत्मानुभवका कारण है। आत्मानुभव कर्मोंके क्षयका कारण है व अनन्तज्ञानादिका प्रकाशक है। जब अनन्तज्ञानादि प्रगट होजाते हैं तब शुद्धोपयोग अनन्तशक्तियुक्त प्रकाशित रहता है।

सिद्धस्वरूप मनन।

एयं अनेय भावं, तरंति तारयंति सुद्ध सद्भावं।
सिद्धं च सर्व सिद्धं, अनुमोयं परिनाम सुद्ध विमलं च ॥५२०॥

अन्वयार्थ—(एयं अनेय भावं) एक भाव व अनेक भावके धारी सिद्ध भगवान (सुद्ध सद्भावं) शुद्धोपयोगके धनी (तरंति तारयन्ति) आप तर चुके हैं व दूसरोंके तारनेके कारण हैं (सिद्धं च सर्व सिद्धं) सर्व सिद्ध भगवान अपने आत्माके कार्यको सिद्ध कर चुके हैं (अनुमोयं परिनाम सुद्ध विमलं च) वे आनन्दमय भाव व परम शुद्ध भावके धारी हैं।

भावार्थ—अभेदकी दृष्टिसे सिद्ध भगवान एक अखण्ड स्वभावके धारी हैं भेद अपेक्षा ज्ञान दर्शन सम्यक्त आदि भावोंके धारी हैं। सर्व ही सिद्ध अपना काम कर चुके हैं। कृतकृत्य हैं। वे परमानन्दमय व शुद्ध भावमें तल्लीन हैं।

सिद्धं अनंत रूवं, रूवातीतं च विगत रूवं च।
विमलं च विमलरूवं, कम्म षिपिऊन मुक्तिगमनं च ॥ ५२१ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं अनंत रूवं) सिद्ध भगवान अनंतगुणोंके धारी हैं (रूवातीतं च विगतरूपं च) उनका स्वरूप अतीन्द्रिय गम्य है, वे शरीर रहित हैं, अमूर्तीक हैं। (विमलं च विमलरूवं) वे सर्व भावकर्म मलरहित शुद्धोपयोगी हैं (कम्म षिपिऊन मुक्ति गमनं च) वे कर्म्मोंको क्षय करके मोक्षको गए हैं।

भावार्थ—सिद्ध भगवान अमूर्तीक होनेपर भी ज्ञानानंद आदि अनंतगुणोंके धारी एक अतीन्द्रियगोचर परम शुद्ध पदार्थ हैं। वे सर्व कर्म क्षय करके मुक्त हुए हैं।

सिद्धं सुद्धो सुद्धं, विमल सहावेन कम्म विलयं च ।
अप्पा परमानंदं, परमप्पा मुक्ति सिद्धि संयत्तं ॥ ५२२ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धं सुद्धो सुद्धं) सिद्ध भगवान द्रव्यकर्मसे भी रहित है व भावकर्मसे भी रहित हैं अतएव परम शुद्ध हैं (विमल सहावेन कम्म विलयं च) उन्होंने अपने निर्मल स्वभावसे कर्मोंका क्षय कर डाला है (अप्पा परमानंदं) उनका आतमा परमानंदमय है (परमप्पा मुक्ति सिद्धि संयत्त) वे ही परमात्मा हैं, मुक्त हैं व सिद्धिको पाचुके हैं ।

भावार्थ—सिद्ध भगवान सर्व रागादि मल व ज्ञानावरणादि कर्मसे रहित हैं, नित्य परमानंदमें लीन हैं।

परम भाव दरसीए, परमं परमप्प अप्प विमलं च ।
ज्ञानं च ज्ञान अनुमोयं, सिद्धं सुद्धं च सिद्धि संपत्तं ॥ ५२३ ॥

अन्वयार्थ—(परम भाव दरसीए) सिद्ध भगवान उत्कृष्ट भावको देखनेवाले हैं (परमं परमप्प अप्प विमलं च) वे ही श्रेष्ठ हैं, परमात्मा हैं, निर्मल आत्मा हैं, (ज्ञानं च ज्ञान अनुमोय) वे ही ज्ञानमय हैं, वे ही ज्ञानानंदमय हैं, (सिद्ध शुद्धं च सिद्धि संपत्तं) वे ही सिद्ध हैं, शुद्ध हैं वे सर्व सिद्धिको प्राप्त कर चुके हैं ।

भावार्थ—सिद्धोंके अनेक नाम मनन करनेकेलिये लिये जासक्ते हैं । वास्तवमें वे नामसे रहित शुद्ध पदार्थ अनुभवगम्य हैं ।

तारनतरन उवन्नो, नंतं अनुमोय ज्ञान सहकारं ।
जिनियं जिनयतिरूवं, जिनियं कम्मान सिद्धि संपत्तं ॥५२४॥

अन्वयार्थ— तारनतरन उवन्नो) वे तारनतरन रूपसे प्रगट हैं । आप तर चुके हैं व दूसरोंको तरनेके निमित्त हैं (नंतं अनुमोय ज्ञान सहकार) अनन्त आनन्द व अनन्तज्ञान सहित हैं (जिनिय जिनयतिरूवं) वे ही जिन हैं । वे ही जिनेन्द्र स्वरूप हैं (जिनियं कम्मान सिद्धि संपत्तं) वे ही कर्मोंको जीत चुके हैं । वे ही सिद्धिको पा चुके हैं ।

भावार्थ—श्री सिद्ध भगवान ही जिनेन्द्र हैं, कर्मविजयी हैं, वे ही तारनतरन जहाज हैं । जो उनको ध्याते हैं वे अवश्य संसार–सागरसे पार होजाते हैं ।

जिनं सहाव उवन्नं, अनुमोयं सहकार ज्ञान स सरूवं ।
ज्ञान सहाव अनुमोयं, समयं संजुत्त सिद्धि संयत्तं ॥५२५॥

अन्वयार्थ—(जिन सहाव उवन्नं) सिद्धमें सत्य जिन स्वभाव उत्पन्न होगया है (अनुमोयं सहकार ज्ञान स सरूवं) आनन्दमय ज्ञानमय अपना स्वरूप प्रगट है (ज्ञान सहाव अनुमोय) ज्ञान स्वभावमें ही आनन्दका वहां अनुभव है (सम्यं संजुत्त सिद्धि सयत्तं) वे ही स्वात्मरमण चारित्र सहित हैं व सिद्धिको पाचुके हैं।

भावार्थ—आठों कर्मोंको जीतनेवाले सिद्ध भगवान हैं। वे साक्षात् स्वात्मरमण कर्ता आत्मा हैं।

अट्ठ गुन संजुत्तो, अट्ठइ पुहमी च वास समयं च ।
कम्मं तिविह विमुक्को, विमल सहावेन सिद्धिसंपत्तो ॥ ५२६ ॥

अन्वयार्थ—(अट्ठ गुन सजुत्तो) सिद्ध भगवान आठ गुण सहित हैं (अट्ठइ पुहमी च वास समय च) आठमी पृथ्वीके ऊपर उनका निवास सदाकाल रहता है (कम्मं तिविह विमुक्को) तीनों प्रकार कर्मोंसे रहित हैं। (विमल सहावेन सिद्धिसंपत्तो) वे शुद्ध स्वभावसे सिद्धिको पाचुके है।

भावार्थ—सिद्ध परमात्माके ज्ञानावरणादि आठो कर्मोंके क्षयसे मुख्य आठ गुण प्रगट हैं- सम्यक्त, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरुलघुत्व तथा अव्यावाधत्व। वे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, वीतरागसम्यक्त व अनंतवीर्यके धारी हैं, इंद्रिय अगोचर होनेसे सूक्ष्म हैं, अमूर्तीक होनेसे जहां एक सिद्ध है वहां बहु अनंत सिद्ध स्थान पासक्ते हैं। उनमें गोत्रकर्मके क्षयसे छोटे बड़ेकी कल्पना नहीं है। उनके सुख भोगमें कोई बाधा नहीं है। न उनके आठ द्रव्यकर्म हैं, न भावकर्म रागादि हैं, न शरीरादि नोकर्म हैं। वे परम शुद्ध स्वभावमें लीन पुरुषाकार आठमी पृथ्वीके ऊपर सिद्धशिलाकी सीधमें तनुवातवलयके अन्ततक विराजित हैं। उनको पूर्ण सिद्धि प्राप्त होचुकी है, इसीसे परम कृतकृत्य हैं।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

गमणागमणविहीणो फंदणचलणेहि विरहिओ सिद्धो । अव्वाबाहसुहत्थो परमट्ठगुणेहि संजुत्तो ॥ ६८ ॥
लोयालोयं सव्वं जाणइ पिच्छेइ करणकमरहियं । मुत्तामुत्ते दव्वे अणंतपज्जायगुणकलिए ॥ ६९ ॥

धम्माभावे परदो गमणं णत्थित्ति तस्स सिद्धस्स। अत्थई अणंतकालं लोयग्गणिवासिउ होउं ॥ ७० ॥

असरीरा जीवघणा चरमसरीरा हवंति किंचूणा। जम्मणमरणविमुक्का णमामि सव्वे पुणो सिद्धा ॥ ७२ ॥

भावार्थ—सिद्ध भगवान गमन आगमन रहित हैं, हलन चलन रहित हैं, बाधा रहित सुखमें लीन हैं, परम शुद्ध आठ गुण सहित हैं, विना इंद्रिय व मनकी सहायताके काम रहित सर्व लोकालोकको व अनन्त गुण पर्याय सहित मूर्तीक अमूर्तीक द्रव्योंको जानते देखते हैं। धर्मद्रव्य लोकके बाहर नहीं है इससे सिद्ध भगवानका गमन लोकके बाहर नहीं है। वे लोकके अग्रभागमें अनन्त काल तक निवास करते रहते हैं। सर्व ही सिद्ध शरीर रहित हैं। तथापि जीवके स्वरूपके घनाकार है, अन्तिम शरीरके आकारसे कुछ कम आत्माका आकार रखनेवाले हैं, जन्म मरण रहित हैं, ऐसे सिद्धोंको वारवार नमन करता हूं। अन्तिम शरीरमें जहां२ आत्माके प्रदेश नहीं हैं जैसे—नखाग्र व केशादि उतना ही आकार सिद्धावस्थामें कम रहता है। वास्तवमें जैसे ध्यानाकार वे शरीरको छोड़ते हैं वैसे ही वहां भी ध्यानाकार आसनसे विराजित रहते हैं।

उवएस सुद्ध सारं, उवइट्ठं परम जिनवर भएन।
विलयं च कम्म मलयं, ज्ञान सहावेन उवएसनं तं पि ॥५२७॥

अन्वयार्थ—(परम जिनवर उवइट्ठं भएन उवएस सुद्ध सारं) श्री अर्हंत परमेष्ठी जिनेन्द्रने जैसा उपदेश किया है उसी प्रमाण मैंने इस उपदेशशुद्धसार ग्रन्थमें उपदेश किया है (ज्ञान सहावेन कम्म मलय च विलय त पि उवएसनं) जिस आत्मीक ज्ञानके स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंका क्षय होता है उसी मार्गका ही मैंने उपदेश किया है।

भावार्थ—श्री तारणस्वामी कहते हैं कि इस ग्रन्थमें मैंने वही आत्मानुभवका मार्ग बताया है। जिससे कर्मोंकी निर्जरा हो। तथा यह उपदेश कोई कल्पित नहीं है, किन्तु वैसा ही है जैसा पूर्वके तीर्थंकरोंने उपदेश किया है।

खडी स्वभाव मनन।

षिपनक भाव संजुत्तं, डण्ड कपाटेन ईर्यपथ सु समयं।
विज्ञान ज्ञान सुद्धं, सेसं संसार सरनि विलयं च ॥ ५२८ ॥

अन्वयार्थ—(षिपनक भाव संजुत्तं) श्री अरहन्त भगवान नौ क्षायिक भाव सहित होते हैं (डंड कपाटेन ईर्यपथ सु समय) जब केवली समुद्घात करते हैं तब दण्ड कपाट प्रतर लोक पूर्ण रूपसे आत्माके प्रदेश सर्व लोकाकाशमें फैल जाते हैं, फिर संकोचित होजाते हैं (विज्ञान ज्ञान सुद्धं) इससे शुद्ध ज्ञानमई आत्माके प्रदेश शुद्ध होजाते हैं (सेसं संसार सरनि विलयं च) पश्चात् शेष संसारके भ्रमणके कारण चार अघातीय कर्म भी क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—जिस किसी अरहन्त केवलीके आयुकर्मकी स्थिति कम हो व शेष कर्मोंकी अधिक हो तब आयुके बराबर सर्वकी स्थिति करनेके लिये आठ समयमें केवली समुद्घात करते हैं। फिर चौदहवें गुणस्थानमें जाकर सर्व शेष कर्मोंका क्षय करके सिद्ध होजाते हैं।

षिपिऊन कम्म तिविहं, षडी सुभावेन ज्ञान उववन्नं।
सुद्ध सहावं पिच्छदि, कम्मानं बन्ध नंत विलयन्ति ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ—(षडी सुभावेन ज्ञान उववन्नं) खड़ियाके समान श्वेत व शुद्ध स्वभावमें रमण करनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है (तिविहं कम्म षिपिऊन) तब द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनों ही क्षय होजाते हैं। (सुद्ध सहावं पिच्छदि) तब यह अपने शुद्ध स्वभावको देख लेता है (कम्मान बन्ध नन्त विलयंति) ये सर्व ही अनन्तानन्त कर्मके बन्ध टूट जाते हैं।

भावार्थ—जैसे खड़िया बिलकुल श्वेत होती है वैसे आत्माका निज भाव बिलकुल शुद्ध वीतराग है, कषायोंके रंगसे रंजित नहीं है। इसी शुद्धोपयोग भावमें रमण करनेसे अर्हंत व सिद्धपद होता है।

कमल स्वभाव मनन।

कमल सुभाव संयुत्तं, षिपिओ कम्मान तिविह जोएन।
गगनं तु नन्त दिट्ठं, गगनन्त दिट्ठि कम्म विलयंति ॥ ५३० ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभाव सयुत्त) जब कमल स्वभाव परम आनन्दमय आत्माका परिणाम होता है तब उस शुद्ध प्रफुल्लित आनन्दमय भावके प्रतापसे (तिविह जोएन कम्मान षिपिओ) व मन वचन कायकी गुप्तिसे कर्मोंका क्षय होजाता है (गगन तु नन्त दिट्ठ) तब अनन्त आकाश देखनेमें आजाता है (गगनत दिट्ठि कम्म विलयंति) इस अनन्त केवलज्ञानके प्रकाशसे सर्व ही कर्म विला जाते हैं।

भावार्थ—जैसे फूला हुआ कमल शोभता है, बन्द कमल शोभता नहीं वैसे रागादिसे मलीन भाव शोभता नहीं किन्तु वीतराग विज्ञानमय आत्मानन्दको झलकाता हुआ जो भाव है सो कमलके समान शोभता है। इसी भावमें रमण करनेसे घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान पैदा होजाता है। फिर सर्व ही कर्म गलकर सिद्धपद प्राप्त होजाता है।

नन्त प्रकारं जाने, चरनं चरंति सुद्ध दंसनं विमलं।
नन्दं परमानन्दं, ज्ञाता उत्पन्न कम्म षिपनं च ॥ ५३१ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञाता उत्पन्न परमानन्दं नन्दं) ज्ञाता आत्माके जब परमानन्द पैदा होता है तब उसमें वह मगन रहता है (नन्त प्रकार जाने) वह पदार्थोंके अनन्त भेद जानता है (सुद्ध दसन विमल चरनं चरन्ति) वह शुद्ध सम्यग्दर्शन व निर्मल चारित्रमें आचरण करता है (कम्म षिपन च) तथा उसके सर्व कर्मोंका क्षय हो जाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग रत्नत्रय गर्भित व परमानन्दको परिपूर्ण प्रफुल्लित कमल समान है। इसके भीतर शुद्धात्मा कर्मोंका क्षय करके सदा विराजित रहता है।

ज्ञानारूढ सु समयं, नानाप्रकार नन्त परिनामं।
टूटंति मिच्छ भावं, टंकारं मुक्ति कम्म षिपनं च ॥ ५३२ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानारूढ़ सु समय) जब अपना आत्मा ध्यानारूढ़ होता है तव (मिच्छभावं नानाप्रकार नंत परिनामं दृटति) मिथ्याभाव और नानाप्रकार अनन्त विभाव परिणाम टूट जाते हैं। (टंकारं मुक्ति) और मुक्ति पानेकी टंकार या तीव्र ध्वनि होती है (कम्म षिपनं च) सर्व कर्म भाग जाते हैं।

भावार्थ—शुद्धोपयोगमें लीन होनेसे सर्व ही रागादि भाव व अज्ञानमई भाव नष्ट होजाते हैं तथा केवलज्ञानका प्रकाश होता है तव ही यह टंकार होती है कि आत्मा मुक्त होगा। तव शीघ्र ही शेष कर्म क्षय होजाते हैं। यह आत्मा मुक्त होजाता है।

ममात्मा सुकिय सुभावं, ममात्मा शुद्धात्म राग षिपनं च।
निम्मल विमल सहावं, कम्म षिपिऊन निव्वुए जंति ॥ ५३३ ॥

अन्वयार्थ— ममात्मा सुकिय सुभावं) मेरा आत्मा निश्चयसे अपने ही स्वभावमें रहता है (ममात्मा शुद्धात्म) मेरा आत्मा ही परमात्मा रूप है (राग षिपन च) इसी भावसे रागका क्षय होजाता है (निम्मल विमल सहावं) तथा वीतराग शुद्ध केवलज्ञानमय स्वभाव झलक जाता है (कम्म षिपिऊन निव्वुए जति) फिर शेष कर्मोंको क्षय करके यह निर्वाण चला जाता है।

भावार्थ—आत्माको स्वभावमय अनुभव करनेसे ही आत्मा शुद्ध होता है।

कमल सुभाव स उत्तं, कम्मं षिपिऊन सरनि संसारे।
नेक प्रकार सुदिट्टी, कललंकृत कम राग षिपनं च ॥ ५३४ ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभाव स उत्तं) कमल स्वभाव उसे ही कहते हैं जिससे (संसारे सरनि कम्म षिपिऊन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्म क्षय होजावे (नेक प्रकार सुदिट्टी) अनेक प्रकारकी शुद्ध दृष्टि अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन आदि प्रगट होजावें (कललकृत कर्म राग षिपनं च) शरीर सम्बन्धी सर्व कर्म व सर्व राग क्षय हो जावे।

भावार्थ—प्रफुल्लित आनन्दमय निश्चय रत्नत्रय स्वरूप शुद्धोपयोग ही आत्माका कमल स्वभाव है जिसके प्रतापसे सर्व विभाव भाव व सर्व कर्म गल जाते हैं और यह आत्मा परमात्मा होजाता है।

कारन कार्यं उपत्ती, नन्तानन्त दिट्ठि सम दिट्ठी ।
ज्ञान विज्ञान सु समयं, उववन्नं इस्ट अनिस्ट विलयं च ॥५३५॥

अन्वयार्थ—(कारन कार्यं उपत्ती) जैसा कारण होता है वैसे कार्यकी उत्पत्ति होती है (नंतानंत दिट्ठि सम दिट्ठी) सम्यग्दृष्टि ही अपने शुद्धोपयोगके अभ्याससे अनन्त दर्शनको प्रकाश कर सक्ता है (ज्ञान विज्ञान सु समय इस्ट उववन्नं) शुद्धात्माके अनुभवसे ही अपना इष्ट केवलज्ञान स्वरूप आत्मा होजाता है (अनिस्ट विलयं) व आत्माके अहितकारी कर्मोंका क्षय होजाता है ।

भावार्थ—शुद्धोपयोगकी पूर्णता कार्य है, वही मोक्ष है तथा शुद्धोपयोगकी अपूर्णताका कारण है वही मोक्षमार्ग है ।

दीर्घ समयं सु समयं, दीघ सुभाव राग विलयं च ।
नेयं च ज्ञान रूवं, षादं स्वादं च कम्म षिपनं च ॥ ५३६ ॥

अन्वयार्थ—(दीर्घ समयं सु समयं) श्रेष्ठ आत्माका स्वभाव ही अपने आत्माका स्वभाव है (दीर्घ सुभाव राग विलय च) श्रेष्ठ शुद्धोपयोग रूपी आत्माके स्वभावके प्रकाशसे राग विला जाता है । (ज्ञान रूवं च नेयं) तथा ज्ञानका स्वभाव प्रगट होजाता है (षाद स्वादं च कम्म षिपनं च) खाने स्वादनेकी इच्छा उत्पन्न करनेवाला सर्व कर्म क्षय होजाता है अथवा षादं स्वादंके स्थानमें सादासादं शब्द लेवें तो अर्थ होगा कि साता व असाता वेदनीय कर्म क्षय होजाता है ।

भावार्थ—परमात्मा और आत्मा एक सदृश स्वभावधारी हैं, ऐसा ही अनुभव ही अरहन्त व सिद्ध-पदका साधन है ।

माया सरनि अनन्तं, माया कम्मान अनन्त मोहंधं ।
छीनंति ज्ञान रूवं, छीनंति अनिस्ट सरनि संसारे ॥ ५३७ ॥

अन्वयार्थ—(माया अनंतं सरनि) माया कषाय अनन्त संसारका कारण है (माया कम्मान अनंत मोहंधं) यह मायाभाव अनन्तानुबन्धी कषाय और दर्शनमोहको बांधनेवाला है (ज्ञान रूवं छीनंति) इन सर्व कर्मोंको

ज्ञान स्वभावका प्रकाश क्षय कर देता है (संसारे अनिस्ट सरनि छीनंति) संसारमें जो अहितकारी भोग है वह भी क्षय होजाता है।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके प्रगट होनेसे ज्ञान स्वभाव झलक जाता है तब ही अनन्तानुबन्धी कषाय व मिथ्यात्वका उदय नहीं रहता है व संसारमें भ्रमण करानेवाले सर्व विभाव बन्द होजाते हैं।

नो लष्य लष्य लष्यं, नो कम्मान पज्जाय गलियं च।
रतियं आद सहावे, ज्ञान उववन्नं नन्त विमलं च ॥ ५३८ ॥

अन्वयार्थ—(नो लष्य लष्य लष्यं) मन वचन कायसे न जानने योग्य आत्मा जब अनुभवमें आजाता है अर्थात् जब शुद्धात्मानुभव पैदा होजाता है (नो कम्मान पज्जाय गलियं च) तब शरीररूपी पर्यायको लानेवाला कर्म गलने लगता है (आद सहावे रतिय) और जब आत्माके शुद्ध स्वभावमें रमण होजाता है (नन्त विमलं च ज्ञान उववन्नं) तब अनन्त निर्मल केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

भावार्थ—संसारका नाशक एक शुद्धात्मानुभव है।

गगन स्वभाव मनन।

गगन सुभाव उवन्नं, गलंति परभाव पज्जाय अनिस्टं।
हलवंति कम्म भारं, डण्ड कपाटेन नन्त दंसनं चरनं ॥५३९॥

अन्वयार्थ—(गगन सुभाव उवन्नं) जब ज्ञानीके अन्तरंगमें आकाशके समान निर्लेप शुद्धात्माका स्वभाव प्रगट होजाता है (अनिस्टं परभाव पज्जाय गलंति) तब सर्व अशुद्ध रागादि भावोंकी परिणतिएं गल जाती हैं (कम्मभार हलवंति) कर्मोंका बोझा घटते घटते हलका होजाता है (डण्ड कपाटेन नन्त दंसनं चरनं) मन वचन कायके निरोधरूप भावसे अर्थात् शुक्लध्यानसे अनन्त दर्शन व यथाख्यात चारित्र प्रगट होजाता है।

भावार्थ—आत्मा स्वभावसे आकाशके समान निर्मल व निर्लेप है। जब ज्ञानीका उपयोग इसी श्रद्धामें, ज्ञानमें व चारित्रमें जम जाता है तब भावकर्म नहीं रहते हैं व घातीय कर्म नष्ट होजाते हैं और केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

मोक्षमार्ग कथन ।

उत्पन्न ऊर्ध सुद्धं, उवलष्यं अद सहाव पर विरयं ।
रिजु विपुलं च सहावं, इस्टं संजुत्त अनिस्ट नहु दिट्ठं ॥५४०॥

अन्वयार्थ—(उत्पन्न ऊर्ध सुद्ध) जब श्रेष्ठ व शुद्ध ज्ञानोपयोग झलक जाता है (अद सहाव उवलष्यं पर विरय) तब आत्माका स्वभाव अनुभवमें प्रत्यक्ष आजाता है तथा पर भावसे मुक्ति होजाती है (रिजु विपुलं च सहावं) आत्माका स्वभाव सरल व विशाल है (इस्टं संजुत्त अनिस्ट नहु दिट्ठं) उसी प्रिय स्वभावका प्रकाश होजाता है । अज्ञान व कषाय भाव जो आत्माके अनिष्ट हैं वे कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ते हैं ।

भावार्थ—वीतराग विज्ञानमई स्वभावसे ही पूर्ण ज्ञानमय व अनन्त आत्माका स्वभाव झलकता है।

लब्धं विमल सहावं, लंकृत सदव्व पर दव्व नहु पिच्छं ।
ह्रींकार सुध उवनं, हुत परभाव षिपिय मोहंधं ॥५४१॥

अन्वयार्थ— विमल सहावं लब्धं) जब निर्मल आत्माका स्वभाव प्राप्त होजाता है (लंकृत सदव्व) तब अपना आत्मीक द्रव्य शोभायमान होजाता है (पर दव्व नहु पिच्छ) पर द्रव्यका कोई राग नहीं रहता है (ह्रींकारं सुध उवनं) ह्रीं मन्त्रके द्वारा ध्यान करनेसे शुद्ध भाव पैदा होजाता है (हुत परभाव) तब रागादि परभाव नष्ट होजाता है (मोहंध षिपिय) मोह कर्मका क्षय होजाता है ।

भावार्थ—शुद्ध आत्मीक स्वभावका ध्यान ही आत्माकी शुद्धिका कारण है ।

डण्ड कपाटं विमलं, तासंति तिविह कम्मान नेय बन्धानं ।
रोहंति इस्ट रूवं, नू उत्पन्न ज्ञान नट्ठ कम्मानं ॥५४२॥

अन्वयार्थ—(डण्ड कपाटं विमलं) जब निर्मल भाव गुप्तिरूप प्रगट होजाता है (तासंति तिविह कम्मान नेय बधानं) तब द्रव्य कर्मादि तीनों प्रकारके कर्मोंके उत्पन्न करनेवाले अनेक कर्मके बन्धन ढीले पड़ जाते हैं (इस्ट रूवं रोहति) अपना इष्ट स्वभाव उचतासे झलक जाता है (कम्मानं नट्ठ नू ज्ञान उत्पन्न) तथा घातीय कर्मोंके नष्ट होनेसे उत्कृष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है ।

भावार्थ—जैसे ही शुद्धोपयोगका प्रकाश होता है वैसे ही सर्व कर्मोंके बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। कर्मोंके उदयसे ही भावकर्म होते हैं, शरीरादि नोकर्म होते हैं व नवीन द्रव्यकर्म भी औदयिक भावोंसे बन्धते हैं। जब वीतराग भाव क्षीण कषाय बारहवें गुणस्थानके योग्य होजाता है तब चार घातीय कर्मोंका नाश होकर केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

वरं च आद सहावं, वर दंसन ज्ञान चरन विमलं च।
दुट्ठ नट्ठ कम्मं, डेभं परभाव परमुहो जोगी ॥ ५४३ ॥

अन्वयार्थ—(जोगी परमुहो परभाव डेभं) ध्यान करनेवाला जब पुद्गलकी ओर लेजानेवाले सर्व रागादि पर भावोंको उड़ा डालता है तब (वरं च आद सहावं) श्रेष्ठ आत्माका स्वभाव तथा (वर दंसन ज्ञान चरन विमल च) अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान व शुद्ध चारित्र प्रगट होजाता है (दुट्ठ नट्ठ कम्मं) तथा दुष्ट आठों कर्म नष्ट होजाते हैं।

भावार्थ—आत्माके ध्यानसे ही सिद्धावस्था प्राप्त होती है।

हंतून कम्म दोसं, अनन्त विसेसेन आद सहकारं।
चेयन अनन्त रूवं, उत्पन्नं परदव्व भाव विलयं च ॥ ५४४ ॥

अन्वयार्थ— कम्म दोस हंतून) रागादि भावकर्मके दोष जब नष्ट होजाते हैं (अनन्त विसेसेन आद सहकारं अनन्त रूवं चेयन उत्पन्न) तब अनन्त गुणोंके साथ आत्माका अनन्त स्वभाव चैतन्यमय झलक जाता है (परदव्व भाव विलयं च) तथा परद्रव्य सम्बन्धी सर्व भाव विलय होजाते हैं।

भावार्थ—वीतरागता ही कर्मोंको जलानेके लिये अग्नि है। इसीके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होजाता है तब आत्मा अपने अनन्त गुणोंके साथ प्रकाशमान होजाता है।

इस्ट सरूव संजोयं, इस्टं परिनाम अनिस्ट विरयंति।
कमलस्य सहजनन्दं, कल लंकृत कर्म कृत्य विरयन्ति ॥ ५४५ ॥

अन्वयार्थ—(इस्ट सरूव संजोयं) जब शुद्धोपयोगरूप हितकारी आत्मस्वभावका संयोग होता है तब

(इस्टं परिनाम अनिस्ट विरयंति) उन उपादेय शुद्ध भावोंके सामने सर्व रागादि अनिष्ट भाव छूट जाते हैं (कमलस्य सहजनंदं) कमलके समान प्रफुल्लित आत्मामें स्वाभाविक आनन्दभाव झलक आता है (चल लकन कर्म क्रय विरयंति शरीर सम्बन्धी सर्व क्रियाकांड व हलनचलन बन्द होजाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोगके साधनसे ही अरहन्त व सिद्ध पद होता है। सिद्ध सदा निश्चल अपने स्वभावमें आनन्दरूप रहते हैं।

मन विलयं सहकारं, ममात्मा सुद्ध सहाव विमलं च।
तत्काल कम्म गलियं, छेयं परदव्व परमुहो तंपि॥ ५४६॥

अन्वयार्थ—(सहकारं मन विलयं) कर्मोंके बन्धमें सहकारी संकल्प विकल्प रूप मन जहां विलय होगया है (ममात्मा सुद्ध सहाव विमलं च) तब मेरे आत्माका शुद्ध वीतराग स्वभाव प्रगट होजाता है (तत्काल कम्म गलिय) उसी समय कर्मोंका भी क्षय होजाता है। (परदव्व परमुहो तपि छेय) परद्रव्यका भी नाश होजाता है जो पर पर्यायमें लेजाने वाला है।

भावार्थ—मनके मरनेसे ही स्वसंवेदन ज्ञान व स्वानुभव प्रकाश होता है। स्वानुभवमें ही शुद्धात्माका प्रकाश है, इसीको शुक्लध्यान कहते हैं। इसीसे मोहनीय कर्मका व अन्य तीन घातीय कर्मोंका क्षय होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। फिर शरीरोंका सर्व सम्बन्ध छूट जाता है व आत्मा अकेला ही निज स्वरूपमें रह जाता है।

दुबुहि उवन्नं विरयं, दुक्रत परदव्व भाव गलियं च।
मानापमान सुद्धं, ममात्मा ज्ञान सहाव समयं च॥ ५४७॥

अन्वयार्थ—(दुबुहि उवन्न विरयं) शुद्धोपयोगके होनेपर कुबुद्धिका उत्पन्न होना बन्द होगया (दुक्रत परदव्व भाव गलियं च) सर्व दुष्कर्म तथा परद्रव्य सम्बन्धी भाव गल गया (मानापमान सुद्ध) मान तथा अपमानके भावोंसे रहित होगया (ममात्मा ज्ञान सहाव समय च) मेरा आत्मा ज्ञान स्वभावी पदार्थ रह गया।

भावार्थ—जहांतक स्वरूपमें लयता रूप स्वानुभव नहीं है वहांतक रागादि भाव होते हैं व राग-

सहित वचन व कायकी प्रवृत्ति होती है। स्वानुभवके होते ही मन, वचन, कायका पर पदार्थमें परिणमन बिलकुल रह गया। तथा आत्मा अपने स्वभावमें ही प्रकाशित होगया।

तत्वं च तत्व रूवं, तत्वं च परम तत्व परमेस्टी।
जिन वयनं जयवंतं, जयवंतं लोयलोय विमलं च ॥ ५४८ ॥

अन्वयार्थ—(तत्वं च तत्व रूवं) तत्वोंमें मुख्य तत्व आत्माका स्वभाव है (तत्व च परम तत्व परमेस्टी) अथवा तत्वोंमें श्रेष्ठ तत्व अरहन्त परमेष्ठी है (जिन वयनं जयवन्तं) यह जिनवाणी जयवन्त रहो जिसके प्रतापसे परम तत्वका पता लगता है (जयवन्तं लोयलोय विमलं च) निर्मल ज्ञान जयवन्त हो जो लोकालोकको जानता है।

भावार्थ—जिनवाणीका भले प्रकार मनन करनेसे मालूम पड़ता है कि सात तत्वोंमें मुख्य तत्व आत्मा है जो स्वपर ज्ञायक है। आत्मामें भी सार तत्व अरहन्त सिद्ध परमात्मा हैं। इनहीका ध्यान करनेसे व इन समान अपने आत्माको ध्यानेसे केवलज्ञानका लाभ होता है। यह जिनवाणी सदा ही मेरे घटमें प्रगट हो। श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

एवं सगय तच्च अण्णं तहपरगयं पुणो भणिय। सगय णियअप्पाणं इयरं पंचावि परमेट्ठी ॥ ३ ॥

जं पुणु सगय तच्चं सवियप्पं हवइ तह य अवियप्पं। सवियप्पं सासवयं णिरासवं विगयसंकप्पं ॥ ५ ॥

जं अवियप्पं तच्चं तं सारं मोक्खकारणं तं च। तं णाऊण विसुद्धं झायह होऊण णिग्गंथो ॥ ९ ॥

भावार्थ—इसतरह तत्व दो प्रकारका कहा गया है—स्वतत्व तथा परतत्व। अपना आत्मा स्वतत्व है। पांच परमेष्ठी परतत्व है। स्वतत्व भी दो प्रकार हैं—एक सविकल्प, दूसरा निर्विकल्प। सविकल्प तत्वसे कर्मोंका आस्रव होता है, निर्विकल्प तत्वसे आस्रव नहीं होता है। जो निर्विकल्प तत्व है, वही सार है, वही मोक्षका कारण है, वही स्वानुभवरूप है, वही शुद्धोपयोगरूप है। ऐसा जानकर सर्व ममता त्यागकर उस शुद्ध निर्विकल्प आत्म-तत्वका ध्यान करो। जहां यह मनन है कि मैं ज्ञाता दृष्टा हूँ, वीतराग हूँ आदि वह सविकल्प तत्व है, चञ्चल है। जहां कोई विचार नहीं है, भावना नहीं है, केवल स्वरूपमें रमणता है वही निर्विकल्प तत्व निश्चय रत्नत्रय स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग है।

कारण कज्ज उपत्ती, कलुसभाव अनिस्ट नहु दिट्ठं ।
नेयं निरुपम सुद्धं, नेयं परदव्व सहाव गलियं च ॥ ५४९ ॥

अन्वयार्थ—(कारण कज्ज उपत्ती) कारण जैसा होता है वैसा कार्य बनता है (कलुसभाव अनिस्ट नहु दिट्ठ) कारणरूप शुद्धोपयोगमें सर्व अहितकारी मलीन भाव या कलुपभाव नहीं दिखलाई पड़ते हैं, इसीसे यह भाव (नेयं निरुपम सुद्धं) अनुपम शुद्ध भावकी तरफ ले जाता है (नेयं परदव्व सहाव गलिय च) तथा इसीके कारण अनेक परद्रव्य सम्बन्धी भाव गल जाते हैं ।

भावार्थ—शुद्ध आत्मीक स्वभावमें रमण करना ही आत्माकी शुद्धिका उपाय है ।

ममात्मा अमल सरूवं, मल मुक्कं नन्त दंसनं विमलं ।
नेयं च तिक्त असुहं, नेयं च अप्प परमप्प संदरसं ॥ ५५० ॥

अन्वयार्थ—(ममात्मा अमल सरूवं) मेरे आत्माका निर्मल स्वभाव है (मल मुक्कं नन्त दंसनं विमल) वह सर्व कर्म मल रहित तथा निर्मल अनन्त दर्शनका रखनेवाला है (नेयं च तिक्त असुह) ऐसी वारवार भावना करनेसे अशुभ कर्मोंका क्षय होजाता है (नेयं च अप्प परमप्प संदरसं) तथा आत्मा परमात्माके दर्शनपर पहुँच जाता है । अर्थात् आत्मा परमात्मा होजाता है ।

भावार्थ—अपने आत्माका स्वभाव निश्चयसे परम शुद्ध है, परमात्माके समान ज्ञानानन्दमय है। ऐसी भावना ही आत्माको परमात्माके पदपर पहुँचा देती है ।

दुर्लष्य लष्य रूवं, दुबुहि सहकार कम्म विलयन्ति ।
वयनं च सुद्ध वयनं, चेतन संजुत्त कम्म पिपनं च ॥ ५५१ ॥

अन्वयार्थ—(दुर्लष्य लष्य रूवं) जब मन वचन कायसे न जानने योग्य ऐसे अपने ही आत्माका स्वभाव लक्ष्यमें आजाता है तब दुबुहि सहकार कम्म विलयति) आत्मज्ञानसे विचलित करनेवाले सर्व कर्म क्षय होजाते हैं (वयन च सुद्ध वयनं) तब इस आत्मज्ञानीके वचन भी सब शुद्ध निकलते हैं। उनमें संसारवर्द्धक वासना नहीं होती है (चेतन संजुत्त कम्म पिपन च) आत्माके चैतन्य स्वभावमें रमण करनेहीसे कर्मोंका क्षय होता है ।

भावार्थ—एक शुद्धात्मानुभव ही मोक्षमार्ग है।

कलं सुभाव न दिट्ठं, ज्ञान विज्ञान सम्म संजुत्तं।
नन्तानन्त सुभावं, उववन्नं परम सुद्ध ज्ञानं च ॥ ५५२ ॥

अन्वयार्थ—(कल सुभाव न दिट्ठं) शुद्धोपयोगमें शरीर सम्बन्धी कोई राग भाव नहीं दिखलाई पड़ता है (ज्ञान विज्ञान सम्म संजुत्तं) वहां सम्यग्दर्शन सहित भेदविज्ञान है (नंतानंत सुभावं परम सुद्ध ज्ञानं च उववन्नं) इसी शुद्धोपयोगके अनुभवसे व अभ्याससे आत्माका अनन्त गुणोंका समुदाय रूप स्वभाव श्रेष्ठ शुद्ध केवलज्ञान सहित प्रगट होजाता है।

भावार्थ—शुद्धोपयोग वीतराग परिणतिको लिये हुए केवलज्ञानका कारण है।

विमलं दंसन दिट्ठी, मलं न पिच्छेइ पज्जाय अनिस्टी।
सहकारं ज्ञान उवन्नं, नेयं परदव्व भाव गलियं च ॥ ५५३ ॥

अन्वयार्थ—(विमल दंसन दिट्ठी) सम्यग्दर्शनकी निर्मल दृष्टि जब प्रकाशित होती है तब (अनिस्टी पज्जाय मलं न पिच्छेइ) अहितकारी पर्याय सम्बन्धी राग द्वेषादि मल दिखलाई नहीं देते हैं (सहकारं ज्ञान उवन्नं) इसीकी सहायतासे ही केवलज्ञान पैदा होता है (नेयं परदव्व भाव गलियं च) इसके अभ्यासको चलानेसे परद्रव्यके निमित्तसे होनेवाले भाव दूर होजाते हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनका अनुभव सोही आत्माका अनुभव है। वहां रागादिका झलकाव नहीं दीखता है। इसी वीतराग परिणतिके द्वारा मोहका क्षय होता है तथा केवलज्ञानका प्रकाश होता है।

विज्ञान ज्ञान रूवं, दुबुहि परभाव दोस विलयंति।
ज्ञानं अनाइ सुद्धं, टंकोत्कीर्ण नन्त दंसनं सुद्धं ॥ ५५४ ॥

अन्वयार्थ—(विज्ञान ज्ञान रूवं) भेदज्ञानके द्वारा जो ज्ञानस्वभावी आत्माका अनुभव होता है उससे (दुबुहि परभाव दोस विलयंति) कुबुद्धि व परभाव सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं (अनाइ ज्ञानं सुद्धं) अनादिकालका ज्ञान गुण शुद्ध होजाता है (टंकोत्कीर्ण नन्त दसनं सुद्धं) आत्मामें टांकी द्वारा उकेरी मूर्तिके समान सदा रहनेवाला अनन्त दर्शन भी शुद्ध प्रगट होजाता है।

भावार्थ—आत्मानुभवके अभ्याससे ही सर्व रागादि मल व अज्ञान दूर होकर अनन्तज्ञान व अनन्त दर्शन प्रगट होजाते हैं, जो अनादिसे आत्माके साथ अपने स्वभावमें थे ही। केवल कर्मोंका आवरण था सो दूर होजाता है।

द्वादस तप आयरनं, दुसुभाव दुवुहि परभाव गलियं च।
सहकार सुद्ध आचरनं, सल्यं मुकं च परदव्व विरयंति ॥ ५५५ ॥

अन्वयार्थ—(द्वादस तप आयरनं) बारह प्रकार तपका आचरण करना चाहिये (दुसुभाव दुवुहि परभाव गलियं च) जिससे विभाव भाव व कुज्ञान आदि सर्व परभाव दूर होजावे (सहकार सुद्ध आचरनं) ये तप शुद्ध चारित्रके लिये सहकारी हैं (सल्यं मुकं च) माया, मिथ्या, निदान तीन शल्योंको छोड़ देना चाहिये (परदव्व विरयंति) तथा पर द्रव्योंसे राग भाव दूर करना चाहिये।

भावार्थ—भावोंकी शुद्धिके लिये व ध्यानकी शुद्धिके लिये, इंद्रियोंको जीतनेके लिये शल्यको त्याग-कर व संसार शरीर भोगोंसे वैराग्यभाव धारकर बारह तप साधुको अवश्य करना चाहिये। वे इसप्रकार हैं—

१–अनशन—चार प्रकार आहार त्यागके उपवास करना व धर्मध्यानमें उपयुक्त रहना।

२–ऊनोदर—उदरभर न खाना, कम खाना।

३–वृत्तिपरिसंख्यान—भिक्षाको जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेना, विना कहे पूरी होजानेपर आहार करना, नहींतो उपवास करना।

४–रस परित्याग—दूध, दही, घी, मीठा, लवण, तेल इन छः रसोंमेंसे एक व अनेक त्यागना।

५–विविक्त शय्यासन—एकांतमें शयन व आसन रखना।

६–कायक्लेश—कायको कठिन २ तरहसे रखकर व आसन लगाकर तप करना।

७–प्रायश्चित्त—दोष लगनेपर दण्ड लेकर दोष मेटना।

८–विनय—रत्नत्रय धर्म व धर्मात्माओंका आदर करना।

९–वैय्यावृत्य—रोगी, वृद्ध, निर्बल, थके हुए धर्मात्माओंकी सेवा करना।

१०–स्वाध्याय—शास्त्रोंको पढ़ना व मनन करना।

११—व्युत्सर्ग—शरीरादिसे ममत्व त्यागना।

१२—ध्यान—धर्मध्यानका अभ्यास करना।

विषयं च रायदोषं, दुबुहि षिपनं च सुद्ध सहकारं।
दुर्लष्य लष्य रूवं, वारापारं च नन्त कम्म षिपनं च ॥५५६॥

अन्वयार्थ—(विषयं च रायदोसं दुबुहि षिपनं) पांचों इंद्रियोंके विषयोंकी इच्छा, राग, द्वेष, अज्ञान इन सबको दूर करना चाहिये (सहकारं सुद्ध दुर्लष्य लष्य रूवं) इसीकी मददसे शुद्ध आत्माका अनुभव होसकेगा जो मन द्वारा दुर्गम्य है और (वारापारं च नन्त कम्म षिपनं च) संसार-समुद्रके भ्रमण करानेवाले अनन्त कर्मोंका क्षय होगा।

भावार्थ—रागद्वेष मोहको विजय करने व इंद्रियोंको वश करनेसे ही आत्माका ध्यान होसकेगा। इसी ध्यानसे ही कर्मोंकी निर्जरा होगी।

टंकारं सिद्ध रूवं, टंकारं ज्ञान रूढ विमलं च।
कमलं केवल सहियं, कम्म षिपिऊन मुक्ति गमनं च ॥ ५५७ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्ध रूवं टंकारं) सिद्धका स्वरूप ही एक प्रकारकी ध्वनि है जिससे कर्म भाग जाते हैं (टंकारं ज्ञान रूढ़ विमलं च) जो कोई इस टंकार स्वरूप सिद्धके निर्मल ध्यानमें आरूढ़ होजाता है (कमलं केवल सहियं) तब प्रफुल्लित आत्मामें केवलज्ञानका प्रकाश होजाता है (कम्म षिपिऊन मुक्ति गमनं च) और सर्व कर्मका क्षय होकर आत्मा मोक्षमें चला जाता है।

भावार्थ—सिद्ध समान अपने आत्माको ध्यानेसे ऐसी वीतरागता प्रकाशित होती है जिससे अरहंत-पदके पश्चात् सिद्धपद प्राप्त होजाता है।

कमलं अनन्त दिट्ठी, छेयं कम्मान दव्व बंधानं।
छेयं यदि चेयनयं, कमल सुभावेन केवलं ज्ञानं ॥ ५५८ ॥

अन्वयार्थ—(कमलं अनंत दिट्ठी) जब प्रफुल्लित कमलके समान आत्माका उपयोग अनन्त गुणस्वरूपी

आत्मापर दृष्टि रखता है तब (दव्व बंधानं कम्मान छेयं) द्रव्य कर्मोंके बन्धन क्षय होजाते हैं (यदि चेयनयं छेयं) जब चैतन्यका अनुभव रूप छेदनेका शस्त्र होता है तब घातीय कर्मोंका क्षय होकर (वमल सुभावेन केवलं ज्ञानं) प्रफुल्लित शुद्धोपयोगके रमणसे केवलज्ञान प्रगट होजाता है।

भावार्थ—शुद्धात्माके ध्यानसे जो आत्मानुभूति रूपी छेनी बनती है वही वह शस्त्र है जो घातीय कर्मोंका क्षय करके केवलज्ञानको उत्पन्न कर देती है।

षादं षिपनिक रूवं, जैवन्तो परदव्व परमुहो तंपि।
जइ जइवंत सहावं, षादं षिपिऊन पज्जाय गलियं च ॥ ५५९ ॥

अन्वयार्थ—(षिपनिक रूवं षादं) क्षपणक अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिका निर्ग्रंथ रूप कर्मोंके क्षयमें सहकारी है। (परदव्व परमुहो तंपि जैवन्तो) यद्यपि वह परद्रव्य है, शरीरका रूप है व आत्माके स्वभावसे परांगमुख है तौपि जैवन्त रहो (जइ जइवत सहाव) इसका स्वभाव सदा जैवन्त रहो क्योंकि (षादं षिपिऊन पज्जाय गलियं च) इस मुनिलिंगके होते हुए क्षपण योग्य कर्म क्षय होजाते हैं। सर्व कर्मोंके क्षयके पीछे यह क्षपणक शरीर भी गल जाता है।

भावार्थ—इस गाथासे यह दिखलाया है कि केवलज्ञानकी प्राप्तिके लिये निर्ग्रंथ दिगम्बर परिग्रह रहित साधुपद आवश्यक है। यद्यपि शरीरका नग्न होना पुद्गल पर्याय है आत्मासे भिन्न है तथापि इस रूपके होते हुए पूर्ण अहिंसा व पूर्ण परिग्रह त्याग बन सक्ता है व प्रमत्तादि गुणस्थानोंमें जिसप्रकार ध्यानकी सिद्धि होनी चाहिये वह सिद्धि होती है। इसका बाहरी भेष होते हुए जब साधु भावापेक्षा भी सर्व राग द्वेष मोहका त्यागी होकर ध्यान करता है तब क्षपकश्रेणीपर आरूढ होकर चार घातीय कर्म क्षय कर केवली अरहन्त होजाता है, फिर आयु कर्मके उदय तक वह शरीर जिसकी सहायतासे सिद्धपद होता है, रहता है फिर स्वयं ही छूट जाता है। पुद्गल यद्यपि त्यागने योग्य है परंतु जहांतक साध्यकी सिद्धि न हो वहांतक इसकी सहायता आवश्यक है। श्री नागसेनाचार्यने तत्वानुशासनमें कहा है—

तत्रासन्नीभवेन्मुक्ति: किंचिदासाद्य कारणं। विरक्त: कामभोगेभ्यस्त्यक्तसर्वपरिग्रह ॥ ४१ ॥
अभ्येत्य सम्यगाचार्यं दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः। तप संयमसम्पन्न प्रमादरहिताशयः ॥ ४२ ॥

सम्यग्निर्णीतजीवादिध्येयवस्तुव्यवस्थितिः । आर्तरौद्रपरित्यागाल्लब्धचित्तप्रसत्तिकः ॥ ४३ ॥

मुक्तलोकद्वयापेक्ष षोढाशेषपरीषहः । अनुष्ठितक्रियायोगो ध्यानयोगे कृतोद्यमः ॥ ४४ ॥

महासत्वः परित्यक्तदुर्लेश्याशुभभावनः । इतीदृग्लक्षणो ध्याता धर्मध्यानस्य सम्मतः ॥ ४५ ॥

भावार्थ—नीचे लिखे गुणोंका धारी ही धर्मध्यानका योग्य ध्याता कहा गया है–(१) निकट मुक्तिवाला हो, किसी कारणसे वैराग्यवान होकर काम भोगोंसे विरक्त होकर सर्व परिग्रहका त्याग करे, (३) किसी योग्य आचार्यके पास जाकर जैनेश्वरी निर्ग्रंथ दीक्षा धारण करे, (४) तप व संयम सहित हो, (५) प्रमाद रहित अभिप्राय रक्खे, (६) जीवादि ध्येय पदार्थोंके स्वरूपको भलेप्रकार निर्णय कर चुका हो, (७) आर्तरौद्र ध्यानका त्यागी हो, (८) चित्तमें प्रसन्नता हो, (९) इसलोक व परलोककी उभयलोककी कोई इच्छा न हो, (१०) सर्व क्षुधादि बाईस परीषहोंको सहनेवाला हो, (११) योगाभ्यासी हो, (१२) ध्यानमें बडा उद्यमी हो, (१३) महा उत्साही हो तथा अशुभ लेश्याके अशुभ भावोंका त्यागी हो।

मानापमान सुद्धं, माया मानं च सरनि विलयं च ।
छिंदंति विविह कम्मं, छिंदंतो परदव्व भाव सद्भावं ॥ ५६० ॥

अन्वयार्थ—(मानापमान सुद्धं) ध्यानका ध्याता साधु मान व अपमानमें समानभाव रखनेवाला हो (माया मानं च सरनि विलयं च) कोई भी काम मायाचारसे मानभावसे न करता हो (विविह कम्म छिंदंति) ऐसा ही साधु नानाप्रकार कर्मोंका क्षय करता है (छिंदंतो परदव्व भाव सद्भावं) तथा परद्रव्य सम्बन्धी सर्व रागादि भावोंको छेद डालता है।

भावार्थ—समदर्शी क्षपणक सरल भावसे ध्यानका अभ्यासी ही कर्मोंको व रागादिको क्षय कर सक्ता है।

गिन्हं चरन विसेसं, ञानं ठानं च मिच्छ गलियं च ।
ञानं उववन भावं, गिर उववन्न निम्मलं विमल ॥ ५६१ ॥

अन्वयार्थ—(गिन्हं चरन विसेस) ध्याता साधु विशेष साधुके चारित्रको ग्रहण करे (ञानं ठानं च मिच्छ गलियं च) मिथ्या आर्त रौद्र ध्यानको व ध्यानके अयोग्य स्थानको दूर करे (ञानं उववन भावं) अपने भीतर आत्मज्ञानकी भावनाको जागृत करे (गिर उववन्न निम्मल विमल) तथा अपनी वाणीको शुद्ध निर्विकार रक्खे।

भावार्थ—ध्याता क्षपणकको अठाईस मूलगुणोंको या तेरह प्रकार चारित्रको पालना चाहिये। अशुभ ध्यानसे वचनेके लिये निर्जन स्थानोंका सेवन करना चाहिये। वचन गुप्ति पालना चाहिये। यदि वोले तो वहुत ही शुद्ध स्पष्ट प्रिय शास्त्रोक्त वचन वोलने चाहिये। तथा भीतर शुद्ध आत्माकी भावना करनी चाहिये।

घन घाय कम्म मुक्कं, ऊर्ज मभाव मग्ग दिस्टति।
नौ उववन्न सहावं, नौ सभाव दिस्टि इस्टं च ॥ ५६२ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ज सभाव मग्ग दिस्टंति) जो साधु श्रेष्ठ आत्मीक स्वभावके अनुभवरूप मार्गपर आरूढ हैं (घन घाय कम्म मुक्कं) उनके अत्यन्त घन चार घातीय कर्म नष्ट होजाते हैं (नौ सहावं उववन्न) तथा नौ लब्धि-रूप स्वभाव प्रगट होजाते हैं (नौ सभाव दिस्टि इस्ट च) नौ स्वभावकी प्रगटता होगी ही। साध्य व प्रिय दृष्टि थी जो प्राप्त होगई।

भावार्थ—क्षपणक साधुका प्रिय ध्येय अरहन्तपदका लाभ है। शुद्धोपयोगमई ध्यानकी उत्तमता होनेसे ही चार घातीय कर्म नष्ट होते हैं व नौ क्षायिक लब्धियां प्रगट होजाती हैं। ज्ञानावरण कर्मके क्षयसे १–अनन्तज्ञान; दर्शनावरण कर्मके क्षयसे २–अनन्तदर्शन; मोहनीय कर्मके क्षयसे ३–क्षायिक सम्यक्त; ४–क्षायिक चारित्र। पांचों प्रकारके अन्तराय कर्मके क्षयसे, ५–अनन्त दान, ६–अनन्त लाभ, ७–अनन्त भोग, ८–अनन्त उपभोग, ९–अनन्त वीर्य, ये नौ गुण सदा ही वने रहते हैं।

नुक्त उत्पन्न सहावं, टं नन्त अनन्त परिनामं।
जइ टंकोतं सहियं, नो उत्पन्न कम्म विलयन्ति ॥ ५६३ ॥

अन्वयार्थ—(नुक्त उत्पन्न सहावं) जव प्रशंसनीय आत्मस्वभाव प्रगट होजाता है (नंत अनंत परिनामं ट) तव अनन्तानन्त कर्मोंके वन्धन कट जाते हैं (जइ टंकोत सहिय) जव यह आत्मा ध्यानकी खड्गको लेता है (उत्पन्न नो कम्म विलयंति) तव जो प्राप्त नोकर्म अर्थात् शरीर है वह सदाके लिये छूट जाता है।

भावार्थ—आत्मानुभव रूपी खड्गसे कर्मोंका छेद होता है। कर्म नष्ट होनेपर शरीर भी छूट जाता है और यह आत्मा सिद्ध परमात्मा होजाता है।

चू ऊर्द्ध सुद्ध सहियं, टंकारं मुक्ति ज्ञान विमलं च ।
जइ ज्ञान ढान सहावं, चू संसार सरनि विलयं च ॥ ५६४ ॥

अन्वयार्थ—(चू ऊर्द्ध सुद्ध सहियं) चू से चूलिकाका भाव लेना चाहिये । पूर्व कथनकी चूलिका यह है व ऊपरके कथनका सार यह है कि श्रेष्ठ शुद्ध स्वभावको धारना ही (मुक्ति ज्ञान विमलं च टंकारं) मुक्तिके योग्य ध्यानकी निर्मल टंकार है अर्थात् ऐसा शब्द है जिससे मुक्ति सावधान होजाती है और स्वागतके लिये तैयार रहती है (जइ ज्ञान ढान सहावं) यदि ध्यानका स्वाभाविक स्थान अर्थात् परम शुक्लध्यान प्राप्त होजावे तो (चू संसार सरनि विलय च) कहनेका सार यह है कि कर्मोंका नाश होजावे ।

भावार्थ—आत्माके स्वभावमें लीन होना ही मुक्ति साधनका उपाय है । यही एक ध्वनि है जिससे मुक्तिरूपी स्त्री वशमें होजाती है ।

चूकं च कम्म चली, छेयं परभाव कम्म गलियं च ।
जदि छेय भाव पिच्छं, चूकं कम्मान मुक्ति गमनं च ॥ ५६५ ॥

अन्वयार्थ—(चूक च कम्म चली) कर्मोंका ढक्कन जब हट जाता है (छेयं परभाव कम्म गलिय च) तब सब रागादि परभाव छिद जाते हैं व कर्म गल जाते हैं (जदि छेय भाव पिच्छ) जब कर्मोंको छेदनेवाले शुद्ध भावका अनुभव होता है (चूक कम्मान मुक्ति गमनं च) तब यह जीव अवश्य सर्व कर्मोंसे रहित हो मोक्ष चला जाता है ।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनका प्रकाश होना ही कर्मोंकी जड़को उखाड़ डालता है । तब फिर आत्मानुभवके अभ्याससे एक दिन सर्व कर्मोंसे रहित हो यह जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

नुक्कत कम्म षिपनं, जैवन्तो ज्ञान दंसनं चरनं ।
जै जैवन्त उवन्नं, नुक्कत परदव्व भाव गलियं च ॥ ५६६ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दंसनं चरन जैवन्तो) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय धर्मकी जय हो जिससे (कम्म षिपनं) कर्मोंका क्षय होजाता है (नुक्कत) यह प्रशंसनीय बात होजाती है (जै जैवन्त

उवन्नं) जब कर्मोंके जीतनेका आत्मानुभवरूपी भाव पैदा होजाता है (नुक्रुत परदव्व भाव गलियं च) तब यह प्रशंसाकी बात है कि परद्रव्य सम्बन्धी सर्व रागादि भाव गल जाते हैं।

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय ही परम धर्म है। यही आत्मानुभवरूप है। यह सदा ही बना रहो जिसके प्रतापसे सर्व परभाव छूट जाते हैं व आत्मा कर्मोंसे मुक्त होजाता है।

धी ऊर्ज पंथ सुद्धं, ज्ञान समत्थेन ऊर्ध सद्‌भावं।
जै ज्ञान ठान सुद्धं, धी ऊर्ज सभाव मुक्ति गमनं च ॥ ५६७ ॥

अन्वयार्थ—(ऊर्ज धी सुद्धं पन्थ) श्रेष्ठ ज्ञानोपयोगका होना ही शुद्ध मोक्षका मार्ग है (ज्ञान समत्थेन ऊर्द्ध सदभावं) ध्यानकी शक्तिसे ही श्रेष्ठ आत्माका स्वभाव प्रगट होता है (जै ज्ञान ठान सुद्ध) उस शुद्ध ध्यानकी जय हो (धी ऊर्ज) जिससे सर्वोत्तम ज्ञान या केवलज्ञान प्रगट होजाता है (मुक्ति गमनं च) और यह जीव मोक्षमें चला जाता है।

भावार्थ—शुद्ध आत्माके स्वभावमें लय होना ही ध्यान है। ध्यानसे ही कर्म क्षय होते हैं और केवलज्ञान प्रगट होकर जीव मुक्त होजाता है।

गिर् उववन्न अनन्तं, नुक्रुत कम्म उववन्न विलयन्ति।
जैनं सुभाव सुद्धं, गिन्हं षिपिऊन कम्म बन्धानं ॥ ५६८ ॥

अन्वयार्थ—(गिर् उववन्न अनतं) अरहंतकी वाणीसे अनंत पदार्थोंका प्रकाश होता है (नुक्रुत) यह प्रशंसीकी बात है (कम्म उववन्न विलयति) उस वाणीके सुननेसे आते हुए कर्म रुक जाते हैं। (जैनं सुभाव सुद्धं) जब राग द्वेषादिको जीतकर शुद्ध स्वभावको (गिन्ह) ग्रहण किया जाता है (कम्म बंधानं षिपिऊन) तब सर्व कर्मके बन्धन क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—भगवानकी वाणीद्वारा परम शांति प्रदायक मोक्षमार्गका उपदेश होता है उसको सुनकर भावोंमें वैराग्य आनेसे आस्रव रुकते हैं। और जब वाणीके उपदेशके अनुसार सच्चा जैनधर्म, जो एक शुद्ध आत्माका भाव है, ग्रहण किया जाता है तब मुक्ति होजाती है।

षस्टं इस्टं च सुद्धं, टंकोत्कीर्न भाव उवनं च।
जै टंकोत सुभावं, षानं षिपनं च कम्म वन्धानं ॥ ५६९ ॥

अन्वयार्थ—(षस्ट इस्ट च सुद्ध) जगतमें छः द्रव्य अपने२ प्रिय शुद्ध स्वभावमें निश्चयसे हैं (टंकोत्कीर्न भाव उवनं च) उनका अमिट टंकोत्कीर्ण स्वभाव है (जै टकोत सुभावं) पड़गके समान आत्माका निज स्वभाव जयवंत रहे (कम्म बधान षान च षिपनं) जिससे कर्मबन्धोंकी खान नाश होजाती है।

भावार्थ—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल ये छः द्रव्य अविनाशी अनन्त अपने२ स्वभावमें सदा रहते हैं। संसारावस्थामें जीवोंमें विभावपना होता है तथा पुद्गलोंके स्कंध बनते हैं, शेष चार द्रव्य उदासीनपने स्वभावमें ही रहते हैं। इनमेंसे आत्माका जो द्रव्य स्वभाव है उसीका अनुभव एक ऐसी खड़ग है जो कर्मोंके वंशको काट डालती है, उसीको ग्रहण करना योग्य है।

कंठल सुभाव सुद्धं, ठंकारे सुभाव मुक्ति सहियं च।
ठंकार विमल सहियं, कललंकृत कम्म भाव मुक्कं च ॥ ५७० ॥

अन्वयार्थ—(कठल सुभाव सुद्ध) आत्माका स्वभाव शुद्ध गलेमें पहरनेवाली निर्मल मोतीकी मालाके समान है (ठंकारे सुभाव मुक्ति गमन च) आत्माका स्वभाव जब शुद्ध होजाता है तब वह मोक्षको गमन करता है। यहां ठंकार शब्दका भाव समझमें नहीं आया। (ठकार विमल सहिय) निर्मल स्वभावके होनेपर ही (कललंकृत कम्म भाव मुक्क च) शरीर सम्बन्धी सर्व कर्म व भावकर्म छूट जाते हैं।

भावार्थ—जैसे मोतीकी माला अनेक मोतियोंका एक समुदाय है वैसे यह आत्मा अनेक गुणपर्यायोंका समुदाय है। यह अखंड है, स्वभावसे शुद्ध मोतीकी मालाके समान शोभायमान है। इसको जो कंठमें धारते हैं अर्थात् शुद्ध आत्माका ध्यान करते हैं उनके भावकर्म व द्रव्यकर्म सब छूट जाते हैं।

कमल सुभाव जिनुत्तं, घादं कम्मान बन्ध तिक्तं च।
गिरू सहाव संजुत्तं, धी ऊर्ज सभाव मिच्छ विलयंति ॥ ५७१ ॥

अन्वयार्थ—(कमल सुभाव जिनुत्तं) अरहन्तका कमलके समान प्रफुल्लित स्वभाव है ऐसा जिनेन्द्रने कहा है

(घादं कम्मान वंध तिक्तं च) उनके घातीय कर्मोंके वन्ध छूट गए हैं (गिरू सहाव संजुत्तं) उनके दिव्यध्वनिका प्रकाश होता है (धी ऊर्ज सभाव मिच्छ विलयति) उनके श्रेष्ठ ज्ञानका स्वभाव प्रगट है, सर्व मिथ्याज्ञान नष्ट होगया है।

भावार्थ—यहां अरहन्तका स्वरूप है। सत्य स्वाभाविक गुण प्रगट होते हैं। विभाव भाव व अज्ञानका सर्वथा अभाव है।

नु लष्यं उवलष्यं, चूके तह असत्य भाव वहिरप्पं।
छेयन्ति विषय मलयं, जैवन्तो नंत दंसनं सम्मं ॥ ५७२ ॥

अन्वयार्थ—(नु लष्य उवलष्य) यह प्रशंसाकी वात है कि ज्ञानीने अपने लक्ष्यविदु शुद्धात्माका अनुभव कर लिया है (चूके तह असत्य भाव बहिरप्पं) तब सर्व असत्य व वहिरात्मपनेके भाव नष्ट होगए हैं (छेयंति विषय मलयं) विषयोंका सर्व मल हट गया है (जैवतो नंत दंसन सम्म) यह अनन्त क्षायिक सम्यग्दर्शन जैवंत हो।

भावार्थ—जव क्षायिक सम्यग्दर्शनका प्रकाश होजाता है तव मिथ्यात्वभाव बिलकुल चला जाता है, इंद्रिय विषयोंकी वांछा मिट जाती है, मानो मोक्ष हाथमें ही आजाता है।

ज्ञेयं ज्ञान सहावं, नो उववन्न परभाव विलयन्ति।
टंकोत्कीर्न सहियं, ठिदिकरनं मुक्ति नन्त कालम्मि ॥ ५७३ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान सहावं ज्ञेयं) आत्माके ज्ञान स्वभावका ध्यान करना चाहिये (नो उववन्न परभाव विलयन्ति) इससे नवीन उत्पन्न होनेवाले रागादि भाव विलय होजाते हैं (टंकोत्कीर्न सहियं) टंकोत्कीर्णके समान अपने अमिट मूल स्वभावको लिये हुए (ठिदिकरनं मुक्ति नन्त कालम्मि) मुक्तिमें अनन्त काल तक आत्माकी स्थिति रहती है।

भावार्थ—आत्माके ध्यानसे भावकर्म व द्रव्यकर्म व नोकर्म सव छूट जाते हैं और आत्मा अनन्तकाल तक मोक्षावस्थामें विराजमान रहता है।

टंकार भाव सुद्धं, ठ नंतनंत दिस्टि दिस्टंतो।
नो कम्म कम्म विलयं, धी ऊर्ध सहाव कम्म षिपनं च ॥ ५७४ ॥

अन्वयार्थ—(टंकार भाव शुद्ध) शुद्ध भाव ही मुक्ति स्त्रीके चितानेके लिये टंकार है या शव्द है (ठ नंत-नंत दिस्टि दिस्टतो) उसी ठं ठं के शव्दसे मानो शुद्ध स्वभावने अनंतानंत दर्शन स्वभावको देख लिया है (नो कम्म कम्म विलय) इस शुद्धोपयोगरूप परिणमनसे नो कर्म शरीर तथा द्रव्यकर्म सव छूट जाते हैं (धी ऊर्ध सहाव कम्म षिपनं च) श्रेष्ठ ज्ञान स्वभावके होनेसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—शुद्धोपयोग ही मोक्षका कारण है।

जैवंतो टंकारं, छेयं परभाव पर्जाय गलियं च।
चूरंति विषयरागं, नु कृत उववन्न दंसनं चरनं ॥ ५७५ ॥

अन्वयार्थ—(टकारं जैवतो) शुद्ध आत्मस्वभावके प्रकाशकी टंकार जयवंत हो (छेयं परभाव पर्जाय गलिय च) जिससे रागादि परभाव छिद जाते हैं और शरीर भी गल जाता है (विषयराग चूरंति) विषयोंका राग चूर्ण होजाता है (नु कृत दसनं चरन उववन्न) प्रशंसनीय क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा क्षायिकचारित्र प्रगट होजाता है।

भावार्थ—शुद्ध स्वभावके अनुभवसे ही आत्माके शुद्ध गुण प्रगट होते हैं।

धी ऊर्ज भाव संजुत्तं, गिर उववन्न भाव लष्य अलष्यं।
षलु निश्चै च सहावं, कम्मं गलियंति केवलं सुद्धं ॥ ५७६ ॥

अन्वयार्थ—(धी ऊर्ज भाव संजुत्तं) श्रेष्ठ ज्ञानके स्वभावको आत्मा जव प्रकाश करता है (गिर उववन्न भाव लष्य अलष्यं) तव अरहंत होकर दिव्यवाणीका प्रकाश होता है व मन, वचन, कायसे अगोचर आत्माका प्रत्यक्ष दर्शन होजाता है (षलु निश्चै च सहावं) यही वास्तवमें आत्माका निश्चय स्वभाव है (कम्मं गलियंति केवलं सुद्धं) फिर शेष कर्म भी गल जाते हैं और आत्मा केवल शुद्ध सिद्ध होजाता है।

भावार्थ—आत्माके ध्यानसे ही अरहंत तथा सिद्धपद होता है!

षडी विसेसं उत्तं, लषिज्जइ लष्य नेह संजुत्तं।
सूपम सुभाव सुद्धं, कम्मं पिपिऊन सरनि संसारे ॥ ५७७ ॥

अन्वयार्थ—(षडी विसेस उत्त) खडीयाके समान निर्मल श्वेत स्वभावका वर्णन किया जाता है (नेह

संजुत्तं लष्य लषिज्जइ) जब शुद्धात्माकी तरफ स्नेह होता है तब अनुभव करने योग्य आत्माका अनुभव हो-जाता है (संसारे सरनि कम्मं पिपिऊन) संसारमें भ्रमण करानेवाले कर्मोंका क्षय करके (सूषम सुभाव सुद्धं) अतीन्द्रिय शुद्ध स्वभाव प्रकाशमान होजाता है।

भावार्थ—रागादि रहित शुद्ध आत्माका अनुभव करनेसे आत्मा कर्म रहित शुद्ध स्वभावका धारी सिद्ध होजाता है।

अप्प सहावं दिट्ठं, पर पज्जाय विषय विरयन्तो।
मिच्छात राग षिपनं, सूषम सभाव मुक्ति गमनं च॥ ५७८ ॥

अन्वयार्थ—(अप्प सहावं दिट्ठं) आत्माका स्वभाव जब दिख जाता है (पर पज्जाय विषय विरयन्तो) तब पर पर्यायसे व इंद्रियविषयसे विरक्तता आजाती है (मिच्छात राग षिपनं) मिथ्यात्व कारण क्षय होजाता है (सूषम सभाव मुक्ति गमनं च) तब अतीन्द्रिय सूक्ष्म स्वभाव प्रगट होजाता है। शुद्ध होनेपर वे मुक्तिको जाते हैं।

भावार्थ—आत्माके स्वभावका जब अनुभव होता है तब ही उन्नति करते २ आत्मा केवलज्ञानको प्राप्त होजाता है।

अज्ञान संसारमार्ग है व सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग है।

अज्ञान भाव सहियं, कम्मं उववन्न नन्त नन्ताइं।
अनेय काल भमनं, ज्ञान सभाव कम्म षिपनं च॥ ५७९ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान भाव सहिय) जहांतक अज्ञानका विभाव भाव रहता है (कम्मं उववन्न नन्त नन्ताइं) वहांतक अनन्तानन्त कर्मवर्गणाओंका वन्ध होता रहेगा (अनेय काल भमनं) और यह जीव दीर्घकाल भ्रमण करता रहेगा (ज्ञान सभाव कम्म षिपनं च) ज्ञान स्वभावमें लीन होनेसे कर्मोंका क्षय होजाता है।

भावार्थ—मिथ्यात्व भाव सहित जीव सदा कर्मको बांधकर संसारमें भ्रमण करता रहता है। सम्यक्त भाव सहित जीव ही मोक्षका उत्सुक होकर आचरण करता है और वह कर्मोंको काटकर अवश्य एक दिन शुद्ध होजाता है।

अज्ञान पज्जायं, सहियं उववन्न कम्म विविहं च ।
ज्ञान सहावं दिट्ठी, कम्म गलियं च अंतर्मुहूर्तस्य ॥ ५८० ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान पज्जाय सहिय) जबतक अज्ञानभाव या मिथ्यादर्शन सहित भाव रहता है तबतक (कम्म विविह च उववन्न) नाना प्रकार कर्मोंका बंध होता रहता है (ज्ञान सहावं दिट्ठी) जब ज्ञान स्वभावरूप दृष्टि होजाती है अर्थात् आत्माका अनुभव होजाता है (अंतर्मुहूर्तस्य कम्म गलिय च) तब यदि एक अंतर्मुहूर्त तक ध्यानमें स्थिरता होजावे तो घातीयकर्म क्षय होकर केवलज्ञान पैदा होजाता है ।

भावार्थ—मिथ्यादर्शन संसारका कारण है, जब सम्यग्दर्शन मोक्षका साधक है, इसीकी प्राप्ति करनी चाहिये ।

अज्ञान जुत्त उत्तं, कम्मं तह सहावनेकं च ।
ज्ञान बलेन हि मुनिवर, षिनदि विलय कम्मं तिविहं च ॥ ५८१ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान जुत्त उत्तं) मिथ्याज्ञानका संयोग जबतक कहा जाता है (कम्मं तह सहावनेकं च) तबतक अनेक प्रकार कर्मोंका बध होता रहता है । (ज्ञान बलेन हि मुनिवर षिनदि) सम्यग्ज्ञानके बलसे मुनिमहाराज कर्मोंका क्षय करते हैं (तिविहं कम्म च विलय) फिर तीन प्रकार कर्म्म—भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म बिलकुल विला जाते हैं ।

भावार्थ—अज्ञान भाव बंधकारक है तब सम्यग्ज्ञानका भाव मोक्षकारक है ।

अज्ञान परिनय सहियं, परिनवइ कम्मान अनंत भावे हि ।
ज्ञान दिस्टि उववन्नं, जं सूरं तिमिरनासनं सहसा ॥ ५८२ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान परिनय सहियं) जबतक यह जीव अज्ञानकी परिणतिमें परिणमन कर रहा है (अनंत भावे हि कम्मान परिनवई) तबतक अनंत प्रकारके भावोंसे कर्मोंका बन्ध होता है (ज्ञान दिस्टि उववन्न) जब सम्यग्दर्शनके साथ सम्यग्ज्ञानकी दृष्टि पैदा होजाती है (जं सूर तिमिरनासनं सहसा) तब जैसे सूर्यके प्रकाशसे अंधेरा यकायक नष्ट होजाता है, वैसे सम्यग्ज्ञानके प्रकाशसे मिथ्याज्ञान नष्ट होजाता है ।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानका प्रकाश और अंधकारका सा स्वभाव है, एक दूसरेका विरोधी है। जैसे सूर्यके प्रकाश प्रगट होते ही रात्रिका अंधकार सब दूर होजाता है वैसे ही सम्यग्ज्ञानके उदय होते ही मिथ्याज्ञानका अंधेरा मिट जाता है।

अज्ञान समयेन, कम्मं उप्पत्ति नन्त जन्मानं।
ज्ञान समय उववन्नं, गलियं कम्मान तिविह जोएन ॥ ५८३ ॥

अन्वयार्थ—(अज्ञान समयेन) मिथ्याज्ञान सहित आत्माके द्वारा (कम्म उप्पत्ति नन्त जन्मान) ऐसा कर्मोंका बन्ध होता है कि एकेन्द्रियादि पर्यायोंमें अनन्त जन्म धारण करना पड़ता है (ज्ञान समय उववन्न परन्तु जब सम्यग्ज्ञानमई आत्मा होजाता है तब (तिविह जोएन कम्मान गलिय) मन वचन कायकी गुप्तिके उत्तम लाभसे सर्व कर्म क्षय होजाते हैं।

भावार्थ—मिथ्याज्ञान संसारमें भ्रमण करानेवाला है तब सम्यग्ज्ञान-संसारसे उद्धार करनेवाला है।

ज्ञान दंसन समं, चरनं दुविहं पि सहाव तव जुत्तं।
रयनत्तय भत्तीओ, नन्त चतुष्टं च मुक्ति गमनं च ॥ ५८४ ॥

अन्वयार्थ—(ज्ञान दंसन समं) सम्यग्दर्शन सहित ज्ञान हो (दुविहं पि चरनं) व्यवहार तथा निश्चय चारित्र हो (सहाव तव जुत्त) स्वभावमें रमणरूप तप हो (रयनत्तय भत्तीओ, रत्नत्रय धर्मकी आराधनासे (नन्त चतुष्टं च) अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय प्रगट होते हैं (मुक्ति गमनं च) फिर यह जीव मोक्ष लाभ करता है।

भावार्थ—आत्माकी दृढ़ श्रद्धा होनेपर सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञानका एक साथ प्रकाश होता है फिर व्यवहार चारित्रके आलम्बनसे जब स्वरूपाचरण चारित्र तथा स्वभावमें तपन रूप तप पाला जाता है अर्थात् निश्चय रत्नत्रयमई स्वात्मानुभव किया जाता है तब ही क्षपकश्रेणी चढ़कर साधु मोहादि चारों घातीयका नाशकर अरहंत होजाता है, फिर शरीर छूटनेपर सिद्ध होजाता है। अतएव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र, तप इन चार आराधनाओंको सदा करते रहना चाहिये। चारित्रमें तप गर्भित है।

ऐसा ही तत्वसारमें देवसेनाचार्य कहते हैं—

दंसणणाणचरित्तं जोई तस्सेह णिच्छयं भणियं । जो वेयइ अप्पाणं सचेयणं सुद्ध भावट्ठ ॥ ४५ ॥

ससहावं वेदंतो णिच्चलचित्तो विमुक्कपरभावो । सो जीवो णायव्वो दंसणणाणं चरित्त च ॥ ५६ ॥

जो अप्पा त णाणं जं णाण तं च दंसणं चरणं । सा सुद्धचेयणावि य णिच्छयणयमस्सिए जीवे ॥ ५७ ॥

भावार्थ—उसी योगीके निश्चय दर्शन ज्ञान चारित्र कहे गये हैं, जो शुद्ध भावमें स्थिर चैतन्यमई आत्माका अनुभव करता है। जो जीव निश्चल चित्त होकर व परभावोंको त्यागकर अपने स्वभावका स्वाद लेता है वही जीव दर्शन ज्ञान चारित्रमई है ऐसा जानना चाहिये। निश्चयनयसे विचारते हुए जीवमें जो आत्मा है वही ज्ञान है। जो ज्ञान है वही दर्शन है, वही चारित्र है, वही शुद्ध ज्ञानचेतना है व शुद्धात्मानुभव है, यही साक्षात् मोक्षमार्ग है।

उपदेश शुद्धसारका प्रयोजन।

उवएस सुद्ध सहियं, सुद्धं अवयास विमल ज्ञानस्य।
कम्ममल सुयं च षिपनं, उवएसं सुद्ध मुक्ति गमनं च ॥ ५८५ ॥

अन्वयार्थ—(उवएस सुद्ध सहिय) जब शुद्ध तत्वका उपदेश मिलता है तब (सुद्धं अवयास विमल ज्ञानस्य) निर्मल ज्ञानका शुद्ध प्रकाश होता है (कम्ममल सुयं च षिपनं) आत्मज्ञानमें स्थिर होनेसे कर्ममल स्वयं छूटता जाता है (सुद्ध उवएसं मुक्ति गमनं च) इसलिये शुद्ध तत्वका उपदेश मोक्षमार्ग है।

भावार्थ—जबतक निश्चयनयसे शुद्ध आत्माका उपदेश न किया जावे तबतक व्यवहारी लोग अपने आत्माको कर्म सहित मलीन व रागी द्वेषी ही अनुभव करते रहेंगे, उनका कर्म बन्ध न छूटेगा, वे कदापि संसारसे पार न होंगे। इसलिये शुद्ध आत्माके उपदेशकी जरूरत है। जब भव्य जीव अपने ही आत्माका परमात्माके समान शुद्ध श्रद्धान ज्ञानमें लेकर अनुभव करता है तब वीतरागता पैदा होती है इसीसे कर्म क्षय होते हैं, बन्धका अभाव होता है और यह आत्मा शीघ्र ही संसारसे मुक्त होजाता है।

उवएसं जिन उत्तं, सम्मत्तं सुद्ध सहाव संजुत्तं ।
कम्मं तिविहं मुक्कं, उवइट्ठं परम जिनवरिं देहि ॥ ५८६ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त उवएसं सम्मत्तं) जिनेन्द्रके उपदेशको मानना चाहिये (सुद्ध सहाव संजुत्तं तिविहं कम्मं मुक्कं) शुद्ध आत्मीक स्वभावमें तन्मय होनेसे भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म सब छूट जाते हैं (परम जिनवरिं देहि उवइट्ठं) ऐसा तीर्थंकरोंने उपदेश किया है।

भावार्थ—श्री जिनेन्द्रके परम्परा उपदेशानुसार आत्मतत्वका निश्चय करके आत्माके शुद्ध स्वभावमें रत होनेसे ही धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान होता है जिससे सर्व कर्म छूटकर जीव मुक्त होजाता है।

उवएसं जिन वयनं, जिन सहकारेन ज्ञानमय सुद्धं ।
आनन्दं परमानन्दं, परमप्पा विमल निव्वुए जंति ॥ ५८७ ॥

अन्वयार्थ—(उवएस जिन वयन) जैसे जिनवाणीका उपदेश है उसके अनुसार (जिन सहकारेन ज्ञानमय सुद्धं) जिनेन्द्रके स्वरूपकी सहायतासे अपने आत्माको ज्ञानमई शुद्ध अनुभव करे (आनन्दं परमानंदं) और परमानन्दमें मगन होजावे (विमल परमप्पा निव्वुए जंति) इसी साधनसे मल रहित होकर आत्मा परमात्मा होजायगा और निर्वाणका लाभ कर लेगा।

भावार्थ—मुमुक्षु जीवको उचित है कि जिनवाणीका भलेप्रकार अभ्यास करे, व्यवहार व निश्चयनय दोनोंसे तत्वको समझे। तथा परमात्मा जिनेन्द्रकी आत्माका सच्चा स्वरूप पहिचाने। उसी समान अपने आत्माको ध्यावे। आत्म-ध्यानसे ही अरहंत होकर सिद्ध होजायगा।

भव्वजन वोहनत्थं, अत्थ परमत्थ परम बुद्धं च ।
जिन उत्तं स दिट्ठं, किंचित् उवएस कहिय भावेन ॥ ५८८ ॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्त) जिनेन्द्रने जैसा कहा है (अत्थ परम परमत्थ बुद्ध च) पदार्थोंका स्वरूप व परम पदार्थ शुद्ध आत्माका स्वरूप वैसा ही जान करके (स दिट्ठ) वही स्वरूप दिखलाया गया है (भावेन किंचित् उवएस भव्वजन वोहनत्थ कहिय) भावपूर्वक भव्यजनोंके समझानेके लिये कुछ उपदेश कहा गया है।

भावार्थ—यहां श्री तारणस्वामीने बताया है कि मैंने श्री जिनेन्द्र कथित तत्वोंको जिनवाणीके अनुसार जान करके इस ग्रन्थमें कुछ उपदेश केवल परोपकार भावसे भव्यजीवोंको ज्ञान लाभ हो इसी हेतुसे किया है। कुछ मेरा और अभिप्राय ख्याति लाभ पूजाका नहीं है। तथा जो कुछ मैंने कहा है वह अपनी मनो कल्पनासे नहीं कहा है। परस्परा तीर्थंकरोंके उपदेशके अनुसार कहा है। भव्यजीव इस ग्रन्थको ध्यानसे पढ़ें व शुद्ध आत्माके तत्वका मनन करें जिससे मोक्षमार्गपर चलकर सदा सुखी रहें।

जिन उत्तं जिन वयनं, जिन सहकारेन उवएसनं तंपि।
यं जिन तारन रइ यं, कम्मषय मुक्ति कारनं सुद्धं ॥५८९॥

अन्वयार्थ—(जिन उत्तं जिन वयनं) जिनेन्द्र कथित जिनवाणी है जिन (सहकारेन तंपि उवएसनं) श्री जिनेन्द्रके प्रसादसे ही उसीका उपदेश किया गया है (यं जिन तारन रइ यं) इस उपदेश शुद्धसार ग्रन्थको तारणजिनने रचा है (कम्मषय मुक्ति कारनं सुद्ध) जिससे अपना व दूसरोंका कर्म क्षय हो, मोक्षका मार्ग मिले व आत्मा शुद्ध भावको प्राप्त करे।

भावार्थ—श्री तारणतरण स्वामी अपनेको तारन जिन नामसे प्रगट करके यह दिखाते हैं कि मैं जैन धर्मके अनुसार ही चलनेवाला हूँ। मेरा नाम तारण है तथा मैंने अपने व परको शुद्ध भावका लाभ हो व कर्मका क्षय होकर मुक्ति प्राप्त हो इसी हेतुसे इस ग्रन्थमें वही उपदेश किया है जो श्री जिनवाणीसे मैंने जाना है। इस ग्रन्थके पूर्ण होनेमें भी श्री जिनेन्द्रकी भक्तिका ही प्रसाद है, मेरा कुछ कर्तव्य नहीं है।



दोहा ।

श्री जिनेन्द्र गुण भक्तिसे, हुओ कार्य यह पूर्ण ।
निज परका कल्याण हो, होय पाप सब चूर्ण ॥ १ ॥
श्री तारण स्वामी महा, अध्यातम भण्डार ।
तिनके गुणकी कृपासे, टीका करी सम्हार ॥ २ ॥
अल्प-बुद्धि श्रुत अल्प है, भूल चूक जो होय ।
क्षमा भाव धरकर सुधी, सोधो तत्व विलोय ॥ ३ ॥
भादों वदि नौमी दिना, भानुवार सुखकार ।
साठरु चौविस वर्ष हैं, वीर मोक्ष उर धार ॥ ४ ॥
उन्निस सौ इक्यानवै, विक्रम सम्वत सार ।
उन्निस चौतिस सन् यही, सितम्बर दुइ धार ॥ ५ ॥
अमरावति शुभ नगरमें, वर्षाकाल विताय ।
जैन दिगम्बर संघमें, रह्यो धर्म लय लाय ॥ ६ ॥
सिंघई पन्नालालजी, जज जमना परसाद ।
प्रोफेसर हीरालालजी, मुख्य जैन अघ वाद ॥ ७ ॥
नमन करत अरहंतको, सिद्ध भजूं कर ध्यान ।
सूर गुरू साधू नमूं, मंगल होय महान ॥ ८ ॥

अमरावती,
रविवार ता० २-९-१९३४

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद ।

श्री उपदेश शुद्ध सार-

समास।